देव शिल्प

मंदिर वास्तु एवं स्थापत्य

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि मुनि

देव शिल्प

मंदिर वास्तु एवं स्थापत्य

रचयिता

सिद्धांत रत्नाकर, ज्ञान योगी

प्रज्ञाश्रमण आचार्य श्री १०८ देवनन्दि जी महाराज

सम्पादक

नरेन्द्र कुमार बड़जात्या

छिन्दवाड़ा

आशीर्वाद : प.पू. गणाधिपति गणधराचार्य श्री १०८ कुंथुसागर जी महाराज

ग्रंथ नाम : देव शिल्प

रचयिता : प.पू. प्रज्ञाश्रमण आचार्य श्री १०८ देवनन्दि जी महाराज

सामग्री संचयन : प.पू. आर्यिका श्री १०५ सुमंगलाश्री माताजी

सम्पादक : नरेन्द्र कुमार बड़जात्या,
चर्च कम्पाउंड, ई.एल.सी., छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

कम्पोजिंग : राजेश मालवीय, रुचि वर्मा, रजत गुप्ता, छिन्दवाड़ा

आवृत्ति : प्रथम

प्रकाशन तिथि : १५ अगस्त २००० आचार्य श्री देवनन्दिजी महाराज की ३७ वी जन्म जयन्ती; श्री नैनागिरि सिद्धक्षेत्र छतरपुर म.प्र. मे आचार्य श्री १०८ देवनन्दिजी महाराज के ससंघ पावन चातुर्मास के अवसर पर

प्रभावना राशि – दो सौ पचहत्तर रुपये मात्र

इस राशि का प्रयोग पूज्य गुरुवर आचार्य श्री देवनन्दिजी महाराज की कृतियों के प्रकाशन के लिये किया जायेगा।

समर्पण

युग के प्रथम तीर्थंकर

देवाधिदेव ऋषभदेव

के प्रति

जिन्होंने मानव जाति को

सभ्यता का प्रथम पाठ

पढ़ाया

तथा

प्रथम चक्रवर्ती 'भरत' जी को

जिन्होंने

कैलास पर्वत पर ७२ जिनालयों

का निर्माण कर

जिनालय निर्माण की

परम्परा

प्रारंभ की

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि मुनि

धर्म प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव
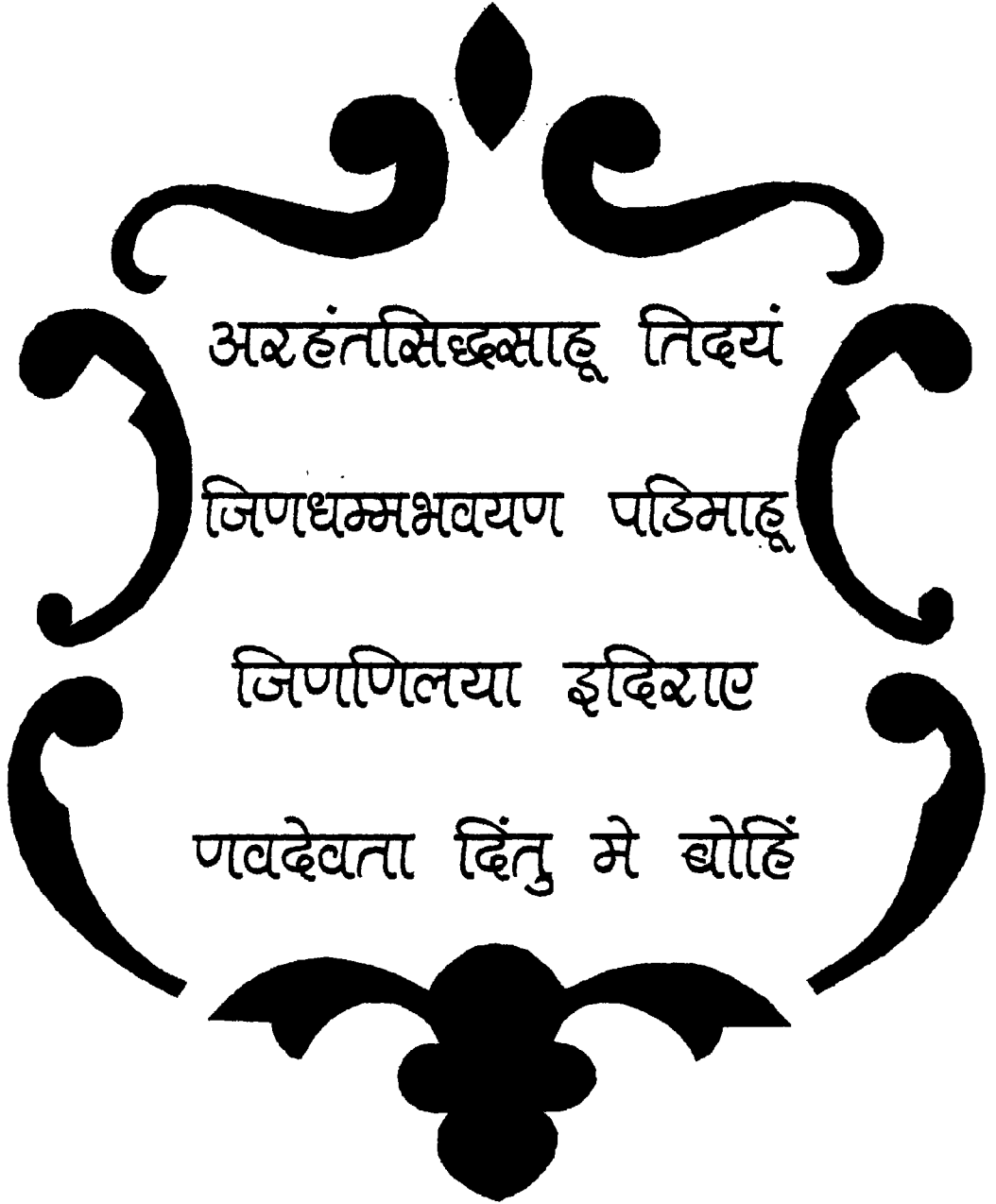
पंच परमेष्ठी, जिन धर्म, जिन वचन, जिन प्रतिमा, जिन मन्दिर
मुझे रत्नत्रय की पूर्णता देवें ।

आशीर्वचन

मुझे इस बात की आत्मीय प्रसन्नता है कि मेरे परम शिष्य प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि जी ने मन्दिर निर्माण से सम्बन्धित वास्तु शास्त्र का निर्देशन करने वाले ग्रन्थ देवशिल्प की रचना की है। वे ज्ञानयोगी हैं। उन्होंने अनेकों प्राचीन ग्रन्थों का सार तत्व इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। मन्दिर का निर्माण करना अत्यंत पुण्य संचय का कार्य है किन्तु इस कार्य को निश्चित विधि से ही करना चाहिये। मन्दिर में स्थापित जिन प्रतिमा भी निश्चित प्रमाण में होना आवश्यक है। प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि दोष युक्त मन्दिर एवं प्रतिमाओं का प्रभाव मन्दिर निर्माता, प्रतिमा स्थापनकर्ता, श्रावक एवं समाज सभी पर पड़ता है, इसका कारण मन्दिर वास्तु शास्त्र की अनभिज्ञता है।

इस ग्रन्थ को पढ़कर व्रती, विद्वान, समाज के श्रावक गण, दानदाता आदि सभी को दिशा बोध प्राप्त होगा। प्रिय शिष्य आ. देवनन्दि की रचना देव शिल्प सभी मन्दिरों एवं समाज में अवश्य ही पढ़ी जाना चाहिये ताकि भ्रम दूर कर सभी यथायोग्य रीति से मन्दिर निर्माण, जीर्णोद्धार, प्रतिमा स्थापना आदि कार्य कर सकें।

प्रिय शिष्य आ. देवनन्दि को हमारा पूर्ण आशीर्वाद है। वे भविष्य में भी इसी तरह ज्ञानोपयोग करें तथा जिनवाणी माँ की आराधना करें। प्राचीन आगम शास्त्रों का अध्ययन कर नवीन कृतियों की रचना करें साथ वे आत्मोपलब्धि की प्राप्ति करें।

चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रभु की कृपा सदैव उन पर बनी रहे, यही मेरी भावना है।

ग. आ. कुन्थुसागर
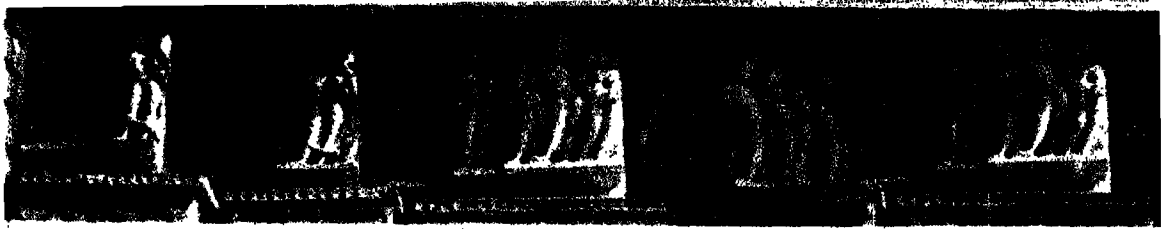
स्वशक्ति के अनुरूप काष्ठ, ईंट, पाषाण, स्वर्ण आदि धातु अथवा रत्न का मन्दिर निर्माण कराने वाला उपासक चारों पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की प्राप्ति करता है।

आशीर्वाद

देव शिल्प ग्रन्थ
आपके लिए
मन्दिर एवं प्रतिमा का
सतस्वरूप
जानने एवं
अनुकरण करने हेतु
सहायक हो

इसी मंगल भावना के साथ प्रस्तुत है
एक
अभिनव प्रस्तुति

देव शिल्प

"वर्धतां जिन शासनम्"

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि...

(प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि)
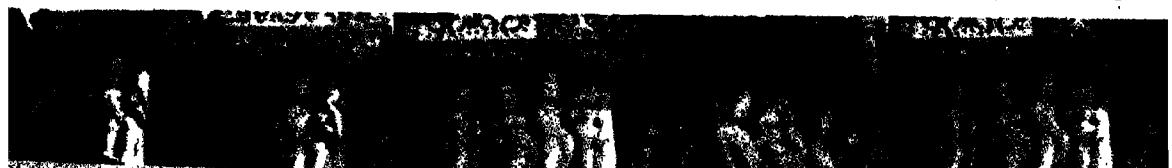
देव शिल्प : कृति एवं कृतिकार

श्री देवनन्दि गुरवे नमः

सांसारिक जीवन में देवाराधना का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मुनि एवं गृहस्थ दोनों के लिये यह आवश्यक कर्म माना जाता है। आराधना के लिये देव का साकार रुप प्रतिमा के रुप में मन्दिर मे स्थापित किया जाता है। जैन आगम शास्त्रों में प्राचीन आचार्यों ने जिन को नमस्कार किया है। जिन के चार भेदों में स्थापना जिन का तात्पर्य जिन चैत्य (प्रतिमा) से है।

प्राचीनतम काल से ही मनुष्य आराधना के लिए साकार रुप की रचना करता आया है। पौराणिक मान्यतानुसार काल के प्रारंभ में इन्द्र ने अयोध्या नगरी का निर्माण करते समय प्रारंभ में ही जिन मन्दिरो को स्थापित किया। नव देवताओं में भी इनका समावेश है - जिन चैत्य अर्थात् जिनेन्द्र प्रतिमा तथा जिन चैत्यालय अर्थात् जिन प्रतिमा का मन्दिर दोनों ही देवता स्वरुप पूज्य हैं। जिनेन्द्र प्रभु स्वयं श्री अरिहन्त, सिद्ध होने से पूज्य हैं। भगवान जिनेन्द्र का आराधना स्थल जिन मन्दिर किस स्थान, किस शैली एवं किसके द्वारा बनाया जाये, इसका निर्णय करने के लिए जैन शास्त्रों में पर्याप्त निर्देश हैं। यदि शास्त्र सम्मत विधि से जिन मन्दिर का निर्माण किया जाता है तो वह उपासक एवं मन्दिर निर्माण कर्ता के अतिरिक्त समाज, नगर एवं देश के लिये भी कल्याणकारी होता है।

जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा एवं मन्दिर दोनों ही सुख को प्रदान करते हैं। संसार से मुक्ति के कारण भूत रत्नत्रय की प्राप्ति के लिये ये समर्थ निमित्त हैं। इन्हें मोक्ष रुपी प्रासाद का सोपान माना जाता है। इस मन्दिर का निर्माण करने के सूत्र जिनागम में प्रदर्शित हैं। काल वश अनेकों शास्त्रों एवं विद्याओं का क्षय हो गया। तथापि कतिपय शिल्प शास्त्र एवं प्रतिष्ठा पाठों में इसका ज्ञान उपलब्ध है।

परम पूज्य गुरुवर वात्सल्य मूर्ति, ज्ञानयोगी, प्रज्ञाश्रमण आचार्य श्री १०८ देवनन्दिजी महाराज की प्रस्तुत कृति देवशिल्प, मन्दिर निर्माण के सभी व्यवहारिक पक्षों पर प्रकाश डालती है। गुरुदेव ने अपने विहार एवं अध्ययन दोनों के मध्य मन्दिरों एवं समाज की स्थिति का अनुभव किया। आपका यह विचार बना कि यदि मन्दिर एवं प्रतिमाएं शास्त्र सम्मत रीति से स्थापित की जायेंगी तथा उसमें भावपूर्वक विधि विधान के साथ प्रभु की आराधना की जायेगी तो निश्चय ही चमत्कृत कर देने वाले पुण्य फल की प्राप्ति होगी। यह पुण्य निश्चय ही सबके लिए कल्याणकारक होगा तथा परम्परा से संसार से मुक्ति का हेतु बनेगा।

प्रारंभ में गुरुदेव ने वास्तु चिन्तामणि ग्रन्थ की रचना कर श्रावकों को वास्तुगत चिन्ताओं से मुक्त किया। पश्चात् मन्दिर एवं प्रतिमाओं के विषय में लेखनी उठाई। इस विषय में जैन जैनेतर अनेकानेक ग्रन्थों का सार तत्व एकत्र किया जो आपके समक्ष देवशिल्प के रुप में प्रस्तुत है। गुरु देव की यह ऐतिहासिक कृति है। पिछले एक सहस्र वर्षों में संभवतः प्रथम बार किसी दिगम्बर आचार्य ने सभी विषयों का समायोजन कर मन्दिर वास्तु एवं स्थापत्य का सर्वांगीण सर्वोपयोगी ग्रन्थ निर्माण किया है।

गुरुदेव का वात्सल्य, करुणा एवं मृदुभाषा युक्त वचन सभी जनों के लिए कल्याणकारी हैं। ज्ञानयोगी, प्रज्ञाश्रमण आचार्य श्री १०८ देवनन्दिजी महाराज की निरंतर अनुकम्पामयी दृष्टि मुझ पर पड़ती रहे, यही भावना मैं सतत रखते हुए गुरुदेव के चरणों में बारम्बार नमोस्तु करती हूँ।

सिद्ध क्षेत्र नैनागिरि १५/०७/२००० — आर्यिका सुमंगला श्री

मनोगत

किसी भी धर्म, सम्प्रदाय अथवा संस्कृति का आभास उसकी पुरातात्त्विक सम्पदा को देखकर होता है। शास्त्रों से उस विचारधारा का बोध अवश्य होता है किन्तु उनका स्थापत्य उनके वैभव की गाथा शताब्दियों तक बिना कुछ कहे भी कहता रहता है। जैन धर्म के विशाल मन्दिर एवं प्रतिमाएं आज भी इसका प्रमाण हैं कि यह धर्म प्राचीनतम है तथा इसकी वैभव गाथा अन्य किसी भी परम्परा से न्यून नहीं है। विचारधाराओं का सीधा प्रभाव उस समय की शिल्प कला पर दिखता है।

गुरुदेव की शरण में आने के बाद प.पू. गुरुदेव के साथ अनेकों तीर्थ क्षेत्रों के दर्शन किये। पश्चात भी अनेकानेक तीर्थ क्षेत्रों एवं नगर-ग्रामों में जिनदर्शन किये। विभिन्न स्थलों पर वहां की समाज एवं मन्दिर स्थापनकर्ता अत्यंत शोचनीय स्थिति में दृष्टिगत हुए। इस विषय में अनेकों बार चिन्तन किया। क्या जिनालय निर्माण का असीम पुण्य इतना शीघ्र क्षीण हो गया अथवा कहीं ऐसी चूक है जो दृष्टि बाह्य है। ऐसा स्पष्ट परिलक्षित होने लगा कि मन्दिर निर्माण की शिल्प विधा से समाज अनभिज्ञ है तथा इसी कारण देवस्थानों एवं तीर्थ क्षेत्रों में समाज बड़ी उपेक्षा की स्थिति में है। देव पूजा एवं मन्दिर निर्माण से प्राप्त असीम पुण्य फल से भी मात्र अज्ञानता एवं असावधानी के कारण यथोचित परिणाम नहीं मिल रहे। गृहस्थ जन भी दोषपूर्ण वास्तु के कारण पुरुषार्थ को निष्फल कर रहे हैं।

निरन्तर यह भावना मन में उत्पन्न होती रही कि जिनागम का अध्ययन कर श्रावकोपयोगी जानकारी यदि प्रस्तुत की जाये तो गृहस्थ अपने दान एवं पुरुषार्थ को सार्थक कर सकेंगे। विहार एवं वर्षावास दोनों में निरंतर मन्दिरों के शिल्प एवं प्रतिमाओं का गहन अध्ययन किया। श्रावकों के लिये दान एवं पूजा मुख्य कर्तव्य हैं। ये दोनों कर्त्तव्य तभी सफल होंगे जबकि समुचित रीति से मन्दिरों का निर्माण किया गया हो तथा उनमें जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा सही प्रमाण में हो। साथ ही पूजक भी संपूर्ण निष्ठा से भगवान की आराधना करे। इस विषय में कोई भी ऐसा ग्रन्थ दृष्टिगोचर नहीं हुआ जिसमें सभी उपयुक्त विषयों का सुगम प्रस्तुतिकरण किया गया हो। श्री कचनेर तीर्थ में गृहस्थो के लिये उपयोगी ग्रन्थवास्तु चिन्तामणि की रचना हुई जिसका सदुपयोग बड़ी संख्या में सर्वत्र जैन जैनेतर पाठकों ने किया।

तीर्थंकर प्रभु के केवल ज्ञान से उत्पन्न वाणी को ग्यारह अंग चौदह पूर्वों में विभक्त किया जाता है। इसका दृष्टि प्रवाद अंग का क्रिया विशाल पूर्व शिल्प शास्त्रों का मूल है। कालान्तर में ज्ञान का संरक्षण न कर पाने से इन्हें शास्त्रों में लिखा गया तथा विधर्मियों के आघात से इनका भी क्षय हुआ। शास्त्र भले ही अनुपलब्ध हुए किन्तु तत्कालीन पुरातत्व के अवशेष आज भी धर्म का गौरवमयी इतिहास वर्णित करते हैं।

मन्दिर निर्माण का असीम पुण्यफल तो है ही साथ ही यह शताब्दियों तक प्रभु का वीतरागी मार्ग आराधक को दर्शाता है। इस प्रकार स्वयं की गई देवपूजा के अतिरिक्त मंदिर से लाभान्वित आराधक के पुण्यार्जन का निमित्त कारण बनकर मन्दिर स्थापनकर्ता निरन्तर पुण्य संचय करता रहता है। यदि मन्दिर ठीक नहीं बना हो अथवा देव प्रतिमा सही प्रमाण में नहीं बनी हो तो उसका विपरीत परिणाम दोनों को ही मिलता है।

त्रिलोकपति चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्वामी की ही अनुकम्पा से उनके श्री चरणों में तीर्थक्षेत्र कचनेर मे यह भावना उत्पन्न हुई कि जैनागम की वास्तु शिल्प विधा का उद्योत किया जाये ताकि सामान्य पाठक की अनभिज्ञता दूर हो। परमपूज्य गुरुदेव गणाधिपति गणधराचार्य श्री १०८ कुन्थुसागर जी महाराज का वरद आशीर्वाद प्राप्त कर कार्यारम्भ किया। श्री क्षेत्र कचनेर में श्रावकों को लक्ष्य कर एक रचना 'वास्तु चिन्तामणि' की उपलब्धि हुई।

तदुपरान्त मन्दिरों को लक्ष्य में रखकर पुनः एक सर्वोपयोगी रचना की आवश्यकता प्रतीत हुई। शाहगढ़ (म.प्र.) में अक्षय तृतीया १९९९ को इस कार्य का प्रारंभ किया। प.पू. गुरुदेव की असीम कृपा एवं वरद हस्त के प्रभाव से यह कार्य २००० में श्री पार्श्वनाथ प्रभु के समवशरण विहार स्थली में चातुर्मास स्थापना के समय समाप्त किया। यद्यपि यह कार्य दुष्कर था फिर हमारे संघस्थ साधुगणों ने हमें पूर्ण सहकार किया तथा श्रुत देवी की इस आराधना में अत्यंत भक्ति एवं वात्सल्य पूर्ण सहयोग दिया। इसके प्रभाव से ग्रन्थ कार्य अल्प समय में सम्पन्न हो गया।

वास्तु चिन्तामणि की ही भांति जन सामान्य के लिये उपयोगी मन्दिर वास्तु एवं स्थापत्य शास्त्र की रचना 'देव शिल्प' का प्रारंभ किया। इस ग्रन्थ में सुगम भाषा में ग्यारह प्रकरणों में मन्दिर निर्माण से संबंधित सभी पहलुओं की समुचित जानकारी प्रस्तुत की है। वर्तमान युग में निर्मित किए जाने वाले मन्दिरों में कौन-सा निर्माण कहां एवं कैसे किया जाने चाहिये, इस हेतु वास्तु शास्त्र एवं प्रतिष्ठा ग्रन्थों का समन्वय कर निर्णय करना आवश्यक है।

शिल्प शास्त्र के पारिभाषिक शब्द जन सामान्य की भाषा से पृथक हैं। अतएव सावधानी रखना आवश्यक है। शिल्प शास्त्र में कथित शब्दों एवं उद्धरणों का शब्दार्थ नहीं वरन् भावार्थ ही ग्रहण करना आवश्यक है। पारंपरिक शिल्पकला का अध्ययन करने पर इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट होने लगता है। जैनाचार्यों ने प्रतिष्ठा ग्रन्थों में मन्दिर एवं प्रतिमा के प्रमाण के वर्णन किए है। इतर शिल्प शास्त्रों का अध्ययन एवं समन्वय करने पर ही सही निर्णय किया जा सकता है। विभिन्न शिल्प शास्त्रों में प्राप्त मतभेदों का समन्वय विद्वान सूत्रधार, स्थापत्य वेत्ता एवं परम पूज्य आचार्य परमेष्ठी के मार्गदर्शन पूर्वक करना चाहिये।

देव शिल्प शास्त्र की रचना का उद्देश्य उन उपासकों का मार्गदर्शन है जो निरन्तर जिन पूजा में रत हैं, आगामी पीढ़ी के लिये उपयोगी महान पुण्य का अर्जन जिन मन्दिर निर्माण से आठ गुना पुण्य मन्दिर के जीर्णोद्धार में बताया गया है। जीर्णोद्धार करने से प्राचीन कलाकृति का संरक्षण होता है। पुण्यार्जक आराधक भावोत्कर्ष में नियमों का उल्लंघन कर जीर्णोद्धार के नाम पर अनुपयुक्त निर्माण अथवा विघटन कर डालते हैं। इसका निराकरण भी इस रचना में करने का प्रयास किया गया है।

ग्रन्थ की सामग्री के संचयन में हमारी शिष्या विदुषी आर्यिका श्री १०५ सुमंगलाश्री माता जी की अग्र भूमिका रही। असाता कर्मोदय के कारण शारीरिक स्थिति प्रतिकूल होने पर भी आपने इस कार्य हेतु अथक परिश्रम किया। वे प्रतिकूल शारीरिक स्थिति के बावजूद भी निरंतर ज्ञानाभ्यास में रत रहती हैं। निरतिचार संयम के कठिन मार्ग पर चलकर रत्नत्रय का पालन करती हैं। मैं उन्हें अपना मंगलमय आशीर्वाद प्रदान करता हूं कि माताजी शीघ्र ही अनुकूल स्वास्थ्य एवं आत्मोपलब्धि की प्राप्ति करें।

देव शिल्प ग्रन्थ की विधिवत् समायोजना का गुरुतर कार्य हमारे अनन्य भक्त, देव शास्त्र गुरु के अनन्य आराधक, आर्ष परम्परा के पोषक, कर्मठ व्यक्तित्व के धनी, विद्वत्ता की अग्र भूमिका के निर्वाह में निपुण, वास्तु शास्त्रज्ञ श्री नरेन्द्र कुमार जैन बड़जात्या, छिन्दवाड़ा ने किया है तथा ग्रन्थ को सर्वोपयोगी बनाया है। वे पारिवारिक जीवन के उत्तरदायित्वों के निर्वहन में सतत् व्यस्त रहते हुए भी निरन्तर गुरु आज्ञा पालन में तत्पर रहते हैं। मैं अपने इष्ट आराध्य देव श्री १००८ चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्वामी से उनके सुख समृद्धि मय जीवन की मंगल कामना करता हुआ उन्हें अपना शुभाशीष प्रदान करता हूं। वे इसी तरह देव शास्त्र गुरु की सेवा में तत्पर रहें।

ग्रन्थ प्रकाशन के कार्य में दानदाता श्रावकों की उदार भावना का होना अत्यंत आवश्यक है। उसके बिना ग्रन्थ प्रकाशन होकर सर्वजन सुलभ होना असंभव है। प्रस्तुत रचना 'देव शिल्प' के प्रकाशन हेतु उदारमना, दानवीर, समाजरत्न परमगुरु भक्त श्रीमान वीरकुमार जी चंपतरायजी अजमेरा, उस्मानाबाद (महा.), महाराष्ट्र जैन महासभा के उपाध्यक्ष समाजभूषण संघपति परमगुरुभक्त श्रीमान हीरालाल (बाबूभाई) माणिकचंदजी गांधी, अकलूज (महा.), दानवीर श्रीमान पवन कुमारजी जैन, पहाड़ी धीरज, दिल्ली, दानवीर श्री सुनील कुमारजी सु. जैन नागपुर (महा.), सौ. हर्षा महावीर जी गंगवाल, औरंगाबाद (महा.), श्री विजय कुमारजी पाटनी, (घाटनांद्रावाले) औरंगाबाद आदि महानुभावों का अत्यधिक सहयोग रहा है। ये सभी श्रावक श्राविकाएं जिनधर्म में इसी प्रकार अनुराग रखें, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति रखें तथा अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग करें। ये सभी धर्म की सेवा में तत्पर रहकर परम्परा से मुक्ति सुख का प्राप्ति करें। इनका जीवन सुख समाधानमय बने, इस हेतु हमारा शुभ आशीर्वाद है।

देव शिल्प की कम्पोजिंग का कठिन कार्य सुन्दर रुप से श्री रजत गुप्ता, कु. रुचि वर्मा एवं श्री राजेश मालवीय ने छिन्दवाड़ा में किया है। इनकी लगन एवं परिश्रम से यह कार्य सम्पन्न हुआ है। इन्हें हमारा पूर्ण आशीर्वाद है।

यह ग्रन्थ मन्दिर एवं प्रतिमा स्थापनकर्ताओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगा, यह हमारी भावना है। मन्दिर एवं तीर्थक्षेत्रों के न्यासी, व्यवस्थापक एवं कार्यकारीगण, समाज के प्रबुद्ध वर्ग, सक्रिय कार्यकर्ता एवं दानवीर श्रेष्ठीगण इस कृति का लाभ उठायेंगे तथा मन्दिर, तीर्थक्षेत्र, प्रतिमा स्थापना, जीर्णोद्वार, मुनि निवास, धर्मायतनों के निर्माण आदि में मार्गदर्शन लेवेंगे, तभी इस रचना की उपयोगिता सिद्ध होगी। आप सबके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी होगा तभी मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

जगत के तारणहार प्रथम तीर्थंकर श्री १००८ आदिनाथ प्रभु की कृपा दृष्टि हम सब पर बनी रहे। मम आराध्य श्री १००८ चिन्तामणि पार्श्वनाथ की करुणामय दृष्टि मुझ समेत सभी जीवों के लिये कल्याणकारक हो।

परम पूज्य गुरुदेव गणाधिपति गणधराचार्य श्री १०८ कुन्थुसागरजी महाराज सदा जयवन्त रहें। चिरकाल तक जिनशासन की अक्षुण्ण प्रभावना होती रहे। समस्त जीवों का कल्याण हो। अमृतवर्षिणी सरस्वती मातेश्वरी की अनुकम्पा हम सब पर बनी रहे, यही आत्मीय भावना है।

"वर्द्धतां जिन शासनम्"

सिद्ध क्षेत्र नैना गिरि १५/०७/२०००

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि मुनि

सम्पादक की कलम से

प्रस्तुत रचना **देव शिल्प** की रचना जैन आगम साहित्य की एक अभूतपूर्व कृति है। मन्दिर वास्तु एवं स्थापत्य पर सर्वांगीण जानकारी प्रस्तुत करने वाला कोई भी ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं है। जो भी ग्रन्थ मिलते हैं वे एकांगी हैं। परम पूज्य गुरुदेव प्र. आचार्य श्री १०८ देवनन्दिजी महाराज ने निरन्तर ज्ञानोपयोग एवं चिन्तन के उपरांत इस विषय पर अपनी लेखनी चलाई है। यह ग्रन्थ मन्दिर वास्तु एवं स्थापत्य के प्राचीन एवं आधुनिक दोनों पहलुओं पर समानता से प्रकाश डालता है।

देव शिल्प ग्रन्थ की रचना करने में तीन प्रमुख उद्देश्य निहित हैं :-

१. मन्दिर वास्तु एवं स्थापत्य विषय पर सर्वोपयोगी जानकारी देना ताकि इस विषयक अनभिज्ञता दूर हो।
२. जैन संस्कृति एवं स्थापत्य कला का संरक्षण व संवर्धन।
३. तीर्थक्षेत्रों के जीर्णोद्धार एवं विकास के लिए आधारभूत जानकारी का प्रस्तुतीकरण।

शुक्राचार्य के अनुसार शिल्प चौसठ कलाओं में एक है। कला से तात्पर्य है बिना वाणी के भावाभिव्यक्ति। शिल्पकला में कलाकार बिना कुछ कहे सब कुछ कह देता है। हजारों सालों से निर्मित मन्दिर एवं कलाकृतियां बिना वाणी के ही तत्कालीन वैभव एवं संस्कृति की गौरवमयी गाथा कहती आ रही है। जब भारत में विधर्मियों का प्रवेश हुआ तो उन्होंने सर्वप्रथम अत्याचार के बल से अपना धर्म चलाना चाहा तथा भारतीय संस्कृति के आधारभूत स्थापत्य कला का मिटाना चाहा। इतना अधिक विध्वंस करने के उपरांत भी अवशिष्ट स्थापत्य से सारे विश्व को आज भी भारत की ऐतिहासिक गरिमा का आभास होता है। अवशिष्ट पुरातत्व अवशेष भी संस्कृति के पुनरुत्थान के लिये पर्याप्त है। विभिन्न नगरों एवं तीर्थक्षेत्रों का दर्शन करने के उपरांत निर्मित यह कृति न केवल सम्पूर्ण समाज के लिये एक मार्गदर्शक है, वरन् जिनवाणी की अनुपम सेवा भी है।

प्रत्येक गृहस्थ के लिये भगवद् आराधना के निमित्त देवालय होना अत्यंत आवश्यक है। गृहस्थ की पूजा-अर्चना क्रिया तभी सुफलदायक होती है जबकि वह शास्त्रोक्त रीति से पूरी श्रद्धा भावना के साथ की जाये। शास्त्रोक्त रीति से पूजा अर्चना करने के उपरांत भी हमें यह दृष्टिगत होता है कि अतिशय क्षेत्र, सिद्ध क्षेत्र अथवा किन्हीं विशिष्ट देवालय में किन्हीं विशिष्ट प्रतिमा के समक्ष भावना उत्कृष्ट होती है तथा परिणाम भी शीघ्र ही दृष्टि में आते हैं। यह प्रश्न मन में उत्पन्न अवश्य होता है कि इस अन्तर का कारण क्या है ? अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि जिन प्रतिमाओं एवं देवालयों का निर्माण शिल्प शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुरुप होता है वहां पर अतिशय (चमत्कार पूर्ण घटनाएं) स्वतः ही होती है, वातावरण दिव्य रहता है तथा आराधक की मनोभावना भी प्रशस्त, शुभ एवं कल्याणकारी होती है।

जैन धर्म के अनुरागी गृहस्थ पीढ़ियों से मन्दिर निर्माण कर अपना पुण्य संचय करते आये हैं। शास्त्रकारों ने एक राई के दाने के बराबर जिन प्रतिमा बनाकर एक भिलावे के बराबर जिनालय बनाकर उसमें स्थापित करने से असीम पुण्य प्राप्ति उल्लेखित की है। गृहस्थों के छह आवश्यक कर्मों में देव पूजा को प्रथम स्थान दिया गया है। अतएव देवालय का निर्माण असंख्य गृहस्थों को देवपूजा का निमित्त बनने से अतिशय पुण्यवर्धक कार्य होता है।

सभी भारतीय परम्पराएं देवालय के निर्माण के लिये उपयुक्त शिल्पशास्त्रीय निर्देश करती हैं। देवालय का निर्माण करने के लिए प्रतिष्ठा ग्रन्थों में भी इसकी सामग्री मिलती है किन्तु यह सब ग्रन्थ दुर्लभ हैं तथा सामान्य पाठक की पहुंच से काफी दूर हैं। पुनः समस्या यह है कि शिल्पशास्त्र की जानकारी अत्यल्प होने से यह सब जानकारी मिलने पर भी ठीक से निर्णय करना असंभव सा हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर की गई है। यह ग्रन्थ मन्दिर निर्माण की प्रारंभिक अवस्था सूत्रधार, दिशा, भूमि आदि के निर्णय में मार्गदर्शन देता है। उपयुक्त सूत्रधार द्वारा मन्दिर का सही निर्माण निर्माता एवं उपासक दोनों के लिए सुपरिणाम कारक होता है।

पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करते समय शिल्प शास्त्र की अनभिज्ञता से अनेकों गलत निर्माण हो जाते हैं। जिनका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। तीर्थ क्षेत्रों में दान दाता एवं क्षेत्र के प्रबंधक दोनों ही अतिउत्साह में मन्दिर का स्वरुप ही बदल देते हैं। अनेक लोग कई बार गर्भगृह को हॉल में बदल देते हैं। कई बार दानदाता की बड़ी रकम का उपयोग करने के लिये बिना आवश्यकता के ही मन्दिर को तोड़कर नये मन्दिर बनाये जाते हैं। मूर्तियों में भी परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है। वेदी पर नाम लिखाने की चाह वाले दानदाता यह ध्यान नहीं रखते कि प्रतिमा की दृष्टि अवरुद्ध तो नहीं हो रही। गर्भगृह में स्थापित जिनेन्द्र देव की प्रतिमा को अविनय पूर्वक कभी भी उठा लेते हैं। यह सब अनर्गल कार्य विपरीत है एवं तथा महा अनिष्ट के करने वाले हैं।

प्रतिमा के नाप की जानकारी का अभाव भी बड़ा अनिष्टकर होता है। प्रतिमा किस तीर्थंकर की बनानी है, उनका क्या रुप है, कौन सा आसन है, आदि जानकारी के साथ ही यह भी आवश्यक है कि स्थापनकर्ता की राशि का मिलान तीर्थंकर की राशि से किया जाए। तीर्थंकर प्रतिमा के साथ ही उनके परिकर का स्वरुप भी बनाया जाना आवश्यक है।

शासन देव, देवियों की प्रतिमा तीर्थंकर प्रतिमा के साथ अवश्य ही बनाना चाहिये। मन्दिर में उपयुक्त स्थान पर क्षेत्रपाल आदि यक्ष प्रतिमा भी रखना आवश्यक है।शासन देव-देवियां तीर्थंकर प्रभु के समवशरण में रहते हैं तथा ये सम्यग्दृष्टि एवं तीर्थंकर प्रभु के गुणानुरागी भक्त होते हैं। तीर्थंकर प्रभु के भक्तों से इन्हें स्वाभाविक अनुराग होता है। सभी प्राचीन शास्त्रों में इनकी पर्याप्त सम्मान पूजा करने के निर्देश मिलते हैं। इन्हें मिथ्यादृष्टि समझकर इनका अपमान करने वाले स्वयं भ्रम में हैं। अल्पज्ञता के कारण इनका अनादर कदापि न करें।

गर्भगृह में किस देवता की स्थापना किस स्थान पर करें, प्रतिमा का स्वरुप कितना हो तथा प्रतिमा की दृष्टि द्वार के किस स्थान पर है, यह निर्णय अत्यंत गंभीरता से करें। भावोद्रेक में अथवा ख्याति अर्जन के लिये कदापि गलत निर्णय न लेवें, अन्यथा अनिष्टकारक घटनाएं आपके जीवन को दुखदायी बना देंगी।

प्रस्तुत कृति **'देव शिल्प'** की रचना गृहस्थों के साथ ही समाज एवं राष्ट्र के हित को लक्ष्य में रखकर प्रस्तुत की गई है। आशा है इससे समाज को एक नई दिशा मिलेगी। समाज में व्याप्त विसंगतियों के मूल में वास्तु शास्त्र के सिद्धांत निहित हैं। उनका अनुकरण व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र तीनों का हित निश्चित है।

इस कृति **देव शिल्प** की रचना करते समय गुरुदेव ने सम्प्रदाय एवं पंथ भेद से ऊपर उठकर सर्वोपयोगिता की भावना रखी है। दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराओं को ध्यान में रखकर जिन प्रतिमा, शासन देव देवी प्रतिमा, क्षेत्रपाल, विद्या देवियों आदि का स्वरुप दोनों दृष्टियों से प्रस्तुत किया है। जैनेतर पाठकों का भी आचार्यवर ने स्मरण रखा है तथा अनेकों स्थानों पर जैसे दृष्टि प्रकरण, व्यक्त अव्यक्त प्रासाद, सम्मुख देव, गृह मन्दिर आदि में जैनेतर परम्पराओं के अनुरुप दिशा बोध दिया है। संप्रदायवाद की संकीर्णता से ऊपर उठकर आचार्यवर ने विराट सर्वतोभद्र दृष्टिकोण अपनाया है।

परम पूज्य गुरुदेव प्रज्ञाश्रमण आचार्य श्री १०८ देवनन्दि जी महाराज पर जिनवाणी सरस्वती की अद्‌भुत कृपा है। पूर्व में ध्यान जागरण कृति के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। वास्तु शास्त्र पर अभूतपूर्व कृति '**वास्तु चिन्तामणि**' ने उन्हें जन जन का चहेता बना दिया। करुणा मूर्ति आचार्य वर की कलम से पुनः देव शिल्प का सृजन हुआ। संभवतः पिछले एक सहस्र वर्षों में भी इस तरह की सर्वांगीण कृति प्रथम बार किसी दि. जैनाचार्य की कलम से निःसृत हुई है। यह रचना भी वास्तु चिन्तामणि की भांति सर्वजन प्रिय होगी तथा दिगम्बर, श्वेताम्बर, जैन जैनेतर सभी पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

ग्रन्थ परिचय

देव शिल्प ग्रन्थ की विषय वस्तु मन्दिर है। मन्दिर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। सारी भारतीय संस्कृति मूलतः आस्तिकता एवं धर्म पर आधारित है। श्रमण एवं वैदिक दोनों ही संस्कृतियों में साकार उपासना हेतु प्रतिमा एवं मन्दिर की उपयोगिता प्रतिपादित की गई है। निराकार उपासना हेतु भी प्रतिमा का निषेध होने के उपरांत भी आराधना स्थल बनाया गये जाते हैं।

प्राचीन भारतीय शिल्पकला का गौरव सारे विश्व में विख्यात है। जैन एवं हिन्दू दोनों ही धर्मों में इस विद्या का समान महत्व है। काल के थपेड़ों से इसका ज्ञान अत्यल्प शेष रहा है। परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री १०८ प्रज्ञाश्रमण देवनन्दिजी महाराज सतत् ज्ञानोपयोगी है। वास्तु शास्त्र के अभूतपूर्व ग्रन्थ वास्तु के उपरान्त आपने मंदिरों की शिल्प विद्या पर अनुसंधान एवं अध्ययन किया तथा उनके इस ज्ञानोपयोग का परिणाम **देव शिल्प** के रुप में आपके समक्ष प्रस्तुत है।

ग्रन्थ **देव शिल्प** को ग्यारह प्रकरणों में विभक्त किया गया है। ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

१. भूमि प्रकरण

मंगलाचरण एवं जिनालय स्तुति के उपरांत सर्वप्रथम मन्दिर की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा कर्म क्षय का कारण है तथा यही शाश्वत सुख की प्राप्ति का आधार है। जन सामान्य के लिए प्रभु आराधना का स्थल मंदिर ही है। अतएव इसका निर्माण असीम पुण्य का अर्जन कर चिरकाल तक सुखी करने का हेतु है।

सर्वप्रथम सूत्रधार के लक्षण एवं अष्टसूत्रों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। शिल्पशास्त्रों में सूत्रधार के लक्षणों का वर्णन करने का कारण यही है कि अकुशल, धन का लालची एवं पाप से न डरने वाला शिल्पी यदि शिल्प शास्त्र से विपरीत मन्दिर एवं प्रतिमा का निर्माण करेगा तो शिल्पी, मन्दिर निर्माणकर्ता तथा प्रतिमा स्थापनकर्ता तीनों ही चिरकाल तक दुख पायेंगे। मन्दिर हेतु भूमि की आकृति, रुप, वर्ण, बाह्य शुभाशुभ लक्षण, शल्यशोधन आदि करके ही मन्दिर हेतु स्थान का निर्णय करना चाहिये। दिशा का निर्धारण चुम्बकीय सुई से करना उपयोगी है। भूमि का निर्णय करने के उपरांत उसकी आकृति एवं मान का निर्णय आय विचार करके ही करें। रेखांकन करते समय शुभाशुभ लक्षणों का ध्यान अवश्य रखें।

२. परिसर प्रकरण

इस प्रकरण ने ग्रन्थ की उपयोगिता में पर्याप्त वृद्धि की है। पानी का जल बहाव ईशान की तरफ निकालें। अभिषेक जल का उल्लंघन नहीं करें साथ ही उसकी प्रणाली निर्दिष्ट दिशाओं में निकालें। आरती का स्थान आग्नेय दिशा में रखें। पूजा करने वालों की सुविधा के लिये परिसर में स्नानगृह बनायें। यह पूर्व, उत्तर या ईशान में बनायें। पूजा सामग्री तैयार करने का स्थान मन्दिर के ईशान भाग में बनायें। पूजा के वस्त्र भी वहीं बदलें।

मन्दिर में प्रवेश करते समय पांव अवश्य धोयें तथा चप्पल-चूते बाहर उतारें । इन्हें भी निर्दिष्ट दिशाओं में रखें। कचरा ईशान में कदापि न रखें। मन्दिर के कर्मचारियों का कक्ष नियत स्थानों पर बनायें। तीर्थक्षेत्रों एवं संस्थाओं में कार्यालय का स्थान मन्दिर परिसर के उत्तर या पूर्व में रखना उपयुक्त है।

मन्दिर की धर्मसभा में प्रवचन सत्संग के लिए उपयुक्त स्थान मन्दिर का उत्तरी भाग है। इसके दरवाजे भी उत्तर, ईशान, पूर्व में रखें। धर्मसभा की सजावट वैराग्यवर्धक चित्रों से करें। शास्त्र भंडार नैऋत्य दिशा में बनाना श्रेष्ट है। मन्दिर की सजावट चित्रकारी, बेल बूटे, रुपक आदि से करें। तीर्थंकर की माता के स्वप्न, आहारदान, ऐरावत आदि चित्रों को मन्दिर में लगायें। तीर्थक्षेत्रों की प्रतिकृति, आचार्यों के चित्र आदि भी मन्दिर में लगा सकते हैं।

इसी प्रकरण में मन्दिर के किस भाग में अतिरिक्त भूमि लेना चाहिये, इसका भी निर्देश दिया गया है। तलघर बिना जरुरत के कदापि न बनायें। विविध रंगों का प्रयोग मन्दिर में कैसे करें, इस हेतु भी निर्देश दिये गये हैं। मन्दिर में पूजा हेतु पुष्पवाटिका लगाने की दिशा भी निर्दिष्ट की गई है। मंदिर परिसर में वृक्ष कहां एवं कौन से लगायें इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। इमली आदि वृक्षों का निषेध किया गया है।

मन्दिर प्रवेश के स्थान पर निर्मित सीढ़ियों का भी एक नियम है। इनकी दिशा उत्तर से दक्षिण अथवा पूर्व से पश्चिम की ओर चढ़ती हुई रखें। गोलाकार सीढ़ियां ठीक नहीं मानी गई हैं। सीढ़ियों की संख्या भी विषम ही रखना चाहिये।

मन्दिर परिसर के चारों तरफ परकोटा अवश्य ही बनवाना चाहिये। यदि बहुत ही बड़ा परिसर हो तो भी फेंसिंग लगाना ही चाहिए। परकोटे से भगवान की दृष्टि बाधित न हो, यह सुनिश्चित करें। मन्दिर प्रांगण में निर्मित की जाने वाली विभिन्न वास्तु संरचनाओं का निर्माण भावावेश में अथवा दानदाता की मर्जी से नहीं करें। जिस दिशा में शिल्प शास्त्र में निर्देश किये गये हैं, वहीं रचनाएं करें। मन्दिर परिसर की शुचिता स्थायी रखने के लिये इसे व्यापारिक भवनों से मुक्त रखना आवश्यक है।

जलपूर्ति के लिये कुंआ अथवा बोरवेल बनवाना आवश्यक होता है। ऊपर भी ओवरहैड पानी की टंकी बनायी जाती है। दोनों ही आग्नेय में न बनायें।

व्यक्त अव्यक्त प्रासाद का विचार प्रारंभ में ही कर लेना आवश्यक है। जिन देवों के मन्दिर सांधार अथवा अव्यक्त बनाना आवश्यक हो, उनके मन्दिर व्यक्त न बनायें। ऐसा करने से मन्दिर एवं प्रतिमा का अतिशय समाप्त हो जायेगा। गर्भगृह को भी तोड़कर हाल में बदलने का फैशन चल पड़ा है। आचार्य श्री ने इसका स्पष्ट निषेध किया है। जिन मन्दिरों में गर्भगृह को तोड़ा गया है वहां पर निरंतर अनिष्टकर घटनाएं घटित होती है। शिल्पकार के साथ ही गर्भगृह तुड़वाने वाले कार्यकर्ता एवं समाज इसके विपरीत परिणामों को वहन करते हैं।

प्राचीन पद्धति से मन्दिर निर्माण करना अत्यंत जटिल एवं व्यय साध्य होने से आजकल नगरों में अल्पस्थान पर मन्दिर बनायें जाते हैं तथा आवश्यकता होने पर ये मन्दिर बहुमंजिला भी बनाये जाते हैं। इनका निर्माण करते समय सामान्य वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का पालन करें। मन्दिर का धरातल सड़क से नीचा न हो। प्रवेश उत्तर या पूर्व से ही रखना आवश्यक है।

३. देवालय प्रकरण

देवालय प्रकरण में विविध प्रकार के जिनालयों का निर्माण किस प्रकार किया जाये, इस हेतु उपयोगी निर्देश दिये गये हैं। भगवान जिनेन्द्र की धर्मसभा का नाम समवशरण है। इसकी कल्पना करके समवशरण मन्दिर बनाये जाने की प्रथा है। सभी स्थानों पर मन्दिर के समक्ष मानस्तंभ का निर्माण किया जाता है। यह पद्धति प्राचीन है। देवगढ़ के कलात्मक मानस्तम्भ विश्व प्रसिद्ध हैं। मान स्तंभ की ऊंचाई मूलनायक प्रतिमा के बारह गुने के बराबर तथा मन्दिर के ठीक सामने होना आवश्यक है। मानस्तंभ का निर्माण देखा देखी में न करें न ही शोभा के लिये इधर उधर बनायें। विशेष स्मृति के लिए कीर्तिस्तंभ का निर्माण करना उपयुक्त है। जैनधर्म में ग्रह कोप निवारण के तीर्थंकरों की पूजा करने का निर्देश मिलता है, उसी के अनुकूल नवग्रह मन्दिर भी बनाये जाते हैं। सूर्य ग्रह की शांति के लिये पद्मप्रभ एवं शनि के प्रकोप की शान्ति के लिए मुनिसुव्रतनाथ स्वामी की आराधना करना उपयोगी है।

पंच परमेष्ठी का वाचक ॐ तथा २४ तीर्थंकरों का सूचक **ह्रीं** बीजाक्षर में तीर्थंकर स्थापना करके भी मन्दिर बनाये जाते हैं। हस्तिनापुर एवं इन्दौर के ॐ एवं ह्रीं मन्दिर दृष्टव्य हैं। नवदेवताओं के लिए भी पृथक प्रतिमा तथा पृथक जिनालय बनाये जाते हैं। सप्तर्षि मूर्तियां अनेकों मन्दिरों में मिलती हैं। इनके पृथक जिनालय भी बनाये जाते हैं। इसी भांति पंच बालयति जिनालय में पांचों बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकरों की प्रतिमा स्थापित करते हैं। प्रकरण में सुगम शैली में इन सबके लिये उपयुक्त निर्देश दिये गये हैं। ये निर्देश समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये मार्गदर्शक हैं। इसी प्रकरण में २४, ५२ एवं ७२ जिनालयों वाले मन्दिरों के लिये सचित्र निर्देश दिए गये हैं। जिनेश्वर प्रभु की वाणी की साकार रुप में आराधना सरस्वती देवी के रुप में की जाती है। हंस वाहिनी वीणा वादिनी सरस्वती प्रतिमा के पृथक मन्दिर भी बनाये जाते हैं। इनको चौबीस जिनालयों के साथ भी स्थापित किए जाने का निर्देश दृष्टव्य है। चरणचिन्हों के लिए छतरियां सर्वत्र देखने में आती हैं।

किस देव के सामने कौन से देव का मन्दिर बना सकते हैं, इस हेतु शिल्प शास्त्रों में स्पष्ट निर्देश दिये गए हैं। नाभिवेध का परिहार करके ही सम्मुख मन्दिर बनायें। प्रसंगवश देवों के चैत्यालयों की संक्षिप्त जानकारी भी प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर उद्धृत की गई है।

४. निर्माण प्रकरण

यह प्रकरण ग्रन्थ का महत्वपूर्ण भाग है। मन्दिर निर्माण का निर्णय व्यक्तिगत अथवा सामूहिक होता है। मन्दिर बनाने का निर्णय करने के पश्चात सर्वप्रथम अपने गुरुदेव से विनयपूर्वक आशीर्वाद लेवें तथा उनके निर्देशन में ही मुहुर्त एवं भूमि का चयन करें। पश्चात् भूमि के देवताओं से निर्विघ्न कार्य सम्पादन के लिये विधिवत् अनुरोध करें। शुभ मुहूर्त में भूमिपूजन विधान करें। मन्दिर निर्माण करने के लिए निकृष्ट सामग्री कदापि न लायें। मन्दिर बनाने में लोहे के प्रयोग का निषेध किया जाता है किन्तु वर्तमान निर्माण शैली में लोहा निर्माण का आवश्यक अंग है अतएव समन्वयपूर्वक कार्य करें। किस लकड़ी का प्रयोग करना चाहिये, इसका स्पष्ट निर्देश शिल्पशास्त्रों के अनुरुप निर्दिष्ट किया गया है।

मन्दिर निर्माण प्रारंभ कूर्म शिला स्थापन से किया जाता है। कूर्म के चिन्ह वाली शिला की स्थापना गर्भगृह के मध्य नींव में स्थापित की जाती है। इसे स्वर्ण या रजत से बनायें। आधार के लिए खर शिला की स्थापना करते हैं। खर शिला के ऊपर मोटा भिट्ट स्थापित किया जाता है। भिट्ट स्थापना के उपरांत एक चबूतरानुमा रचना बनाई जाती है जिसे जगती कहते हैं। इसी जगती पर निर्दिष्ट स्थान पर पीठ के ऊपर मन्दिर का निर्माण किया जाता है।

मन्दिर की दीवार का बाह्य भाग मंडोवर कहलाता है। भीतरी भाग दीवार या भित्ति कहलाता है। मंडोवर अत्यंत कलात्मक बनाया जाता है। इसी से मन्दिर का बाह्य वैभव दृष्टिगत होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न शिल्प शास्त्रों के मतानुसार मण्डोवर के थरों का मान बतलाया गया है। मंदिर के मध्य में स्तंभों की रचना की जाती है जो कि मण्डप की छत का भार वहन करते हैं। स्तंभों में मंडोवर की ही भांति विभिन्न थरें होती हैं। स्तम्भ अनेकों एवं कलाकृतियों से युक्त बनाये जाते हैं।

मन्दिर के सभी अंगों का इस ग्रन्थ में विस्तृत विवेचन किया गया है। द्वार में देहरी का निर्माण करना अपरिहार्य है। वर्तमान में देहरी के बिना ही द्वार बनाये जाने लगे हैं, यह हानिकारक है। बिना देहरी की चौखट न बनायें। द्वार की शाखाओं का भी अपना महत्व है। जिन मन्दिरों में सात या नौ शाखा वाला द्वार बनाना निर्दिष्ट किया गया है। देहरी से सवाया मथाला अथवा उत्तरंग बनाना चाहिये। उत्तरंग में तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा अथवा गणेश प्रतिमा बनाये। द्वार सही प्रमाण में ही बनाना चाहिये। द्वार की ही भांति खिड़की बनाने के भी नियम है। इन्हें द्वार के समसूत्र में बनायें। खिड़कियां सम संख्या में ही बनाना चाहिये। जाली एवं गवाक्ष कलात्मक रीति से बनाना चाहिये। ग्रन्थ में गवाक्ष के भेद सचित्र बताए गए हैं।

वलाणक से मन्दिर का मण्डपक्रम प्रारंभ होता है। वलाणक अथवा मुख मण्डप के उपरांत नृत्य मंडप तथा उसके उपरांत चौकी मंडप बनाया जाता है। चौकी मण्डप स्तंभों की संख्या के अनुरुप २७ भेदों के बनाए गए हैं। चौकी मण्डप के उपरांत गूढ़ मण्डप का निर्माण किया जाता है। गूढ़ मण्डप के उपरांत अन्तराल तथा सबसे अन्त में गर्भगृह बनाया जाता है। सांधार मन्दिरों में गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा बनाई जाती है। मण्डप का आच्छादन गूमट से किया जाता है। गूमट का बाह्य रूप संवरणा कहलाता है तथा भीतरी भाग वितान कहलाता है। इनके अनेकों भेद शिल्पशास्त्रों में बताये गये हैं।

गर्भगृह मन्दिर का प्राण है क्योंकि यहीं भगवान की प्रतिमा स्थापित की जाती है। गर्भगृह में प्रतिमा कितनी बड़ी बनानी चाहिये तथा प्रतिमा की स्थापना गर्भगृह में कहां करना चाहिये इसका ध्यान रखना आवश्यक है।

मन्दिरों के मण्डप क्रमों के अनुरुप अनेकों मन्दिरों के रेखा चित्र दृष्टव्य है जो विषय की जटिलता को समाप्त कर देते हैं।

मन्दिर के ऊपरी भाग ऊँची पर्वत की चोटी के आकार की आकृति का निर्माण किया जाता है। इसे शिखर कहते हैं। शिखर की शैलियों के आधार पर ही मन्दिरों की जातियों का विभाजन किया जाता है। शिखर की रचना झुकती हुई कला रेखाओं के आधार पर की जाती है। शिखर के ऊपरी भाग को ग्रीवा कहा जाता है। ग्रीवा के ऊपर आमलसार की स्थापना की जाती है। आमलसार एक बड़े चक्र के आकार की रचना होती है। इसके ऊपर घट की आकृति का कलश चढ़ाया जाता है। कलश उसी पदार्थ का होना चाहिये जिससे मन्दिर का निर्माण किया गया है। शोभा के लिए स्वर्ण का पत्र इसके ऊपर लगाया जाता है।

शिखर के ऊपरी भाग में शुकनासिका की स्थापना की जाती है जिस पर सिंह स्थापित किया जाता है। सुवर्ण पुरुष की स्थापना भी शिखर के ऊपरी भाग में की जाती है। सुवर्णपुरुष को प्रासाद का जीव माना जाता है। इसी प्रकरण में शिखर के अंगों का सचित्र विवेचन विषय को स्पष्ट करता है। श्रृंग, उरुश्रृंग, तिलक, कूट, क्रम आदि ऐसे शब्द हैं जो शिल्प शास्त्र में प्रचलित हैं किन्तु इनका अर्थ शब्द के स्थान पर भाव से लेना चाहिये। विभिन्न शैलियों के शिखरों के रेखा चित्र उसकी रचना समझने के लिये पर्याप्त आधार है।

शिखर पर ध्वजा का आरोहण किया जाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। ध्वजा से ही वास्तु की पहचान होती है। ध्वजा वस्त्र की बनाएं तथा ध्वजादंड लकड़ी का। ध्वजाधार की स्थिति भी सही रखें। बदरंग एवं फटी हुई ध्वजा परिवर्तित कर देना चाहिये। ध्वजा पर सर्वान्ह यक्ष की स्थापना अवश्यमेव करना चाहिये।

६. वेदी प्रतिमा प्रकरण

इस प्रकरण में सर्वप्रथम प्रतिमा स्थापना करने हेतु वेदी के निर्माण हेतु कुछ महत्वपूर्ण निर्देश दिये गये हैं। प्रतिमा एवं वेदी दीवाल से चिपकाकर नहीं बनायें। वेदी पर भामंडल के स्थान पर यंत्र न लगायें तथा छत्र आदि से सहित बनायें। वेदी में प्रतिमा की स्थित, द्वार से दृष्टि का स्थान तथा वेदी एवं गर्भगृह के अनुपात में प्रतिमा के आकार की गणना करना अत्यंत आवश्यक है। यक्ष यक्षिणी देवों की दिशा एवं पार्श्व का ध्यान रखना आवश्यक है। तीर्थंकर प्रभु की प्रतिमा को ही मूलनायक बनायें। बाहुबली स्वामी आदि का स्वतंत्र मंदिर नहीं बनायें। यदि बनायें तो भी मूलनायक तीर्थंकर प्रभु ही रखें। यहां यह उल्लेखनीय है कि श्रवण बेलगोला में मूलनायक नेमिनाथ स्वामी हैं।

पीठिका पर भगवान की प्रतिमा का आसन होता है, वेदी पर नीचे कलाकृतियों से सजावट करना चाहिये। दस हाथ से छोटी प्रतिमाएं मंदिर में पूज्य है। पैतालीस हाथ से बड़ी प्रतिमा चौकी पर स्थापित की जाना चाहिये। ग्यारह अंगुल से छोटी प्रतिमाएं गृह मन्दिर में भी रख सकते हैं।

प्रतिमा की दृष्टि द्वार के किस भाग में आना चाहिये, इस विषय में आचार्यों के मतांतर हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न मतों का विवरण किया गया है। फिर भी जिन प्रतिमा के लिए ६४ में से ५५ वें भाग में दृष्टि रखना उचित प्रतीत होता है।

जिन प्रतिमा का बारीकी से प्रमाण पद्मासन एवं खड्गासन, दोनों के लिए दिया गया है। पूज्य आचार्य परमेष्ठी एवं विद्वान प्रतिष्ठाचार्य के परामर्श से ही प्रतिमा का निर्णय करना चाहिये। कभी भी दूषित अंग वाली प्रतिमा की स्थापना नहीं करना चाहिये अन्यथा शिल्पकार, मूर्ति स्थापनकर्ता तथा प्रतिष्ठाकारक आचार्य एवं समाज सभी का अनिष्ट होता है। अनेकों स्थानों पर इस दोष का सीधा प्रभाव दृष्टिगत होता है। अनेकों मन्दिर उजाड़ दिखते हैं तथा समाज पतनोन्मुख हो जाता है। तीर्थंकर प्रतिमा सिंहासन पर अष्ट प्रातिहार्य सहित पूरे परिकर वाली बनाना चाहिए। बिना परिकर वाली प्रतिमा को सिद्ध प्रतिमा माना जाता है। प्रतिमा के समीप अष्ट प्रातिहार्य एवं अष्ठमंगल द्रव्य अवश्य ही रखना चाहिये। यन्त्र का मान भी प्रतिमा की भांति किया जाता है। मातृका यंत्र एक प्रमुख यंत्र है जिसका प्रयोग प्रतिमा की स्थापना के समय अचल यंत्र के रुप में किया जाता है। ग्रन्थ में यंत्रों की संक्षिप्त जानकारी दी गई है। विस्तृत जानकारी मन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों से प्राप्त करना चाहिये।

६. देव-देवी प्रकरण

इस प्रकरण में तीर्थंकर प्रभु के समवशरण में स्थित शासन देव-देवियों के स्वरुप का सचित्र संक्षिप्त विवरण दिया गया है। विभिन्न ग्रन्थों के पाठांतर मिलने पर भी देवों की विक्रिया ऋद्धि के कारण यह संभव है, ऐसा निर्देश भी दिया गया है। क्षेत्रपाल, मणिभद्र, घण्टाकर्ण, सर्वान्ह यक्ष आदि देव जैन धर्म एवं धर्मावलम्बियों के सहायक देव हैं। इनका सम्मान साकार रुप में प्रतिमा बनाकर किया जाता है। दिक्पालों का स्वरुप भी इसी प्रकरण में संक्षेप में दिया गया है। यक्ष की तीर्थंकर के दाहिने ओर तथा यक्षिणी को बायें ओर स्थापित किया जाता है। इसको विपरीत करने पर भयावह परिणाम होते हैं।

शासन देव एवं देवियों की प्रतिमाएं प्रत्येक तीर्थंकर प्रतिमा में स्थापित करना चाहिये। कालान्तर में पद्मावती देवी एवं ज्वालामालिनी तथा चक्रेश्वरी देवी की ही प्रमुखता से आराधना होने लगी। कहीं कहीं पर अज्ञानता वश इन्हें तीर्थंकर प्रभु से समकक्ष लोग मानने लगे। इसका कतिपय लोगों ने निराकरण करने का प्रयास किया तथा जब वे इसका समाधान न कर पाये तो इन्हें ही हटाने लगे। इससे पंथवाद का जड़ पनपी। मेरा निवेदन है कि सर्वत्र विवेक की आवश्यकता है। तीर्थंकर को तथा यक्ष यक्षिणी को समान मानना वास्तव में अनुचित है किन्तु यक्ष यक्षिणी को मिथ्या दृष्टि मानकर अथवा मिथ्या आयतन मानकर खंडित करना उससे भी अधिक अनुचित है। जैनेतर देवों की पंचायतन शैली एवं उनका उपयोगी वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

७. विभिन्न निर्देश प्रकरण

इस प्रकरण में अनेकानेक उपयोगी विषयों का खुलासा किया गया है। घर में पूजा करने के लिए गृह मन्दिर बनाया जाता है। इसमें मात्र १,३, ५, ७, ९, या ११ अंगुल की प्रतिमा की रखी जानी चाहिये। इसका निर्माण शुभ आय में तथा काष्ठ से करना चाहिये। इसमें ध्वजादण्ड नहीं लगायें। गृह चैत्यालय की पवित्रता का ध्यान रखना अनिवार्य है अन्यथा विपरीत परिणाम होंगे। पूजा करने की दिशा, आसन, मुख, प्रदक्षिणा विधि आदि के लिए भी उपयोगी निर्देश दिए गए हैं।

मुनियों एवं त्यागियों के लिये वसतिका का निर्माण किया जाता है। इसका निर्माण मन्दिर परिसर के दक्षिण या पश्चिम या उत्तर में रखें। अनेकों उपयोगी एवं व्यवहारिक निर्देश यहां दृष्टव्य हैं। साधु समाधि स्थल निषीधिका के लिए भी उपयोगी निर्देश दिये गये हैं। निषीधिका भी पूज्य है, इसके प्रमाण भी पठनीय है।

वर्तमान काल में सर्वत्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं होने लगी हैं। इनके लिए भी उपयोगी ग्रन्थ में प्रस्तुत किए गए हैं। प्रतिष्ठा मंडप यज्ञ कुण्ड एवं पांडुक शिला के रेखा चित्र समुचित निर्देश देते हैं।

यद्यपि स्तूपों का आजकल प्रचलन नहीं है फिर भी प्राचीनकाल में जैनों में स्तूप बनाने का प्रचलन था। स्तूपों के अवशेष आज भी मिलते हैं।

खण्डित प्रतिमा के लिए पूज्यता आदि के निर्देश दिए गए हैं। यदि १०० से अधिक वर्षों से किसी प्रतिमा की पूजा की जा रही हो तो वह सदोष रहने पर भी त्याज्य नहीं है। स्थापत्य शास्त्र के संरक्षण की दृष्टि से खंडित प्रतिमा के विसर्जन के स्थान पर उसे संग्रहालय में रखने का भी सुझाव समयोचित है।

मन्दिर निर्माण से अधिक महत्व मन्दिर के जीर्णोद्धार का है। आजकल जीर्णोद्धार के नाम पर चलने वाली यद्वा तद्वा बातों का निराकरण आचार्य श्री ने इस प्रकरण में किया है। जीर्णोद्धार कार्य में नव निर्माण से आठ गुना पुण्य प्राप्त होता है। जीर्णोद्धार के लिये विधि विधान एवं संकल्प पूर्वक ही मूर्ति को स्थानांतरित करें अन्यथा भयावह परिणाम होंगे।

८. ज्योतिष प्रकरण

ज्योतिष प्रकरण में मन्दिर भूमि पर निर्माण प्रारंभ के लिए मुहूर्त चयन हेतु विशेष जानकारी दी गई है। सूर्य बलशाली होने पर ही कार्यारम्भ करें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि किस तीर्थंकर की प्रतिमा मूलनायक के रुप में स्थापित की जानी है, इसका निर्णय राशि मिलान करके ही करें। वेध प्रकरण में वेधों के विभिन्न प्रकारों पर उपयोगी निर्देश दिए गए हैं। इसी प्रकार अपशकुन एवं अशुभ लक्षणों का भी विचार करना चाहिये। मन्दिर निर्माण के दोषों को भी इसी प्रकरण में स्पष्ट किया गया है।

९. प्रासाद भेद प्रकरण

इस प्रकरण में प्रासाद की विभिन्न जातियों को संक्षेप में दर्शाया गया है। केसरी आदि २५, वैराज्य आदि २५ प्रासादों का विवरण संक्षेप में दो भागों :-तल का विभाग एवं शिखर की सज्जा में सचित्र दिया गया है। मेरु आदि २० प्रासादों एवं तिलकसागर आदि २५ प्रासादों की अल्प जानकारी दी गई है।

१०. जिनेन्द्र प्रासाद प्रकरण

इस प्रकरण में प्रत्येक तीर्थंकर के लिए पृथक-पृथक रुप से प्रासादों का नाम, तल विभाग, शिखर सज्जा एवं उनके श्रृंगों की संख्या का सचित्र विवरण दिया गया है। कुल ९६७० प्रकार के शिखरों में से कुछ की ही जानकारी मिलती है।

११. शब्द संकेत

ग्रन्थ के अन्त में शब्द संकेत में प्रयुक्त शब्दों का भावार्थ दिया गया है। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में प्रयुक्त ग्रन्थों की नामावली दी गई है।

प.पू. गणाधिपति गणधराचार्य श्री १०८ कुन्थुसागरजी महाराज ने आशीर्वाद देकर हम सबको कृतार्थ किया है। उनका जितना गुणगान किया जाये उतना ही कम है। मैं उनके चरणों में बारम्बार विनयपूर्वक नमोस्तु करता हूँ तथा सतत् उनके आशीर्वाद की कामना करता हूँ।

प.पू. युवाचार्य तीर्थोद्धारक गुरुवर प्रज्ञाश्रमण श्री १०८ देवनन्दिजी महाराज की ख्याति सर्वत्र व्याप्त है। निरन्तर ज्ञानयोग में लगे आचार्यवर की करुणामयी दृष्टि से गृहस्थ प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उनके आशीर्वाद मात्र से गृहस्थों के संकट दूर होते हैं। तीर्थक्षेत्रों के विकास के लिये वे सदैव विचारशील रहते हैं। जिन क्षेत्रों में आचार्यवर ने चातुर्मास किया अथवा विहार किया वहां पर सतत् क्षेत्र के उद्धार के लिये उदारमना श्रावकों को प्रेरित करते रहे। उन क्षेत्रों का तीव्र विकास उनकी कार्यशैली का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

वात्सल्य मूर्ति, ज्ञानयोगी गुरुवर की मुझ पर बड़ी कृपा दृष्टि है। मुझ सरीखे अल्प बुद्धि साधारण मनुष्य को आपने ***देव शिल्प*** ग्रन्थ के सम्पादन का भार सौंप कर महान उपकार किया है। मैंने अपनी समझ से यथाशक्ति इस महान ग्रन्थ का सम्पादन कार्य किया है। विद्वान पाठकों से मेरा अनुरोध है कि मेरी भूलों को नादान समझकर क्षमा करेंगे तथा आगमानुसार यथोचित संशोधन कर लेवेंगें।

अन्ततः मैं गुरुवर प.पू. प्रज्ञाश्रमण आचार्य श्री १०८ देवनन्दि जी महाराज के चरण युगलों में पुनः पुनः नमोस्तु करता हूँ तथा उनसे कृपा दृष्टि की याचना करता हूँ। साथ ही समस्त आचार्य संघ के श्री चरणों में भी नमोस्तु, वन्दामि, इच्छामि करता हूँ।

छिन्दवाड़ा
३/८/२०००

सतत गुरुचरणानुरागी,
नरेन्द्र कुमार बड़जात्या

अनुक्रमणिका

भूमि प्रकरण

परिसर प्रकरण

देवालय प्रकरण

निर्माण प्रकरण

वेदी प्रतिमा प्रकरण

देव - देवी प्रकरण

विविध निर्देश

ज्योतिष प्रकरण

प्रासाद भेद प्रकरण

जिनेन्द्र प्रासाद प्रकरण

शब्द संकेत

णमो अरिहन्ताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंचणमोक्कारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं हवइ मंगलं ॥

चत्तारि मंगलं।
अरिहन्त मंगलं। सिद्ध मंगलं। साहू मंगलं।
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा।
अरिहन्त लोगुत्तमा। सिद्ध लोगुत्तमा। साहू लोगुत्तमो।
केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।
अरिहन्त सरणं पव्वज्जामि।
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि।
साहू सरणं पव्वज्जामि।
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमो जिनाय

॥ श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमः ॥

॥ श्री चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः ॥

॥ श्री गणधराचार्य कुन्थुसागराय नमः ॥
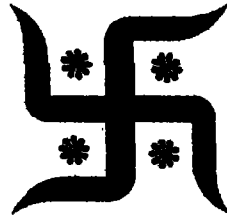
मंगलाचरण

पणमिय आदि जिणंदं, पढमं तित्थयरं धम्मकत्तारं ।
वोच्छामि वत्थुसत्थं, जिणचेइय चेइयालयाणं ॥
एदम्मि वत्थुगंथे, जिणायाराणं विभिण्ण भेयाणं ।
पडिमाण य प्पमाणं, सुहासुहप्परुवणं चात्थि ॥
पणमामि महावीरं सरस्सई तहेव गणहराणंपि सव्वेसिं।
गुरु कुन्थुसायरमवि तियरण सुद्धो णमस्सामि ॥

देवा सुरेन्द्र नर नाग समर्चितेभ्यः
पाप प्रणाशकर भव्य मनोहरेभ्यः
घंटा ध्वजादि परिवार विभूषितेभ्यो
नित्यं नमो जगति सर्व जिनालयेभ्यः ।

देवेन्द्र, असुरेन्द्र, चक्रवर्ती, धरणेन्द्र ने जिनकी सम्यक प्रकार से पूजा की है, पापों का नाश करने वाले हैं, भव्य जीवों के मन को आकर्षित करते हैं, घण्टा, ध्वजा, माला, धूपघट, अष्ट मंगल, अष्ट प्रातिहार्य आदि मंगल वस्तुओं के समूह से सुसज्जित हैं, अलंकृत हैं ऐसे तीन लोक में स्थित सभी जिन मन्दिरों के लिये प्रतिदिन/ प्रत्येक काल सदा सर्वदा नमस्कार हो। चैत्य भक्ति ६

चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तव

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे ।
णर पवर लोए महिए विहुय रय मले महप्पण्णे ॥१॥

मनुष्यों में श्रेष्ठ , लोक में पूज्य, तथा कर्ममल को क्षय करने वाले महान आत्माओं अर्थात जिनवरों, तीर्थंकरों, अनंत केवली जिनेन्द्रों की मैं स्तुति करता हूं।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से चौबीसं चेव केवलिणो ॥२॥

लोक में उद्योत को करने वाले धर्म तीर्थ के कर्ता जिनेन्द्र देव की मैं वन्दना करता हूँ । अरहंत पद विभूषित चौबीस भगवंतों और इसी प्रकार केवली भगवंतों का मैं कीर्तन करुंगा।

उसह मजियं च वन्दे संभव मभिणंदणं च सुमइंच ।
पउप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥ ३॥

वृषभनाथ तीर्थंकर को, अजितनाथ तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूं । संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूं।

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमल मणंतं भयवं धम्मं संति च वंदामि ॥४॥

सुविधि अथवा पुष्पदंत, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य , विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ और शांतिनाथ तीर्थंकर भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

कुंथुं च जिण वरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५॥

जिनवरों में श्रेष्ठ कुंथुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, अरिष्टनेमि, पारसनाथ और वर्धमान तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूं ।

एवं मए अभित्थुआ विहुय रय मला पहीण जर मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसी यंतु ॥६॥

जो कर्मरुपी रजोमल से रहित हैं तथा जिन्होंने जरा और मरण को नष्ट कर दिया है ऐसे चौबीसों जिनवर तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न होवें।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्ग णाण लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७॥

इस प्रकार मेरे द्वारा कीर्तन किए गए, वन्दना किये गये, पूजे गए ये लोक में उत्तम जिनेन्द्रदेव सिद्ध भगवान मेरे लिए ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न निर्मल केवल ज्ञान का लाभ, बोधि और समाधि प्रदान करें।

चंदेहि णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहिय पया संता ।
सायर मिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

चन्द्रमा से भी निर्मलतर, सूर्य से भी अधिक प्रभासम्पन्न, सागर के समान गंभीर सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि को प्रदान करें ।

जिन भवन महिमा

भारतीय संस्कृति में स्तुति पाठ का अपना विशिष्ट स्थान है। साधारण ज्ञान वाला उपासक भी प्रभु की उपासना स्तुति पाठ करके लेता है विभिन्न संतों एवं कवियों ने विभिन्न भाषाओं में स्तुति पाठ किये हैं उन्हें सामान्य गृहस्थ भी पढकर अपना कल्याण प्राप्त करते हैं।

जिनेन्द्र प्रभु का मन्दिर उपासक के मन को बाह्य रुप से ही आल्हादित कर देता है। उनकी महिमा का दर्शन करते ही उपासक के चित्त में भक्तिभाव उमड़ पड़ता है तथा प्रमुदित मन से वह प्रभु चरणों में स्वयमेव नतमस्तक हो जाता है। जिन मन्दिर का वैभव उसके मनोभावों को और अधिक प्रमुदित करता है।

आचार्य सकलचन्द्र मुनि ने अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति एक संस्कृत स्तोत्र रचना के माध्यम से की है। ये मनोभाव तब प्रकट हुए हैं जब उन्होंने अत्यन्त विनय भाव से जिन भवन की ओर प्रस्थान किया तथा जिन भवन के बाह्य रुप की शोभा के दर्शन किये। तदनन्तर जिनालय में प्रवेश करके उन्होंने त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र प्रभु के दिव्य रुप को प्रकट करने वाले जिन बिम्ब के दर्शन किये।

यहाँ पर उनके द्वारा रचित एक विशिष्ट स्तोत्र का भावार्थ प्रस्तुत है जिससे पाठकगण जिनेन्द्र प्रभु के मन्दिर की महिमा का अवलोकन कर पायेंगे -

दृष्ट जिनेन्द्र भवनं भवताप हारि,
भव्यात्मनां विभव संभव भूरि हेतु
दुग्धाब्धि फेन धवलोज्ज्वल कूट कोटी
नद्ध ध्वज प्रकर राजि विराजमान ।१।

मैंने आज जिनेन्द्र प्रभु के मन्दिर के दर्शन किये जो कि मेरे भवरोग (जन्म-मरण के चक्र) को दूर करने वाला है। जिसके दर्शन से असीमित वैभव की प्राप्ति होती है। जो दुग्ध एवं समुद्रफेन की भांति धवल (श्वेत) एवं उज्ज्वल शिखरों से युक्त हैं। जिसके शिखर ध्वजों की पंक्तियों से शोभान्वित हो रहे हैं। ऐसे जिन भवन के आज मैं दर्शन कर रहा हूँ।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं भुवनैक लक्ष्मी
धामर्द्धि वर्धित महामुनि सेव्यमानम् ।
विद्याधरामर वधूजन मुक्त दिव्य
पुष्पांजलि प्रकर शोभित भूमि भागम् ।।२।।

आज मैंने ऐसे जिनालय के दर्शन किए जहाँ पर त्रिभुवन लक्ष्मी का निवास है तथा जहाँ पर विद्याधरों एवं देव-देवियों द्वारा अर्पित पुष्पांजलि वहां की भूमि की शोभा में अभिवृद्धि कर रही है। ऐसे जिनालय में महानऋद्धि धारी मुनिगण जिनेन्द्र प्रभु की चरण सेवा में निमग्न हैं।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं भवनादि वास
विख्यात नाक गणिका गण गीयमानम् ।
नानामणि प्रचय भासुर रश्मिजाल ।
व्यालीढ निर्मल विशाल गवाक्ष जालम् ।।३।।

आज मैंने ऐसे जिन भवन के दर्शन किये जहाँ पर भवनवासी देवों की गणिकाएं गीत गा रही हैं। यह जिन भवन विशाल झरोखों से युक्त हैं तथा विभिन्न प्रकार की चमकदार मणियों की झिलमिलाहट झरोखों की शोभा बढ़ा रही है।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं सुर सिद्ध यक्ष
गन्धर्व किन्नर करार्पित वेणु वीणा ।
संगीत मिश्रित नमस्कृत धीर नादै ।
रापूरिताम्बरतलोरु दिगन्तरालम् ।।४।।

जिन भवन में आकाश एवं दिशाओं के देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि जब जिनेन्द्र प्रभु को नमस्कार करते हैं तब उनके हाथों से वेणु निर्मित वीणा से जो संगीत ध्वनि निकलती है वह सारे जिनालय में भर जाती है। ऐसी मंगल ध्वनि से युक्त जिनालय के आज मैंने दर्शन किये।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं विलसद् विलोल
माला कुलालि ललितालक विभ्रमाणम् ।।
माधुर्य वाद्यलय नृत्य विलासिनीनां
लीला चलद् वलय नूपुर नाद रम्यम् ।।५।।

आज मैंने ऐसे जिन भवन के दर्शन किये जो कि सुन्दर मालाओं से युक्त हैं, जिन मालाओं पर भ्रमर मंडरा रहे है तथा ये मालाएं अति सुन्दर अलकों की शोभा धारण कर रही हैं। यह जिन भवन मधुर शब्द युक्त वाद्य, लय के साथ नृत्य करते हुए नृत्यांगनाओं के हिलते हुए वलय तथा घुंघरुओं के नाद से रमणीय प्रतीत हो रहा है।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं मणिरत्न हेम
सारोज्ज्वलैः कलश चामर दर्पणाद्यैः ।
सन्मंगलैः सततमष्ट शतप्रभेदे,
विभ्राजितं विमल मौक्तिक दामशोभम् ।।६।।

आज मैंने ऐसे जिन भवन के दर्शन किये जो मणिमय, रत्न एवं स्वर्ण निर्मित एक सौ आठ कलशों से शोभान्वित हैं तथा निर्मल मोतियों की मालाएं उसकी शोभा में वृद्धि कर रही हैं।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं वर देवदारु
कर्पर चन्दन तरुष्क सुगन्धि धूपैः।
मेघायमान गगने पवनाभियात
चंचल चलद् विमल केतन तुंग शालम् ।।७।।

आज मैंने ऐसे जिन भवन के दर्शन किये जो पवन की लहरों से हिलती हुई पताकाओं से शोभायमान हैं तथा जहाँ पर उत्तम शाल, देवदारु, कपूर, चन्दन और तुरुष्क आदि सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित धूप खेने से सुगन्धित धूम्र के बादल उत्तम मेघों की भांति छाये हुए हैं।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं धवलातपत्र-
च्छाया निमग्न तनु यक्षकुमार वृन्दैः।
दोधूयमान सित चामर पंक्ति भासं
भामण्डल द्युति युत प्रतिमाभिरामम् ।।८।।

आज मैंने ऐसे जिन भवन के दर्शन किये जो शुभ्र आत पत्र की छाया में यक्ष कुमारों के द्वारा ढुरते हुए चामरों की पंक्ति की शोभा से समन्वित हैं। जिन प्रतिमाओं के पीछे लगे भामण्डल की चमक से नयनाभिराम दृश्य लग रहा है।

दृष्टं जिनेन्द्र भवनं विविध प्रकार
पुष्पोपहार रमणीय सुरत्न भूमि।
नित्यं वसन्ततिलक श्रियमादधानं
सन मंगलं सकलचन्द्र मुनीन्द्र वन्द्यम् ।।९।।

आज मैंने सकलचन्द्र मुनिराज के द्वारा सदा वन्दनीय जिनेन्द्र भवन के दर्शन किये जो कि सर्वोत्तम मंगलरुप है तथा निरन्तर वसन्त ऋतु में तिलक वृक्ष के समान शोभायमान है। जहाँ की रत्नमय भूमि विविध पुष्प उपहारों से रमणीय लग रही है। ऐसी भूमि की उपासना सकल चन्द्रमा के समान सदा सुखकर मुनिराज भी करते हैं।

दृष्टं मयाय मणिकांचन चित्र तुंग।
सिंहासनादि जिनबिम्ब विभूतियुक्तम्।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे
सन् मंगलं सकलचन्द्र मुनीन्द्र वन्द्यम् ।।१०।।

आज मैंने ऐसे जिन चैत्यालय के दर्शन किये जिसमें मणि कांचन से सहित विचित्र शोभा को धारण करने वाले सिंहासन आदि विभूति से युक्त जिनेन्द्र प्रतिमा विराजमान है। जिसका कीर्तिगान सर्वत्र गाया जाता है, जो मेरे लिए मंगल स्वरुप है तथा पूर्ण चन्द्रमा की भांति सबको सुखकर है ऐसे चैत्यालय के दर्शन सकलचन्द्र मुनि (मैंने) ने किये हैं।

मन्दिर की आवश्यकता

मनुष्य का मन अति चंचल होता है। मन की गति की कोई सीमा अथवा रोक उसके पास नहीं होती। क्षण मात्र में विश्व के एक सिरे से दूसरी ओर मन घूम आता है। ऐसे चंचल मन को नियंत्रण में रखने के लिए धर्म के अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं है। इसी मन को यदि भगवान जिनेन्द्र के गुणानुराग में लगाया जाये तो कर्म बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। इसीलिए मुनि एवं गृहस्थ दोनों के लिये यह परम आवश्यक है कि वह अपने मन को सांसारिक विषय वासनाओं के जंजाल से निवृत कर धर्म ध्यान में केन्द्रित करे।

जिन महापुरुषों ने कर्म बन्धन को काटकर मोक्ष पद प्राप्त कर लिया है है उन महापुरुषों का गुणानुराग करने के लिए उनकी पूजा की जाती है। चूंकि हमारा मन अति चंचल है अतएव उन महापुरुषों की प्रतिकृति प्रतिमा के रुप में निर्मित की जाती है। इन प्रतिकृति को देखकर मन में उन महापुरुष के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न होते हैं। उनके गुणों को जानने की तथा उनके निर्दिष्ट मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त होती है। प्रतिमा किसी भी द्रव्य की निर्मित की जा सकती है। शास्त्रानुसार प्रतिमा का निर्माणकर उसकी प्रतिष्ठा करने के उपरांत उस प्रतिमा में भी देवत्व प्रकट होता है। इसीलिये जैन धर्म में महापुरुष की अर्चना प्रतिमा के माध्यम से करने का निर्देश दिया गया है। जहां एक ओर महापुरुष को देवता माना जाता है वहीं दूसरी ओर उनकी प्रतिमा को भी देवता माना जाता है। प्रतिमा को पूजने का अर्थ पाषाण की पूजा कदापि नहीं है। वह तो महापुरुष अथवा भगवान का साकार रुप है। मन की चंचलता यदि वश में आ जाये तो पूजा करने की ही आवश्यकता शेष न रहे। मन की चंचल अवस्था के कारण ही साकार पूजा की जाती है।

जिस प्रकार धर्म पूज्य है, धर्म नायक पूज्य है, धर्म गुरु पूज्य है, धर्म नायक महापुरुष की प्रतिमा पूज्य है, उसी प्रकार उनकी प्रतिमा के रहने का स्थान भी आराधना स्थल है। मन्दिर भी देवता स्वरुप है एवं भगवान की भांति ही भगवान का मन्दिर भी पूज्य है। यही वह स्थान है जहाँ चंचल मन विश्रांति पाता है तथा संसार सागर से पार उतरने का आश्रय प्राप्त करता है। यह आराधना स्थल, जिसे देवालय, मन्दिर, प्रासाद, जिन भवन आदि पृथक-पृथक नामों से वर्णित किया जाता है, देवता स्वरुप पूज्य है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य साकार पूजा कर रहा है तथा अपनी कल्पना के अनुरुप देवालय की रचना कर रहा है। मध्यकाल में लम्बे समय तक विधर्मियों के द्वारा साकार पूजा पद्धति को समूल नष्ट करने के लिए लाखों मन्दिरों एवं प्रतिमाओं को निर्दयता पूर्वक विध्वंस किया गया, किन्तु भीषण आघातों के उपरांत भी धर्म की जड़ को वे उखाड़ न सके तथा पुनः धर्म मार्ग की स्थापना हो गई। इस काल में अनेकों सम्प्रदायों ने मूर्तिपूजा पद्धति ही समाप्त कर दी किन्तु मन्दिरों का निर्माण करते रहे। मन्दिरों के माध्यम से धर्म का आधार समाप्त नहीं होने पाया।

मन्दिरों के निर्माण में वास्तु शिल्पकारों ने अपनी बुद्धिमत्ता का भरपूर उपयोग किया। प्राचीन परम्पराओं एवं शास्त्रों के आधार पर निर्मित मन्दिरों ने भारत के सांस्कृतिक गौरव को स्थापित किया। यही वह आधार था जिस पर आघात करके विधर्मी अपना धर्म स्थापित करना चाहते थे। उनका विचार था कि यदि भारत स्थापत्यकला एवं संस्कृति को समाप्त कर दिया जायेगा तो भारत में वे अपना धर्म आसानी से प्रचारित कर लेंगे। किन्तु भारतीय संस्कृति के स्थापत्य गौरव के भग्न अवशेषों ने पुनर्जीवन प्राप्त कर पुनः सांस्कृतिक वैभव को प्राप्त किया।

मन्दिर की आवश्यकता का एक अन्य पहलू उसका ऊर्जामय वातावरण है। मन्दिर की आकृति एवं वहां निरन्तर मन्त्रों के पाठ की ध्वनि का परावर्तन आराधक को ऊर्जा प्रदान करता है। जब हम पापमय स्थानों में जाते हैं तो स्वाभाविक रुप से हमारे मन में पाप करने का कुविचार आते हैं। मन्दिर में इसके विपरीत आराध्य प्रभु के प्रति विनय, श्रद्धा तथा शरणागति के भाव उत्पन्न होते हैं। मन्दिर का शांत ऊर्जामय वातावरण मन की चंचल गति को स्थिरता देता है। अनायास ही हमारे मन में भगवान की भक्ति, अनुराग तथा उनके गुण ग्रहण करने की भावना होती है।

जैन शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है कि जिन बिम्ब का दर्शन कर्म क्षय का हेतु है। इसका तात्पर्य यह है कि जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा मात्र का दर्शन भी सुख पाने के लिए समर्थ निमित्त है, क्योंकि कर्मक्षय ही शाश्वत सुख पाने का एकमात्र कारण है। शास्त्रों में यह भी उल्लेखित है कि प्रथम बार सम्यग्दर्शन जिनेन्द्र प्रभु के पादमूल में ही होता है। जिन मन्दिर भी उनके बिम्ब का स्थान होने से सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का सशक्त निमित्त है। अतएव जिन बिम्ब एवं जिन-मन्दिर धर्म का एक शाश्वत स्थान है।

मन्दिर की सर्वाधिक आवश्यकता है जनसामान्य को आराधना के लिये। मन्दिर स्थापनकर्ता के अतिरिक्त हजारों वर्षों तक असंख्य लोग निरन्तर भगवान की पूजा अर्चना करके अपना आत्मकल्याण करते है। उनकी पूजा में मन्दिर निमित्त बनता है। अतएव मन्दिर निर्माता को पूजा की अनुमोदना का फल मिलता है।

चिरकाल तक पीढ़ी दर पीढ़ी जिस स्थल पर उपासना होती है उस स्थान का कण-कण पूज्य हो जाता है। वह स्थल तीर्थ बन जाता है । तीर्थ का अर्थ है-तारने वाला। असंख्य लोगों को भवसागर से पार लगाने के लिये तीर्थ स्वरुप मन्दिर की महिमा का गुणगान निरन्तर होता रहा है, आगे भी होता रहेगा।

मन्दिर निर्माण का पुण्य फल

जो गृहस्थ अपनी क्षमता के अनुरुप प्रभु का मन्दिर बनवाता है, वह असीम पुण्य का अर्जन करता है तथा वर्तमान एवं भविष्य दोनों को सुखी करता है। अनेकों जन्म के पुण्य संचय से यह अवसर उपस्थित होता है कि वह प्रभु का मन्दिर बनवाये। शिल्प शास्त्रों में भी नवीन मन्दिर को निर्माण करवाने वाले को असीम पुण्यार्जन का उल्लेख उपलब्ध होता है।*

करोड़ों वर्षों के उपवास का फल, जन्म जन्मान्तरों में किया गया तप तथा करोड़ों दानों में करोड़ दान का फल यदि किसी को एक साथ मिल जाये वह फल एक नवीन जिन मन्दिर निर्माण कराने वाले उपासक को मिलता है।**

जो उपासक लकड़ी अथवा पाषाण का मन्दिर निर्माण करवाता है उसे इतना अधिक पुण्य मिलता है कि वह चिरकाल तक देव लोक में सुख भोगता है।#

स्वशक्ति के अनुरुप लकड़ी, ईंट, पाषाण, स्वर्ण आदि धातु, रत्न का देवालय उपासक को निर्माण करना चाहिये। ऐसा करने से चारों पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि होती है।$

देव प्रतिमाओं की स्थापना, पूजा, दर्शन करने से उपासक के पापों का हनन होता है तथा उसको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों की प्राप्ति होती है।

यदि कोई घास का देवालय भी बनाता है तो कोटि गुणा पुण्य का अर्जन करता है। मिट्टी का देवालय बनाने वाला उससे दश गुणा अधिक पुण्य कमाता है। ईंट का देवालय बनाने वाला निर्माण उससे भी सौ गुणा पुण्य अर्जन कर अपना जीवन सुखी करता है। पाषाण निर्मित देवालय निर्माण करने वाला जिन भक्त अनन्त गुणा पुण्य फल प्राप्त करता है। @

---

* कोटि वर्षोपवासश्च तपो वै जन्म जन्मनि।
कोटि दानं कोटि दाने, प्रासाद फल कारणे॥ शि. र. १३/८५

**काष्ठ पाषाण निर्माण कारिणो यत्र मन्दिरे।
भुंजतेऽसौ च तत्र सौख्यं शंकरत्रिदशैः सह॥ प्रा.मं. ८/८४

#स्वशक्त्या काष्ठ मृदिष्टका शैल धातु रत्नजम्।
देवतायतनं कुर्याद् धर्मार्थ काममोक्षदम्॥ प्रा. मं. १/३३

$देवानां स्थापनं पूजा पापघ्नं दर्शनादिकम्।
धर्मवृद्धिर्भवेदर्थः कामो मोक्षस्ततो नृणाम्॥ प्रा.मं. १/३४

@कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम्।
ऐष्टके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं स्मृतम्॥ प्रा.मं. १/३५

अतएव सुख की इच्छा रखने वाले गृहस्थ को चाहिये कि वह अपने जीवनकाल में अपनी शक्ति के अनुरुप जिनेन्द्र प्रभु का मन्दिर अवश्य निर्माण कराये। यह मन्दिर अनेकों पीढ़ियों तक भव्यजन उपासकों के लिए प्रभु भक्ति का निमित्त कारण बनता है। असंख्य जीव इस मन्दिर के दर्शन कर पुण्य लाभ करेगें। अतएव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रुप से यह जीव के लिए अत्यंत हितकारी है। जैन जैनेतर सभी शास्त्रों में मन्दिर निर्माणकर्ता के लिए असीम पुण्य फल की प्राप्ति का वर्णन देखने में आता है।

उमास्वामी श्रावकाचार में आचार्य श्री का स्पष्ट निर्देश है कि जिन मन्दिर एवं जिन प्रतिमा का निर्माण यथा शक्ति करना चाहिये। उन्होंने तो यहाँ तक लिखा है कि जो भव्य जीव एक अंगुल प्रमाण की प्रतिमा को भी कराकर उसकी नित्य पूजा करता है उसके पुण्य संचय को कहना शब्दों की सामर्थ्य में नहीं है। जो पुरुष बिम्बा फल (भिलावा) के पत्ते के समान अत्यंत लघु चैत्यालय (मन्दिर) बनवाता है तथा उसमें जौ के आकार की प्रतिमा रखाकर उसकी नित्य पूजा करता है, उस गृहस्थ का पुण्य अत्यंत महान होता है तथा उसके संसार चक्र का किनारा अब अत्यंत निकट है अर्थात् वह शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करता है। *

(उ.श्रा. ११४, ११५)

---

*अंगुष्ट मात्रं बिम्बं यत् यः कृत्वा नित्यमर्चयेत्।
तत्फलं न च वक्तुं हि शक्यते ऽ संख्यपुण्ययुक्॥ उ.श्रा. ११४

बिम्बादलसमे चैत्ये यवमानं तु बिम्बकम।
यः करोति तस्यैन मुक्तिर्भवति सन्निधिः॥ उ.श्रा. ११५

जिनालय माहात्म्य

वास्तुशास्त्र के विविध वर्णनों में शास्त्रकारों ने जिनेन्द्र मंदिरों (जिनालयों) का महत्व एवं प्रभाव अपनी शैलियों में प्रस्तुत किया है। जैन धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त अन्य समाज एवं राष्ट्र के लिये भी ये मंदिर मंगलकारी हैं। जो भी व्यक्ति अपने पूरे जीवनकाल में एक चावल के दाने के बराबर भी जिन प्रतिमा बनवाकर मन्दिर में स्थापित करता है वह जन्म जन्मातर के पापकर्मों का क्षय कर अनन्त सुख का अधिकारी बनता है।

जिन वीतराग प्रभु स्वयं तो महान सुख को प्राप्त कर सिद्धशिला पर विराजमान हैं लेकिन उनकी प्रतिमा एवं मन्दिर के दर्शन मात्र से भी अतीव सुख की प्राप्ति होती है। अतएव किसी भी परिस्थिति में अपनी शक्ति के अनुरुप यह कार्य अपने जीवन में करने का लक्ष्य रखना चाहिये।

जिनेन्द्र मंदिर सर्व पूजनीय हैं, प्रजा को सुखदायक है, सर्व मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। सभी को तुष्टि, पुष्टि, सुख, समृद्धि की प्रप्ति कराने के लिये समर्थ कारण हैं। सर्व लोक भी शांति का प्रसार करने वाले हैं। राजा प्रजा सभी के लिये मंगल स्वरुप हैं।

शास्त्रकारों ने तो यहां तक कहा है कि चाहे परिक्रमा वाले जिनालय हों या बिना परिक्रमा वाले ये सर्वत्र सुखकारक हैं। यदि चारों ओर द्वार वाले सर्वतोभद्र जिनालय का निर्माण करवाकर उसमें चारों दिशाओं को मुख करके जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा स्थापित की जाये तो ये सभी इच्छित फलों को प्रदान करते हैं।

यदि जगती और मण्डप वाले आदिनाथ प्रभु जिनालय का निर्माण नगर में किया जाता है तो यह सर्वत्र मंगल तथा स्वर्ग लोक एवं इह लोक दोनों की सम्पदा प्रदान करता है। *

---

*क्रमाकृत ज्ञान प्रकाश दीपार्णव की वास्तुविद्या के जयपृच्छता जिन प्रासाद अधिकार से संकलित-

प्रासादाः पूजिता लोके विश्वकर्मणा भाषिताः।
चतुर्विंशविभक्तीना जिनेन्द्राणां विशेषतः॥ १२७
चतुर्दिशि चतुर्द्वाराः पुरमध्ये सुखावहाः।
भ्रमाश्च विभ्रमाश्चैव प्रशस्ताः सर्वकामदाः॥ १२८
शान्तिदाः पुष्टिदाश्चैव प्रजाराज्यसुखावहाः।
अश्वैर्गजैर्बलियानै-र्महिषीनन्दीभिस्तथा॥ १२९
सर्वश्रियमाप्नुवन्ति स्थापिताश्च महीतले।
नगरे ग्रामे पुरे च प्रासादा ऋषभादयः॥ १३०
जगत्या मण्डपैर्युक्ताः क्रीयन्ते वसुधातले।
सुलभं दीयते राज्यं स्वर्गे चैवं महीतले॥ १३१
दक्षिणोत्तरमुखाश्च प्राचीपश्चिमदिङ्मुखाः।
वीतरागस्य प्रासादाः पुरमध्ये सुखावहाः॥ १३२.

प्रा.मं.प.-२/१२७-१३२ (दीपार्णव, वास्तुविद्या जिन प्रासाद अधिकार)

सूत्रधार प्रकरण

जब राजा, समाज अथवा धर्मात्मा गृहस्थ यह निर्णय लेते हैं कि उन्हें देव मन्दिर का निर्माण करना है तो सबसे पहले यह भी निर्णय करना आवश्यक होता है कि किस सूत्रधार अथवा शिल्पकार के निर्देशन में मन्दिर वास्तु का निर्माण करवाया जाये। मन्दिर का निर्माण तथा साधारण वास्तु के निर्माण में महान अन्तर है। मन्दिर में देव प्रतिमा की स्थापना कर उनका प्रतिदिन पूजन, अभिषेक आदि किया जाता है। देव प्रतिमाओं की भी पंचकल्याणक, अंजन शलाका आदि प्राण प्रतिष्ठा विधियों से प्रतिष्ठा की जाती है। ऐसी परिस्थिति में यदि मन्दिर का निर्माण वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों से अपरिचित नौसिखिये अथवा अल्पज्ञानी सूत्रधार के निर्देशन में किया जायेगा तो इससे न केवल मन्दिर तथा मन्दिर निर्माता को हानि होगी बल्कि मन्दिर की व्यवस्थापक समाज, पूजक तथा शिल्पकार की भी हानि होगी। यह हानि अनेकों प्रकार की होती है तथा लम्बे समय तक इसके प्रभाव दृष्टिगत होते हैं।

चैत्यालय अथवा मन्दिर स्वयं भी देवता स्वरुप हैं। जैनधर्म में इसे नव देवताओं में सम्मिलित किया जाता है। इसके निर्माण में असावधानी तथा अज्ञानता सर्वत्र हानिकारक होगी, इसमें सन्देह नहीं है। इसी कारण चैत्यालय वास्तु के निर्माणकर्ता शिल्पकार का अनुभवी होना अत्यन्त आवश्यक है।

सूत्रधार से कार्य प्रारम्भ करने के लिये निर्माता को आदरपूर्वक अनुरोध करना चाहिये। सूत्रधार को अपनी पूरी योग्यता के साथ भगवान की पूजा समझकर मन्दिर वास्तु का निर्माण कार्य शुद्ध मुहूर्त में प्रारंभ करना चाहिये।

सूत्रधार के अपरनाम

सूत्रधार के समानार्थी अन्य प्रचलित शब्द हैं - शिल्पी, शिल्पकार, स्थपति, शिल्पाचार्य, शिल्पशास्त्रज्ञ इत्यादि।

सूत्रधार के लक्षण

सुशील, चतुर, कार्यकुशल, शिल्पशास्त्र के ज्ञाता, लोभरहित, क्षमाशील, द्विज व्यक्ति को ही सूत्रधार बनाना चाहिये। ऐसे शिल्पकार से जिस देश / राज्य में मन्दिर आदि वास्तु का निर्माण किया जाता है वह राज्य प्राकृतिक आपदाओं एवं भय, चोरी आदि बाधाओं से मुक्त रहता है।

मन्दिर निर्माण का कार्य अपने हाथ में ग्रहण करने वाले सूत्रधार के लिये यह आवश्यक है कि वह शिल्पशास्त्र का पूर्ण ज्ञाता हो। शिल्पशास्त्र की आधुनिक एवं प्राचीन शैलियों से वह सुपरिचित हो। आधुनिक शैली के बेहतर साधनों को अपनाने में वह सिद्धहस्त हो किन्तु शास्त्र के मूल सिद्धांतों में फेरबदल न करे। उसके शिल्प शास्त्र ज्ञान के अनुरुप ही वह मन्दिर वास्तु का निर्माण करने में सक्षम होगा। *(शि.र. १/१)

---

*सुशीलश्चतुरो दक्षः शास्त्रज्ञो लोभवर्जितः।
क्षमावान स्याद्द्विजश्चैव सूत्रधारः स उच्यते॥ शि. र. १/१

कार्यकुशलता सूत्रधार का प्रमुख गुण है। सूत्रधार न केवल वास्तु निर्माण की योजना बनाता है वरन् उसे क्रियान्वित करके मन्दिर वास्तु को तैयार करता है। उसे लम्बे समय तक शिक्षित, अल्पशिक्षित अथवा अशिक्षित कार्यकर्ताओं एवं श्रमिकों से काम करवाना होता है। कार्यकर्ताओं एवं श्रमिकों की संख्या भी सामान्यतः काफी होती है। उनकी व्यवस्था करना सूत्रधार की प्रबन्ध कुशलता पर ही निर्भर होता है।

सूत्रधार में प्रतिभा का होना अत्यंत आवश्यक है। उसकी कल्पनाशीलता तथा प्रज्ञाबुद्धि ही यह निर्णय करती है कि मन्दिर का स्वरुप क्या होगा। मन्दिर किस शैली का, किस आकार का तथा कितना कलापूर्ण होगा इसकी कल्पना कर उस स्वप्न को साकार करना ही सूत्रधार का कार्य होता है। सूत्रधार को अपनी वास्तु से उतना हीं लगाव होता है जितना पिता को अपने पुत्र से। जिस तरह पिता अपने गुणों एवं विद्या को पुत्र में आरोपित करता है तथा उसे अपने से भी श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करता है उसी प्रकार सूत्रधार भी अपनी पूरी योग्यता को अपनी वास्तु में उड़ेल देता है।

अर्थ प्रबन्ध का वास्तु निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मन्दिर वास्तु का निर्माण अत्यंत व्यय साध्य कार्य है। लम्बे समय तक कार्य चलने से लागत में भी वृद्धि हो जाती है। मन्दिर निर्माता के अनुमानित अर्थ प्रबन्ध के अनुरुप ही यदि वास्तु का निर्माण होता है तो मन्दिर निर्माता अपने संकल्प को हर्षपूर्वक पूरा कर पाता है तथा यह वास्तु वर्तमान एवं भविष्य दोनों में सुखदायक एवं कीर्तिवर्धक होती है।

शीलवान होना सूत्रधार का आवश्यक गुण है। अपने निर्माता के प्रति ईमानदारी, निष्ठा, दायित्व का निर्वाह करने की सद्भावना प्रत्येक सूत्रधार में होना ही चाहिये। यदि सूत्रधार चरित्रहीन होगा तो उसका प्रभाव उसके द्वारा निर्मित वास्तु पर उसी तरह पड़ेगा, जिस भांति चरित्रहीन भ्रष्ट पिता का प्रभाव उसकी संतानों पर पड़ता है।

वर्तमान युग मे सूत्रधारों में चरित्र का अभाव होने का प्रभाव शासकीय वास्तु निर्माणों में आमतौर पर दृष्टिगोचर होता है। निर्माण का घटियापन, अल्पायु, कमजोर निर्माण सूत्रधार के नीचे चरित्र का उदाहरण है।

वास्तु निर्माण की शिक्षा योग्य गुरु से लेवें

वास्तुशास्त्र एक विशिष्ट शास्त्र है। इसमें उल्लेखित सिद्धांतों का अर्थ स्पष्ट हुए बिना यदि अल्पज्ञसूत्रधार शिल्प का निर्माण करता है तो उससे न तो अपेक्षित परिणाम प्राप्त होंगे न ही शिल्प निर्माणकर्ता को सुख होगा।

अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि सूत्रधार को अपने योग्य गुरु से मन्दिर एवं गृह वास्तु का निर्माण करने का शिल्प ज्ञान, लक्ष्य, लक्षण का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।*

---

*लक्ष्यलक्षणतोऽभ्यासाद् गुरुमार्गानुसारतः।
प्रासाद भवनादीनां सर्वज्ञानमवाप्यते॥ प्रा.म. १/१०

सूत्रधार का सम्मान एवं प्रार्थना

जिनालय का निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व निर्माता शिल्पकार का सम्मान करे। इसी प्रकार कार्य समापन करने के उपरांत भी शिल्पकार का सम्मान करें। निर्माण कार्य समापन के पश्चात निर्माण करवाने वाले स्वामी को सूत्रधार से अनुरोध पूर्वक कहना चाहिये कि ''हे सूत्रधार, इस निर्माण कार्य से आपने जो पुण्य लाभ लिया है वह मुझे प्रदान करें।''

इसके उत्तर में सूत्रधार आदरपूर्वक कहे कि ''हे स्वामिन्, आपका यह निर्माण अक्षय रहे, यह निर्माण आज तक मेरा था, अब यह आपका हुआ।''*

इसके उपरांत सूत्रधार का भूमि, धन, वस्त्र, अलंकार, वाहन आदि के द्वारा योग्य सत्कार करना चाहिये। अपनी क्षमता के अनुसार वस्त्र, भोजन, ताम्बूल आदि से अन्य कारीगरों को भी उचित सम्मान प्रदान करना चाहिये। अन्य सहयोगी कारीगरों तथा व्यक्तियों का भी यथोचित सम्मान करना चाहिये।

सूत्रधार का सम्मान करने के उपरांत ही वास्तु में प्रवेश करना चाहिये।**

---

*पुण्यं प्रासादजं स्वामी प्रार्थयेत् सूत्रधारतः।
सूत्रधारो वदेत् स्वामिन्। अक्षयं भवतात् तव ॥ प्रा.मं. ८/८५

**इत्येवं विधिवद् कुर्यात् सूत्रधारस्य पूजनम्।
भू वित्त वस्त्रालंकारैः गौ महिष्यश्च वाहनैः ॥ प्रा. मं. ८/८२
अन्येषां शिल्पिनां पूजा कर्तव्या कर्मकारिणाम्।
स्वाधिकांरानुसारेण वस्त्रैस्ताम्बूल भोजनैः ॥ प्रा. मं. ८/८३

सूत्रधार के अष्ट सूत्र
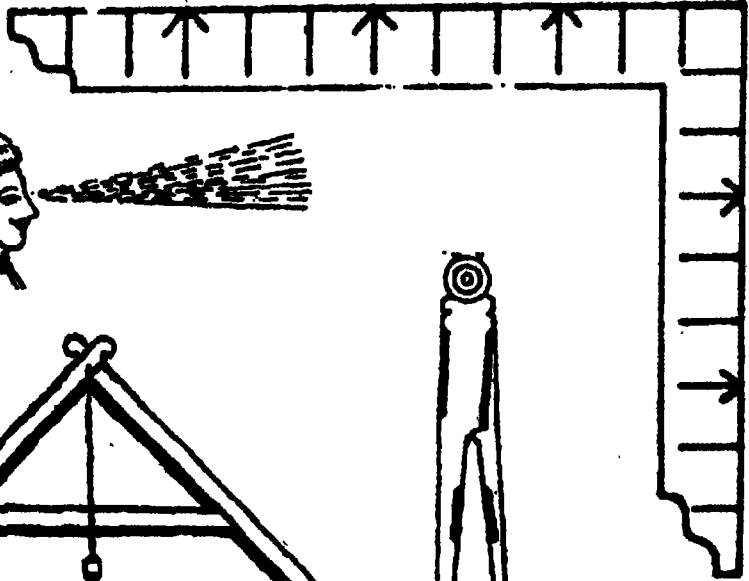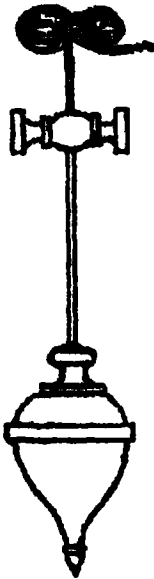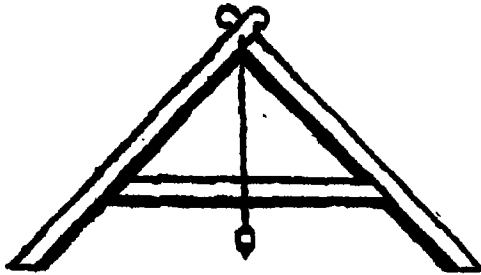
सूत्रधार के अष्टसूत्र

सूत्रधार वास्तु निर्माण के लिये आठ उपकरणों की सहायता प्रमुखता से लेता है। इनका उल्लेख इस प्रकार है :-

१.	दृष्टि सूत्र	२.	हस्त
३.	मुंज	४.	कार्पासक
५.	अवलम्ब	६.	काष्ठ
७.	सृष्टि या साधनी	८.	विलेख्य

१. दृष्टि सूत्र के अंतर्गत नेत्रों से ही औजारों जितना काम लेकर सही नाप जोख कर लिया जाता है।

२. हस्त से तात्पर्य एक पट्टी से है जो एक हाथ के नाप की होती है। इसके नौ भाग होते हैं जिनके अधिष्ठाता देवों के नाम इस प्रकार हैं -

रुद्र, वायु, विश्वकर्मा, अग्नि, ब्रह्मा, काल , वरुण, सोम, विष्णु।

वर्तमान में आधुनिक शिल्पी हस्त या गज का प्रमाण दो फुट तथा अंगुल का प्रमाण एक इंच से करते हैं। प्राचीन शैली के वास्तु के नाप इसी अनुपात से इंच फुट में बदलकर निर्माण करना उपयुक्त है। यह विधि सरल एवं व्यवहारिक भी है।

३. मुंज से तात्पर्य मूंज घास की बनी डोरी से है जिसके आधार से लम्बी सरल रेखा खींची जा सकती है। दीवाल को सरल रेखा में बनाने के लिए एक छोर से दूसरे छोर तक इसे बांधा जाता है।

४. कार्पासक से तात्पर्य कपास के मजबूत सूत से है जो अवलम्ब या साहुल (प्लम्ब लाइन) लटकाने के काम आता है।

५. अवलम्ब से तात्पर्य साहुल या प्लम्ब लाइन से है जो लोहे का एक छोर लट्टू होता है। इसे सूत से लटकाकर दीवार की ऊंचाई अर्थात् ऊपर से नीचे की सीधाई नापी जाती है।

६. काष्ठ से तात्पर्य गुनिया अथवा त्रिकोण से है जिससे कोण बनाने या नापने में सहायता ली जाती है ।

७. सृष्टि या साधनी से तात्पर्य फर्श को समतल बनाने के लिये सहायक उपकरण से है जिसे स्पिरिट लेवल की तरह उपयोग किया जाता है।

८. विलेख्य परकार (पेयर ऑफ डिवाइडर्स) से रेखाओं की दूरी तुलनात्मक दृष्टि से नापी जाती है। *

---

*सूत्राष्टकं दृष्टि नृहस्तमौञ्जं, कार्पासकं स्यादवलम्बसञ्ज्ञम्।
काष्ठं च सृष्ट्याख्यमतो विलेख्य-मित्यष्टसूत्राणि वदन्ति तज्ज्ञाः ।। रा. १/४०

दिशा प्रकरण

दिशा शब्द से सर्व साधारण जन परिचित हैं। दिशा से तात्पर्य है किसी विशेष बिन्दु की अपेक्षा अन्य वस्तु की स्थिति, जो सीधे में दर्शायी जाये। ऐसा करने के लिये किसी स्थायी आधार की आवश्यकता होती है जिसको अपेक्षा करके सभी पदार्थों की दिशा का ज्ञान किया जा सके।

सूर्योदय प्रतिदिन एक निश्चित स्थिति से होता है। सूर्योदय की अपेक्षा व्यवहार में आकाश प्रदेश पंक्तियों की दिशा का निर्धारण किया जाता है।*

यदि दिशा को परिभाषित करना हो तो प्राचीन ग्रन्थ धवला में आचार्य श्री ने कथन किया है कि -'अपने स्थान से बाण की भांति सीधे क्षेत्र को दिशा कहते हैं । ये दिशायें छह होती हैं क्योंकि अन्य दिशाओं का होना सम्भव नहीं है। ये हैं- सामने, पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे। '**

जब हम पृथ्वी एवं सूर्योदय की अपेक्षा दिशाओं का निर्धारण करते हैं तो निम्नलिखित स्थिति बनेगी :-

यदि सूर्योदय की ओर मुख करके खड़े हों तो

सामने की दिशा	-	पूर्व
पीछे की दिशा	-	पश्चिम
बायें की दिशा	-	उत्तर
दाहिने की दिशा	-	दक्षिण
ऊपर की दिशा	-	ऊर्ध्व
नीचे की दिशा	-	अधो

---

* स.सि./५/३/२६९/१०   ** ध./४/१,४,४३,/२२६/४
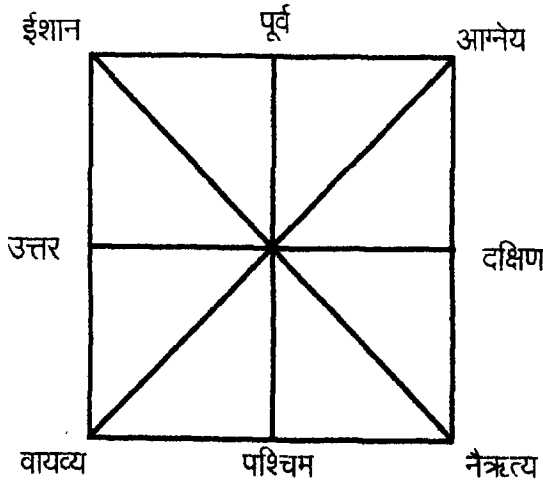
अब इन दिशाओं के मध्य कर्ण रेखा से अन्य चार दिशाओं का ज्ञान होता है, ये विदिशायें कहलाती हैं -

उत्तर एवं पूर्व के मध्य	-	ईशान
पूर्व एवं दक्षिण के मध्य	-	आग्नेय
दक्षिण एवं पश्चिम के मध्य	-	नैऋत्य
पश्चिम एवं उत्तर के मध्य	-	वायव्य

इन्हीं दिशाओं एवं विदिशाओं के आधार पर सारे विश्व में दिशाओं का निर्देश किया जाता है।

दिशा निर्धारण

मन्दिर का निर्माण करने से पूर्व यह अत्यंत आवश्यक है कि निर्धारित भूमि पर दिशा निर्धारण कर लिया जाये। मन्दिर निर्माण में प्रवेश-द्वार की दिशा, गर्भगृह की स्थिति तथा प्रतिमाओं की दृष्टि इधर-उधर अविवेक से नहीं रखी जा सकती, अन्यथा इसके भीषण विपरीत परिणाम होते हैं। अनुकूल दिशाओं में निर्माण किया गया मन्दिर न केवल भव्यता एवं अतिशय से सम्पन्न होता है बल्कि उपासकों के मनोरथ पूर्ति का सशक्त निमित्त बनता है।

दिशाओं का निर्धारण करने के लिये विभिन्न उपायों का आश्रय लिया जाता है। इसकी आधुनिक एवं प्राचीन दोनों विधियां हैं।

आधुनिक विधि

दिशा निर्धारण के लिये वर्तमान काल में चुम्बकीय सुई का प्रयोग किया जाता है। इसमें एक चुम्बकीय सुई अपनी धुरी पर घूमती रहती है। सुई एक डायल पर स्थित होती है। डायल में उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व-पश्चिम दिशाएं ९०°-९०° के कोण पर दिखाई जाती है। कुल ३६०° में डायल विभाजित रहता है। चुम्बक का यह गुण होता है कि स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने पर कुछ ही समय में वह पृथ्वी की चुम्बकीय धारा के समानान्तर हो जाता है तथा सुई उत्तर दक्षिण दिशा में स्थिर हो जाती है। सुई के उत्तरी ध्रुव पर लाल निशान अथवा तीर का निशान लगा रहता है। इसे डायल को घुमाकर डायल के उत्तर दिशा में तीर पर लाया जाता है। इससे हमें सारी दिशाओं का ज्ञान हो जाता है। अच्छे किस्म के यन्त्रों में आजकल सुई को डायल में ही फिट कर देते हैं तथा पूरा डायल ही घूमकर स्थिर हो जाता है। किन्ही किन्ही यन्त्रों में डायल पारे अथवा अन्य द्रव पर तैरता है। खुले मैदान, रेगिस्तान, जंगल, नए स्थान, समुद्र, पर्वतादि किसी भी जगह यह यन्त्र क्षणमात्र में सही दिशा का ज्ञान करा देता है। प्राचीन विधि की अपेक्षा यही विधि सही, सरल एवं उपयुक्त है।
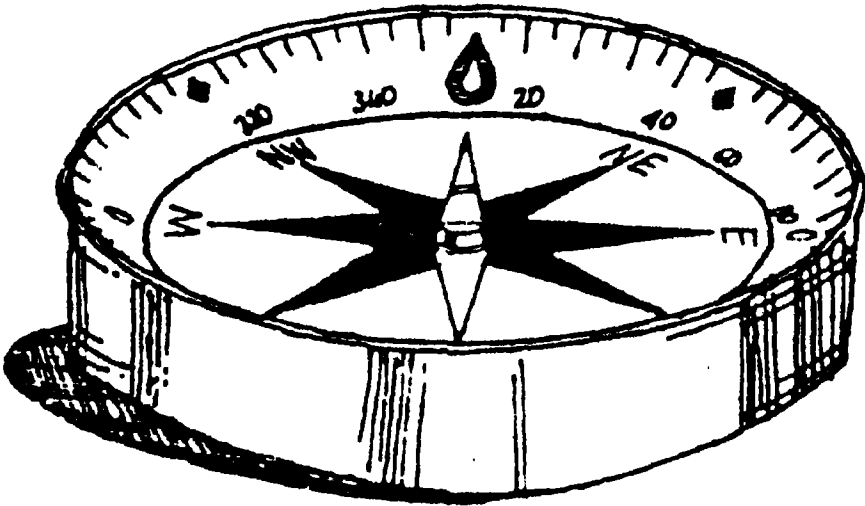
यहां स्मरणीय है कि इस यन्त्र को लोहे के किसी टेबल अथवा फर्नीचर पर या ऐसे स्थान जहां लोहा अथवा बिजली का तीव्र प्रवाह समीपस्थ न रखें। जिन यन्त्रों में बिजली की मदद से चुम्बक निर्माण होता है जैसे बिजली की मोटर अथवा स्थायी चुम्बक वाले स्पीकर, माइक आदि के समीप भी यन्त्र को रखने से सही दिशा का ज्ञान नहीं होगा, क्योंकि चुम्बकीय सुई बाहरी विद्युत या चुम्बकीय प्रभाव से प्रभावित होगी तथा तीव्र चुम्बक की तरफ आकर्षित होकर गलत निर्देश करेगी।

दिशा निर्धारण की प्राचीन विधि

प्राचीन काल में दिशा निर्धारण सूर्योदय एवं सूर्यास्त के आधार पर किया जाता था। रात्रि में दिशा निर्धारण ध्रुव तारा अथवा श्रवण नक्षत्र के आधार पर किया जाता था। ये विधियां मोटे तौर पर दिशाओं का ज्ञान करा देती थीं किन्तु कठिन थीं तथा असावधानी होने की स्थिति में भूल होने की संभावना रहती थी। दिशा निर्धारण की प्रचलित विधि दिन के समय शंकु के आधार पर थी।

समतल भूमि पर दिशा का निर्धारण करने के लिए सर्वप्रथम दो हाथ के विस्तार का एक वृत्त बनायें। इस वृत्त के केन्द्र बिन्दु पर बारह अंगुल का एक शंकु स्थापन करें। अब उदयार्ध (आधा सूर्य उदय हो चुके तब) शंकु की छाया का अंतिम भाग वृत्त की परिधि में जहां लगे वहां एक चिन्ह लगा दें। यही प्रक्रिया सूर्यास्त के समय दोहराएं। इन दोनों बिन्दुओं को केन्द्र से मिला देवें। यह दिशा दर्शक पूर्व पश्चिम दिशा है। अब इस रेखा को त्रिज्या मानकर एक पूर्व तथा एक पश्चिम बिन्दु से दो वृत्त बनाए। इससे पूर्व पश्चिम रेखा पर एक मत्स्य आकृति बनेगी। इसके मध्य बिन्दु से एक सीधी रेखा इस प्रकार खींचे जो गोल के सम्पात के मध्य भाग में लगे जहां ऊपर के भाग में स्पर्श करे उसे उत्तर तथा नीचे के भाग का स्पर्श बिन्दु दक्षिण दिशा है।
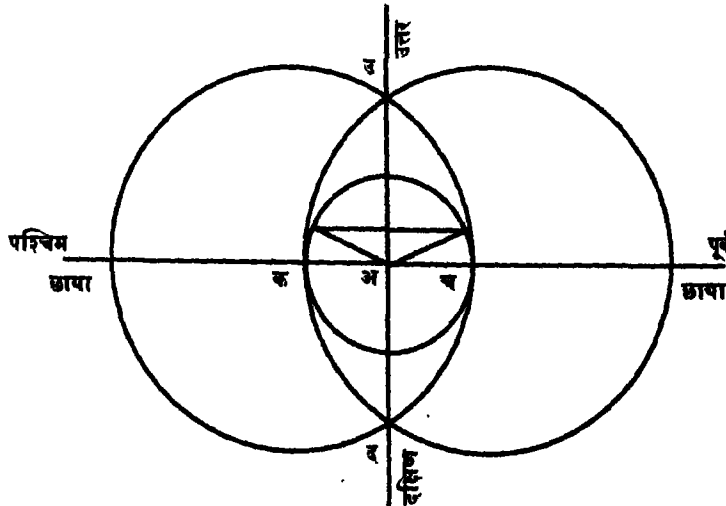
'अ' बिन्दु पर शंकु स्थापन करें। इस बिन्दु से दो हाथ त्रिज्या का एक वृत्त बनायें। सूर्योदय के समय शंकु की छाया क बिन्दु पर स्पर्श करती है। मध्यान्ह के समय 'अ' बिन्दु से निकलती है तथा बाद में सूर्यास्त पर यह 'च' बिन्दु से निकलती है। 'क' से 'अ' को मिलाते हुए च तक एक रेखा खींचें। यह 'च' 'अ' पूर्व दिशा है। 'अ क' पश्चिम दिशा है।

'च अ क' रेखा पर दोनों तरफ समकोण अथवा लम्ब बनाने के लिए 'च क' को त्रिज्या मानकर 'क' केन्द्र एवं 'च' केन्द्र से दो वृत्त बनायें। ये दोनों वृत्त 'उ' एवं 'द' बिन्दु पर एक दूसरे को काटेंगे। अब 'उ द' रेखा को 'अ' पर से मिलाएं। इस प्रकार हमें चारों दिशाओं की रेखाएं मिल जायेंगी।

'अ द' दक्षिण
'अ उ' उत्तर
'अ क' पश्चिम
'अ च' पूर्व दिशा बतलाती है।

दिशा निर्धारण की दोनों विधियों में आधुनिक विधि का ही सर्वत्र प्रयोग होता है। यही विधि सर्वमान्य एवं अनुकरणीय है। अतएव चुम्बकीय सुई का प्रयोग कर दिशा निर्धारण करना ही श्रेयस्कर है।

भूमि चयन

जब उपासक की भावना जिन मन्दिर निर्माण करने की होती है तब वह सर्वप्रथम उपयुक्त भूमि का चयन करता है। शुभ लक्षणों से युक्त भूमि पर निर्माण किया गया मन्दिर दीर्घकाल तक उपासकों की आराधना स्थली बना रहता है। साथ ही आने वाली पीढ़ियां भी परम्परा से सन्मार्ग का आश्रय लेकर आत्म कल्याण करती है।

भूमि का चयन करते समय उसका रूप, रस, गंध, वर्ण तथा परिकर देखा जाता है। शास्त्रोक्त विधियों से भूमि का परीक्षण किया जाता है। भूमि के नीचे भी अपवित्र शल्य न हों, इसका भी निराकरण किया जाता है।

भूमि पर निंद्य लोगों का आवास होना भी अनुपयुक्त है। वहां पर मद्य, मांसादि सेवन करने वालों का आवास होना अथवा मांसाहारी भोजनालय का निकटस्थ होना भी अनुपयुक्त है। ऐसे स्थान, जहां पर धर्म पालन एवं साधना में विघ्न आते हों, मन्दिर निर्माण के लिये अनुपयुक्त है।

शुभ भूमि के लक्षण

जो भूमि अनेक प्रशंसनीय औषधि अथवा वृक्ष लताओं से शोभित हो, जिसका स्वाद मधुर हो, गंध उत्तम हो, स्निग्ध हो, गड्ढों एवं छिद्रों से रहित हो, आनन्द वर्धक हो, वह भूमि मन्दिर निर्माण के लिये श्रेष्ठ होगी। कंकरीली, पत्थरों से युक्त, उबड़-खाबड़ भूमि मन्दिर के लिये अनुपयोगी है।*

कटी फटी भूमि, हड्डी आदि शल्य युक्त भूमि, दीमक युक्त भूमि तथा उबड़-खाबड़ भूमि मन्दिर निर्माण के लिये उपयोगी नहीं है। ऐसी भूमि मन्दिर निर्माता की आयु एवं धन दोनों का हरण करती है। #

जो भूमि नदी के कटाव में हो, पर्वत के अग्र भाग से मिली हो, बड़े पत्थरों से युक्त हो, तेजहीन हो, सूपा की आकृति में हो, मध्य में विकट रुप हो, दीमक एवं सर्प की वामियों से युक्त हो, दीर्घ वृक्षों से युक्त हो, चौराहे की भूमि हो, भूत-प्रेत निवास करते हों, श्मसान हो अथवा श्मसान के निकटस्थ हो, युद्धभूमि हो, रेतीली हो, इन लक्षणों में किसी एक या अनेक लक्षणों से युक्त भूमि का चयन मन्दिर निर्माण के लिये नहीं करना चाहिये।

गृह निर्माण के लिये भूमि का चयन जिस प्रकार किया जाता है, उसी भांति मन्दिर के लिये भी भूमि चयन करना चाहिये।

---

*शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगंधा,
स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम्।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां,
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥ वृहत संहिता ५२/८६

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकाऽऽ रोहिणी तथा
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा

भूमि लक्षण

जो भूमि वर्गाकार हो, दीमक रहित हो, कटी फटी न हो, शल्य कंटक आदि से रहित हो तथा उसका उतार पूर्व, ईशान अथवा उत्तर की ओर हो वह भूमि सबके लिये वास्तु निर्माण तथा मन्दिर निर्माण के लिये सुखकारक होगी। जिस भूमि में दीमक होगी वह भूमि व्याधिकारक एवं रोग वर्धक होगी। खारी भूमि में वास्तु निर्माण से निर्माता को धन हीनता का दुख भोगना पड़ता है। कटी-फटी भूमि पर वास्तु निर्माण से मृत्यु तुल्य दुख होते हैं। शल्य कंटक युक्त भूमि भी दुख कारक है। *

भूमि चयन करते समय ध्यान रखने योग्य लक्षण

आकार की अपेक्षा

उ.

प. वर्गाकार भूमि पू.

द.
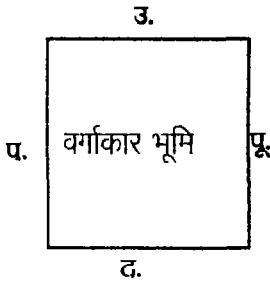
१. चारों भुजाएं समान हों, अर्थात् वर्गाकार भूमि हो। यह सुमंगला भूमि है। इस पर जिन मन्दिर के निर्माण से सुख, शांति, समृद्धि की प्राप्ति होती है।
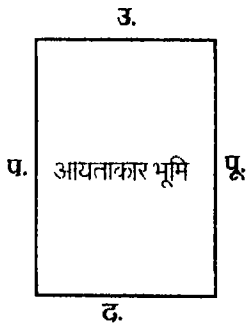
२. ऐसी आयताकार भूमि जो उत्तर दक्षिण में लम्बी हो तथा पूर्व पश्चिम में अपेक्षाकृत कम चौड़ी हो, ऐसी भूमि चन्द्रवेधी कही जाती है। यह अत्यंत शुभ है। धन, धान्य, सुख, सम्पत्ति लाभदायिनी है।
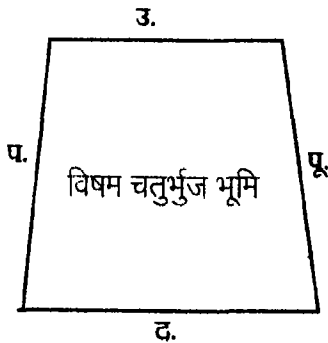
३. जिस भूमि की मुख भुजा से पृष्ठ भुजा किंचित दीर्घ हो तो उसे विषम चतुर्भुज भूमि कहते हैं। उस भूमि पर निर्मित मन्दिर यश, सुख, सम्पत्तिदाता होता है।

---

* दिणतिग वीयप्पसवा चउरंसाऽवम्मिणी अफुट्टाय।
अक्कल्लर भू सुहया पुव्वेसाणुत्तरं बुवहा ।१/९ व.सा.
वम्मइणी वाहिकरी ऊसर भूमीइ हवइ रोरकरी।
अइफुट्टा मिच्चकरी दक्खकरी तह य ससल्ला ।। १/१० व.सा

४. यदि भूमि का बढ़ाव किंचित ईशान कोण में होवे तो मन्दिर निर्माता के वैभव एवं धर्म भावनाओं का विकास होता है।
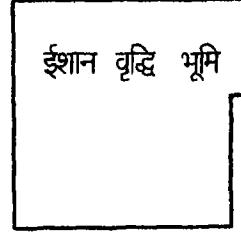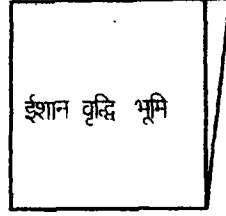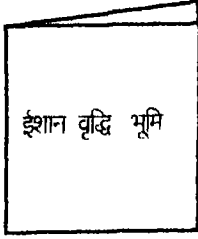
५. त्रिकोणाकृति भूमि अति अशुभ तथा मन्दिर बनाने के अयोग्य है। इस पर मन्दिर बनाने से पुत्र संतति का अभाव होता है।
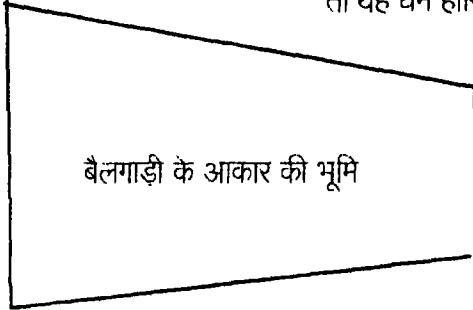
६. बैलगाड़ी के आकार की भूमि पर यदि मन्दिर निर्माण किया जाये तो यह धन हानि का कारण बनता है।

बैलगाड़ी के आकार की भूमि

७. सूप तथा पंखे के आकार की भूमि भी अशुभ है तथा इस पर बने मन्दिर से धर्मवृद्धि नहीं हो पाती वरन् बाधा होने की संभावना बनती है।
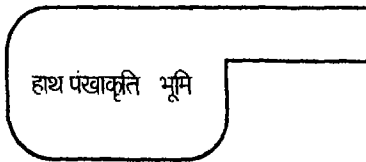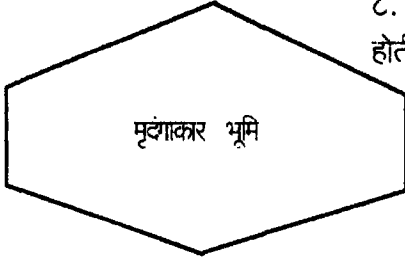
८. मृदंग के आकार की भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से वंशहानि होती है।

९. सर्प एवं मेंढक के आकार की भूमि पर मन्दिर का निर्माण भयकारक होता है।

१०. अजगर के आकार की भूमि पर किया गया मन्दिर निर्माण निर्माता के लिए अत्यंत अशुभ तथा मृत्युकष्ट प्रदाता है।
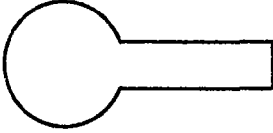
११. मुद्गर के सदृश्य भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से व्यक्ति बल पुरुषार्थ हीन हो जाता है।

१२. बांस के सदृश्य भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से वंश का नाश होने का भय रहता है।
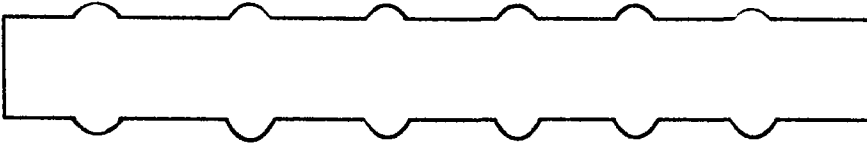
१३. एकदम वृत्ताकार भूमि पर निर्मित जिनालय शुभ, सदाचार वर्धक हैं।

अन्य शुभ लक्षणों वाली भूमि के फल
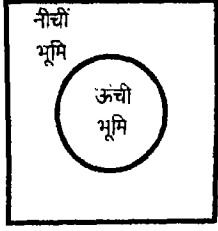
भद्रपीठ भूमि

१. भद्रपीठ भूमि-अर्थात् कूर्म पृष्ठ भूमि- जो भूमि मध्य में ऊंची तथा चारों ओर नीची हो, वह भूमि जिनालय निर्माण के लिये शुभ है। इस भूमि पर जिन मन्दिर निर्माण करने से धन, सुख, उत्साह में वृद्धि होती है।
२. प्रासाद ध्वज के आकार की भूमि उन्नतिकारक है।
३. दृढ़ भूमि धनदायक होती है।
४. सम भूमि सौभाग्यदायक होती है।
५. उच्च भूमि प्रतिष्ठासम्पन्न पुत्रों को देती है।
६. कुश से युक्त भूमि तेजस्वी पुत्रदायिनी है।
७. दूर्वायुक्त भूमि वीर पुत्रदायिनी है।
८. फल युक्त भूमि धन एवं पुत्र प्राप्ति में कारण है।
९. शुक्ल वर्ण भूमि सर्वोन्नति, परिवार सुख, समृद्धि,संततिदायी होती है।
१०. पीतवर्ण भूमि राजकीय लाभ, यश, प्रतिष्ठा सुख, शांति दायक होती है।
११. सुखद स्पर्श भूमि मनःशांति, धन, विद्या, वैभव को सहजता से देती है। ऐसी भूमि पर शिक्षण संस्थान, जिनालय बनाना उपयुक्त है।
१२. सुगंध युक्त भूमि धन-धान्य, यशदायक होती है।

विभिन्न अशुभ लक्षणों से युक्त भूमि पर मन्दिर बनाने का निषेध

भूमि चयन की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि उस पर जिस वास्तु संरचना का निर्माण किया जाये वह उपयोगकर्ता के लिए सर्वसुखदायिनी होवे। विभिन्न शास्त्रों में गृह वास्तु का निर्माण करने के लिए जो भूमि के लक्षणों का वर्णन किया गया है, वह प्रत्यक्ष परीक्षा करने में स्पष्ट अवलोकित होती है। भले ही लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई का मान हम ठीक-ठीक निकाल लेवें, किन्तु यदि भूमि का आकार शुभ नहीं है तो हमें उपयुक्त परिणाम नहीं मिलेंगे। पाप कार्यों को किये जाने से सिर्फ आत्मा ही दूषित नहीं होती वरन् आसपास का वातावरण भी दूषित होता है। जिस भवन में निरन्तर सद्भावना, जप, तप, धर्म का वातावरण हो, उस भवन में शुद्ध पवित्र वातावरण प्रतीत होता है। यदि कोई साधक यहां साधना करना चाहे, तो उसे सुगमता होगी। इसके विपरीत ऐसा भवन जिसमें निरन्तर काम, वासना, शराब, मांस भक्षण, व्यसन इत्यादि कार्य हो रहे हैं, वहां साधना करने पर साधक की एकाग्रता नहीं आयेगी तथा भावनायें दूषित होगीं। यह प्रभाव अधर्म को स्थापित करेगा तथा धर्म को विस्थापित करेगा। अतएव शुभ भूमि पर ही मन्दिर का निर्माण करना अत्यंत श्रेयकारी होगा।

अशुभ लक्षणों से युक्त भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से आने वाले परिणामों से बचने के लिए सर्वप्रथम धैर्यपूर्वक भूमि का चयन करें।

विभिन्न अशुभ लक्षणों से युक्त भूमि पर मन्दिर बनाने के विपरीत परिणाम

१. दुर्गम भूमि पर मन्दिर न बनायें।

२. हत्या, नरसंहार, बलि, बालकों को दफन करने के स्थान पर मन्दिर निर्माण शोककारक,मृत्युकारक तथा अत्यन्त दुखदायी होता है।

३. श्मसान, कब्रिस्तान, पशुबलि स्थल पर मन्दिर निर्माण से निरंतर कष्ट एवं वैमनस्य बना रहता है।

४. विधवा, परित्यक्ता, नपुंसक जहां लम्बे समय से रहते हों अथवा जहां लम्बे समय से रुदन हो रहा हो (शोकगृह), वहां मन्दिर बनाने से प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।

५. मदिरालय, जुआघर अथवा अन्य व्यसनों के गृहों के समीप मन्दिर निर्माण से धन एवं प्रतिष्ठा का नाश होता है।

६. कंटीले वृक्षों से निरंतर बिंधी रहने वाली भूमि, जहां काटने पर भी कंटीले वृक्ष निरन्तर आ जाते हैं, मन्दिर निर्माण के लिये अनुपयुक्त है। यह क्लेशकारक तथा शत्रुवर्धक है।

७. लगातार तापसियों का निवास रहकर उजाड़ हुई भूमि पर मन्दिर निर्माण से गांव उजाड़ हो जाते हैं।

८. शीलहरणादि पापों से दूषित भूमि पर मन्दिर निर्माण करने से स्त्रियों का शील भंग होने का भय होता है।

९. यदि भूमि के निकट लगभग १०० मीटर की दूरी पर शवदाह गृह हो तो वहां पर बना मन्दिर दुखदायक हो जाता है। यह भूमि अत्यन्त अशुभ है।

१०. जिस भूमि पर दीर्घकाल तक गर्दभ, शूकर, कौए रहते हों वहां पर मन्दिर निर्माण से अत्यंत क्लेश होता है।

११. कौए, कबूतर, जिस स्थान पर निरन्तर रहते हों वहां पर मन्दिर निर्माण से रोग, शोक, भय, मृत्यु आदि कष्ट होते हैं।

१२. गिद्ध पक्षियों के निवास से युक्त भूमि पर मन्दिर निर्माण से निर्माता की धन हानि तथा मृत्यु हो सकती है।

१३. टेढी-मेढी, रेतीली, विकट भूमि पर जिनालय निर्माण से विकट स्वभावी विद्या हीन पुत्र होते हैं।

टेढी-मेढ़ी, रेतीली, विकट भूमि

१४. नुकीली एवं पथरीली भूमि पर मन्दिर निर्माण से दरिद्रता बढ़ती है।

नुकीली एवं पथरीली भूमि
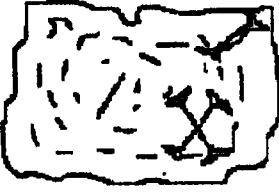
मलव्याप्त भूमि

१५. भूमि के स्पर्श से यदि हाथ मलिन हों तथा धोने पर भी साफ न हों, तो ऐसी भूमि जिनालय निर्माण के लिये अशुभ है।

१६. विष्ठा, वमन, मल आदि गन्दे पदार्थों से युक्त बदबूदार भूमि अथवा इनके जैसी गंध वाली भूमि अशुभ है।

१७. मुर्दे या कपूर जैसी गन्ध यदि मिट्टी में आये तो यह अनिष्टकारक है भय, रोग तथा चिन्ता का कारण है। इन प्रकार की भूमि यदि रुप,रस, गन्ध, वर्ण में उपयुक्त भी हों तो भी जिनालय निर्माण के योग्य नहीं है।

धातु मिश्रित भूमि का शुभाशुभ कथन

जिस भूमि पर जिन मन्दिर निर्माण करना हो उस भूमि पर एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें। नीचे की भूमि का अच्छी तरह अवलोकन करें। यदि भूमि में धातु कण दिखते हैं तो उनको अच्छी तरह से परखें। उनमें जिस धातु जैसे कण दिखें उनका फलाफल इस प्रकार है -

१. यदि उस भूमि में स्वर्ण जैसे कण दिखें या वह भूमि स्वर्ण जैसे चमके तो मन्दिर निर्माता के लिये भूमि धनागम कारक होगी।

२. यदि ताम्र सदृश्य कण दिखें तो मन्दिर निर्माता को धन धान्य वृद्धि तथा समाज के लिये सर्व सुख कारक होगा।

३. यदि सिंदूर के जैसे कण दिखते हैं तो मन्दिर निर्माता का यश कीर्ति का हनन या नाश होगा।

४. यदि अभ्रक जैसे कण हों तो मन्दिर निर्माता को अग्निभय एवं संताप कारक होगी।

५. यदि उसमें कांच अथवा हड्डियों के कण हों तो वह भूमि मन्दिर के निर्माण के लिये सर्वथा अनुपयुक्त, अशुभ एवं त्याज्य है।

६. यदि उसमें कोयले अथवा कोयले जैसे पत्थर के काले कण दिखाई देवें तो ऐसी भूमि पर मन्दिर निर्माण कराने से निर्माता को राजभय बना रहेगा तथा अकाल मरण का भय एवं निरन्तर चिन्ता व दुख होंगे।

भूमि परीक्षण विधियां

मन्दिर निर्माण करने का निर्णय हो जाने के पश्चात उपयोगी भूमि का चयन किया जाता है। भूमि चयन के उपरांत विभिन्न विधियों से भूमि की परीक्षा की जाती है। परीक्षा के उपरांत ही उस पर जिन मन्दिर बनवाना चाहिये अन्यथा अपेक्षित परिणाम नहीं मिलेंगे वरन् विपरीत मिलेंगे। प्राचीन काल से प्रचलित भूमि परीक्षण विधियों में से किसी एक का अनुकरण करना चाहिये।

यह स्मरण रखें कि समशीतोष्ण एवं शुष्क जलवायु के रहते ये परीक्षण करना चाहिये। यदि तत्काल या कुछ समय पूर्व वर्षा हुई हो तो ये परीक्षण नहीं करें।

भूमि परीक्षण की प्रथम विधि

प्रस्तावित भूमि के बीच में चौबीस अंगुल लम्बा, इतना ही चौड़ा तथा इतना ही गहरा एक गडढा खोदें। अब निकली हुई मिट्टी को पुनः उसी में भरें। यदि पूरा गड्ढा भरने के उपरांत मिट्टी बच जाये तो वह भूमि उत्तम फलदायक है। यदि मिट्टी न बचे न कम पड़े तो भूमि को मध्यम फलदायक मानना चाहिये। यदि मिट्टी कम पड़ जाये तो वह जघन्य फलदायक है। यह भूमि अधम है। मन्दिर निर्माता को ऐसी भूमि पर मन्दिर निर्माण से दुख दारिद्रय का कष्ट भोगना पड़ेगा। *

भूमि परीक्षण की द्वितीय विधि

प्रस्तावित भूमि पर २४ अंगुल लम्बा, चौड़ा, गहरा गडढा खोदें। उसमें लबालब जल भरकर तुरन्त १०० कदम जाकर वापस लौटे। यदि दो अंगुल पानी सूखे तो मध्यम फलदायक है। यदि तीन अंगुल पानी सूखे तो अधम अर्थात् दुखदायक होगी। #

भूमि परीक्षण की तृतीय विधि

संध्या समय जब कुछ अंधेरा होने तब थोड़ी भूमि के चारों ओर परकोटे की भांति चटाई को इस प्रकार बांधें कि हवा प्रवेश न हो। इस जमीन पर अब मंत्र '**ॐ हूं फट्**' लिखें। इस मंत्र पर मिट्टी का एक कच्चा घड़ा रखें। उस पर कच्ची मिट्टी का दीपक घी से भरकर रखें। उसमें एक-एक बाती पूर्व में सफेद, पश्चिम में पीला, दक्षिण में लाल तथा उत्तर में सफेद लगायें।

---

*चउवीसंगुल भूमी खणेवि पूरिज्ज पुण वि सा गत्ता।
तेणेव मट्टियाए हीणाहिय सम फला णेया।। व. सा. १/३

#अह सा भरिय जलेण य चरणसयं गच्छमाण जा सुसइ।
ति दु इग अंगुल भूमी अहम मज्झम उत्तमाजाण।। व. सा. १/४

बातियों को णमोकार महामंत्र से मन्त्रित करें -

ॐ णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं ,णमो आइरियाणं ,णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं, चत्तारि मंगलं, अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं, चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि, ह्रीं कुरु कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र से मंत्रित करके बातियों को जला देवें। यदि बातियां घी समाप्त होने तक जलती रहें तो उत्तम फलदायक समझें। यदि बातियां घी समाप्त होने के पूर्व ही बुझने लगें तो अधम फलदायक समझें।

शल्य शोधन

जिस भूमि पर जिन मन्दिर का निर्माण किया जाना निश्चित किया गया है, उस भूमि के नीचे हड्डी, चमड़ा, बाल, कोयला आदि होना अत्यंत अनिष्टकारक है। इन्हें शल्य कहा जाता है। भूमि चयन एवं परीक्षण के उपरांत शल्य शोधन किया जाना आवश्यक है। शल्य युक्त भूमि पर निर्माण से समाज में विविध संकट, क्षति, संक्लेश, व्याधि होने की संभावना रहती है।

शास्त्रों में उल्लेखित विधि के अनुसार शल्य शोधन करना चाहिये। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, तारा एवं चन्द्र जिस दिन अनुकूल हों, ऐसे दिन शुभ लग्न एवं शुभ मुहूर्त में शल्योद्धार करना चाहिये।

शल्य शोधन की प्रथम विधि -

जिस भूमि पर मन्दिर निर्माण करना है उसके नौ भाग करें। इन नौ भागों में पूर्व से प्रारंभ कर ब, क, च, त, ए, ह, स, प, ज लिखें। फिर आगे लिखें रुप में यन्त्र बनाएं। कुमारी कन्या को तिलक लगाकर श्रीफल देकर पूर्व मुखी बैठाएं।

ईशान - प	पूर्व - ब	आग्नेय - क
उत्तर - स	मध्य - ज	दक्षिण - च
वायव्य - ह	पश्चिम - ए	नैऋत्य - त

'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं नमो वाव्वादिनी मम प्रश्ने अवतर अवतर'

इस मन्त्र से खड़िया (सफेद चाक) को १०८ बार मन्त्रित कर कुमारी कन्या के हाथ में देवें तथा कोई भी प्रश्नाक्षर लिखवायें।लिखे अक्षर को कोष्ठक से मिलान करें। यदि मिल जाये तो उस भाग में शल्य समझें। यदि अक्षर न मिले तो भूमि शल्य रहित समझें।

प्रश्नाक्षर से शल्य मिलने का संकेत

ब आये तो	पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे	मनुष्य की हड्डी	निर्माता की मृत्यु
क	आग्नेय में दो हाथ नीचे	गधे की हड्डी	राज भय
च	दक्षिण में कमर जितना गहरा	मनुष्य की हड्डी	निर्माता की मृत्यु
त	नैऋत्य में डेढ़ हाथ नीचे	कुत्ते की हड्डी	बालकों को हानि (संतान सुख का अभाव)
ए	पश्चिम में दो हाथ नीचे	बच्चे की हड्डी	स्वामी का परदेश वास
ह	वायव्य में चार हाथ नीचे	कोयले	मित्रनाश
स	उत्तर में कमर जितना गहरा	विप्र की हड्डी	स्वामी का धननाश
प	ईशान में डेढ़ हाथ नीचे	गाय की हड्डी	स्वामी का धन नाश
ज	मध्य में छाती जितना गहरा	कपाल, केश, अतिसार	स्वामी की मृत्यु

निर्माता को चाहिये कि सर्वप्रथम शल्य शोधन करके ही वास्तु निर्माण का कार्य प्रारंभ करें। ऐसा न करने पर अनिष्टकारक घटनाएं होंगी तथा बाद में शल्य की उपस्थिति ज्ञात होने पर भी इसे निकालना असम्भव हो जायेगा।

शल्य का निराकरण करने के लिए शकुन शास्त्रों में पृथक पृथक विधियां दी गई हैं किन्तु उपरोक्त विधि उपयुक्त एवं व्यवहारिक है।

शल्य शोधन की द्वितीय विधि

जिस भूमि पर वास्तु का निर्माण करना अभीष्ट है उस भूमि पर नव कोष्ठकों का एक चक्र निर्माण करें। उसमें पूर्वादि दिशाओं से अ, क, च, ट, त, प, य, श, इन वर्णों को लिखें। मध्य में ह प य लिखें। निम्न मन्त्र का इक्कीस बार जाप कर कोष्ठक को अभिमंत्रित करायें तब प्रश्नकर्ता से प्रश्न करायें। जिस अक्षर से वह प्रश्नारम्भ करे वहां निर्दिष्ट शल्य होगी।

ईशान - श	पूर्व - अ	आग्नेय - क
उत्तर - य	मध्य ह प य	दक्षिण - च
वायव्य - प	पश्चिम - त	नैऋत्य - ट

जाप्य मन्त्र

ॐ ह्रीं कूष्माण्डिनि कौमारि मम हृदये ह्रीं कथय कथय स्वाहा।*

शल्य स्थिति

प्रश्नकर्ता का प्रथमाक्षर	दिशा	शल्य स्थिति	फल
अ	पूर्व	डेढ हाथ नीचे मनुष्य की हड्डी	मनुष्य का मरण
क	आग्नेय	दो हाथ नीचे गधे की हड्डी	राज दण्ड भय
च	दक्षिण	कमर भर के नीचे मनुष्य की हड्डी	स्वामी मरण
ट	नैऋत्य	डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी	गर्भपतन
त	पश्चिम	डेढ़ हाथ नीचे सियार की हड्डी	परदेशवास
प	वायव्य	चार हाथ नीचे मनुष्य की हड्डी	मित्रनाश
य	उत्तर	साढ़े चार हाथ नीचे गधे की हड्डी	पशुनाश
श	ईशान	डेढ़ हाथ नीचे गौ की हड्डी	गोधन नाश
ह प य	मध्य	छाती जितना नीचे केश कपाल, मुर्दा, भस्म, लोह	मृत्यु

शल्योद्धार करने के लिये निर्दिष्ट प्रक्रिया करने के उपरांत भी अनेकों बार खोदने पर हड्डी नहीं निकलती। ऐसी परिस्थिति में अपेक्षित स्थान को सावधानी से गहराई तक खोद लेना उपयुक्त है, क्योंकि दीर्घकाल के उपरांत हड्डी आदि वहाँ से जानवरों द्वारा निकाली भी जा सकती है। शल्योद्धार करने के पश्चात ही निर्माण कार्य प्रारंभ करना आवश्यक है।

---

*१२/१२ से १२/२१ विश्वकर्मा प्रकाश

*वास्तु रत्नावली २/२२-२३

माप प्रकरण

विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में माप का विवरण मिलता है। त्रिलोकसार ग्रन्थ में माप के दो भेद किये गये हैं। इन्हें लौकिक तथा अलौकिक मान के भेद से जाना जाता है। इनमें लौकिन मान के पुनः छह भेद किये गये हैं - १. मान, २. उन्मान, ३. अवमान, ४. गणिमान, ५. प्रतिमान, ६. तत्प्रतिमान

देवमन्दिर आदि के माप में गणिमान का आश्रय लिया जाता है।

तिलोय पण्णत्ति में प्रमाण करने के लिये अंगुल आदि का माप उल्लेखित है। अंगुल के तीन भेद हैं- १.उत्सेधांगुल, २. प्रमाणांगुल, ३. आत्मांगुल

नगर, उद्यान, निवास, मन्दिर, वास्तु प्रकरणों में नाप का आधार आत्मांगुल से किया जाता है।

शास्त्रों में कहा है कि देवमन्दिर, राजप्रासाद, जलाशय, प्राकार, वस्त्र और भूमि का माप कम्बिआ या गज से करना चाहिये। गज का आधार अंगुल है। अंगुल के माप से योजन तक के माप तिलोय पण्णत्ति में दिये गये हैं :-

कर्म भूमि के ८ बालों की	-	१ लीख
कर्म भूमि के ८ लीखों की	-	१ जूं
कर्म भूमि के ८ जूं	-	१ यव
कर्म भूमि के ८ यव का	-	१ अंगुल
कर्म भूमि के ६ अंगुल का	-	१ पाद
कर्म भूमि के २ पाद	-	१ वितस्ति
कर्म भूमि के २ वितस्ति	-	१ हाथ
कर्म भूमि के २ हाथ	-	१ रिक्कु
कर्म भूमि के २ रिक्कु = ४ हाथ	-	१ दण्ड (धनुष्य)
कर्म भूमि के २००० धनुष	-	१ कोस
कर्म भूमि के ४ कोस	-	१ योजन
कर्म भूमि के १० हाथ	-	१ बांस
कर्म भूमि के २० हाथ या ४ भुजा	-	१ निवर्तन (क्षेत्रफल का माप)

गज का मान २४ अंगुल का होता है। गज का निर्माण चंदन, महुआ, खैर, बांस अथवा स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि धातु से करना चाहिये। * *

---

*कम्म महिए बालं लिक्खं जूवं जवं च अंगुल्यं। इणि उत्तरा या भणिया पुव्वेहिं अड्ड गुणिदो हिं ॥ ति.प. १/१०६
छहि अंगुलेहिं पादो बे पादोहिं विहत्थि णामा य। दोण्णि विहत्थि हत्थो बे हत्थेहिं हवे रिक्कु ॥ ति.प. १/११४
बे रिक्के दण्डो दण्डसमाजुग धणूणि मुसलं वा। तस्स तहा णाली वा दो दण्ड सहस्सयं कोसं ॥ ति.प. १/११५
चउकोसे हिंजोयणं तं चिय वित्थार गत समवट्टं ॥ . . . ति.प. १/११६

**चतुर्विंशत्युगलैस्तु हस्तमानं प्रचक्षते। चतुर्हस्तो भवेद्दण्डे ठडो कोशं तद् द्विसहस्त्रकम ॥
चतुष्कोशं योजनं तु वंशो दशकरेर्मितः। निवर्तनं विशतिकरैः क्षेत्रं तच्च चतुष्करै : ॥

माप का आधुनिक मान

वर्तमान में सारे विश्व में दो पद्धतियों से माप होता है -

१. मैट्रिक प्रणाली

२. ब्रिटिश प्रणाली

मैट्रिक प्रणाली - इसका माप मीटर से होता है। एक मीटर के १०० सेन्टीमीटर तथा १ से.मी. का १० मिली मीटर होते हैं। १००० मीटर का एक किलोमीटर होता है। मीटर में प्रामाणिक माप फ्रांस में सुरक्षित रखा है। इसी के आधार पर सारी वैज्ञानिक गणनाएं की जाती है।

ब्रिटिश प्रणाली - इसका आधार फुट है। १२ इंच का एक फुट, २२० फुट का एक फर्लांग तथा ८ फर्लांग का एक मील होता है। ३ फुट का एक गज होता है।

सावधानी रखें कि शिल्प ग्रन्थों में उल्लेखित गज का मान एवं ३६ इंच का एक गज ये दोनों मान पृथक- पृथक हैं।

प्राचीन एवं नवीन प्रणाली का समन्वय -

इस सन्दर्भ में २४ अंगुल = २४ इंच = एक गज या हाथ मान कर प्रयोग करना चाहिए। वर्तमान के सभी शिल्पी प्राचीन शास्त्रों के माप का इसी प्रकार प्रयोग करते हैं। *

गज का प्रयोग

गज का निर्माण धातु अथवा काष्ठ से करें। उसके नाप के ९ भाग करने चाहिये। ९ भागों के नाम नौ देवताओं के नाम पर किये गये हैं। सूत्रधार अथवा शिल्पकार को नवीन कार्यारम्भ करते समय गज को दो भागों के मध्य से उठाना चाहिये। उठाते समय गज का गिरना अशुभ होता है। इससे कार्य में विघ्न की सूचना मिलती है।

---
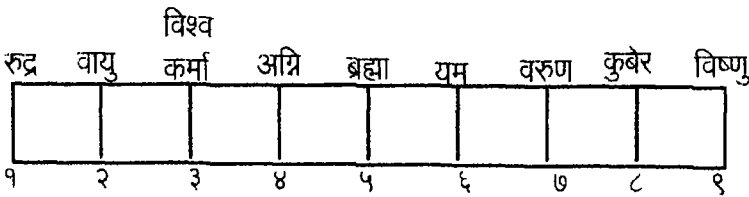
*पव्वंगुलि चउबीसहिं छत्तीसिं करंगुलेहि कंबिआ।
अट्ठहिं जवमज्झेहिं पव्वंगुलु इक्कु जाणेह।। व.सा. १/४९
पासाय रायमंदिर तडाग पायार वत्थभूमी य।
इअ कंबीहि गणिज्जइ गिहसाभिकरेहिं गिहवत्थू।। व.सा. १/५०

गज उठाने के फलाफल

उठाते समय गिर जाये		-कार्य अवरोध
१ एवं २ के मध्य से	उठाने पर	- कार्य सिद्धि
२ एवं ३ के मध्य से	,,	- इच्छित फलप्राप्ति
३ एवं ४ के मध्य से	,,	- कार्य पूर्णता
४ एवं ५ के मध्य से	,,	- कार्य सिद्धि
५ एवं ६ के मध्य से	,,	- शिल्पकार का नाश
६ एवं ७ के मध्य से	,,	- मध्यम
७ एवं ८ के मध्य से	,,	- मध्यम
८ एवं ९ के मध्य से	,,	- सुख समृद्धि

* गज उठाने के फलाफल

उठाते समय गिर जाये		-कार्य अवरोध
१ एवं २ के मध्य से	उठाने पर	- अनावृष्टि
२ एवं ३ के मध्य से	,,	- शुभ
३ एवं ४ के मध्य से	,,	- कार्य पूर्ण होने पर नगर वृद्धि
४ एवं ५ के मध्य से	,,	- पुत्र लाभ
५ एवं ६ के मध्य से	,,	- शिल्पकार का नाश
६ एवं ७ के मध्य से	,,	- मध्यम
७ एवं ८ के मध्य से	,,	- मध्यम
८ एवं ९ के मध्य से	,,	- सुख समृद्धि

---

* शि.र १/२१,२२,२३

आय प्रकरण

मन्दिर एवं गृह दोनों प्रकार के वास्तु निर्माणों में आय की गणना का अपना विशिष्ट महत्व है। इसकी गणना करके अपने माप में समुचित संशोधन करके ही निर्माण करना इष्ट है। आय की गणना भूमि के क्षेत्रफल द्वार के आकार, गृह के आकार, प्रतिमा की दृष्टि का स्थान में अवश्यमेव करना चाहिये। आय का नाम एवं फल समझने के लिए आगे सारणी दी गई है।

यहां यह अवश्य समझ लेवें कि 'आय' शब्द का अर्थ लाभ या धन आमदनी से नहीं है। यह क्षेत्रफल, लम्बाई एवं चौड़ाई की गणना का निर्णय करने हेतु एक पारिभाषिक शब्द है। शब्द के तात्पर्य अर्थ का ही ग्रहण करना यहां प्रासंगिक है।

आय की गणना

लम्बाई एवं चौड़ाई की भूमि की गणना करें। इनका आपस में गुणा कर क्षेत्रफल निकाल लेवें। इसमें आठ का भाग देवे तथा जो शेष आये वही आय कहलाती है। (व.सा. १/५१)

आठ का भाग देकर शेष बचने पर आय के नाम इस प्रकार हैं -*

१ एक शेष बचे तो ध्वज आय
२ दो शेष बचे तो धूम्र आय
३ तीन शेष बचे तो सिंह आय
४ चार शेष बचे तो श्वान आय
५ पांच शेष बचे तो वृष आय
६ छह शेष बचे तो खर आय
७ सात शेष बचे तो गज आय
८ आठ या शून्य शेष बचे तो ध्वांक्ष आय

इनमें ध्वज, सिंह, वृष, गज आय शुभ हैं तथा धूम्र, श्वान, खर एवं ध्वांक्ष आय अशुभ है। #
लम्बाई चौड़ाई की गणना करने के समय स्मरण रखें कि देवालय एवं मण्डप की भूमि का माप दीवार करने की भूमि सहित लेवें। गृहवास्तु, आसन, पलंग आदि की गणना में दीवार छोड़कर मध्य की भूमि मात्र को ग्रहण करें। $

---

*ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वानो वृषखरौ गजः।
ध्वांक्षश्चेति समुदिष्टाः प्राच्यादिसु प्रदक्षिणाः ।। (अप. सू. ६४)

ध्वजः सिंहो वृषगजौ शस्यते सुरवेश्मनि।
अधमानां खरध्वांक्ष-धूमश्वानाः सुखावहाः ।। (अप सू. ६४)

$ मध्ये पर्यंकासने मंदिरे च देवागारे मण्डपे भित्ति बाहये। राजवल्लभ

आय विचार संशोधन

जिस वास्तु की चौड़ाई ३२ हाथ से अधिक हो उसमें विज्ञ जन आय का विचार नहीं करते। ग्यारह जव से ३२ हाथ तक विस्तार के वास्तु में ही आय का विचार किया जाता है।

यदि उपयुक्त आय नहीं आ रही हो तो प्रमाण माप में दो तीन अंगुल की वृद्धि या कमी करके उपयुक्त आय आये, इस प्रकार लम्बाई-चौड़ाई का समायोजन करना चाहिए।

गणना करने के लिए लम्बाई चौड़ाई के माप को अंगुलों में परिवर्तित कर पश्चात ही आयादि की गणना करें। उदाहरणतः -

लम्बाई ८ हाथ २ अं. = ८ × २४ + २ = १९४

चौड़ाई ६ हाथ ३ अं. = ६ × २४ + ३ = १४७

१९४ × १४७ ÷ ८ = २८५ १८ ÷ ८ = ३५६४ शेष ६

शेष ६ अर्थात् खर आय,

इसे ध्वज आय में बदलने के लिए लम्बाई एवं चौड़ाई में किंचित परिवर्तन करें। उदाहरण -

लम्बाई ८ हाथ १ अं. = १९३ अं.

चौड़ाई ६ हाथ १ अं. =१४५ अं.

१९३ १४५ ÷ ८ = २७९८५ ÷ ८ = ३४९८ शेष १

अर्थात् ध्वज आय.

आय से द्वार विचार

ध्वज आय	पूर्वादि चारों दिशाओं में द्वार	शुभ
सिंह आय	पूर्व, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में द्वार	शुभ
वृष आय	पूर्व दिशा में द्वार	शुभ
गज आय	पूर्व एवं दक्षिण दिशाओं में द्वार	शुभ

आय से भित्ति विचार *

गृह के आगे की दीवार	:	गज आय	शुभ
बायें एवं दाहिने ओर	:	ध्वज आय	शुभ
पीछे की दीवार	:	सिंह आय	शुभ

---

*अग्रभित्तौ गजं दद्याद् वामदक्षिणयोर्ध्वजः।
पृष्ठभित्तौ तथा सिंहं सुखसौभाग्यदायकाः॥ (शि.र. १/६८)

स्थान के अनुरुप आय *

विचार	उपयुक्त आय
उत्तम स्थानों में	ध्वज, सिंह, गज आय
सर्वत्र	ध्वज आय
ग्राम, किला	गज, सिंह, वृष आय
वापिका, कूप, सरोवर	गज आय
शय्या	गज आय
सिंहासन	सिंह आय
भोजनपात्र	वृष आय
छत्र, तोरण	ध्वज आय
नगर, प्रासाद, देवालय	वृष, गज, सिंह आय
सर्वगृह	वृष, गज, सिंह आय
मलेच्छ गृह	श्वान आय
तापस मठ, कुटी	ध्वांक्ष आय
भोजनकक्ष	धूम्र आय
रसोई या लोहार आदि के गृह में	धूम्र आय
ब्राह्मण गृह	ध्वज आय
क्षत्रिय गृह	सिंह आय
वैश्य गृह	वृष आय
साधु आश्रम	ध्वांक्ष आय

यह अवश्य स्मरणीय है कि ध्वज आय सर्वत्र अनुकरणीय है अतएव यदि सभी जगह उपयुक्त आय की गणना स्थिर नहीं हो तो ध्वज आय का ग्रहण करना चाहिये।

---

*व.सा. १/५३ से ५७

रेखांकन

प्रासाद निर्माण हेतु परिकल्पना चित्र तैयार हो जाने के उपरांत शुभ मुहूर्तादि में भूमि चयन तथा शल्य शोधन कर लेवें। इसके बाद चयनित भूमि में शिल्पकार रेखांकन का कार्य प्रारम्भ करें।

रेखांकन प्रारंभ करने के पहले निर्माणकर्ता वर्णानुसार अपने अंग को स्पर्श करे। ब्राह्मण सिर को स्पर्श करे। क्षत्रिय नेत्र को स्पर्श करे। वैश्य पेट को स्पर्श करे तथा शूद्र पैरों को स्पर्श करें। *

रेखांकन कार्य वर्तमान में चाक पावडर अथवा चूने से किया जाता है। किन्तु जिन प्रासाद के लिए रेखांकन शुभ द्रव्यों से किया जाना पुण्य वर्धक है। हाथ के अंगूठे, मध्यमा अंगुली या प्रदेशिनी अंगुली से रेखा खींचना चाहिये। स्वर्ण, रजत आदि धातु से, मणि आदि रत्न से तथा पुष्प, दधि, अक्षत आदि से रेखांकन करना शुभस्कर है।#

रेखांकन किये जाने के समय का शुभाशुभ कथन

१. यदि शस्त्र से रेखांकित किया जाये तो शत्रुभय होता है। लोहे से रेखांकन करने से बन्धन भय होता है। भस्म से रेखांकन करने से अग्निभय होता है। तृण या काष्ठ से रेखांकन से राजभय होता है। यदि रेखा टूट जाये या टेढ़ी हो तो शत्रुभय होता है। रेखा स्पष्ट न हो तथा अशुभ द्रव्य अर्थात् अस्थि, चर्म, दांत अथवा अंगार से बनाई गई हो तो अकल्याण होता है तथा मरण तुल्य कष्ट होता है।

२. रेखांकन के समय कोई थूक दे अथवा छींक देवे तो अशुभ होता है। यदि कोई कटु वचनों का प्रयोग करे तो यह भी शुभ नहीं है।

३. जिस समय नाप के लिए सूत्र डाला जाता है तथा इसके लिए कील ठोंकी जाती है उस समय यदि सूत्र (धागा) पसारते समय टूट जाये तो महा अशुभ होता है इससे यजमान या मन्दिर निर्माता को मृत्यु अथवा मृत्युतुल्य कष्ट होता है। कील गाड़ने के समय यदि उसका मुख नीचे हो जाये तो भीषण संकट, भय, रोग, समाज के प्रमुख व्यक्ति अथवा शिल्पकार की स्मृति भंग तक हो सकती है।

---

*विप्र स्पृष्ट्वा तथा शीर्ष चक्षु क्षत्रियस्तथा।
वैश्यश्चोरुंच शूद्रश्च पादौ स्पृष्ट्वा समार भेत ।।

#अंगुष्ठकेन वा कुर्यान् मध्यमांगुलया तथैव च।
प्रदेशिन्याध्यपि तथा स्वर्ण रौप्यादि धातुना ।।
मणिना कुसुमैर्वापि तथा दध्यक्षत फलैः।
शस्त्रेण शत्रुतो मृत्यु बन्धो लोहेन भस्माना ।।
अग्नेर्भयं तृणेनापि काष्ठादि लिखितेन च।
नृपादभयं तथा वक्र खण्डे शत्रुभयं भवेत ।।

४. इसी प्रकार जलकुंभ लाते समय यदि कंधे से घड़ा गिर कर औंधा हो जाये तो समाज में उपद्रव होते हैं। यदि घड़ा फूट जाये तो श्रमिक की मृत्यु हो सकती है तथा यदि हाथ से घड़ा गिर जाये एवं फूट जाये तो प्रमुख व्यक्ति का अवसान हो सकता है। यदि विसर्जन के पूर्व ही घड़ा फूट जाये तो कीर्ति क्षय होता है। **

अन्ततः यह ध्यान रखें कि अशुभ लक्षणों का अभाव करके ही सूत्रारम्भ का कार्य करें। जो रेखा खींची जाये उसमें भी बायें से दायीं ओर खींची जाये तो सम्पत्ति लाभ होता है किन्तु इसके विपरीत करने पर शत्रुभय होता है।

** विरुपा चर्म दन्तेन चांगारेणास्थिनापि वा।
न शिलाय भवेद्रेखा स्वामिनो मरणं तथा॥
अपसव्यं क्रमे वैरं सव्वे सम्पदमादिशेत्।
तस्मिन कर्म समारम्भे श्रुतंनिष्ठानितं तथा॥
वाचस्तु परुषास्तत्र ये चान्ये शकुनाधामा:।
तान् विवर्ज्य प्रकुर्वीत् वास्तु पूजन कर्मणि॥
सूत्रच्छेजे मृत्यु: कीते चावांगमुखे महाब्रोग:।
गृहनाथ स्थपति नां स्मृति लोपे मृत्युरादेश्य:॥
स्कन्धाच्युते शिरोसकुलोपसर्गोऽपवर्जिते कुम्भ:।
भग्नोऽपि च कर्मिवधच्युते कराद् गृहपते: मृत्यु:॥
भग्ने कीर्तिवध: कुम्भे कुम्भरयोत्सर्ग वर्जित:।

मन्दिर में जल बहाव विचार

मन्दिर के धरातल से जल के प्रवाह के लिये ढलान बनाना आवश्यक होता है ताकि वर्षा आदि का जल निराबाध बह सके। मन्दिर के धरातल की सफाई आदि करने से भी जल बहता है। अतएव फर्श का ढलान भी सही दिशा में होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। *

पूर्व, ईशान अथवा उत्तर की ओर ही जल बहाव होना वास्तुशास्त्र के नियमों के अनुरुप है। अतएव धरातल का ढलान भी इन्हीं तीन दिशाओं में रखना लाभदायक है। अन्य दिशाओं में धरातल का ढलान न रखें।

पश्चिम, वायव्य तथा नैऋत्य में जल बहाव होने से समाज के लिए निष्प्रयोजनीय व्यय एवं अर्थसंकट आता है।

दक्षिण एवं आग्नेय में जल का बहाव होने से आकस्मिक धनहानि तथा मृत्यु तुल्य कष्ट होते हैं। नैऋत्य एवं वायव्य में जल प्रवाह रोगों को निमन्त्रण देता है।

पानी निकालने की मोरी (प्लव)

मंदिर में पानी निकालने के लिए मोरी या नाली बनाना पड़ता है। यह पूर्व, उत्तर अथवा ईशान की ओर निकलना चाहिये। अन्य दिशाओं में यह अत्यंत हानिकारक है। इनके दिशानुसार परिणाम इस प्रकार हैं :- **

मोरी की दिशा	परिणाम
पूर्व में	वृद्धिकारक
उत्तर में	धनलाभ
दक्षिण में	रोगकारक
पश्चिम में	धनहानि
ईशान में	शुभ
आग्नेय में	अशुभ, हानिप्रद
नैऋत्य में	अशुभ, हानिप्रद
वायव्य में	अशुभ फलदायक, हानिप्रद

---

*पुव्वेसाणुत्तरं बुवहा   व. सा. १/९ उत्तरार्ध

**पूर्व प्लवो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरे तथा। याम्यां रोगप्रदो ज्ञेयो धनहा पश्चिम प्लवः ॥
ईशान्ये प्रागुदकप्लव स्त्वत्यन्त वृद्धिद्रोनृणाम्। अन्यदिक्षु प्लवो नेष्ट श्शश्वदत्यन्त हानिदः ॥
वृहदवास्तुमाला पृ १७० श्लोक ३१/ ३२

अभिषेक जल

जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा की पूजा का प्रमुख अंग अभिषेक क्रिया है। जल, दूध, दही, औषधि, इक्षुरस इत्यादि अमृत पदार्थों से प्रभु प्रतिमा का अभिषेक किया जाता है। इसके पश्चात शान्ति धारा की जाती है। यह अभिषेक जल गंधोदक के नाम से जाना जाता है। इसे अत्यंत पवित्र माना जाता है।*

वेदी अथवा पांडुक शिला पर प्रभु को विराजमान करने के लिए उनका मुख उत्तर या पूर्व में ही रखें। अभिषेक का जल निकलने की नाली या नलिका सिर्फ पूर्व या उत्तर दिशा में ही रखना आवश्यक है।

जिन मंदिरों की रचना पूर्व पश्चिम दिशा में है उनमें अभिषेक जल उत्तर में निकालना चाहिए। शिवलिंग वाले मंदिरों में भी इसी नियम का पालन करें। जिन मंदिरों को उत्तर दक्षिण बनाया गया है उनमें नाली का मार्ग बायीं ओर अथवा दाहिनी ओर रखना चाहिए। दक्षिणाभिमुख प्रासाद की नाली बायीं ओर रखें। उत्तराभिमुख प्रासाद की नाली दायीं ओर रखें अर्थात् उत्तर मुखी मंदिर की नाली पूर्व में तथा दक्षिण मुखी मंदिर की भी नाली पूर्व में ही निकालें।

जिन मंदिरों की रचना उत्तर दक्षिण दिशा में है उनका अभिषेक जल पूर्व में ही निकाला जाना चाहिए। मण्डप में मूलनायक के बायीं ओर स्थापित देवों के अभिषेक का जल बायीं ओर निकालना चाहिए। मण्डप में मूलनायक के दाहिनी ओर स्थापित देवों के अभिषेक का जल दाहिनी ओर निकालना चाहिए। जगती के चारों ओर जल निकालने की नाली बनाई जा सकती है। *
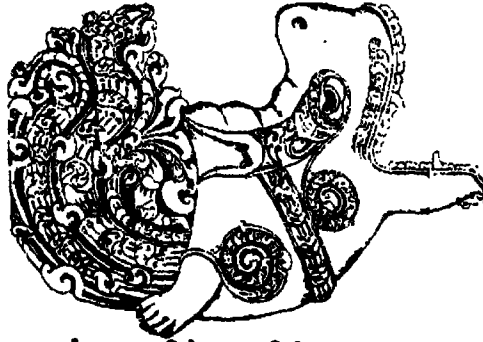
गर्भगृह का अभिषेक जल निर्गम - मकर मुख

---

*शुद्ध तोये क्षुसर्पिभि दुग्ध दध्याम्रजैः रसैः। सर्वोषधिभिरुच्चूर्णैर्भावात्संस्नापयेज्जिनम्। उ.श्रा. १३४

**पूर्वापर मुखे द्वारे प्रणालं शुभमुत्तरे। प्रा.म. २/३५ पूर्वार्ध

पूर्वापरं यदा द्वारं प्रणालं चोत्तरे शुभम्। प्रशस्तं शिवलिंगानां इति शास्त्रार्थ निश्चय :।। अप. सू. १०८

जैन मुक्ताः समस्ताश्च याम्योत्तर क्रमै : स्थिताः। वाम दक्षिण योगेन कर्तव्यं सर्वकामदम्।। अ.सू. १०८

पूर्वापरास्य प्रासादे नालं सौम्ये प्रकारयेत्। तत् पूर्वे याम्यसौम्यास्ये मण्डपे वाम दक्षिणे।। प्रा.मंजरी/५०

मण्डपे ये स्थिता देवास्तेषां वामे च दक्षिणे। प्रणालं कारयेद् धीमान् जगत्यां च चतुर्दशम्।। प्रा.मं. २/३६

प्रणाली का मान

एक हाथ की चौड़ाई के तुल्य मंदिर में जल निकलने की नाली की ऊँचाई चार जव अर्थात आधा अंगुल रखें। इसके उपरांत प्रत्येक हाथ पर चार-चार जव बढ़ाऐं। इस प्रकार ५० हाथ चौड़े मंदिर में नाली २०० जव के बराबर अर्थात २५ अगुंल रखे। * अप. सू. १०८

जगती की ऊँचाई में तथा मण्डोवर (भित्ति) के छज्जे के ऊपर चारों दिशाओं में पानी की नाली बनायें।

अभिषेक जल के उल्लंघन का निषेध

जैन जैनेतर दोनों परम्पराओं में अभिषेक जल को अत्यंत पवित्र माना जाता है। इस जल का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। प्रतिमा के अभिषेक जल को या तो पात्र में एकत्र कर लिया जाना चाहिए अथवा इस जल को निकालने की नाली गुप्त रखना चाहिए। यदि इस जल का उल्लंघन किया जाएगा तो इससे पूर्व कृत पुण्य का क्षय होता है। शिव स्नानोदक के उल्लंघन से परिहार के लिये इसे पहले चण्डगण के मुख पर गिराया जाता है। इसके उपरांत इस उच्छिष्ट जल का उल्लंघन करने पर दोष नहीं माना जाता। **

आरती एवं अखण्ड दीपक

मंदिर में पूजा के अतिरिक्त आरती भी की जाती है। आरती के लिए घृत अथवा तेल का दीपक जलाया जाता है। आरती पीतल से निर्मित सुन्दर आरती स्टैण्डों में भी जलाई जाती है। मंदिर में वेदी के समक्ष भगवान की प्रतिमा के निकट आग्नेय दिशा में आरती रखना चाहिए। अनेकों स्थलों पर अखण्ड दीपक जलाने की परम्परा है। ये दीपक भी आग्नेय दिशा में रखने चाहिए।

मंदिर के दाहिने भाग में दीपालय बनाना शुभ है तथा यश एवं सुख प्रदाता है, जबकि बांये भाग में दीपालय बनाना यश एवं सुख का हरण करता है। #

---

*जलनालियाउ फरिसं करंतरे चउ जवा कमेणुच्चं।
जगई अ भित्ति उदए छज्जइ समचउदिसेहिं पि।। व. सा. ३/ ५४

**शिवस्नानोदकं गूढ़ मार्गे चण्डमुखे क्षिपेत्।
दृष्टं न लंघयेत्तत्र हन्ति पुण्यं पुराकृतम्।। प्रा. म. २/३२

#दीपालयं प्रकर्तव्यं ग्रहस्य दक्षिणांगके।
वामांगे तु न कर्तव्यं स्वामियशः सुखापहम्।। शि.र. ३/१२३

स्नान गृह

जिन मन्दिरों में नियमित दर्शन पूजन करना प्रत्येक गृहस्थ का नित्य कर्म होता है। प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होने के उपरांत सर्वप्रथम जिनदेव का दर्शन पूजन करना चाहिये।

पूजन करने के इच्छुक उपासक के लिये यह आवश्यक है कि वह धुले हुए शुद्ध वस्त्रों को पहनकर ही भगवान की पूजन, अभिषेकादि क्रिया सम्पन्न करे। पुरुष धोती-दुपट्टा पहनकर तथा स्त्रियां साड़ी पहनकर ही पूजाभिषेक क्रिया करें।

पूजन करने के पूर्व गात्र शुद्धि (देह शुद्धि) परमावश्यक है। अतएव यदि पूजक घर से स्नान करके मन्दिर आयेगा तो मार्ग में अशुद्धि होने की आशंका रहती है। अतएव यह उपयुक्त है कि उपासक मन्दिर परिसर में ही स्नान कर लेवे तथा वहीं पर धुले हुए शुद्ध वस्त्रों को धारण कर भक्ति भाव से जिनेन्द्र प्रभु का अभिषेक पूजन करे।

स्नान गृह का निर्माण मन्दिर के पूर्व, उत्तर अथवा ईशान भाग में ही करना चाहिये। ये सम्भव न होने पर वायव्य में भी स्नान गृह बनाया जा सकता है। पूर्व की तरफ स्नान गृह बनाने से प्रातःकालीन सूर्य किरणों की ऊर्जा अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

स्नान गृह के जल का प्रवाह उत्तर अथवा ईशान में ही रखना उपयुक्त है। अन्य दिशाओं में जल प्रवाह रखना अनिष्टकारी होगा तथा स्नान शुचिता को भी निष्फल कर देगा।

पूजन के लिए वस्त्र धारण करते समय पश्चिम / उत्तर की ओर मुख रखना चाहिये। आचार्य उमास्वामी के मतानुसार स्नान पूर्व दिशा की ओर मुख करके करें। दन्तधावन पश्चिम की ओर मुख करके करें। श्वेत वस्त्र परिधान उत्तर की ओर मुख करके करें तथा पूजन पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके करें। *

पूजन सामग्री तैयार करने का स्थान

मंदिर में उपासकों के लिए पूजन सामग्री - जल , चन्दन ,अक्षत , पुष्प आदि द्रव्यों को धोकर थालियों में सजाया जाता है। दीप तथा धूपघट तैयार किये जाते हैं। ये कार्य मंदिर के ईशान भाग में करें। यह कार्य पूर्व अथवा उत्तर दिशा में भी कर सकते हैं ।

पूजन हेतु कपड़े बदलने का स्थान

मंदिर में पूजा करने हेतु शुद्ध धुले हुए धोती-दुपट्टे अथवा महिलाओं को धुली शुद्ध साड़ी धारण करना आवश्यक है। यह कार्य भी ईशान, उत्तर अथवा पूर्व दिशा में करना चाहिए । वस्त्र धारण करते समय उत्तर की ओर मुख रखें।*

---

*स्नानं पूर्वमुखी भूय प्रतीच्यां दन्तधावनम् ।
उदीच्यां श्वेत वस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरामुखी ।। उमास्वामी श्रावकाचार /९७

पाद प्रक्षालन स्थल

मन्दिर जिनेश्वर प्रभु का स्थान है अतएव यह परम पावन है तथा नव देवताओं में से एक देवता होने से पूज्य है। इसकी पूज्यता, शुचिता एवं पवित्रता स्थायी रखना प्रत्येक उपासक का कर्तव्य है। पूजन एवं दर्शन के इच्छुक उपासक को शुद्ध वस्त्र पहनकर आना अपेक्षित है। प्रवेश के पूर्व ही यह आवश्यक है कि वह अपने पांवों का जल से प्रक्षालन करे ताकि अशुचि बाहर ही रह जाये एवं प्रवेशकर्ता शारीरिक तथा मानसिक दोनों रुप से शुद्ध हो जाये। तभी वह भावपूर्वक जिनेश्वर प्रभु की वन्दना स्तुति पूजा सार्थक रुप से कर सकेगा।

मन्दिर सामान्यतः पूर्वाभिमुखी अथवा उत्तराभिमुखी होते हैं। दोनों ही स्थितियों में पाद प्रक्षालन ईशान दिशा में प्रवेश के समीप ही रखना उपयोगी है। यदि कदाचित् किसी मन्दिर में पश्चिम दिशा से प्रवेश हो तो वायव्य दिशा की ओर पानी रखना चाहिये।

इसी तरह दक्षिण से प्रवेश साधारणतः नहीं होता किन्तु यदि ऐसा हो भी तो पानी किसी भी स्थिति में आग्नेय में न रखें। जल प्रवाह के लिये नाली का बहाव पूर्व, ईशान अथवा उत्तर दिशा में ही निकालना चाहिये।

जूते -चप्पल रखने का स्थान

जिनालय में यथाशक्य जूते- चप्पल पहनकर नहीं आना चाहिये। नंगे पैर आना वास्तव में तीन लोक के नाथ के प्रति उपासक की विनम्रता प्रदर्शित करता है। यदि अपरिहार्य स्थिति वश ऐसा करना भी पड़े तो जूते- चप्पल पानी के स्थान से पृथक आग्नेय अथवा वायव्य दिशा में ही रखना चाहिये।

धर्मायतनों में प्रवेश करने के पूर्व ही जूते चप्पल त्यागना तो इष्ट है, साथ ही यदि पर्स, बेल्ट, फाइल इत्यादि चमड़े की अथवा अन्य अशुद्ध पदार्थ की बनी हो तो उसे मन्दिर के दरवाजे पर ही छोड़कर पश्चात् हाथ धोकर ही प्रांगण में प्रवेश करना चाहिये। मन्दिर का वातावरण शुद्ध रखना उपासक का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व दोनों है।

कचरा रखने का स्थान

जिस तरह हम नियमित रुप से घर की सफाई करके कचरा बाहर निकालते हैं उसी भांति मन्दिर से भी नियमित रुप से सफाई करके कचरा निकालना आवश्यक है। मन्दिर में सफाई न रहने से मन्दिर की शुचिता एवं पवित्रता घटती है। पूजन आदि कार्य फलहीन हो जाते हैं। मन की स्थिरता भंग होती है। अतएव मन्दिर की नियमित सफाई अवश्य ही करना चाहिये। निकले हुए कचरे को इधर उधर न फेंककर निश्चित स्थान पर डालना चाहिये।

कचरा रखने का पात्र पूर्व, ईशान एवं उत्तर में नहीं रखना चाहिये। न ही इसे मुख्य द्वार के समक्ष रखना चाहिये। कचरा पात्र नैऋत्य, पश्चिम या दक्षिणी भाग में रखना चाहिये। कचरा पात्र मन्दिर की दीवाल से सटाकर नहीं रखना चाहिये। इसी तरह कोयला, पत्थर आदि का ढेर भी मन्दिर दीवाल से सटाकर नहीं रखें।

यदि उत्तर, पूर्व एवं ईशान में कचरा रखा जायेगा तो इससे समाज में मतभेद, अकालमृत्यु, मानसिक संताप, शत्रुता सरीखे दुखद घटनाक्रम होने की संभावना रहेगी। जबकि यही पात्र नैऋत्यादि दिशाओं में रखने से सद्भावना, सौहार्द, शुभ वातावरण निर्मित होगा।

यह ध्यान रखें मन्दिर भीतर एवं बाहर जितना अधिक साफ सुथरा एवं पवित्र होगा, समाज एवं उपासकों के लिये उतना ही अधिक यश, उन्नति, लाभ एवं वैभव की प्राप्ति होगी।

माली एवं कर्मचारी कक्ष

मन्दिर का प्रयोग अधिक लोगों के द्वारा किया जाता है अतएव उनके आवागमन व्यवहार से मन्दिर में साफ सफाई की निरंतर आवश्यकता होती है। मन्दिर के रख रखाव आदि के लिए बागवान या माली नियुक्त करने की परम्परा है। मन्दिर में पूजा के लिये लगी पुष्पवाटिका का रख- रखाव माली करते है। साथ ही मन्दिर का भी रख रखाव माली अथवा अन्य कर्मचारी करते हैं।

यदि मन्दिर प्रांगण पर्याप्त विस्तृत है तो माली जी एवं कर्मचारियों के कक्ष दक्षिण पश्चिम भाग में बनायें। इनके कक्षों के द्वार उत्तर या पूर्व की ओर ही हों तथा छत एवं फर्श का ढलान भी उत्तर, पूर्व या ईशान की तरफ हो। इनके द्वार दक्षिण या पश्चिम की ओर कदापि न रखें।

यदि कारणवश उत्तर या पूर्वी भाग में कर्मचारी कक्ष बनाना पड़े तो इसे मुख्य दीवाल से दूर हटकर बनाना चाहिये।

पश्चिम के कम्पाउन्ड से लगाकर यदि सेवक गृह बनायें तो सेवकगृह के पश्चिम में रिक्त स्थान न छोड़ें।

कार्यालय एवं सूचना पटल

मन्दिर एवं सम्बन्धित सामाजिक, धार्मिक गतिविधियों के सुचारु रुपेण सम्पादन के लिए कार्यालय का निर्माण किया जाता है। इसमें धनराशि का एवं अन्य सम्पत्तियों का लेखा जोखा भी रखा जाता है। प्रमुख रुप से तीर्थ क्षेत्रों पर मन्दिर में एक कार्यालय नितान्त आवश्यक होता है। कार्यालय का निर्माण मन्दिर परिसर के पूर्व या उत्तर में करें। अपरिहार्य स्थिति में पश्चिम में भी बना सकते हैं किन्तु कक्ष का द्वार पूर्व या उत्तर में ही रखें। कार्यकर्ता, ट्रस्टीगण इत्यादि कार्य करते समय अपना मुख उत्तर या पूर्व में रखें। ऐसा करने से कार्य सम्पादन सुचारु रुप से होता है तथा सफलता मिलती है।

सूचना पटल कार्यालय की बाहरी दीवार पर लगायें। मन्दिर के प्रमुख प्रवेश द्वार के समीप भी इसे लगा सकते हैं। सूचना पटल मन्दिर की मुख्य दीवार पर इस प्रकार लगायें कि पानी की बौछार इत्यादि से सुरक्षित रहे। मन्दिर की दीवाल पर पृथक कील ठोंक कर कोई भी सूचना अथवा आमन्त्रण पत्रिका नहीं टांगना चाहिये। अन्यथा समाज में निरर्थक तनाव निर्मित हो सकता है।

धर्म सभा अथवा व्याख्यान भवन

मन्दिर जिनेश्वर प्रभु का आलय है। यहां पर आने से उपासक को मानसिक शान्ति के साथ ही धर्म मार्ग की प्राप्ति होती है। समय समय पर मन्दिर में आचार्यगण और साधु परमेष्ठी अपने संघ सहित पदार्पण करते हैं। धर्मनिष्ठ श्रद्धालुजन उनके प्रवचनों का लाभ लेकर अपना जीवन धन्य करते हैं। प्रवचन या व्याख्यान भवन का निर्माण इसी लिये किया जाता है कि धर्म सभा का लाभ अधिक से अधिक प्राणियों को हो सके। साथ ही अन्य वेदिकाओं में पूजनादि कर्म कर रहे उपासकों को भी विघ्न न हो।

धर्मसभा भवन का निर्माण मन्दिर के उत्तरी भाग में करना सर्वश्रेष्ठ है। इसका निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि प्रवचनकर्ता का चबूतरा दक्षिणी भाग में बनाया जाये तथा धर्माचार्य उत्तर की ओर मुख करके धर्मसभा को सम्बोधित करें। यदि दक्षिण में चबूतरा बनाना संभव नहीं हो तो दक्षिण के स्थान पर पश्चिम में बनायें तथा धर्माचार्य पूर्व मुखी होकर व्याख्यान देवें।

इस कक्ष में द्वार उत्तर, पूर्व, ईशान में ही बनायें। अपरिहार्य स्थिति में दक्षिणी आग्नेय तथा पश्चिमी वायव्य में ही बनायें अन्यत्र नहीं। हाल की ऊंचाई पर्याप्त रखें, किन्तु वह मुख्य मन्दिर से ऊंचा न हो। हाल में वायु के आवागमन के लिये पर्याप्त व्यवस्था रखें। हाल के बाहरी भाग में आग्नेय कोण की तरफ बिजली के मीटर, स्विच बोर्ड आदि लगाये। ईशान में कदापि न लगायें। भले ही वायव्य में लगा सकते हैं।

धर्मसभा की छत का रंग सफेद ही रखें। अन्य रंग संयोजन भी इस प्रकार रखें कि उपयोगकर्ता को सुख शांति का अनुभव हो। यह ध्यान रखें कि कोई भी बीम ऐसी न हो जो कि प्रवचनकर्ता के स्थान के ऊपर स्थित हो।

स्वतन्त्र रुप से स्वाध्याय करने वाले श्रावक अपना मुख उत्तर में रखकर बैठें। पूर्व की दिशा में भी मुख करके बैठ सकते हैं। यदि इस कक्ष में शास्त्र की आलमारियां तथा भंडार (दानपेटी) रखना हो तो उसे नैऋत्य भाग में ही रखें।

कदाचित् सामाजिक उद्देश्य की सभा, अधिवेशन आदि के लिये इन कक्षों का प्रयोग कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में सभापति नैऋत्य भाग में बैठे तथा उसका मुख उत्तर की ओर ही होवे। किसी भी परिस्थिति में मूल मन्दिर में सामाजिक सभाएं न करें। इससे मन्दिर की शुचिता में दोष आता है।

धर्म सभा कक्ष में सजावट के लिए उपयोगी चित्र

षड् लेश्या दर्शन

संसार मधु बिन्दु दर्शन
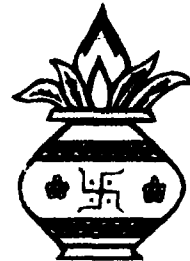
विभिन्न दिशाओं में धर्मसभा कक्ष बनाने का फल :

दिशा	फल
पूर्व	उत्तम वार्तालाप, आपसी विश्वास में वृद्धि
आग्नेय	निरर्थक वार्तालाप
दक्षिण	मतभेद, वैमनस्य
नैऋत्य	विचार शैथिल्य, दुर्भावना
पश्चिम	उत्साह का अभाव
वायव्य	आपसी नाराजी, भ्रम
उत्तर	सर्वोत्तम, शांतिपूर्वक वार्तालाप, समाधान
ईशान	उत्तम चर्चा

शास्त्र भंडार

जिनेश्वर प्रभु के मन्दिर में पूजन दर्शन करने के उपरांत शास्त्र स्वाध्याय का बहुत महत्व है। जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्रतिपादित मोक्ष मार्ग जानने के लिये यह आवश्यक है कि हम उनके उपदेशों से परिचित हों। प्राचीनकाल में शास्त्रों का लेखन ताड़पत्रों पर होता था। पश्चात् कागज के हस्त लिखित शास्त्रों का युग आया। धर्म की परम्परा निर्वाहते ये शास्त्र वर्तमान में आधुनिक मशीनों द्वारा मुद्रित किये जाते हैं। इन शास्त्रों को पृथक से रखना चाहिये ताकि उपयोगकर्ता आसानी से अपेक्षित शास्त्र निकाल सके। ताड़ पत्र एवं प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रों को पृथक आलमारी में भली भांति सुरक्षित रखना चाहिये। अत्यधिक उपयोग में आने वाले पूजा ग्रन्थ एवं गुटके पृथक सर्वोपयोगी स्थान पर रखें।

सभी शास्त्र भंडार की आलमारियां दक्षिणी, नैऋत्य अथवा पश्चिमी भाग में रखें ताकि ये उत्तर या पूर्व की तरफ खुलें। सभी आलमारियां यथा संभव दीवाल से सटाकर रखना चाहिये। आलमारियों का आकार आयताकार ही रखें, विषम आकार की न रखें। आलमारियां टेढ़ी या झुकाकर न रखें। दीवाल के अन्दर बनी सभी आलमारियां एक ही सूत्र में बनायें। विषम रखने से मन्दिर में निरर्थक वाद विवाद की संभावना बनती है।

दीवालगत आलमारियों के ऊपर खूंटी या कील न ठुकवायें अन्यथा निरर्थक मानसिक तनाव उत्पन्न होगा।

------000------

मन्दिर में उपयोगी सजावटी चित्र
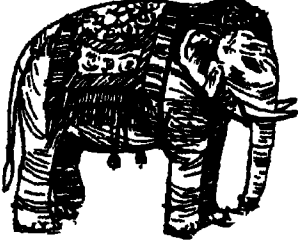
तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्न

१ - सफेद हाथी

२ - सफेद बैल

३ - सिंह

४ - लक्ष्मी का कलशाभिषेक
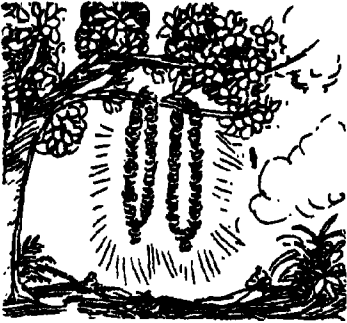
५ - पुष्पमाला युगल

६ - पूर्ण चन्द्रमा
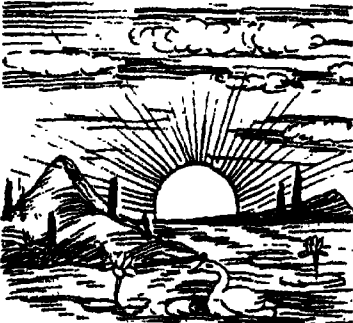
७ - उदीयमान सूर्य

८ - मीन युगल

मन्दिर में उपयोगी सजावटी चित्र

तीर्थंकर की माता के

सौलह स्वप्न

९- पूर्ण कलश युगल

१०- पद्म सरोवर

११- उन्मत्त समुद्र
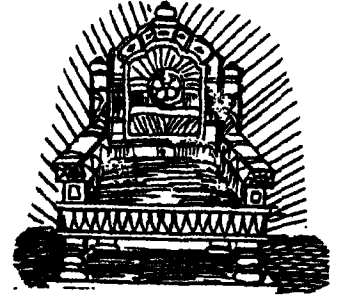
१२- रत्न जड़ित सिंहासन
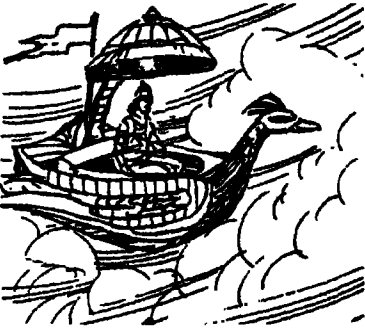
१३- देव विमान

१४- धरणेन्द्र भवन
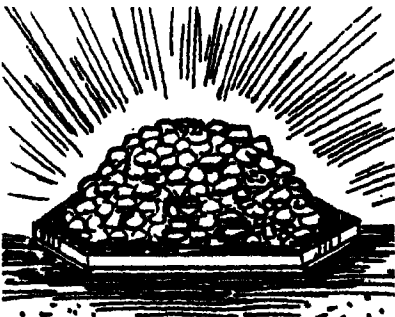
१५- प्रकाशमान रत्न राशि

१६- धूम्ररहित अग्नि

मन्दिर में उपयोगी सजावटी चित्र

राजा श्रेयांस द्वारा आदिनाथ प्रभु को आहार दान

ऐरावत हाथी

ऐरावत हाथी पर इन्द्र का जन्माभिषेक के लिए गमन

गुप्त भंडार एवं धन सम्पत्ति कक्ष

मन्दिर में दर्शन पूजन करने वाले श्रद्धालु उपासक सामान्यतः कुछ न कुछ दान नियमित रुप से करते ही हैं। इसे भंडार तिजोरी में डाला जाता है। इसमें दान करने वाले का नाम गोपनीय होता है। अतः इसे गुप्त भंडार भी कहा जाता है। कुछ राशि बोलियों के माध्यम से भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त कुछ तीर्थस्थलों में छत्र चढ़ाने की भी मान्यता है। मन्दिरों में छत्र, चंवर, भामंडल, सिंहासन कीमती धातुओं यथा चांदी से बने पूजा के बर्तन इत्यादि भी रखना पड़ता है। इन सबके भंडारण के लिये शास्त्रकारों ने उत्तर दिशा को सर्वोत्तम कहा है। यह कुबेर का स्थान है तथा यहां पर स्थित भंडार स्थिर एवं वृद्धिंगत होते हैं। किसी भी स्थिति में भंडार वायव्य में न रखें।

गुप्त भंडार बनाने के लिये आवश्यक निर्देश

१- यदि मन्दिर पूर्वाभिमुखी है तो भंडार पेटी / तिजोरी जिन प्रतिमा के दाहिनी ओर रखना चाहिये तथा इस प्रकार रखें कि वह उत्तर की ओर खुले।

२- यदि मन्दिर उत्तराभिमुखी हो तो भंडार पेटी / तिजोरी भगवान के बायें हाथ की ओर तथा उत्तर की ओर खुले इस प्रकार रखें। ऐसा करने से भंडार सदैव वृद्धिगत होते हैं।

३- गुप्त भंडार कभी भी दीवालों के अन्दर न बनायें।

४- गुप्त भंडार पेटी कभी भी दीवाल से सटाकर न रखें।

५- गुप्त भंडार सीढी के अथवा बीम के ठीक नीचे न रखें।

६- मन्दिर के सभी महत्वपूर्ण कागजात भी उत्तरी दिशा में खुलने वाली आलमारी में रखें। आलमारी दक्षिण भाग में रखें।

७- मन्दिर के बहुमूल्य उपकरण एवं भंडार दक्षिण, पश्चिमी अथवा नैऋत्य भाग में रखें। आलमारी का मुख उत्तर की ओर खुले। ऐसा करना श्री वर्धक होता है। इससे समाज में सहयोग रहता है तथा निरन्तर धनागम होता है।

चौक

प्राचीन मन्दिरों में प्रायः मध्य में खुली जगह छोड़ी जाती है। दक्षिण भारत में मन्दिर के मध्य में चौकोर खुली जगह रखी जाती है। प्राचीन शैली में भी मध्य में चौकी मण्डप (चतुष्किका) रखी जाती थी। इस प्रकार का चौक पूरी तरह खुला भी रखा जाता है एवं आच्छादित भी। ऐसा करने से प्राकृतिक वायु प्रवाह एवं प्रकाश आता है। मन्दिर में आने वाले उपासकों के लिये यह अत्यंत उपयोगी है।

चौक को ऊपर से पूरी तरह खुला रखने के स्थान पर यदि उसमें जाली लगा दी जाये तो पक्षी एवं वानर आदि का आवागमन नहीं होता तथा मन्दिर में पवित्रता बनी रहती है। सुरक्षा की दृष्टि से भी यह उपयोगी है कि ऊपर जाली रहे।

मन्दिर में चौक रहने से समाज में पारस्परिक प्रेम-सद्भाव निर्मित होता है। समाज में मनमुटाव के अवसर कम होते हैं।

मन्दिर में रिक्त स्थान का महत्व

मन्दिर निर्माण करते समय यह आवश्यक है कि परकोटे एवं मन्दिर के मध्य पर्याप्त खुली जगह छोड़ी जाये। खाली जगह उत्तर एवं पूर्व दिशा में अधिक छोड़ी जाये तथा दक्षिण एव पश्चिम में कम। किसी भी स्थिति में उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा कम से कम दुगुनी भूमि रिक्त रखना चाहिये। इसी प्रकार पूर्व में पश्चिम की अपेक्षा कम से कम दुगुनी भूमि रिक्त रखना चाहिए। ऐसा करने से शुभ फल की प्राप्ति होती है।

यदि मन्दिर के दक्षिण एवं पश्चिम मे रिक्त स्थान अधिक हो तो विद्वानों के परामर्श से वहां कोई निर्माण कार्य करा लेना चाहिये। ऐसा करने से इसके दोष कम हो जायेंगे।

मंदिर में रिक्त स्थान का दिशानुसार फल

रिक्त स्थान की दिशा	फल
पूर्व	कार्य सम्पादन के लिए उत्साह, शांति
आग्नेय	महिलाओं को स्वास्थ्य हानि
दक्षिण	सर्वत्र कुफल
नैऋत्य	अशुभ
पश्चिम	अशुभ
वायव्य	मध्यम
उत्तर	ऐश्वर्य लाभ
ईशान	उत्तम पुत्र, विद्या लाभ

रिक्त भूमि एवं मंदिर भूमि विस्तार

मंदिर निर्माण के उपरान्त यदि स्थान कम पढ़ने के कारण समीप की भूमि लेना हो तो वास्तुशास्त्र के नियम के अनुकूल ही लेना चाहिए। मंदिर के पीछे की जमीन खरीदकर, मंदिर का विस्तार नहीं करना चाहिए।

मंदिर के भूखण्ड के पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर की रिक्त भूमि क्रय कर भूमि का विस्तार किया जाना चाहिए। मंदिर के भूखण्ड के पश्चिम एवं दक्षिण दिशा की ओर की रिक्त भूमि क्रय कर भूमि का विस्तार नहीं करना चाहिए।

मंदिर की भूमि विस्तार करते समय यह आवश्यक है कि भूखण्ड का आकार न बिगड़े अर्थात भूखण्ड आयताकार अथवा वर्गाकार ही रहे। कोई भी कोण कटने अथवा अधिक बढने का प्रसंग न आये। कोण कटना अनिष्ट का संकेत करेगा।
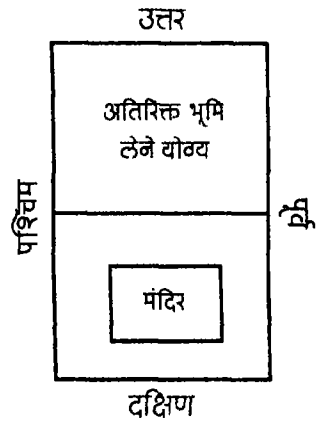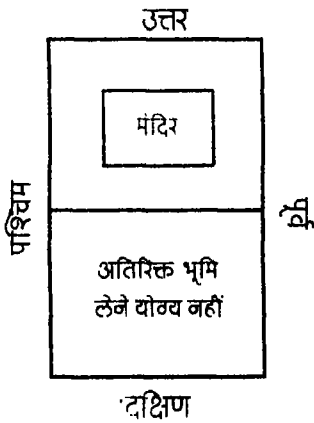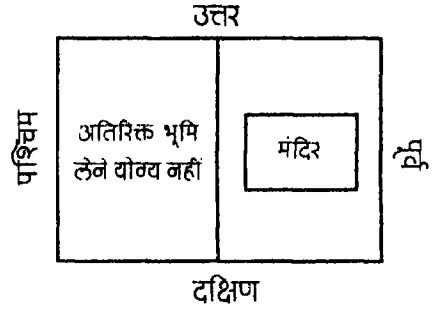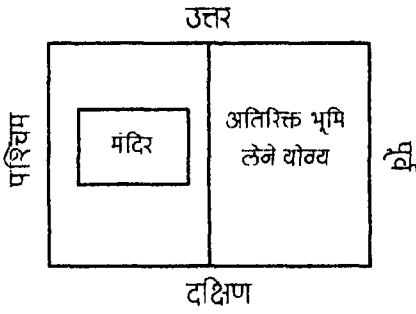
तलघर

तलघर का तात्पर्य मुख्य धरातल के नीचे खुदाई करके कमरे इत्यादि के लिये स्थान बनाना है। वर्तमान युग में कम भूमि क्षेत्र में अधिक क्षेत्रफल निकालने के लिये बहुमंजिली निर्माण के अतिरिक्त नीचे तलघर बनाये जाते हैं। प्राचीन जिन मन्दिरों में विधर्मियों के आक्रमण से रक्षा के निमित्त ये तलघर बनाये जाते थे ताकि संकट के समय जिन प्रतिमाओं को संरक्षित किया जा सके। मध्यकालीन समय में इसी पद्धति के कारण जिन संस्कृति को बचाया जा सका। इसी कारण आज भी यत्र तत्र भूमि खनन के समय प्राचीन जिन बिम्ब तथा समूचे अथवा भग्न जिनालय मिलते रहते हैं।

तलघर का निर्माण अत्यंत आवश्यक होने पर ही करना चाहिये। सिर्फ अधिक जगह निकालने के लिये निरुद्देश्य तलघर नहीं बनाना चाहिये। यदि अपरिहार्य स्थिति में तलघर बनाना ही इष्ट होवे तो केवल निर्धारित दिशाओं में बनाना चाहिये। तलघर बनाने से यदि बचा जा सके तो बचना चाहिये।

तलघर बनाते समय पालनीय निर्देश

१. तलघर केवल ईशान दिशा में बनायें। यदि कुछ दीर्घाकार अपेक्षित हो तो उत्तर या पूर्व तक बनायें।

२. किसी भी स्थिति में आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य एवं मध्य में तलघर नहीं बनायें।

३. तलघर का आकार आयताकार अथवा वर्गाकार ही होना चाहिये।

४. कोई भी तलघर ऊपर की वेदियों के ठीक नीचे नहीं आना चाहिये।

५. तलघर के फर्श के धरातल पर ढलान भी केवल ईशान, पूर्व या उत्तर की ओर ही आना चाहिये।

६. किसी भी स्थिति में पूरे जिनालय के नीचे तलघर नहीं बनाना चाहिये।

७. तलघर में उतरने की सीढियों का उतार दक्षिण से उत्तर अथवा पश्चिम से पूर्व होना चाहिये।

८. यथा सम्भव दक्षिणी दीवाल की तरफ से सीढ़ियां बनाना चाहिये।

९. ध्यानप्रिय साधु एवं श्रावक वहां पर स्थिर चित्त होकर ध्यान कर सकें, इस हेतु समुचित प्रकाश एवं वायु की व्यवस्था रखें।

१०. मन्दिर के प्रमुख प्रवेश के नीचे तलघर नहीं बनाना चाहिये।

विभिन्न दिशाओं में तलघर बनाने के शुभाशुभ फल

दिशा	फल
पूर्व	शुभ
आग्नेय	अशुभ, समाज में मनमुटाव, विवाद
दक्षिण	अत्यन्त दुख, समाज एवं मंदिर निर्माता पर आपदा
नैऋत्य	अति दुख, समाज में सुख शांति का नाश
पश्चिम	अशुभ
वायव्य	अशुभ, निरंतर परेशानियां
उत्तर	शुभ
ईशान	उत्तम, शुभ, प्रशस्त, श्री वृद्धि

यथा संभव तलघर बनाने से बचना चाहिए। अत्यंत अपरिहार्य होने पर ही सहीं दिशा में तलघर बनायें।

रंग संयोजना

वास्तु का निर्माण करने के उपरांत उस पर रंग करके उसे रमणीय तथा शांतिवर्धक बनाया जाना चाहिये। मन्दिर में भीतर और बाहर ऐसी रंग योजना की जाना चाहिये कि बाहर से मन्दिर आकर्षक एवं शांतिप्रदायक हो। भीतर पहुंचने के उपरांत भी मन्दिर का वातावरण धर्ममय, ध्यान योग क्रिया में सहायक तथा श्री जिनेन्द्र प्रभु की प्रभावना में वृद्धिकारक हो। मन्दिर में प्रवेश होते ही उपासक संसारी मोहमाया के पाश से विरत होकर श्री वीतराग जिनेन्द्र प्रभु के श्री चरणों में शरण पा सकें, ऐसा आभास भीतरी संयोजना से होना आवश्यक है। जिस प्रकार वाटिका में हमें पुष्प आकर्षित एवं आल्हादित करते हैं उसी प्रकार मंदिर का वातावरण भी हमें प्रसन्न करने वाला होना चाहिये। रंग योजना इस प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है।

पूजन, जाप, विधान इत्यादि करते समय वस्त्र, माला, पुष्प, आसन इत्यादि के रंगों का स्पष्ट विवेचन जैन ग्रन्थों में मिलता है। मन्दिर के भीतरी भागों में ज्यादा गाढ़े रंगों का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये। काला, डार्क चाकलेटी, डार्क नीला, डार्क ब्राउन, डार्क ग्रे कलर कहीं भी इस्तेमाल न करें।

गुलाबी, आसमानी, सफेद, पीला, केसरिया, हरा इत्यादि रंग यथास्थिति प्रयोग करें। दो या अधिक रंगों का प्रयोग करते समय यह अवश्य स्मरण रखें कि नीचे गाढा तथा ऊपर फीका रंग, इस प्रकार संयोजित करें।

छत का रंग या तो सफेद रखें अथवा एकदम फीका। रंगों में चमक होना भी वर्जित नहीं है किन्तु उससे मन्दिर के वीतरागी स्वरुप में परिवर्तन न हो, यह आवश्यक है।

मन्दिर का शिखर श्वेत रंग का रखना उपयुक्त है। यही रंग सर्वाधिक प्रभावकारी है। भगवान जिनेन्द्र की स्तुति करते हुए दृष्टाष्टक स्तोत्र में भी यही कहा है -

> दृष्टं जिनेन्द्र भवनं भवतापहारि। भव्यात्मनां विभव संभव भूरिहेतु ।।
> दुग्धाब्धि फेन धवलोज्ज्वल कूट कोटि। नद्धध्वज प्रकर राजि विराजमानम् ।।

इस स्तुति में जिनेन्द्र भवन का बाहरी रंग तथा शिखरादि का रंग फेन के समान उज्ज्वल श्वेत होना निर्देशित है। अतएव सभी प्रकार की रंग संयोजनाओं में यही प्रमुख लक्ष्य रखें कि उससे वातावरण शांतिदायक एवं मनोरम बने। श्वेत रंग का शिखर दूर से ही उपासक को आकर्षित करता है तथा उसका चित्त जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन की कल्पना मात्र से ही पुलकित हो उठता है

मंदिर में विविध रंगों का प्रभाव

रंग	प्रभाव
श्वेत	शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य रक्षक
	शांति, सौहार्द, समन्वय का प्रेरक
नीला	शुभ, उत्तम
हरा	शुभ, उत्तम
गुलाबी	शुभ, उत्तम
आसमानी	शान्ति, उत्साहवर्धक
लाल	मध्यम
काला	शोक, उदासीनता, अशुभ
चाकलेटी	उदासीनता, असफलता, अशुभ

मुख्य द्वार एवं अन्य दरवाजों पर भी इन रंगों का प्रयोग पूरी सावधानी से करें। लाल रंग का प्रयोग दरवाजों पर न करें। कोई भी रंग इतना तेज न होवे कि नेत्रों को दुखदायक एवं अरुचिकर होवे।

-----000----

पुष्पवाटिका एवं वृक्ष प्रकरण

मन्दिर एवं अन्य धार्मिक, सामाजिक प्रयोग की वास्तु निर्मितियों में शोभा एवं सुविधा के लिये पुष्पवाटिका लगाई जाती है तथा वृक्षारोपण किया जाता है। पर्यावरण की शुचिता के लिये यह उपयोगी निमित्त है। वृक्षारोपण एवं पुष्पवाटिका लगाते समय यह स्मरण रखें कि ऊंचे वृक्ष मन्दिर के दक्षिण एवं नैऋत्य भाग में ही लगायें। इन वृक्षों की छाया दोपहर (प्रातः ९ बजे से दोपहर तीन बजे) के मध्य मन्दिर अथवा वास्तु पर नहीं पड़ना चाहिये। जिन वृक्षों को मन्दिर प्रांगण में लगाने का निषेध किया है, उन्हें कदापि न लगायें, अन्यथा अनिष्ट होने की आशंका निरंतर बनी रहेगी।

पुष्प वाटिका

मन्दिर में पूजन के लिये पुष्पों की आवश्यकता होती है। इसके लिये उपयोगी पुष्पों के पौधे एवं वृक्ष पुष्पवाटिका में लगाना चाहिये। पुष्पवाटिका में निरन्तर विविध रंगों के पुष्पों से वातावरण प्रफुल्लित रहता है। साथ ही शुभ मंगलमय वातावरण निर्मित होता है। पुष्पवाटिका लगाते समय ध्यान रखें कि उसे मन्दिर के उत्तर, पूर्व, ईशान भाग में ही लगायें। आग्नेय दक्षिण एवं नैऋत्य में पुष्प वाटिका लगाने से कष्ट एवं मानसिक संताप होता है। उत्तर, पूर्व, पश्चिम एवं ईशान में पुष्प वाटिका लगाने से पुत्र, धन, धान्य आदि का लाभ होता है।

वृक्ष

मन्दिर में दूध वाले वृक्ष नहीं लगायें। यदि प्रांगण में पूर्व से लगे हुए हों तो नागकेशर, अशोक, अरोठा, बकुल, पनस, शमी, शालि इत्यादि सुगंधित वृक्षों को लगाने से यह दोष दूर हो जाता है। कंटीले वृक्ष मन्दिर में न लगायें, इनसे मन्दिर एवं समाज दोनों के लिए कष्टकारी स्थिति निर्मित होती है।

मन्दिर प्रांगण में फलदार वृक्ष न लगायें। नारियल लगा सकते हैं किन्तु केवल दक्षिण एवं नैऋत्य दिशा में ही लगाएं। फलदार वृक्षों की लकड़ी भी मन्दिर निर्माण के लिए उपयोग न करें। नीम, इमली इत्यादि वृक्ष असुरप्रिय होने से मन्दिर प्रांगण होने से मन्दिर प्रांगण में न लगाना ही उत्तम है। इनसे जनआवागमन बाधित होता है।

वृक्षों को विभिन्न दिशाओं में लगाने का फल

वृक्ष का नाम	दिशा	फल
पीपल	पूर्व	भय
पीपल	पश्चिम, दक्षिण	शुभ
पाकर	दक्षिण	पराभव
पाकर	उत्तर	शुभ, धनागम
वट	पश्चिम	राजकीय कष्ट
वट	पूर्व	शुभ, मनोरथ पूरक
उदुम्बर	उत्तर	नेत्ररोग
उदुम्बर	दक्षिण	शुभ

सोपान (सीढ़ियां)

मन्दिर अथवा अन्य धर्मायतनों में बहुमंजिला निर्माण होने की स्थिति में सीढ़ियों का निर्माण आवश्यक होता है। इसी तरह प्रमुख प्रवेश द्वार पर मन्दिर में प्रवेश के लिये भी सोपान आवश्यक है। प्रवेश के सामने जो सीढ़ियां बनाई जाये, उनका उतार पूर्व या उत्तर की ओर होना चाहिये। सीढ़ियों का आकार वर्गाकार या आयताकार रखना श्रेयस्कर है। इन्हें गोलाकार या त्रिकोण नहीं बनायें अन्यथा कोण कटने का दोष उत्पन्न होगा।

ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां किसी भी स्थिति में ईशान, पूर्व, उत्तर एवं मध्य में नहीं बनायें। सीढ़ियां बनाने के लिये दक्षिण एवं नैऋत्य दिशाएं उत्तम हैं। पश्चिम, आग्नेय तथा वायव्य में भी सोपान का निर्माण किया जा सकता है। सीढ़ियों का चढ़ाव पूर्व से पश्चिम अथवा उत्तर से दक्षिण की तरफ ही होना चाहिये। यदि सीढ़ियों को घुमाकर लाना हो तो पूर्व या उत्तर में घूमकर प्रवेश करे।

अलंकृत सोपान
पार्श्व दृश्य
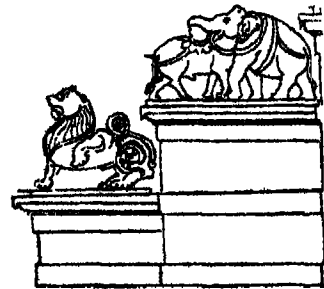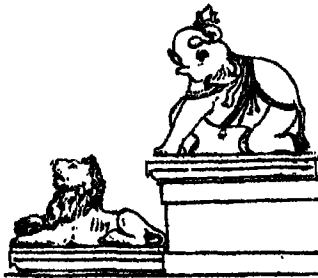
सीढ़ियों के लिये आवश्यक निर्देश

१. सीढ़ियों के नीचे कोई भी महत्वपूर्ण कार्य न करें।
२. किसी भी प्रकार की भगवान की अथवा यक्ष- यक्षिणी की वेदी न बनायें।
३. न ही जिन शास्त्रों का भंडार या आलमारी न रखें।
४. सीढ़ियों के ऊपर छत या छपरी अवश्य बनायें जिसका उतार उत्तर या पूर्व की ओर ही होना आवश्यक है।
५. सीढ़ियों के नीचे शास्त्र पठन, जाप, स्वाध्याय, पूजन आदि कदापि न करें। सीढ़ियों की संख्या विषम होनी चाहिये।
६. सीढ़ियों का निर्माण इस प्रकार न करें कि उससे सम्पूर्ण मन्दिर की प्रदक्षिणा हो अन्यथा समाज में अशांति एवं आपदाएं आने की सम्भावना रहेगी।
७. सीढ़ियां बनाते समय ध्यान रखें कि ऊपरी मंजिल पर जाने तथा तलघर में जाने के लिये एक ही स्थान से सीढ़ी न बनायें।
८. सीढ़ियों जर्जर हों, हिल रही हों अथवा जोड़ तोड़कर बनायी गई हो तो यह अशुभ है तथा इनसे समाज में मानसिक संताप का वातावरण बनता है।
९. सीढ़ियां प्रदक्षिणाक्रम अर्थात घड़ी की सुई की दिशा की तरफ (क्लाक वाइज) बनायें।

सोपान पंक्ति प्रमाण

सोपान का निर्माण गज परिवार युक्त अलंकृत करना चाहिये। सोपान की संख्या का प्रमाण इस प्रकार है *-

कनिष्ठ मान - पांच, सात, नौ
मध्यम मान - ग्यारह, तेरह, पंद्रह
ज्येष्ठ मान - सत्रह, उन्नीस, इक्कीस
सोपान संख्या विषम ही रखें, सम न रखें।

---

*परिवारगजैर्युक्तं, पंक्तिसोपानसंचयम्।
पंचसप्तनवाद्यैश्च, कनिष्ठं मानमुत्तमम्॥ शि. र. ४/३०
एकादश दश त्रीणि, तथा वै दशपंचकम्।
मध्यमानश्च विज्ञेयं, कल्याणं च कलौ युगे॥ शि. र. ४/३१
सप्तदशैव सोपान मेकोनविंशतिर्भवेत्।
ज्येष्ठमानं भवेत्तच्च, ह्येकविंशस्तथोत्तरम्॥ शि. र. ४/३२

मन्दिर का परकोटा

मन्दिर का निर्माण जिनेन्द्र प्रभु के प्रणीत धर्मायतन का निर्माण है। जिन धर्म के द्वारा प्राणी मात्र को सुख का मार्ग मिलता है। उस धर्मायतन की रक्षा के लिये मन्दिर के चारों ओर परकोटा अथवा कम्पाउन्ड वाल बनाना चाहिये। ऐसा करके हम मन्दिर तथा अप्रत्येक्ष रुप से धर्म की सुरक्षा करते हैं।

परकोटा बनाते समय यह स्मरण रखें कि उसका आकार भी आयताकार अथवा वर्गाकार हो। परकोटे की दीवाल मुख्य मन्दिर की दीवाल से सटाकर न बनायें। परकोटे एवं मन्दिर के मध्य पर्याप्त अन्तर होना चाहिये। परकोटे की दीवाल की ऊंचाई एवं मोटाई, दोनों दक्षिण में उत्तरी दीवाल से अधिक होवे। इसी भांति पश्चिमी दीवाल की मोटाई एवं ऊंचाई दोनों पूर्वी दीवाल से मोटी होवे। कुल मिलाकर नैऋत्य भाग में परकोटे की दीवाल सबसे ऊंची रखें तथा ईशान में सबसे नीची रखें।

यदि परकोटा इस तरह बनता है कि भगवान की दृष्टि बाधित होती है तो दृष्टिवेध का परिहार करें। यदि उत्तर अथवा पूर्व में महाद्वार नहीं है तथा भगवान की दृष्टि उत्तर या पूर्व में है तो लघुद्वार बनाकर वेध परिहार करें। द्वार पर सुन्दर कमानी बनायें।

परकोटे की दीवाल विभिन्न दिशाओं में अधिक ऊंची होने का फल

उत्तर	मन्दिर का धन व्यय
ईशान	मन्दिर कार्यों में निरंतर विघ्न, बाधाएं
पूर्व	ऐश्वर्य हानि, धन हानि
आग्नेय	यश प्राप्ति
दक्षिण	श्रेष्ठ, शुभ
नैऋत्य	समाज में धन, यशलाभ, अभ्युदय
पश्चिम	शुभ
वायव्य	आरोग्य

परकोटा बनाने के लिये पत्थर, ईंट आदि का प्रयोग करें। परकोटे की दीवाल पर प्लास्टर कर उस पर चूने या पेंट से पुताई करें। परकोटे पर काला रंग न लगायें न ही अत्यंत गाढे, अथवा लाल, रक्त लाल, कत्थई रंग लगाएं। कोई भी रंग लगायें वह उत्साहवर्धक हो, निराशावर्धक न हो।

परकोटा बनाते समय ध्यान रखें कि दक्षिण में उत्तर से कम जगह खाली छोड़े। दक्षिणी भाग में कम से कम जगह खाली छोड़े। परिक्रमा के लिये लगभग ५ फुट जगह छोड़ सकते हैं।

परकोटा निर्माण से मन्दिर वास्तु न केवल सुरक्षित हो जाती है, वरन् उसका स्वरुप भी गरिमामयी हो जाता है। अपराधी तत्वों, पशुओं एवं प्रेतादि बाधाओं से वास्तु सुरक्षित हो जाती है। अतएव मन्दिर निर्माण करते समय परकोटा अवश्य ही निर्माण करायें। तीर्थ क्षेत्रों, नसियां आदि के मन्दिरों के लिए यह परम आवश्यक है।

मन्दिर प्रांगण की विविध रचनायें

मन्दिर प्रांगण में मुख्य मन्दिर के अतिरिक्त अनेकों वास्तु निर्माण किये जाते हैं। मुख्यतः इनका उद्देश्य धार्मिक गतिविधियों के निमित्त होता है। मन्दिर के अतिरिक्त तीर्थयात्रियों के लिये आवास स्थल, भोजनालय, रसोई इत्यादि निर्माण की जाती है। साधुओं एवं त्यागी, व्रती, संयमी जनों के लिये आश्रम, मठ आदि का निर्माण किया जाता है। धार्मिक शिक्षण के लिये भी संस्थाओं की स्थापना की जाती है। वाहन, रथ आदि रखने के लिये भी समुचित स्थान की आवश्यकता होती है।

विभिन्न दिशाओं के अनुकूल निर्माण

प्रासाद के परिसर के विभिन्न भागों में अनेकों निर्माणों की आवश्कता पड़ती है। प्रासाद मंडन में ग्रंथकार ने इसके लिये स्पष्ट निर्देश दिये हैं *:-

प्रासाद के भाग की दिशा	निर्माण
आग्नेय दिशा में	यतियों, साधुओं के लिये आश्रम
पश्चिम, उत्तर या दक्षिण में	यतियों, साधुओं के लिये आश्रम
वायव्य कोण में	धान्य को सुरक्षित रखने का भंडार
आग्नेय कोण में	रसोईघर
ईशान कोण में	पुष्प गृह एवं पूजा के उपकरण का स्थान
नैऋत्य कोण में	पात्र एवं आयुध कक्ष
पश्चिमी भाग में	जलाशय
मठ के अग्रभाग में (पूर्व में)	विद्यालय एवं व्याख्यान कक्ष
पश्चिमी भाग में	रथ शाला
उत्तरी भाग में	रथ का प्रवेशद्वार

---

*अपरे रथशाला च मठं याम्ये प्रतिष्ठितम्।
उत्तरे रथरन्ध्रं च प्रोक्तं श्रीविश्वकर्मणा॥ प्रा.मं.२/२५
प्रासादस्योत्तरे याम्ये तथाग्नौ पश्चिमेऽपि वा।
यतीनामाश्रमं कुर्यान्मठं तद्द्वित्रिभूमिकम्॥प्रा.मं.८/३३
कोष्ठागारं च वायव्ये वह्निकोणे महानसम्।
पुष्पगेहं तथैशाने नैर्ऋत्ये पात्रमायुधम्॥प्रा.मं.८/३५
सत्रागारं च पुरतो वारुण्यां च जलाश्रयम्।
मठस्य पुरतः कुर्याद् वियाव्याख्यानमण्डपम्॥ प्रा.मं.८/३६

मंदिर परिसर में व्यापारिक भवनों का निषेध

मंदिर के परकोटे से लगकर अथवा परकोटे के भीतर भोजनालय अथवा अन्य प्रकार की दुकानें परिसर में बना दी जाती है। परिसर में आय का स्रोत बढ़ाने के लिए ये दुकानें किराये से दी जाती हैं अथवा विक्रय कर दी जाती हैं। इन दुकानों में अनेकानेक प्रकार के लोगों के आवागमन से वहाँ के परिसर का वातावरण धार्मिक न रहकर व्यावसायिक बन जाता है। वहाँ की शुचिता भंग होती है तथा शान्तिमय वातावरण शोरगुल में बदल जाता है। कभी-कभी ऐसी भी परिस्थिति निर्मित होती है कि बेची गई दुकान में व्यसन अथवा अभक्ष्य आदि का व्यापार होने लगता है।

मंदिर की शुचिता स्थायी रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मंदिर परिसर में व्यापारिक संस्था अथवा दुकानों का निर्माण नहीं किया जाए। मंदिर परिसर के निकट भी अशुचितावर्धक दुकानें न खुलें, यह ध्यान रखना मंदिर व्यवस्थापकों के लिए आवश्यक है। मंदिर परिसर में अशुचिता वृद्धि होने से मंदिर का शुभप्रभाव समाज को नहीं मिलेगा साथ ही अविनय आसादना दोष का विपरीत प्रभाव अवश्य होगा।

बिजली का मीटर एवं स्विच बोर्ड

मंदिर के प्रकाश के लिए विद्युत बल्ब आदि लगाये जाते हैं। विद्युत मीटर स्विच बोर्ड तथा मेन स्विच मंदिर के आग्नेय भाग में ही लगाना चाहिए। आग्नेय में यदि असुविधा हो तो इन्हें वायव्य में लगायें। विद्युत मीटर आदि ईशान में बिल्कुल न लगायें। पानी की बोरिंग मशीन का स्विच बोर्ड भी इन्हीं दिशाओं में लगाना चाहिए।

टाईल्स का प्रयोग

मंदिर निर्माण में आज कल टाईल्स का प्रयोग किया जाने लगा है। टाईल्स का निर्माण यदि सीप या किसी भी प्रकार के जैविक पदार्थ (हड्डी आदि) से हुआ हो तो ऐसे टाईल्स का मंदिर निर्माण में उपयोग न करें। वेदी, फर्श तथा शिखर के निर्माण में भी ऐसे टाईल्स का प्रयोग नहीं करें।

जलपूर्ति व्यवस्था विचार

पानी की टंकी

मन्दिर में यद्यपि कूप अथवा बोर वेल से ताजा पानी प्रयोग किया जाता है। फिर भी निरंतर प्रयोग के लिये पानी की टंकी बनाना अपरिहार्य होता है।

टंकी बनाते समय निम्नलिखित निर्देशों का पालन अवश्य करें :-

१- यदि मन्दिर में ओवर हैड पानी की टंकी बनाना इष्ट हो तो इसे नैऋत्य कोण में ही बनायें।

२- यदि मन्दिर में भूमिगत जल टंकी बनाना इष्ट हो तो इसे ईशान, उत्तर अथवा पूर्व में बनायें।

३- भूमिगत टंकी इस प्रकार बनायें कि प्रवेश मार्ग उसके ऊपर न आये।

४- किसी भी परिस्थिति में आग्नेय दिशा में पानी की टंकी न बनायें। ऐसा करने से समाज में निरन्तर कलहपूर्ण वातावरण निर्मित होगा।

५- ओवर हैड पानी की टंकी दक्षिण दिशा में बना सकते है।

६- ओवर हैड टंकी इस प्रकार बनायें कि मन्दिर के शिखर से स्पर्श न हो तथा संभव हो तो पृथक से शिखर से दूर बनायें।

७- ओवर हैड टंकी इस प्रकार बनायें कि मन्दिर के शिखर से स्पर्श न हो तथा संभव हो तो पृथक से शिखर से दूर बनायें।

८- मन्दिर वास्तु से पृथक ओवर हैड पानी की टंकी नैऋत्य दिशा में बनाना श्रेयस्कर है। आग्नेय में इसे कदापि न बनायें।

९- ओवर हैड टंकी ऊपर से ढंकी रखें।

कूप

जिन मन्दिर में पूजनादि धर्म कार्यों के लिये कुएं का जल उपयोग किया जाता है। कुएं का निर्माण यदि मन्दिर परिसर में ही कर लिया जाता है तो इससे कुएं में भी स्वच्छता बनी रहती है तथा जल लाते समय भी अशुद्धि आने का भय नहीं रहता। दर्शनार्थियों के लिए भी जल की आवश्यकता होती है साथ ही मुनिसंघों के अथवा त्यागी व्रतियों के लिये भी कुएं के जल की आवश्यकता होती है। सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मन्दिर में कुंए को निर्मित करना आवश्यक है।

कुएं का निर्माण वास्तुशास्त्र के अनुसार तथा उचित दिशाओं में करना सभी उपयोगकर्ताओं, मन्दिर निर्माता एवं समाज के लिए हितकारक होता है। प्रसिद्ध ग्रन्थ ''सागार धर्मामृत'' में पं आशाधर जी ने इसके लिये निर्देश किया है। कुन्द कुन्द श्रावकाचार एवं उमास्वामी श्रावकाचार में भी इसका उल्लेख किया गया है।

विभिन्न दिशाओं में जलाशय बनाने का फल

जलाशय की दिशा	फल
ईशान	तुष्टि, पुष्टि, ऐश्वर्य-लाभ, ज्ञानार्जन, धन लाभ
पूर्व	धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य लाभ
आग्नेय	पुत्र नाश, संतति अवरोध, धनहानि
दक्षिण	मानसिक तनाव, स्त्री नाश, धनहानि, अपयश
नैऋत्य	मन्दिर के प्रमुख व्यवस्थापकों को मृत्युभय, अपयश
पश्चिम	सम्पत्ति लाभ, चंचलता, समाज में गलतफहमियों का वातावरण, वैमनस्य
वायव्य	परस्पर मैत्री का अभाव, शत्रुवृद्धि, चोरी का भय
उत्तर	धनागम
मध्य	सर्व हानि

निष्कर्ष यह है कि केवल ईशान, पूर्व अथवा उत्तर में ही कूप खनन करवाना हितकारक है। यह ध्यान रखें कि कूप ठीक **ईशान, पूर्व या उत्तर में न हो।** उत्तर से ईशान के मध्य अथवा ईशान से पूर्व के मध्य खनन करें। यह अवश्य ध्यान रखें कि मन्दिर के मुख्य द्वार के ठीक सामने कुंआ अथवा किसी भी प्रकार का गड्ढा बनवाना अत्यंत अनिष्टकारक है।

नल कूप अथवा हैण्डपंप (BOREWELLS)

वर्तमान में यह पद्धति चल पड़ी है कि सुविधाजनक तथा अल्पस्थान के कारण कुए के स्थान पर नल कूप खुदाये जाते हैं। इनमें भी वही दिशा रखें जो कि कुआं खुदाने के लिये निर्देशित की गई है। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि नल कूप में ऐसी व्यवस्था हो कि जल छनाने के उपरान्त जिवानी पुनः जल में डाली जा सके।

यदि कुए उथले हों तथा आस पास की बस्ती के सैप्टिक टैंकों का गन्दला पानी कुएं में आने लगा हो तो कुएं के पानी का प्रयोग न करें। ऐसी स्थिति में नल कूप का ही पानी उपयोग करना उपयुक्त है। जिवानी डालने की व्यवस्था करना कदापि न भूलें।

भूमिगत जल टंकी

यदि मन्दिर में भूमिगत जल टंकी का निर्माण करना आवश्यक हो तो इसे केवल ईशान, पूर्व अथवा उत्तर की दिशा में बनवायें। अन्यत्र कदापि नहीं। इसे भी मुख्य द्वार से हटकर बनायें। किसी भी स्थिति में आग्नेय में जल टंकी न बनायें। नहीं भूमिगत न ओवर हैड टैंक।
ओवर हैड टैंक सिर्फ नैऋत्य में बनायें। आग्नेय में कदापि नहीं। दक्षिण में भी ओवर हैड टैंक बना सकते हैं। अन्य दिशाओं में जल टंकी समाज के लिये अनिष्टकारी होगी।

कूप खनन समय निर्धारण

विभिन्न मासों, नक्षत्रों एवं तिथियों में कूप खनन आरंभ करने के पृथक पृथक फल होते हैं। विद्वानों से पूछकर इसका निर्णय करना चाहिये।

विभिन्न मासों में कूप खनन का फल

मास	फल	मास	फल
चैत्र	कोष	आश्विन	भय
वैशाख	धान्य	कार्तिक	रोग
ज्येष्ठ	भय	मार्गशीर्ष	दुख
आषाढ़	शोक	पौर्ष	कीर्ति
श्रावण	नाश	माघ	द्रव्य अग्नि भय
भाद्रपद	सुख	फाल्गुन	यश

विभिन्न नक्षत्रों में कूप खनन का फल

रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा, शतभिषा, मघा, घनिष्ठा, श्रवण
इन नक्षत्रों में कूप खनन करना श्रेयस्कर है।

विभिन्न वारों में कूप खनन का फल

वार	फल
सोम, बुध, गुरु, शुक्र	श्रेष्ठ
मंगल, शनि, रवि	जल सूख जाता है, अनिष्ट, मन्द जलागम

विभिन्न तिथियों में कूप खनन

नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा, तिथियों में नामानुसार फल मिलता है।

कूप खनन में वर्जित तिथि

क्षय तिथि, वृद्धि तिथि तथा त्रयोदशी को कूप खनन आरंभ न करें।

भूमि जल शोधन

जल कूप खोदते समय कुछ विशिष्ट लक्षणों के द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि-यहाँ कुआँ खोदनें पर जल निकलेगा अथवा नहीं। प्रसंगवश कुछ लक्षणों को यहां उल्लेखित किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है :-

१. जहाँ की मिट्टी नील वर्ण की होती है वहाँ मधुर जल होता है।
२. जहाँ की मिट्टी भूरे मटमैले वर्ण की होती है वहाँ खारा जल होता है।
३. जहाँ की मिट्टी काले या लाल वर्ण की होती है वहाँ मीठा जल होता है।
४. जहाँ की बालू या रेतीली मिट्टी लाल वर्ण की होती है वहाँ कसैला जल होता है।
५. जहाँ की मिट्टी मुंज, कास या पुष्य युक्त होती है वहाँ मीठा जल होता है।
६. जिस भूमि में गोखरु, खस आदि वनौषधि हों तथा खजूर, जामुन, बहेड़ा, अर्जुन, नागकेशर, मेनंफल, बेंत, करंज, क्षीरीफल वाले वृक्ष होते हैं वहाँ मीठा जल लगभग ३० फूट दूर होता है।
७. अग्नि, भस्म, ऊंट, गर्दभ के जैसे रंग वाली भूमि होती है वहाँ जल नहीं होता है।
८. जल रहित प्रदेश में बेंत की झाड़ी हो तो उसके पश्चिम में, तीन हाथ दूर सवा पांच हाथ नीचे जल होगा।
९. जामुन वृक्ष के उत्तर दिशा में तीन हाथ दूर साढ़े सात हाथ नीचे जल मीठा होता है।
१०. पलाश सहित बेर के वृक्ष के पश्चिम में तीन हाथ दूर ग्यारह हाथ नीचे जल होता है।
११. जल रहित प्रदेश में सोना पाठा के वृक्ष के वायव्य में दो हाथ दूर साढ़े दस हाथ नीचे जल होता है।
१२. महुआ वृक्ष के उत्तर में वामी होने पर वृक्ष के पश्चिम में पांच हाथ दूर सवा छब्बीस हाथ नीचे फेन युक्त झिर (जल स्रोत) होता है।
१३. तिलक, भिलावा, बेंत, बेल, तेंदु, शिरीष, फालसा, अंजन तथा अतिबल आदि वृक्ष हरे-भरे पत्रयुक्त हों तथा पास में बांबी हो तो चौदह हाथ नीचे जल होता है।
१४. भार्गी, जमालगोटा, केवाच, लक्ष्मण, नेवारी ये वृक्ष जहाँ हो वहाँ से दक्षिण में दो हाथ दूर साढ़े दस हाथ नीचे जल होगा।
१५. जिस वृक्ष के फल-फूल में विकार उत्पन्न हो जाये उसके पूर्व में तीन हाथ दूर जल होगा।

१६. जहाँ वीरणा नामक तृण या दूब होती है वहाँ भूमि कोमल होती वहाँ साढ़े तीन हाथ नीचे जल होगा।

१७. जहाँ भूमि पर पैर मारने पर गम्भीर शब्द करे वहाँ साढ़े दस हाथ नीचे अत्यधिक जल होगा।

१८. जिस वृक्ष की शाखा झुककर पीले वर्ण की हो जाये वहाँ साढ़े दस हाथ नीचे जल होगा।

१९. सफेद फूल युक्त कांटे रहित भटकटैया के पौधे के साढ़े दस हाथ नीचे जल होगा।

२०. जहाँ भूमि पर भाप निकल रही हो अथवा धुआँ सरीखा लगे वहां सात हाथ नीचे अत्यधिक जल होगा।

२१. तृण रहित भूमि पर जहाँ तृण हो अथवा तृण सहित भूमि पर जहाँ तृण न हो वहाँ जल होगा।

२२. जिस भूमि पर उत्पन्न घास या अन्न स्वयं सूख जाता हो अथवा जिस भूमि पर चिकना अन्न पैदा हो अथवा जहाँ उत्पन्न पौधों के पत्ते पीले पड़ जाते हों वहाँ दो हाथ नीचे जल मिलेगा।

२३. जहाँ की मिट्टी चिकनी, बैठी हुई, बालुई तथा शब्द करती हुई हो वहाँ साढ़े दस हाथ नीचे जल होगा।

२४. जहाँ अपने आप अन्न सूख जाये या जहाँ बीज न उगे वहाँ चार हाथ नीचे जल होगा।

२५. जहाँ बिना घर बनाये कीड़े रहते हैं वहाँ सवा पाँच हाथ नीचे जल होगा।

२६. जहाँ भूमि पैर से दबाने पर दब जाये वहाँ सवा पाँच हाथ नीचे जल होगा।

२७. जहाँ की भूमि मछली अथवा इन्द्र धनुष के आकार की हो, जहाँ बाँबी हो वहाँ साढ़े चौदह हाथ नीचे जल होगा।

---------000--------

व्यक्त - अव्यक्त प्रासाद

मंदिरों में सूर्य किरण प्रवेश की अपेक्षा से दो भेद किये जाते हैं। सूर्य किरण प्रवेश को भिन्न दोष माना जाता है *:-

१. भिन्न दोष युक्त अथवा व्यक्त मंदिर

२. भिन्न दोष रहित अथवा अव्यक्त मंदिर

जिन मंदिरों में गर्भगृह में जाली अथवा द्वार से सूर्य किरणें आती हैं उन्हें व्यक्त मंदिर कहते हैं। इन्हें निरंधार मंदिरभी कहते हैं। ये मंदिर बिना परिक्रमा के बनाये जाते हैं। जिन मंदिर में गर्भगृह में सूर्य प्रकाश की किरणें आती हैं उन्हें भिन्नदोष युक्त माना जाता है।

जिन मंदिरों में गर्भगृह में सूर्य किरणें नहीं पहुंचती हैं उसे सांधार अथवा अव्यक्त मंदिर कहते हैं। सांधार मंदिर में गर्भगृह तथा परिक्रमा होती है। जिन मंदिरों का गर्भगृह लम्बे बरामदे, द्वार, जाली आदि से सूर्य किरणों से भेदा नहीं जाता है उन्हें अभिन्न अथवा भिन्न दोष रहित मंदिर की संज्ञा दी जाती है।

जिनालय सांधार अथवा भिन्न दोष रहित ही बनाना चाहिये। गौरी, गणेश, मनु के बाद होने वाले देवों के मंदिर भी भिन्न दोष रहित बनाना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सूर्य मन्दिर सांधार अथवा निरंधार अथवा भिन्न अथवा अभिन्न अपनी इच्छा एवं उपयोगिता के अनुरूप बना सकते हैं।

जिन देवों के मंदिर भिन्न दोष रहित बनाना है उन्हें भिन्न दोष सहित कदापि न बनायें।

---

*भिन्न दोषकरं यस्मात् प्रासाद मठ मन्दिरम्।
मृषाभिर्जालकैर्द्वारे रश्मिवातैः प्रभेदितम्॥ १७॥ प्रा. मं. ८/१७
ब्रह्म विष्णु शिवार्काणां भिन्नदोषकरं नहि।
जिन गौरी गणेशानां गृहं भिन्नं विवर्जयेत्॥१८॥ प्रा. मं. ८/१८
व्यक्ताव्यक्तं गृहं कुर्याद् भिन्नाभिन्न मूर्तिकम्।
यथा स्वामिशरीरं स्यात् प्रासादमपि तादृशम्॥ प्रा. मं. ८/१९
ब्रह्म विष्णुरवीणां च शम्भोः कार्या यदृच्छया।
गिरिजाया जिनादीनां मन्वन्तरभुवां तथा॥ अपराजित पृच्छा सूत्र ११०
एतेषां च सुराणां च प्रासादा भिन्न वर्जिताः।
प्रासाद मठ वेश्माख्य भिन्नानि शुभदानि हि॥ शि.र. ५/१३३
व्यक्ताव्यक्तं लयं कुर्यादभिन्न भिन्नमूर्तयोः।
मूर्ति लक्षणजं स्वामी प्रासादं तस्य तादृशम्॥शि.र. १३४
ब्रह्मा विष्णु शिवार्काणां गृहभिन्नं न दोषदम्।
शेषाणां दोषदं भिन्नं व्यक्ताव्यक्तगृहं शुभम्॥ प्रा.मंजरी/१५९
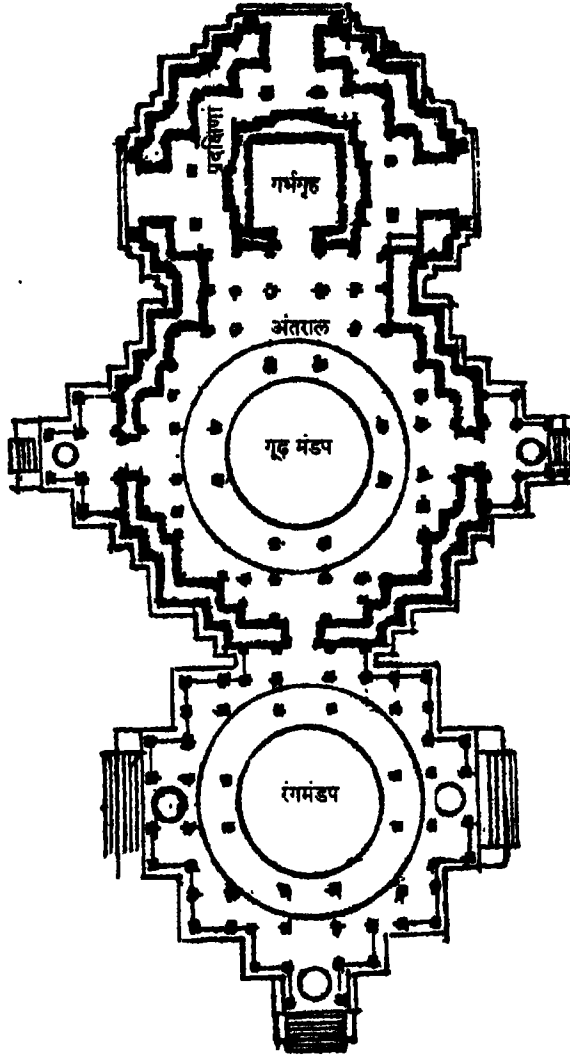
अव्यक्त (सांधार मंदिर)

प्राचीन स्थापत्य शैली के जिनालयों में हमें सर्वत्र उपरोक्त व्यवस्था दृष्टि गोचर होती है। सांधार मंदिरों में हमें जिन प्रतिमा के अतिशय के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। सांधार मंदिर बनाते समय प्राचीन शिल्पकारों ने पर्याप्त सावधानी रखी है। दक्षिण भारत के जैन जैनेतर मन्दिरों में हमें अनेक स्थानों पर यह व्यवस्था सामान्यतः देखने में आती है।

उत्तर भारत में कुछ समय से वास्तु शास्त्र के नियमों की उपेक्षा करके सुविधा के अनुसार जिनालयों का निर्माण किया गया है। इसके कारण जहां एक ओर प्रभावना एवं अतिशय का अभाव दृष्टि में आता है वहीं दूसरी ओर मन्दिरों की स्थिति भी जीर्णशीर्ण एवं उपेक्षा का शिकार हुई साथ ही वहां की सम्बन्धित स्थानीय समाज भी पतन के मार्ग पर अग्रसर रही। अतएव जिनालय निर्माणकर्ता प्रारंभ से ही मन्दिर निर्माण के मूल भूत सिद्धांतों का अवश्य अनुकरण करें।
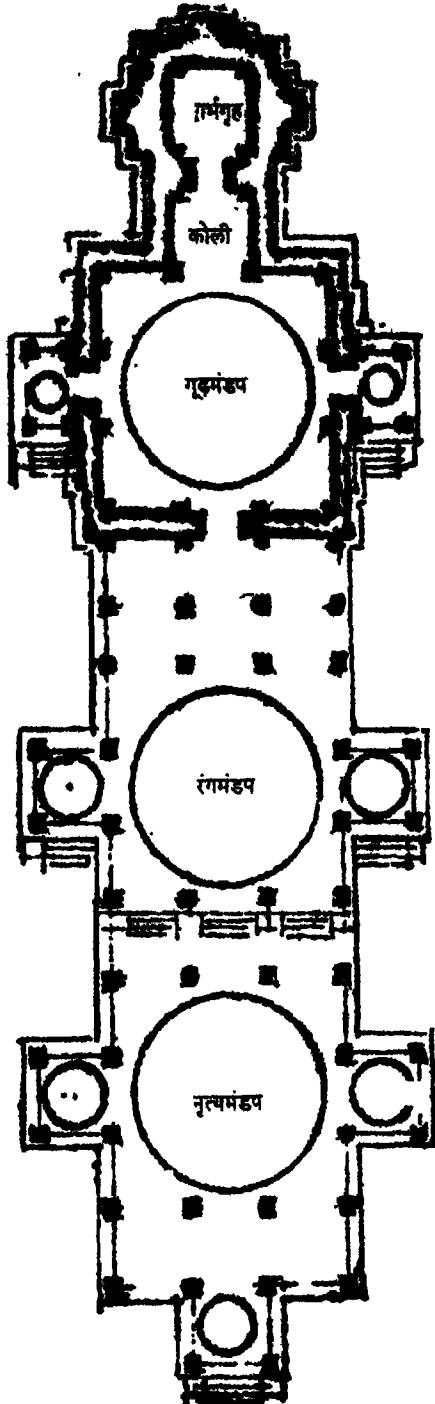
व्यक्त (निरंधार) मंदिर

गर्भगृह को हॉल में परिवर्तित करने का निषेध

वर्तमान काल में गर्भगृह को नष्ट कर उसके स्थान पर जनोपयोगी बड़े हॉल के निर्माण की धारणा प्रचलन में है। जिनालय में गर्भगृह अवश्य ही होना चाहिये। भले ही संख्या अधिक होने की स्थिति में दर्शक या उपासक गूढ़ मंडप अथवा आगे के मंडपों में बैठकर अर्चना कर सकते हैं। किन्तु किसी भी स्थिति में गर्भगृह सांधार ही बनायें। हाल में जिन प्रतिमा स्थापित न करें। अपरिहार्य परिस्थितियों में भी मूल नायक प्रतिमा गर्भगृह में अवश्य ही रखें।

जिन मंदिरों में गर्भगृह को रुपांतरित कर हॉल में परिवर्लित किया गया है वहाँ पर निरंतर अनिष्टकारी घटनाएं घटती हैं। ऐसा कार्य करने वाले तथा करवाने वाले दोनों ही भीषण संकटों का सामना करते हैं। अतएव इस परिस्थिति से सदैव बचना चाहिए।

वर्तमान युग में मन्दिर निर्माण

वर्तमान काल में मन्दिर निर्माण का कार्य पूर्णतः प्राचीन शैली से किया जाना अत्यंत व्यय साध्य कार्य है। अतएव वर्तमान युग के देवालयों में प्राचीन सिद्धांतों का अनुसरण एक सीमा तक ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शहरीकरण के युग में मन्दिर निर्माण के लिये पर्याप्त भूमि भी अनुपलब्ध होती है। ऐसी स्थिति में मन्दिर निर्माण करते समय मूल सिद्धांतों का पालन करते हुए मन्दिर बनाना चाहिये।

प्रवेश द्वार के उपरांत एक अथवा दो कक्ष दर्शनार्थियों के लिए निर्माण करना चाहिये। इसके उपरांत गर्भगृह का निर्माण करना चाहिये। गर्भगृह में वेदी पर देव प्रतिमा की स्थापना करना चाहिये। गर्भगृह पर शिखर का निर्माण करना चाहिये। शिखर एवं गर्भगृह, वेदी तथा प्रतिमा का निर्माण सिद्धांत के अनुसार ही करना चाहिये। इसमें किसी भी प्रकार की अशुद्धि अथवा असावधानी देवालय निर्माता, शिल्पकार तथा समाज सभी के लिए अनिष्टकारी है। वेदी पर प्रतिमा की स्थापना करते समय द्वार के जिस भाग में दृष्टि आना चाहिये, वहीं पर आये, यह अत्यंत गंभीरता पूर्वक ध्यान रखें।

द्वार का मान शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार ही रखें। मण्डप अथवा कक्ष भीतर से आयताकार अथवा वर्गाकार ही बनायें। मंडप अष्टास्र भी बना सकते हैं किन्तु दोष एवं वेध का परिहार करने के उपरांत ही बनाये।

जिन मन्दिरों को व्यक्त अथवा भिन्न दोष सहित बनाया जा सकता है उन्हें ही व्यक्त बनायें। जिन मन्दिरों को सूर्य किरण वेधित (भिन्न दोष) रहित बनाना है वहाँ गर्भगृह एवं मण्डप इस प्रकार अवश्य बनायें कि सूर्य किरण गर्भगृह में सीधे प्रवेश न करें। यह प्रकरण व्यक्त अव्यक्त प्रासाद प्रकरण में भी अवलोकन करें।

बहुमंजिला मंदिर

स्थानाभाव के कारण तथा बड़ी समाजों की उपयोगिता के अनुरुप बहुमंजिला मन्दिर भी बनाये जाते हैं। बहुमंजिला मन्दिरों को निर्माण करते समय निम्न लिखित विशेष नियम ध्यान में रखना आवश्यक है -

१. वेदी के ऊपर वेदी बनायें ऐसा निर्माण करें।
२. यदि वेदी के ऊपर वेदी बनाना इष्ट न हो तो यह ध्यान रखें कि उपासकों का आवागमन वेदी के ऊपर से न होवे।
३. यदि ऊपरी मन्जिल में वेदी बनाना है तथा नीचे की मंजिल में नहीं बनाना हो तो वेदी नीचे से ठोस बनायें, पोली नहीं। वेदी नीचे की मंजिल से ठोस स्तंभ के रूप में ऊपर तक ले जाएं।

४. चाहे मंजिल नीचे की हो अथवा ऊपर की, दृष्टि वेध न आये।
५. वेदी में भगवान की प्रतिमा का मुख अनुकूल दिशा में अर्थात् उत्तर या पूर्व में ही रखें।
६. प्रवेश भगवान के सामने से ही रखें।
७. सीढ़िया दक्षिणी अथवा पश्चिमी दीवाल से लगकर बनायें।
८. किसी भी स्थिति में भिन्न दोष रहित वाले देवों के मंदिर के गर्भगृह में सीधे सूर्य किरण न जाये, इसका ध्यान रखें।
९. गर्भगृह को तोड़कर हॉल नहीं बनाये। हाल या मण्डप सामने ही बनाये।
१०. पूरे मन्दिर में कुल वेदियों की संख्या विषम रखें। वेदियों में प्रतिमाओं एवं कटनियों की संख्या भी विषम रखें।
११. सभी सामान्य वास्तु शास्त्र नियमों का पालन करें।
१२. यदि मन्दिर में ठीक सामने से प्रवेश असंभव हो तो यह ध्यान रखें कि वेदी प्रतिमा अथवा मूलनायक प्रतिमा की पीठ द्वार की तरफ न आये।
१३. अपरिहार्य स्थिति में भी पूर्व अथवा उत्तर में से एक दिशा से प्रवेश अवश्य ही रखें। ऐसा न करने से समाज में अशुभ एवं अप्रिय वातावरण निर्माण होंगे।
१४. गर्भगृह में स्थान यदि कम भी पड़ता हो तो उसे बड़ा न करायें। भले ही समक्ष में वृहदाकार मण्डप बना लेवें। गर्भगृह का मूल स्वरुप यथावत् रखें।
१५. मन्दिर का धरातल सड़क से नीचा न हो।
१६. आधुनिकता के फेर में मन्दिर की पवित्रता, सादगी एवं धार्मिकता में न्यूनता न आने देवें। सजावट मनोहारी तो हो लेकिन ऐसा करना पर्याप्त मर्यादाओं के भीतर हो।

मन्दिर की अभिमुख दिशा निर्णय

मन्दिर निर्माण का निर्णय करते समय प्रवेश दिशा का निर्णय करना आवश्यक है। मन्दिर का प्रवेश गर्भगृह की सीध में होता है। गर्भगृह में स्थित प्रतिमा की दृष्टि द्वार की अपेक्षा सही स्थान पर होना आवश्यक होता है। जिस ओर मूलनायक प्रभु का मुख होगा, उसी दिशा में मन्दिर का भी मुख होगा तथा उसी तरफ मन्दिर का मुख्य द्वार होगा। जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमाओं का मुख सिर्फ दो ही दिशाओं में किया जाना मंगलकारी है :- ये दिशाएं हैं -

१. पूर्व २. उत्तर

किन्हीं किन्हीं मन्दिरों में तथा मानस्तंभ में भगवान की चार प्रतिमाएं चारों दिशाओं में मुख करके स्थापित की जाती है। ऐसी प्रतिमा एवं मन्दिर सर्वतोभद्र प्रतिमा कहलाती हैं। ऐसी स्थिति में मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार उत्तर या पूर्व दिशा में ही रखना चाहिये।

किसी भी स्थिति में भगवान का मुख विदिशाओं में नहीं करना चाहिये। अन्य दिशाओं में भगवान का मुख नहीं रखना चाहिये।

भगवान का मन्दिर समवशरण का प्रतीक होता है। समवशरण में भी भगवान का श्रीमुख पूर्व की ओर होता है किन्तु भगवान के दिव्य अतिशय से चारों दिशाओं की ओर मुख प्रतीत होता है। दर्शक को भगवान का मुख अपने सामने ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार का सर्वतोभद्र मन्दिर सर्वकल्याण का कारण है।

जैनेतर परम्पराओं में अभिमुख

जैनेतर परम्पराओं में विदिशा एवं अन्य दिशाओं में देवों का मुख करके स्थापना की जाती है। वानरेश्वर हनुमान की प्रतिमा नैऋत्य दिशाविमुख रख सकते हैं किन्तु अन्य किसी देव की स्थापना विदिशाविमुख न करें। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, कार्तिकेय देव पूर्व अथवा पश्चिमाभिमुख रख सकते हैं। इनका मुख उत्तर-दक्षिण में नहीं करें।* गणेश, भैरव, चंडी, नकुलीश, नवग्रह, मातृदेवता, कुबेर का मन्दिर दक्षिणाभिमुख बना सकते हैं।**

नगर में मन्दिर स्थापना तथा अभिमुख

नगर के मध्य में अथवा नगर के बाहर स्थापित जैन मन्दिर में भगवान का मुख नगर की ओर होना मंगलकारक है।

गणेश, कुबेर एवं लक्ष्मी की स्थापना नगर द्वार पर करना चाहिये।

यह स्मरण रखें कि भगवान की पूजा भी उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुख करके करना चाहिये। #

चारों दिशाओं की ओर मुख वाले वीतराग देव के प्रासाद नगर में होना सुख कारक होता है। (इसका तात्पर्य सर्वतोभद्र प्रासाद से है।) ##

---

*प्रा. मं. २/३७, **प्रा.मं. २/३९, #प्रा.मं. २/३९, ##उ.श्रा. ११६

समवशरण मन्दिर

तीर्थंकर प्रभु को जब पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है तब उसके उपरान्त उनकी वाणी का प्रसार एक धर्मसभा के माध्यम से होता है। यह धर्मसभा इन्द्र के आदेश से कुबेर के द्वारा बनाई जाती है। वास्तु की यह एक अनूठी रचना होती है। इस धर्मसभा में देव, देवियां, मनुष्य, साधु, आर्यिकायें तथा पशु सभी जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यवाणी को सुनते हैं।

समवशरण की आकृति के अनुरुप ही जिनेन्द्र प्रभु का समवशरण मन्दिर बनाने की प्रथा है। वास्तविक समवशरण में आठ भूमियां तथा श्रोताओं के लिये बारह विभाग होते हैं। इन बारह विभागों में विभिन्न वर्ग के श्रोता बैठते हैं।

समवशरण की रचना में चारों दिशाओं में मानस्तंभ होते हैं। मध्य में चारों दिशाओं में मुख करके जिनेन्द्र प्रभु की चार प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं। इसका कारण यह है कि मूल समवशरण में जिनेन्द्र प्रभु यद्यपि एक ही तरफ पूर्व की ओर मुख करके बैठते हैं किन्तु अतिशय के कारण उनका मुख चारों तरफ दिखता है। सभी श्रोताओं को उनका दर्शन सीध में ही होता है।

समवशरण का आकार गोल होता है। इनमें आठ भूमियां होती हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. चैत्य प्रासाद भूमि
२. खातिका भूमि
३. लता भूमि
४. उपवन भूमि
५. ध्वज भूमि
६. कल्प भूमि
७. भवन भूमि
८. श्री मण्डप भूमि

बारह प्रकार के विभागों में श्रोताओं का विभाजन निम्नानुसार है -

१. गणधर एवं मुनिगण
२. कल्पवासी देवियां
३. आर्यिका एवं श्राविकायें
४. ज्योतिषी देवियां
५. व्यन्तर देवियां
६. भवनवासी देवियां

७. भवनवासी देव
८. व्यन्तर देव
९. ज्योतिषी देव
१०. कल्पवासी देव
११. मनुष्य
१२. पशु-पक्षी

समवशरण की रचना

समवशरण की सामान्य भूमि वृत्ताकार होती है। उसकी प्रत्येक दिशा में सीढ़ियां होती हैं। इनकी संख्या २०,००० हैं। इसमें चार कोट, पांच वेदियां होती है इनके मध्य आठ भूमिया तथा सर्वत्र अन्तर भाग में तीन-तीन पीठ होते हैं।

प्रत्येक दिशा में सोपान के लगाकर आठवीं भूमि के भीतर गन्धकुटी की प्रथम पीठ तक एक-एक वीथी (सड़क) होती है। वीथियों के दोनों तरफ वीथियों के लम्बाई के बराबर दो वेदियां होती हैं।

आठों भूमियों के मध्य में अनेक तोरणद्वारों की रचना होती है।

कोटों के नाम तथा विवरण

प्रथम धूलिशाल कोट - इसके चारों दिशाओं में चार तोरणद्वार हैं। जिनके बाहर मंगल द्रव्य, नवनिधि तथा धूपघट से युक्त देवियों की प्रतिमायें हैं। दो द्वारों के मध्य के स्थान में नाट्य शालायें हैं। इनके द्वारों की रक्षा का दायित्व ज्योतिष देवों का है।

धूलिशाल कोट के भीतर चैत्य प्रासाद भूमियां है। जहां पांच-पांच प्रासादों के अन्तराल से एक-एक चैत्यालय स्थित है।

उपरोक्त नाट्यशालाओं में ३२ रंगभूमियां हैं। प्रत्येक में ३२ भवनवासी देव कन्याए नृत्य करती हैं।

प्रथम चैत्य प्रासाद भूमि के बहुमध्य भाग में चारों वीथियों के मध्य में गोलाकार मानस्तम्भ स्थित है।

इस धूलिशाल कोट से आगे प्रथम वेदी का निर्माण धूलिशाल कोट के सरीखा ही है। इस वेदी के आगे खातिका भूमि है, जिसमें जल से भरी हुई खातिकाएं हैं। इसके आगे दूसरी वेदी है।

दूसरी वेदी के आगे लता भूमि है। यह क्रीड़ा पर्वत एवं वापिकाओं से शोभायमान है। इसके आगे दूसरा कोट है जो प्रथम कोट की भांति है। इसकी रक्षा यक्ष देव करते हैं।

इसके आगे उपवन नाम की चौथी भूमि है। यह अनेक प्रकार के वन, उपवन एवं चैत्यवृक्षों से सुसज्जित है। यहाँ १६ नाट्यशालाएं हैं, प्रथम आठ नाट्यशालाओं में भवनवासी

देवकन्याएं तथा अगली आठ में कल्पवासी देवकन्याएं नृत्य करती हैं।

इसके आगे यक्ष देवों से रक्षित तीसरी वेदी है। इसके आगे ध्वज भूमि है जिसकी प्रत्येक दिशा में सिंह, गज आदि दस प्रकार के चिन्हों से अंकित प्रत्येक चिन्ह की १०८-१०८ ध्वजाएं हैं तथा प्रत्येक ध्वजा १०८ क्षुद्रध्वजाओं से संयुक्त है।

इसके आगे प्रथम कोट सरीखा ही तृतीय कोट है जिसके आगे छटवीं कल्प भूमि है। यह दस भांति के कल्पवृक्षों तथा वापिका, प्रासाद, सिद्धार्थ वृक्षों (चैत्यवृक्षों) से शोभायमान हो रही है। इसमें प्रत्येक वीथी से लगकर चार-चार नाट्यशालाएं हैं जिनमें ज्योतिष देवकन्याएं नृत्य करती हैं। इसके आगे भवनवासी देवों से रक्षित चौथी वेदी हैं।

इसके आगे भवनभूमि है जिसमें अनेकों ध्वजा पताका युक्त भवन तथा पार्श्व भागों में प्रत्येक वीथी के मध्य में ९-९ स्तूप हैं जो जिन प्रतिमाओं से संयुक्त हैं। ये कुल ७२ हैं। इसके आगे चतुर्थ कोट है जो कल्पवासी देवों से रक्षित हैं।

इसके आगे श्रीमण्डप भूमि है। इसमें कुल १६ दीवारें तथा उनके मध्य १२ कक्ष हैं इनमें पूर्व दिशा से प्रथम कक्ष गिना जाता है। इनमें बैठने वाले श्रोताओं का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

इसके आगे पंचम वेदी है। इसके आगे प्रथम पीठ है। इस पर १२ कक्ष तथा ४ वीथियों के सामने १६-१६ सीढ़ियां हैं। इस पीठ पर चारों दिशाओं में एक-एक यक्षेन्द्र स्थित हैं जो सिर पर धर्मचक्र धारण कर खड़े हैं। इस पीठ पर चढ़कर बारह गण प्रदक्षिणा देते हैं।

प्रथम पीठ के ऊपर दूसरा पीठ है जिसमें चारों दिशाओं सीढ़ियां हैं। सिंह, वृषभ आदि ध्वजाएं तथा अष्ट मंगल द्रव्य, नवनिधि, धूपघट आदि इसी पीठ पर हैं।

इसके ऊपर तीसरी पीठ पर चारों दिशाओं में आठ-आठ सीढ़ियां है। इस पीठ के ऊपर गन्धकुटी है। यह अनेक ध्वजाओं से सुशोभित है। गन्धकुटी के मध्य में पादपीठ सहित सिंहासन है जिस पर भगवान अंतरिक्ष में चार अंगुल अंतर करके विद्यमान हैं।

तीर्थंकर वर्धमान स्वामी के समवशरण के आकार का प्रमाण

सामान्य भूमि	-	१ योजन
सोपान	-	१/१२ कोस लंबाई तथा १ हाथ चौड़ाई
वीथी	-	लम्बाई २३/१२ को. तथा चौड़ाई १ हाथ
वीथी के दोनों पार्श्वों में वेदी उंचाई	-	६२, १/२ धनुष
प्रथम कोट की उंचाई	-	२८ हाथ
मूल की चौड़ाई	-	१/७२ को.
तोरणद्वार	-	कोट से उंची
चैत्य प्रासाद	-	उंचाई ८४ हाथ
चैत्य प्रासाद भूमि	-	चौड़ाई ११/७२ योजन
नाट्यशाला	-	उंचाई ८४ हाथ
प्रथम वेदी (उंचाई एवं चौड़ाई प्रथम कोटवत्)	-	१/७२ को. २८ हाथ
खातिका भूमि (चौड़ाई प्रथम चैत्य प्रासादवत्)	-	८४ हाथ
द्वितीय वेदी (चौड़ाई प्रथम कोट से दूनी)	-	१/३६ को.
लता भूमि (चौड़ाई चैत्य प्रासाद से दूनी)	-	११/३६ यो.
द्वितीय कोट. उंचाई प्रथम कोटवत्	-	२८ हाथ
चौड़ाई - प्रथम कोट. से दूनी	-	१/३६ को.
उपवन भूमि चौड़ाई	-	११/३६ यो.
तृतीय वेदी उंचाई एवं चौड़ाई	-	१/३६ को २८ हाथ
ध्वजा भूमि चौड़ाई	-	११/३६ योजन
ध्वज स्तंभ उंचाई एवं चौड़ाई	-	८४ हाथ चौ. ,२२/३ अं.
तृतीय कोट उंचाई एवं चौड़ाई	-	१/३६ योजन, २८ हाथ
कल्प भूमि चौड़ाई	-	११/३६ योजन
चतुर्थ वेदी उंचाई एवं चौड़ाई	-	१/७२ कोस, २८ हाथ
भवन भूमि चौड़ाई	-	११/३६ योजन
भवन भूमि की पंक्तियां	-	चौड़ाई ११/७२ कोस
स्तूप उंचाई	-	८४ हाथ
चतुर्थ कोट	-	चौड़ाई १२५/९ धनुष
श्रीमण्डप के कक्ष उंचाई	-	८४ हाथ
चौड़ाई	-	१२५०/९ धनुष
पंचम वेदी चौड़ाई	-	१२५/९ धनुष
प्रथम पीठ उंड़ाई	-	२/३ धनुष
चौड़ाई	-	१/६ को.
मेखला	-	६२, १/२ ध.
दूसरी पीठ	-	१/२ ध. ऊ. / चौ. ५/४८ को.
तीसरी पीठ	-	१/२ ध. ऊ. / चौ. ५/१९२ को.
मेखला	-	६२, १/२ ध.
गंधकुटी	-	चौ. ५० ध. ऊ. ७५ ध.

तीर्थंकर के समवशरण की गंध कुटी
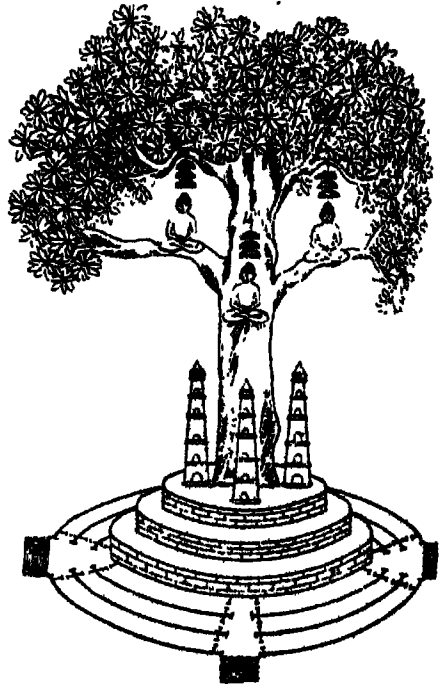
समवशरण स्थित चैत्य वृक्ष भूमि

समवशरण मंदिर की वास्तु रचना

जिनेन्द्र प्रभु की धर्मसभा की रचना कुबेर करता है। उसी दिव्य रचना की मानव निर्मित प्रतिकृति समवशरण मंदिर के रुप में बनाई जाती है।

समवशरण मंदिर चतुर्मुखी प्रासाद होता है। इसकी रचना पूर्णतः वृत्ताकार होती है। इसमें आठ भूमियां बनाई जाती हैं। इनका क्रम सोपानवत् बनाया जाता है। बारह विभाग श्रोताओं के कोठों के रुप में बनाये जाते हैं। तीर्थंकर प्रभु की चार प्रतिमाएं पद्मासन में चारों दिशाओं को मुख करके स्थापित की जाती हैं। चारों दिशाओं में मानस्तंभ की रचना की जाती है। तीर्थंकर प्रभु का आसन कमल का होता है। ऊपर छत्र तथा अशोक वृक्ष बनाये जाते हैं। कोठों में श्रोताओं की प्रतिकृतियां बनाकर अत्यंत सुन्दर रुप से स्थापित की जाती हैं। श्रोताओं का मुख भगवान की ओर रखा जाता है।

समवशरण की रचना वास्तविक समवशरण के अनुपात के अनुरुप ही करना चाहिए। रचना की रंग योजना मनोरम होनी चाहिए। अधिक गाढ़े अथवा काले रंगों का प्रयोग कदापि न करें। चित्रकारी आदि के रंग भी इस प्रकार संयोजित करें कि वे नयनाभिराम हों।

समवशरण की रचना का आकार सामान्यतः लगभग २१ हाथ (४२ फुट) के व्यास में करना चाहिए जिसमें भीतरी गंध कुटी जहां भगवान एवं श्रोतावर्ग बैठते हैं वह १५ हाथ (३० फुट) होना चाहिए।
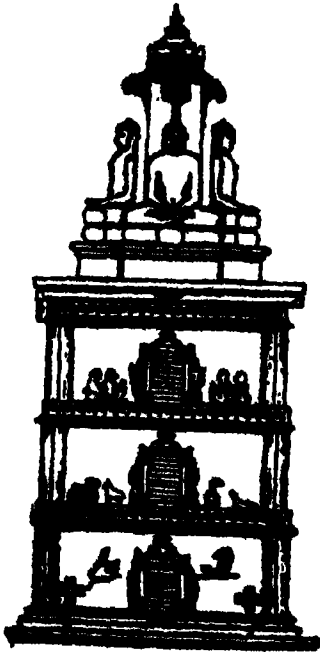
समवशरण वेदी
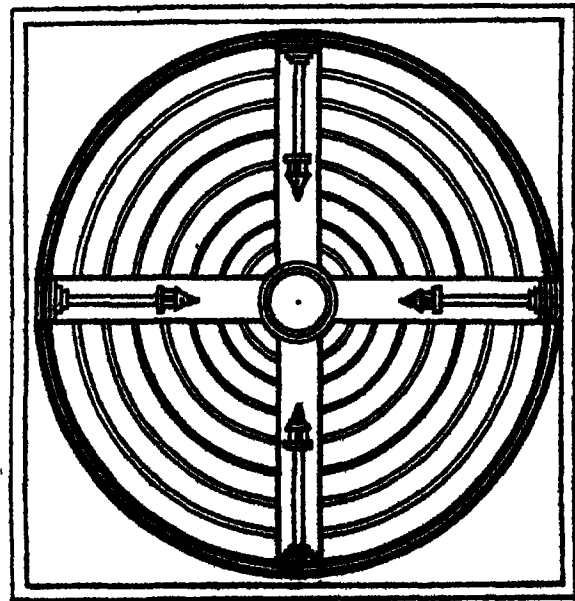
समवशरण

मान स्तम्भ

जिनेन्द्र प्रभु की धर्मसभा समवशरण कहलाती है। यह सौधर्मेन्द्र के निर्देश पर कुबेर द्वारा निर्मित की जाती है। इसमें जिनेन्द्र प्रभु मध्य में विराजते हैं तथा देवों की विक्रिया से चारों दिशाओं में सामने ही मुख प्रतिभासित होता है। प्रभु की दृष्टि के समक्ष धर्मसभा से बाहर के भाग में चारों दिशाओं में एक एक मानस्तंभ निर्मित होता है। यह ऊंची एवं भव्य मनोहारी रचना दर्शन मात्र से शांति का अनुभव कराती है तथा इसके दर्शन से अभिमान समाप्त होकर सद्ज्ञान की उपलब्धि होती है।

जिनेन्द्र प्रभु का आलय अर्थात् जिन मन्दिर भी जिन समवशरण की प्रतिकृति मानी जाती है। जिन मन्दिर के समक्ष मुख्य द्वार के सामने मानस्तंभ निर्माण करने की परम्परा सर्वत्र है। मानस्तंभ के ऊपरी भाग में स्थित जिन प्रतिमाओं के दर्शन करके उपासक बिना मन्दिर में प्रवेश किये भी शांति का अनुभव करता है। मान स्तंभ के दर्शन करते ही जिन मन्दिर में प्रवेश कर जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन करने की भावना होती है। अतएव सर्वत्र ही मुख्य जिनालय के समक्ष मानस्तंभ स्थापित किए जाते हैं। देवगढ़ आदि स्थानों के कलात्मक मान स्तंभ दर्शनीय हैं तथा स्थापत्य कला के वैभव को बतलाते हैं।

जैन शास्त्रों में अकृत्रिम जिन चैत्यालयों में भी मान स्तंभ का वर्णन मिलता है।

मान स्तंभ निर्माण करते समय ध्यातव्य निर्देश

१. मन्दिर के द्वार के ठीक सामने समसूत्र में मान स्तंभ बनायें।

२. मान स्तंभ की ऊंचाई का मान मूलनायक प्रतिमा के मान के बारह गुने के बराबर होना चाहिये।

३. मान स्तंभ वृत्ताकार, चतुरस्र अथवा अष्टास्र होना चाहिये।
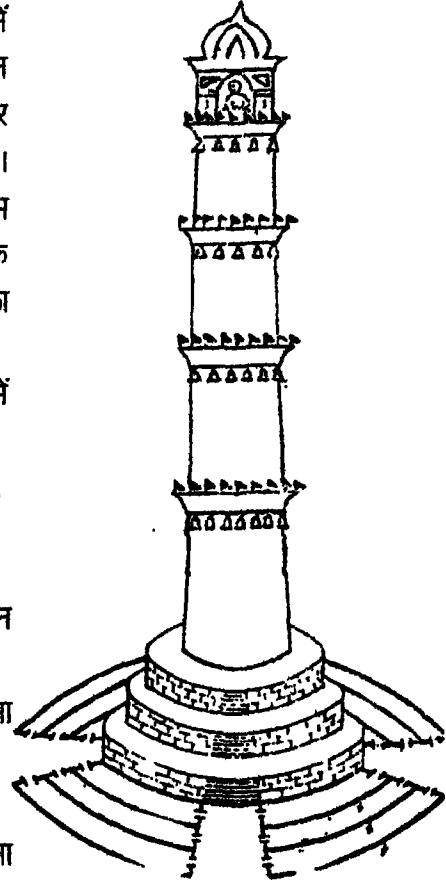
मानस्तंभ

४. ऊपर निर्मित मन्दिरनुमा गुमटी में चार जिन प्रतिमाएं एक ही नाप की तथा मूलनायक प्रभु के नाम की स्थापित करें। चारों जिन प्रतिमाएं या तो एक ही पत्थर में निर्मित हों अथवा चार पृथक पृथक हों।

५. मान स्तंभ के ऊपर शिखर तथा कलश का निर्माण करना चाहिये।

६. मानस्तंभ में निर्मित जिनालय वर्गाकार ही होना चाहिये।

७. मानस्तंभ के नीचे के भाग में तीन कटनियां बनाना चाहिये। प्रथम कटनी में तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्न चित्रित करें।

द्वितीय कटनी में अष्ट प्रातिहार्यों का चित्रण करें।

तृतीय कटनी में चारों ओर चार जिन प्रतिमाओं की स्थापना करें।

मान स्तंभ की प्रतिमाएं तीर्थंकर के चिन्ह युक्त होवें। इनका खड्गासन होना श्रेष्ठ है।

८. मान स्तंभ पर स्वर्ण कलश आरोहित करें तथा ध्वजारोहण करें।

९. मान स्तंभ की प्रतिमाओं के पास अष्ट मंगल द्रव्यों की स्थापना करें।

१०. मान स्तंभ के नीचे के भाग की जिन प्रतिमा तथा मूल नायक प्रतिमा की दृष्टि एक सूत्र में होना चाहिये।

११. मान स्तंभ की प्रतिमाओं का दैनिक अभिषेक आवश्यक नहीं है। फिर भी यदि वार्षिक रुप से समारोह पूर्वक अभिषेक किया जाये तो अति उत्तम है।

१२. मान स्तंभ का निर्माण मन्दिर से कुछ दूरी पर करें ताकि दृष्टि भेद न हो।

१३. मान स्तंभ के चारों ओर लगभग एक गज ऊंचा परकोटा बनायें। यह वर्गाकार बनायें तथा चारों दिशाओं के मध्य में शोभायुक्त द्वार बनायें। परकोटे को कलाकृतियों से सुसज्जित करें।

१४. परकोटे की सजावट के लिये कलापूर्ण अष्ट मंगलद्रव्य, धार्मिक बोधवाक्य, सूत्र आदि, नवकार मंत्र लिखवाकर करना चाहिये।

१५. मान स्तंभ के आस-पास पूर्ण स्वच्छता रखें।

मानस्तंभ के प्रकरण में यह विशेष बात है कि अशौच अथवा सूतक पातक आदि की स्थिति में भी जिन बिम्ब का दर्शन किया जा सकता है। इसमें कोई दोष नहीं है। साथ ही इतर लोग भी बाहर से ही जिन प्रतिमा के दर्शन बगैर मन्दिर में प्रवेश किये कर सकते हैं।

कीर्ति स्तम्भ

धर्म प्रभावना के निमित्त विशेष उत्सवों अथवा अवसरों की स्मृति सुरक्षित रखने हेतु कीर्ति स्तम्भों की रचना की जाती है। धर्मावलम्बी जनता को इन स्तमों के निमित्त से धार्मिक जानकारी एवं संदेश मिलता है।

धार्मिक महोत्सव, तीर्थंकर प्रभु की जन्मशती आदि अवसरों पर कीर्ति स्तंभ बनाये जाते हैं *इनकी स्थापना ऐसे स्थान पर की जाती है जहाँ ये जन सामान्य को आकर्षित करें तथा धार्मिक संदेश* एवं सर्वतोभद्र की भावना को सम्प्रेषित करें।

नगर के प्रमुख मार्ग, चौक, पार्क अथवा मंदिर प्रांगण में इनका निर्माण किया जाता है।
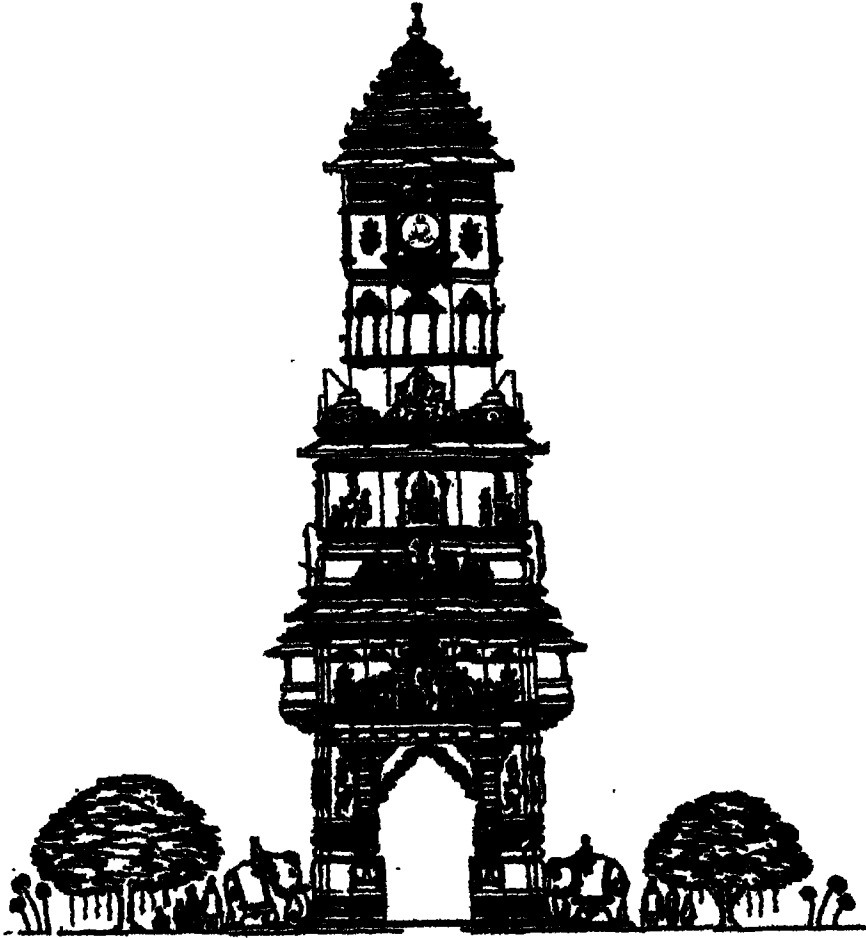
कीर्ति स्तम्भ

रचना

एकदम वृत्ताकार अथवा चौकोर वर्गाकार परिधि में चारों तरफ जाली लगाकर एक क्षेत्र बनाया जाता है। इसके मध्य भाग में एक स्तंभ लगाया जाता है। स्तंभ वृत्ताकार, अष्टास्र अथवा वर्गाकार (चौकोर) होना चाहिए। स्तंभ पर आकर्षक कलाकृतियां बनाई जाती है।

स्तंभ के ऊपर एक चक्राकार वृत्त लगाया जाता है इसे धर्मचक्र भी कहते है। इस चक्र में चौबीस तीर्थंकरों के प्रतीक चौबीस आरे होते है। सामान्यतः इसका आकार(व्यास) स्तंभ की ऊँचाई का एक तिहाई अथवा एक चौथाई भाग होता है।

कीर्ति स्तंभों की अन्य कलात्मक रचना भी की जाती है। घण्टाघर नुमा शैली में भी इसे बनाते है। कीर्ति स्तंभ के नीचे के भाग में अनेकान्त, स्याद्वाद, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि दर्शाने चित्र वाले बोध वाक्य अथवा धर्मसूत्र भी लिखे अथवा उत्कीर्ण किये जाते है। महुआ(गुजरात) में ऐसा स्तंभ है। चित्तौड़गढ़ का कीर्ति स्तंभ विश्वविख्यात है। भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य में सारे भारत में अनेकों नगरों में प्रमुख स्थलों पर महावीर कीर्ति स्तम्भ की स्थापना की गई है।
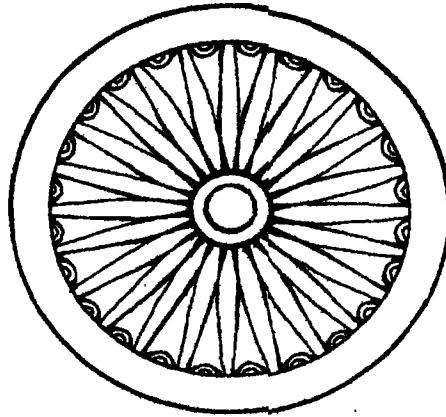
धर्म चक्र

सहस्त्रकूट जिनालय

जिनेन्द्र प्रभु की १००८ प्रतिमाओं के मन्दिर को सहस्त्रकूट चैत्यालय की संज्ञा दी जाती है। इस जिनालय में मन्दिर की आकृति में ऐसे जिनालय शिखरयुक्त होते हैं। अरिहन्त प्रभु के १००८ शुभ लक्षणों के प्रतीक स्वरुप भगवान की ही १००८ प्रतिमाओं के रुप में आराधना करने के लिये भक्त जन इस प्रकार के जिनालयों का निर्माण करते हैं।

सहस्त्रकूट जिनालयों की रचना चारों दिशाओं में चार द्वार युक्त होना चाहिये। सहस्त्रकूट जिनालय में मूलनायक के स्थान पर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा स्थापित की जाना चाहिये। प्रथम तीर्थकर ने एक हजार वर्ष तक तप किया था, उसके प्रतीक स्वरुप १००० प्रतिमाओं के जिनालय बनाने का कार्य भी भक्तों द्वारा किया गया।

नामानुसार इस प्रकार के मन्दिर में १००० कूट (शिखरयुक्त मन्दिर) होना चाहिये। देवगढ़ में एक सहस्त्रकूट जिनालय है जिसमें शिखरयुक्त मन्दिरों का पृथक निर्माण नहीं है वरन् मन्दिर की बाहरी दीवाल पर ही १००० लघु मन्दिर उत्कीर्ण किये गये हैं।

कारंजा (जि. वाशिम, महाराष्ट्र) में प्राचीन बलात्कार गण मन्दिर में पीतल/कांसे से बनी एक सुन्दर रचना सहस्त्रकूट जिनालय की है। जिन्तूर, श्री महावीरजी आदि स्थानों पर भी ऐसी संरचनायें हैं।

सहस्त्रकूट जिनालय में १०२४ प्रतिमाएं भी स्थापित की जाती हैं। उनकी गणना करने की विधि विशेषतः श्वे. परंपरा में इस भांति है -

५	- भरत क्षेत्र		
५	ऐरावत क्षेत्र	कुल १० क्षेत्र की प्रत्येक में तीन काल की चौबीसी	
	= १० X ३ X २४	=	७२०
	पंच विदेह में अधिकतम जिन एक साथ	-	१६०
	वर्तमान चौबीसी के प्रत्यके के पंच कल्याणक		१२०
	शाश्वत जिन ऋषभानन आदि		४
	(चारों तरफ स्थापित मुख्य प्रतिमा)		-------
			१०२४

चारों दिशाओं में प्रत्येक में २५६ प्रतिमायें स्थापित की जाती है।
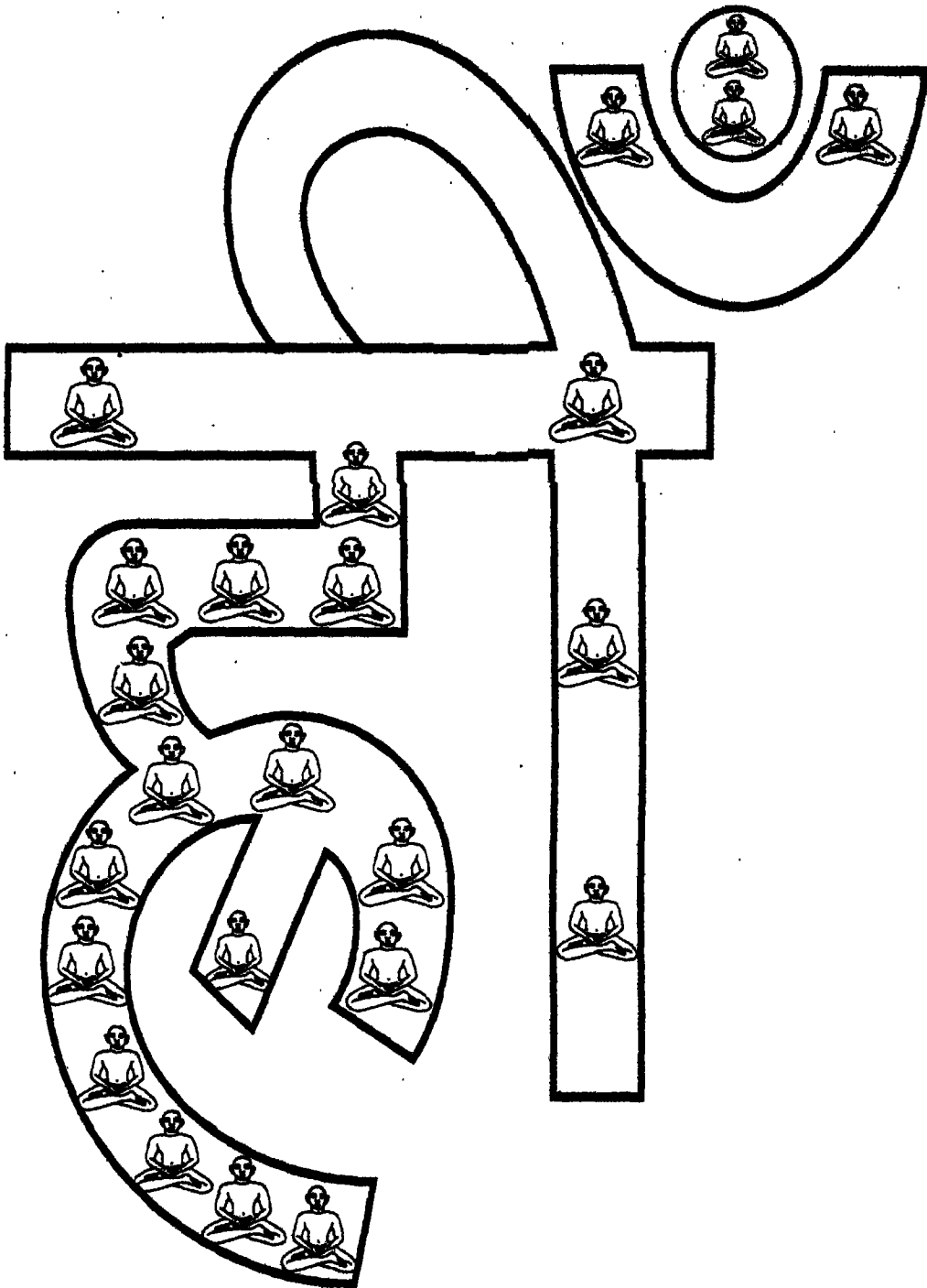
ह्रीं जिनालय में २४ तीर्थंकरों की स्थापना

ह्रीँ जिनालय

ह्रीँ मूल बीजाक्षर है। मन्त्रों में यह बीजाक्षर कल्याण के लिये प्रयुक्त किया जाता है। ॐ की भांति ही ह्रीँ भी सर्वकल्याण मंगल के लिये जैन जैनेतर मन्त्रों में प्रयुक्त होता है। जैन शास्त्रों में पंच परमेष्ठी अर्थात अरिहन्त, अशरीरी (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय एवं मुनि (साधु) को संयुक्त रुप से व्यक्त करने कि लिये ॐ बीजाक्षर का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार चौबीस तीर्थंकरों को संयुक्त रुप से व्यक्त करने के लिये ह्रीँ बीजाक्षर का प्रयोग किया जाता है। जब एक तीर्थंकर का नाम मात्र मंगलकारी होता है तो चौबीस तीर्थंकरों को एक साथ व्यक्त करने वाला ह्रीँ बीजाक्षर कितना मंगलकारी है, यह वर्णनातीत है।

ह्रीँ को जिनालय के रुप में भी पूजा जाता है। ह्रीँ की आकृति बनाकर उसमें चौबीस तीर्थंकरों की स्थापना की जाती है। चौबीस तीर्थंकरों की स्थापना इस प्रकार की जाती है –

ह्रीँ में स्थित	तीर्थंकर का नाम
चंद्राकार में	चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त
बिन्दु में	नेमिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ
ऊपरी पंक्तिमें	पद्मप्रभु, वासुपूज्य
ई मात्रा में	सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ
ह अक्षर में	ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, वर्धमान स्वामी

प्राकृत भाषा में ह्रीँ की रचना

ह्रीँ में चौबीस तीर्थंकरों के यक्ष यक्षिणियों की भी स्थापना की जाती है। ह्रीँ कार की स्थापना मूलनायक प्रतिमा की भांति भी की जा सकती है। अन्य सामान्य वेदी में भी ह्रीँ की स्थापना की जा सकती है।

'ॐ' मंदिर

ॐ की ध्वनि एक विशिष्ट नाद है। इसे बीजाक्षर भी माना जाता है। तीर्थंकर प्रभु की दिव्य ध्वनि भी ॐकार रुप ही निःसृत होती है। ॐ शब्द की व्युत्पत्ति करने पर पांचों परमेष्ठियों के प्रथम नामाक्षर होते है -

अ + अ + आ + उ + म + = ओम्

अरिहन्त + अशरीरी + आचार्य + उपाध्याय + मुनि इस तरह ॐ ध्वनि में पांचो परमेष्ठि समाहित हो जाते है। समस्त भारतीय दर्शन ॐ की महत्ता को स्वीकार करते है।

ॐ जिनालय में गर्भगृह में ॐ शब्दाक्षर की पाषाण अथवा धातु की प्रतिमा स्थापित की जाती है। ॐ की आकृति को एक चौकौर वर्गाकार, अष्टास्र अथवा वृत्ताकार वेदी पर स्थापना करें।

ॐ की रचना

चंद्राकार में सिद्ध की स्थापना करें। ॐ की ऊपर की पंक्ति में अरिहन्त की स्थापना करें। मध्य में आचार्य की स्थापना करें। ॐ की मात्रा में उपाध्याय की स्थापना करें। ॐ के नीचे की पंक्ति में मुनि की स्थापना करें। परमेष्ठी प्रतिमाएं सही आकार में ही बनायें।

ॐ मंदिर में भीतरी सजावट एकदम सादगी पूर्ण करें ताकि ध्यानप्रिय साधक का चित एकाग्र हो सके। मंदिर की अन्य रचना सामान्य रीति से करें।

प्राकृत शास्त्रों में ॐ की रचना किंचित अन्तर से मिलती है।

ॐ की वर्तमान प्रचलित रचना

प्राकृत भाषा में ॐ की रचना
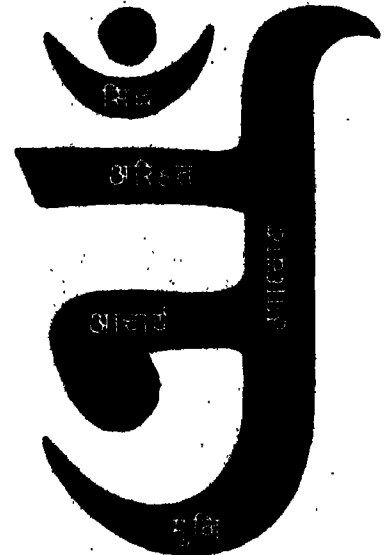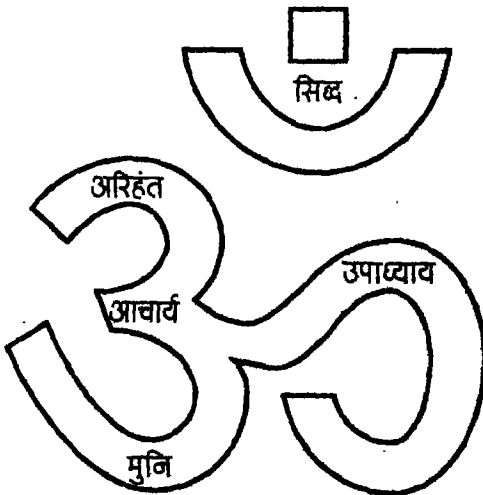
नवग्रह मन्दिर

सभी मनुष्यों का जीवन सुख-दुःख का समन्वित रुप होता है। पुण्य के उदय से हमें सुख की प्रप्ति होती है जबकि पाप कर्म के उदय से हमारे जीवन में दुखमय परिस्थितियां आती हैं। ज्योतिष शास्त्र में नवग्रहों के उदय अस्त के रुप में इसे प्रदर्शित किया जाता है। जब मनुष्य विपरीत ग्रहों के उदय के कारण दुखी होता है तो उसके निवारण के लिये जिनेन्द्र प्रभु की शरण मेंआता है। महान जैनाचार्यों नवग्रहों के उपद्रवों को शमनकरने लिये पृथक पृथक तीर्थंकरों की पूजा करने का उपदेश दिया है। तीर्थंकरों की पूजा करने से पापकर्म कटते हैं तथा पुण्य कर्मों का आगमन होता है। पुण्य के प्रभाव से हमारा विपरीतं समय शीघ्र ही व्यतीत हो जाता है तथा अनुकूल समय का आगमन होता है।

जैनाचार्यों ने नवग्रंहों से सम्बन्धित तीर्थंकरों की पूजा करने के लिये नवग्रह जिनालयों का उल्लेख किया है। इन जिनालयों में पृथक पृथक तीर्थकरों के चैत्यालय पृथक पृथक भी बना सकते हैं अथवा एक साथ भी उनकी स्थापना की जा सकती है।

नवग्रहों की शांति के लिये पूज्य तीर्थंकरों की नामावली

ग्रह का नाम	तीर्थंकर का नाम
सूर्य	पद्मप्रभ
चन्द्र	चन्द्रप्रभ
मंगल	वासुपूज्य
बुध	विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, वर्धमान
वृहस्पति	ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ
शुक्र	पुष्पदंत
शनि	मुनिसुव्रतनाथ
राहू	नेमिनाथ
केतु	मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ

जिस तीर्थंकर की प्रतिमा चैत्यालय में विराजमान करना है, उनकी स्थापना गर्भगृह में वेदी पर करें, अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमा भी शास्त्र विधि के अनुसार ही स्थापित करें। यह ध्यान रखें कि किसी भी प्रकार से प्रतिमाओं के समक्ष स्तंभ वेध आदि न आयें। नवग्रह मन्दिर में सभी चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमायें इस प्रकार स्थापित करना चाहिये कि पृथक पृथक चैत्यालयों में एक-एक ग्रह के निमित्त प्रतिमाओं की स्थापना हो सके। इस प्रकार के जिनालयों का निर्माण कराने की शक्यता न हो तो सम्बंधित तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित करें। यह भी संभव न हो तो उन तीर्थंकर की विशेष पूजा पाठ अवश्य करें ताकि विपरीत ग्रहों के प्रभाव से शीघ्र ही मुक्ति मिलकर ग्रहों की अनुकूलता हो सके।

पंच परमेष्ठी एवं नवदेवता जिनालय

जैन धर्म में तीर्थंकरों के अतिरिक्त उनकी वाणी , धर्म , मुनिजन आदि को भी देवता की संज्ञा दी जाती है। सभी नव देवता की एक साथ स्थापना कर नव देवता जिनालय का निर्माण किया जाता है।

नव देवता के नाम तथा उनका स्वरुप इस प्रकार है -

१. **अरिहन्त** - वे महान पुरुष है जिन्होंने तप करके घातियां कर्मो को नष्ट करके केवल ज्ञान अवस्था प्राप्त कर ली है।

२. **सिद्ध** - वे महान आत्माएं है जिन्होंने आठों कर्म (घातिया तथा अघातिया) को नष्ट कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त करे मोक्ष में स्थान पा लिया है, ये संसार चक्र से मुक्त हो गये है।

३. **आचार्य** - वे महान मुनि पुरुष है जो महाव्रती साधुओं के संघ नायक तथा निर्यापक हैं। ये दीक्षा एवं प्रायश्चित देने के अधिकारी हैं।

४. **उपाध्याय**- वे महान मुनि पुरुष हैं जो साधुओं को धर्म शास्त्र, जिन आगम ग्रन्थों को पढ़ाते है।

५. **साधु**- वे महान मुनि पुरुष है जिन्होंने पूर्ण निर्ग्रन्थ अवस्था को ग्रहण कर महाव्रतों को अंगीकार किया है।

६. **जिन धर्म**- अनादि काल से जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्रणीत धर्म जैन धर्म है।

७. **जिनागम**- ऐसे शास्त्र जिनमें जिन धर्म की प्ररुपणा एवं उपदेश दिया जाता है। मूलतः ये जिनेन्द्र प्रणीत है।

८. **जिन चैत्य**- अरिहन्त , सिद्ध प्रभु की पूजा, स्तुति के निमित्त तथा उनके स्वरुप का आभास कराने हेतु धातु, काष्ठ, पाषाण अथवा रत्न आदि से निर्मित प्रतिमा है।

९. **जिन चैत्यालय**- वह प्रासाद जिसमें जिन चैत्य विराजमान हैं जिन चैत्यालय कहलाता है। इसमें जिनागम शास्त्र भी विराजमान होते हैं तथा समय-समय पर आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठी आकर धर्मोपदेश देते है। धर्मानुरागी गण यहां जिनेन्द्र प्रभु की पूजा भक्ति , शास्त्र पाठ तथा जिन गुरुओं की वैयावृत्ति आदि करते हैं।

जैन शास्त्रो में ये सभी देवता की स्थिति रखते हैं तथा धर्म श्रद्धालुओं के द्वारा पूज्य है। इनकी संयुक्त रुप से उपासना करने के लिए नव देवता की संयुक्त प्रतिमा स्थापित की जाती है। एक चक्राकार आकृति की प्रतिमा की स्थापना की जाती है। जिनमें मध्य में अरिहन्त प्रभु की स्थापना करते हैं, पृथक -पृथक देवताओं की पृथक-पृथक प्रतिमाएं भी स्थापित की जाती हैं। इन प्रतिमाओं के लिए विशेष संकेत इस प्रकार है।

१. अरिहन्त प्रभु की प्रतिमा अष्ट प्रातिहार्य युक्त बनाएं। प्रतिमा पद्मासन तथा शास्त्रानुसार तालमान में होना परम आवश्यक है।

२. सिद्ध प्रतिमा बिना सिंहासन, चिन्ह एवं प्रातिहार्य के बनाएं।

३. आचार्य प्रतिमा में ऊंचे स्थान पर दिगम्बर आचार्य बैठे हुए अभय मुद्रा में हों तथा नीचे साधुगण बैठे हों। सभी साधु एवं आचार्य पीछी कमंडलु सहित हों।

४. उपाध्याय प्रतिमा में ऊंचे स्थान पर दिगम्बर साधु हाथ में शास्त्र लेकर पढ़ाने की मुद्रा में हों तथा नीचे साधु गण बैठे हों। सभी साधु एवं उपाध्याय पीछी कमंडलु सहित हों ।

५. साधु प्रतिमा में ध्यानस्थ मुद्रा में पीछी कमंडलु सहित साधु हों।

६. जिन धर्म भाववाचक संज्ञा है। जिन धर्म को समझाने के लिए धर्म चक्र की स्थापना की जाती है। धर्म चक्र में चौबीस आरे होना चाहिए। धर्मचक्र तीर्थंकर प्रभु के विहार के समय आगे चलता है। तीर्थंकर का विहार धर्म की स्थापना का प्रतीक है अतः धर्म के रूप में धर्म चक्र की स्थापना की जाती है।

७. जिनागम- इसकी प्रतिमा में वेदी पर एक आसन पर जिन शास्त्र की आकृति रखें।

८. जिन चैत्य - तीर्थंकर प्रतिमा को जिन चैत्य के स्थान पर रखें।

९. जिन चैत्यालय- मंदिर की एक छोटी प्रतिकृति जिसमें भीतर गर्भगृह में जिन चैत्य विराजमान हों।

पंच परमेष्ठी जिनालय में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य , उपाध्याय एवं साधु की प्रतिमा पृथक-पृथक वेदी में अथवा एक वेदी में स्थापित की जाती है। मूल नायक के स्थान पर अरिहंत प्रतिमा स्थापित की जाती है।

नव देवता जिनालयों में इन प्रतिमाओं को पृथक पृथक वेदियों पर स्थापित करना हो तो मध्य में मूल नायक के स्थान पर अरिहंत प्रतिमा रखें। संयुक्त रुपेण प्रतिमा के प्रसंग में इसका स्वतंत्र जिनालय भी बनाया जा सकता है तथा पृथक वेदी में भी इसे रखा जा सकता है। नव देवताओं की मूर्तियां अनेकों स्थानों में है। अकलूज (महाराष्ट्र) का नवदेवता जिनालय भी दर्शनीय है।

रत्नत्रय मन्दिर

जैन धर्म में मुक्ति का एक मात्र मार्ग रत्नत्रय हैं। ये तीन रत्न हैं : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्चारित्र। रत्नत्रय की महत्ता को पूजनीय बनाने के लिए रत्नत्रय प्रतिमाएं बनाई जाती हैं।

रत्नत्रय प्रतिमा में रत्नत्रय के स्थान पर तीन-तीन तीर्थंकरों की प्रतिमा की स्थापना की जाती है। ये तीर्थंकर हैं :- शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ।

इनमें शांतिनाथ की प्रतिमा मध्य में रखी जाती है। इन तीर्थंकरों की संयुक्त प्रतिमा रखने का एक अतिरिक्त कारण यह भी है कि ये तीनों तीर्थंकर अपने पद के अतिरिक्त चक्रवर्ती एवं कामदेव पद के भी धारक थे अर्थात् एक साथ तीन पदों के धारक थे अतः रत्नत्रय के रुप में इन्हीं में तीर्थंकरों की प्रतिमाएं स्थापित की जाती हैं। तीनों तीर्थंकरों की प्रतिमायें एक ही आसन में बनायें ।

सप्तर्षि जिनालय

मनु आदि सात ऋषियों की प्रतिमाएं संयुक्त रुप से एक साथ स्थापित की जाती हैं.।इनकी प्रतिमाएं पृथक पृथक भी एक ही मन्दिर में स्थापित की जाती हैं।

सप्त ऋषियों के नाम इस प्रकार हैं :-

१. श्रीमनु	२. श्रीसुरमनु
३. श्रीनिचय	४. सर्वसुन्दर
५. जयवान	६. विनयलालस
७. जयमित्र	

इन सातमुनियों की प्रतिमाएं खड्गासन में एक साथ निर्मित की जाती हैं। मुनियों के साथ प्रत्येक में पृथक-पृथक पीछी कमंडल रहना आवश्यक है। इन प्रतिमाओं को मंदिरों में रखा जाता है। इन प्रतिमाओं का स्वतन्त्र जिनालय सप्तर्षि जिनालय कहलाता है।

सप्तर्षि की जैन मतानुसार कथा

प्रभापुर नगर के राजा श्रीनन्दन के सात पुत्र थे। प्रीतिंकर महाराज के केवलज्ञान के अवसर पर देवों के आगमन के उपरान्त प्रतिबोध से पिता सहित सातों से दीक्षा ले ली।ये ही सप्तऋषि कहलाते हैं। इनके प्रभाव से ही मथुरा नगरी में चमरेन्द्र यक्ष द्वारा प्रसारित महामारी रोग नष्ट हुआ।

पंच बालयति जिनालय

जिन परम्परा में पांच प्रतिमाओं की पंच बालयति प्रतिमा बनाने की परिपाटी है। ये तीर्थंकर पंच बालयति प्रतिमा बनाने की परिपाटी है। ये तीर्थंकर पंच बालयति कहलाते हैं। इन तीर्थंकरों ने संसार के समस्त वैभव को युवावस्था में ही त्याग दिया था तथा विवाह न करके बालब्रह्मचर्य का पालन किया व दीक्षा लेकर केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन तीर्थंकरों के नाम एवं क्रम इस प्रकार हैं :-

१२ वें तीर्थंकर	वासुपूज्य स्वामी
१९ वें तीर्थंकर	मल्लिनाथ स्वामी
२२ वें तीर्थंकर	नेमिनाथ स्वामी
२३ वें तीर्थंकर	पार्श्वनाथ स्वामी
२४ वें तीर्थंकर	वर्धमान स्वामी

इन तीर्थंकरों की संयुक्त प्रतिमा धातु या पाषाण की बनाई जाती हैं। इन तीर्थकरों की पृथक -पृथक प्रतिमा भी पृथक पृथक वेदियां बनाकर स्थापित की जाती हैं। मन्दिर निर्माण के अन्य नियम समान होते हैं। ये मन्दिर पंच बालयति मन्दिर कहलाते हैं।

चौबीस जिनालयों का स्थापना क्रम - दो विधियाँ

यदि चौबीस जिनालयों का मन्दिर बनाया जाता है तो उसमें तीर्थंकरों की पृथक- पृथक स्थापना करना होता है। ऐसी स्थिति में एक तीर्थंकर की प्रतिमा मूल नायक के रुप में स्थापित करना पड़ता है। अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमा सृष्टि मार्ग या प्रदक्षिणा क्रम में अर्थात् पूर्व - दक्षिण - पश्चिम - उत्तर इस क्रम में स्थापित करना चाहिये। जिस कतार में मूल नायक प्रतिमा स्थापित की जाये उस पंक्ति में सरस्वती देवी की प्रतिमा स्थापित करना चाहिये।
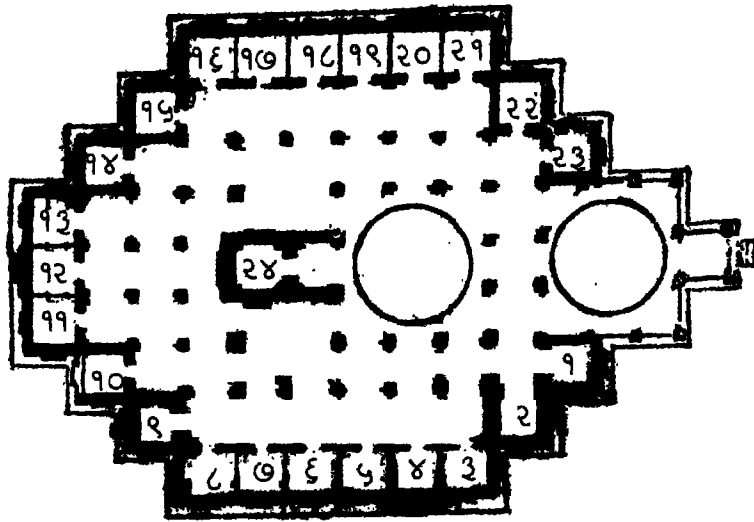
चौबीस जिनालयों का स्थापना क्रम- दो विधियाँ
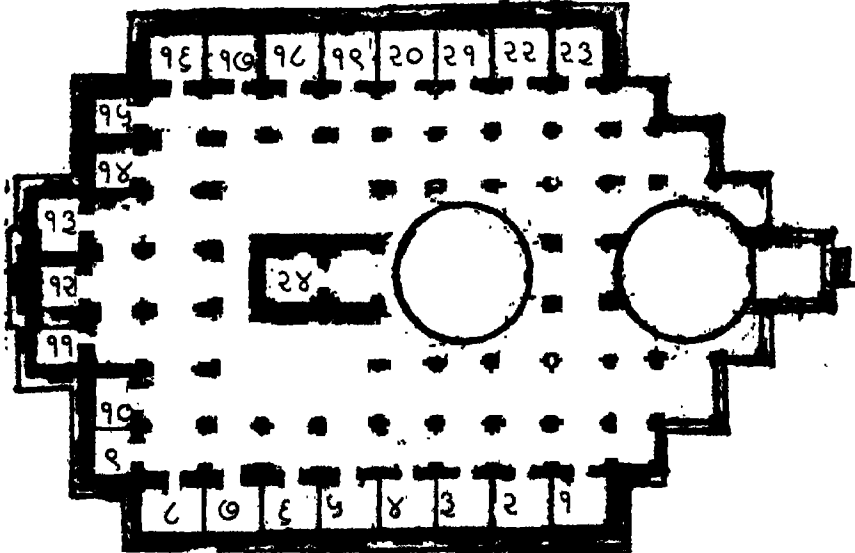
बावन जिनालयों का स्थापना क्रम

नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की प्रतिकृति बनाने की परम्परा प्राचीन काल से ही जैन समाज में प्रचलित है। बावन जिनालयों में पृथक- पृथक जिनालय बनाकर प्रतिमा स्थापित की जाती है। इनका एक विशेष क्रम है, मध्य में मुख्य प्रासाद के बायीं तथा दाहिनी ओर सत्रह- सत्रह जिनालय स्थापित करें। पिछले भाग में नौ जिनालय स्थापित करें। आगे के भाग में आठ जिनालय स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार बावन जिनालय स्थापित करें। संलग्न चित्रानुसार भी बावन जिनालयों की स्थापना की जाती है।

मध्य लोक के आठवें द्वीप में ये स्थित हैं। ३२ रतिकर, ४ अंजनगिरि, १६ दक्षिमुख- ऐसे ५२ पर्वतों के मध्य भाग में ५२ चैत्यालय हैं। ये पूर्वाभिमुखी हैं तथा इनकी लंबाई एवं चौड़ाई १० - १० योजन तथा ऊंचाई ७५ योजन है। इनके द्वारों की ऊंचाई ८ योजन तथा चौड़ाई ४ योजन है। ये द्वार पूर्व, उत्तर तथा दक्षिण में हैं।*

बहत्तर जिनालयों का क्रम

मुख्य प्रासाद के बायीं तथा दाहिनी तरफ पच्चीस - पच्चीस जिनालय स्थापित करें। पिछले भाग में ग्यारह जिनालय स्थापित करें। आगे के भाग में दस जिनालय स्थापित करें। मुख्य प्रासाद मध्य में रखें।

भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल की चौबीस चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं मिलकर बहत्तर जिनालय बनाये जाते हैं।

---

*जैन ज्ञान कोश मराठी भाग २/ ४२५

*बावन जिनालयों के विषय में तत्वार्थ राजवार्तिक में उल्लेख है।
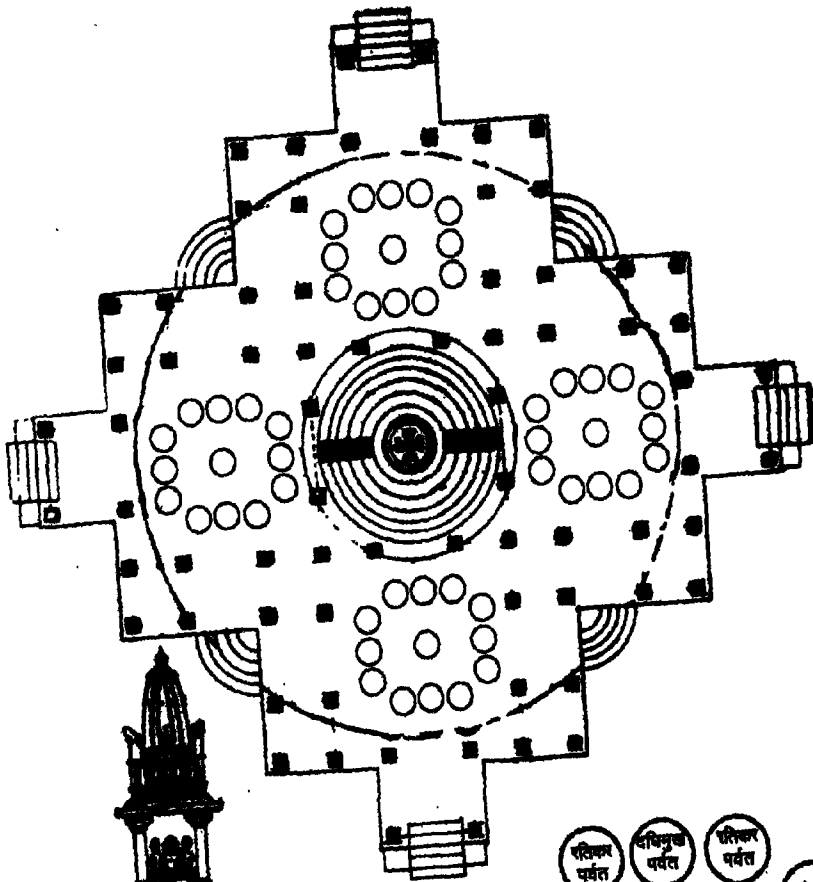
बावन पर्वतों का मुख दर्शन
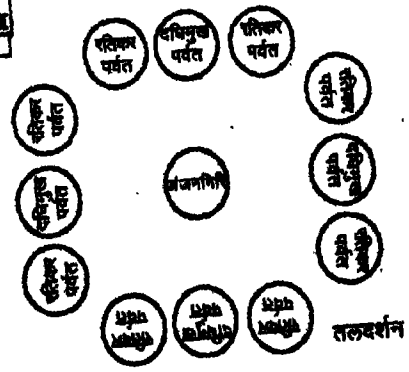
तलदर्शन

सरस्वती मन्दिर

नवदेवताओं में जिनवाणी का नाम सम्मिलित है। जिनवाणी से तात्पर्य है वह वाणी जो केवलज्ञान प्राप्त होने के उपरांत अरिहंत (तीर्थंकर) प्रभु के द्वारा निःसृत होती है। जिस प्रकार हम पंच परमेष्ठी की मन्दिर में प्रतिमा बनाकर पूजा करते हैं उसी भांति जिनवाणी की पूजा शास्त्रों की पूजा के रुप में की जाती है। जिन शास्त्रों में जिनवाणी लिखी हुई है वे भी जिनेन्द्र प्रभु की ही भांति पूज्य हैं। जैन धर्मानुयायियों का एक सम्प्रदाय तो सिर्फ शास्त्रों की ही आराधना होती है।

जिनवाणी का एक अन्य नाम द्वादशांग वाणी भी है। इसे कुछ अन्य नामों से भी वर्णित किया जाता है - भारती, बहुभाषिणी, सरस्वती, शारदा, हंसगामिनी, विदुषा, वागीश्वरी, जगन्माता, श्रुतदेवी, ब्रह्माणी, वरदा, वाणी इत्यादि। किन्तु जिनवाणी को सबसे अधिक सरस्वती नाम से जाना जाता है। सरस्वती ज्ञान की देवी है अतएव जिनवाणी का रुप सरस्वती देवी के रुप में ही स्मरण किया जाता है।

सरस्वती देवी की प्रतिमा की रचना

जैन शास्त्रों में सरस्वती देवी की प्रतिमा बनाने के लिये एक विशेष रुप बताया गया है। सरस्वती देवी की प्रतिमा अत्यंत सुन्दर एवं सौम्य स्मित रुप में चार भुजा युक्त बनाई जाती है। भुजाओं में एक भुजा में वीणा दूसरी में पुस्तक तीसरी में कमल पुष्प तथा चौथी में आशीर्वाद मुद्रा रखी जाती है। वाहन हंस का रखा जाता है। शुभ्र, वस्त्र, किंकिणी, मणिमाला, रत्नहार, भुजबन्ध आदि से प्रतिमा को शोभान्वित किया जाता है।

सरस्वती देवी की स्थापना

मूलनायक प्रतिमा के दाहिने ओर सरस्वती देवी का मन्दिर गर्भगृह में ही बनाया जाता है। पृथक से भी सरस्वती देवी का मन्दिर बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमायें जहां स्थापित की जाती हैं, वहां भी सरस्वती प्रतिमा स्थापित की जाती है। ऐसे प्रसंग में जिस पंक्ति में मूलनायक प्रतिमा स्थापित की जाती है उसी पंक्ति में सरस्वती देवी की प्रतिमा स्थापित की जाती है। प्रतिष्ठा सारोद्धार में पं. आशाधरजी ने निर्देशित किया है कि सरस्वती की आराधना करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। इसी सम्यग्दर्शन से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है। जो कि वास्तविक मोक्षमार्ग का परिचय कराता है -

विद्याप्रिया षोडश दृशविशुद्धि पुरोगमार्हन्त्य कृदर्थ रागः। (प्र.सा.)

सरस्वती देवी

चरण चिन्ह

जिस स्थल से मुनिगण मोक्ष गमन करते हैं अथवा जहां से उनका समाधिमरण होता है वहां पर उनकी स्मृति के लिए चरण चिन्हों की स्थापना की जाने की परम्परा है। जिन स्थानों पर भूगर्भ से प्रतिमा निकली हो अथवा जहां महामुनियों का आगमन हुआ हो वहां भी चरण चिन्ह स्थापित किये जाते हैं। चरण चिन्ह के ऊपर एक मंडप नुमा रचना निर्माण की जाती है तथा उस पर शिखर चढ़ाया जाता है। इसे चरण छतरी भी कहते हैं।

चरण छतरी में चरण की स्थापना वेदी पर की जाती है। वेदी का आकार डेढ़ हाथ लम्बा डेढ़ हाथ चौड़ा वर्गाकार होना चाहिये। इस पर चरण चिन्ह की आकृति बनायें। वेदी की ऊँचाई डेढ़ हाथ रखें। वेदी संगमरमर अथवा अन्य अच्छे पाषाण की बना सकते हैं। चरण चिन्हों की आकृति इस प्रकार बनायें कि पांव की अंगुलियां (अंग्र भाग) उत्तर या पूर्व की ओर हो। चरणाभिषेक का जल उत्तर या पूर्व की ओर निकले इस प्रकार नाली निकालें।

यहां यह स्मरणीय है कि जैन परम्परा में चरण चिन्ह की अर्चना की जाती है, चरण अथवा चरण पादुका की नहीं। चरण बनाने से खंडित प्रतिमा का आभास होता है।
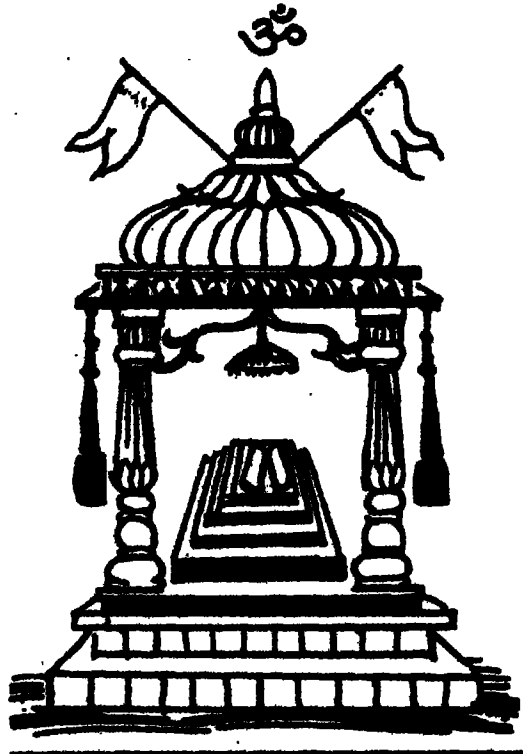
चरण चिन्ह

विविध देवालय सम्मुख विचार

अनेकों बार ऐसे प्रसंग आते हैं जब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि अमुक देव के मन्दिर के समक्ष अन्य किसी देव का मन्दिर बनाया जाये अथवा नहीं ? साथ ही किस देवता के समक्ष किस देव का मन्दिर बना सकते हैं। ऐसा करते समय देवों के स्वभाव- गुण को मुख्य रूप से दृष्टिगत रखा जाता है।

स्वजातीय देवों के आपस में या सामने देवालय बनाने में दोष नहीं माना जाता है। जिनेन्द्र प्रभु के मन्दिर के समक्ष जिनेन्द्र प्रभु का अन्य मन्दिर बनाया जा सकता है। फिर भी इतना अवश्य है कि मुख्य प्रासाद के किसी भी ओर अन्य देव का मन्दिर बनाने पर नाभिवेध का परिहार करके ही मन्दिर बनायें अर्थात् प्रासाद के गर्भ को छोड़कर ही मन्दिर का निर्माण करें।

जैनेतर देव सम्मुख प्रकरण

शिव के सामने शिव मन्दिर स्थापित कर सकते हैं। विष्णु के सामने विष्णु मन्दिर स्थापित कर सकते हैं। ब्रह्मा के मन्दिर के सामने ब्रह्मा का मन्दिर बनाया जा सकता है। सूर्य मन्दिर के सामने सूर्य मन्दिर स्थापित करने में कोई दोष नहीं माना जाता।

यहां यह भी स्मरण रखें कि शिवलिंग के समक्ष अन्य कोई देव स्थापित नहीं करना चाहिये। चंडिका देवी मन्दिर के सामने मातृदेवता, यक्ष, भैरव अथवा क्षेत्रपाल के मन्दिर बनाये जा सकते हैं। इसका कारण यह है कि ये देव आपस में समानभावी हितैषी हैं।

ब्रह्मा एवं विष्णु के मन्दिर एक नाभि में हो अर्थात् आपस में सामने आयें तो कोई दृष्टि दोष नहीं माना जाता है। किन्तु शिव अथवा जिन देव के समक्ष अन्य देव का मन्दिर कदापि न बनायें।

दोष परिहार

इस दोष का निरसन एक विशिष्ट परिस्थिति में संभव है, यदि इन दोनों मन्दिरों के मध्य राजमार्ग या मुख्य रास्ता हो अथवा मध्य में दीवार हो तो इस दोष का परिहार हो जाता है।

---

*प्रा.मं. २/२८, २९, ३०, अप.सू. १०८, प्रा.मं. २/३१

देवों के चैत्यालय

भवनवासी देवों के चैत्यालय

जैन शास्त्रों में सर्वत्र उल्लेख मिलता है कि देवों के स्थानों में जिन भवनों का अस्तित्व रहता है। ये चैत्यालय अत्यंत रमणीय तथा धर्मप्रभावना से संयुक्त रहते हैं। भवनवासी देवों के जिन भवन (चैत्यालय) में प्रत्येक में तीन-तीन कोट रहते हैं। ये कोट चार-चार गोपुरों से संयुक्त रहते हैं। प्रत्येक वीथी (मार्ग) में एक मान स्तम्भ तथा नौ स्तूप तथा कोटों के अन्तराल में क्रम से वन भूमि, ध्वज भूमि तथा चैत्यभूमि होती है। वन भूमि में चैत्य वृक्ष स्थित हैं। ध्वज भूमि में हाथी आदि चिन्हों से युक्त आठ महाध्वजाएं हैं। प्रत्येक महाध्वजा के साथ १०८ क्षुद्रध्वजाएं हैं।

जिन मन्दिरों में देवच्छन्द के भीतर श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वान्ह तथा सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां एवं अष्ट मंगलद्रव्य होते हैं। उन भवनों में सिंहासन आदि सहित चंवरधारी नाग यक्ष युगल तथा नाना प्रकार के रत्नों से युक्त जिन प्रतिमाएं विराजमान होती हैं। *

व्यंतर देवों के चैत्यालय

व्यंतर देवों के जिन भवन अष्टमंगल द्रव्यों से सहित होते हैं। इनमें दुन्दुभि आदि की मंगल ध्वनि होती है। इन मन्दिरों में हाथों में चंवर धारण करने वाले नागयक्ष युगलों से युक्त, सिंहासन आदि अष्ट प्रातिहार्यों से सहित अकृत्रिम जिन प्रतिमाएं विराजमान हैं।

इन जिनभवनों में प्रत्येक में छह-मण्डल हैं। प्रत्येक मण्डल में राजांगण के मध्य उत्तरी भाग में सुधर्मा नामक सभा है इसके उत्तर भाग में जिन भवन है।

देवनगरियों के बाहर चारों दिशाओं में चार वनखण्ड हैं, इनमें एक-एक चैत्यवृक्ष हैं। चैत्यवृक्ष की चारों दिशाओं में चार जिन प्रतिमाएं स्थित हैं। **

कल्पवासी देवों के चैत्यालय

समस्त इन्द्र मन्दिरों के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं। इनमें से एक-एक वृक्ष पृथ्वी स्वरुप तथा जम्बू वृक्ष के सरीखे रचना युक्त होते हैं। इसके मूल में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिन प्रतिमा स्थित होती है।

सौधर्म इन्द्र के मन्दिर में ईशान दिशा में सुधर्मा नामक सभा होती है। उसके भी ईशान दिशा में उपपाद सभा होती है। इसी ईशान दिशा में पांडुकवन के जिनालयों के सदृश रचना वाले उत्तम रत्नमयी जिनालय हैं। #

---

*(ति.प./३/४४ से ५२)

**(ति.प. ६/१३ से १५, ति.प. ५ / १९० से २०० एवं २३०)

#(ति.प./८/४०५ से ४११)

पांडुकवन के चैत्यालय

पांडुकवन के चैत्यालयों की रचना अत्यंत सुन्दर हैं। इनमें एक उत्तम उठा हुआ परकोटा है। चारों दिशाओं में चार गोपुर द्वार हैं। चैत्यालय की सभी दिशाओं में प्रत्येक में १०८ ध्वजाएं लगी हैं। इन ध्वजाओं पर सिंह, हंस आदि उत्तम चिन्ह अंकित हैं।

चैत्यालयों के समक्ष एक सुधर्मा नामक विशाल सभा मण्डप हैं उसके आगे नृत्य मण्डप है। नृत्य मण्डप के आगे स्तूप है। स्तूप के आगे चैत्यवृक्ष हैं। चैत्यवृक्ष के नीचे एक अत्यन्त मनोहारी जिन प्रतिमा विराजमान है। इसका आसन पर्यंकासन है।

चैत्यालय अनेकों गवाक्ष, जाली, झालर, तोरण, मणिमाला एवं घंटिकाओं से अपनी अलग ही छवि बना रहा है। इस चैत्यालय के पूर्वी भाग में एक शुद्ध जल से भरा सरोवर है जिसमें जलचर जीवों का अवस्थान नहीं है। *
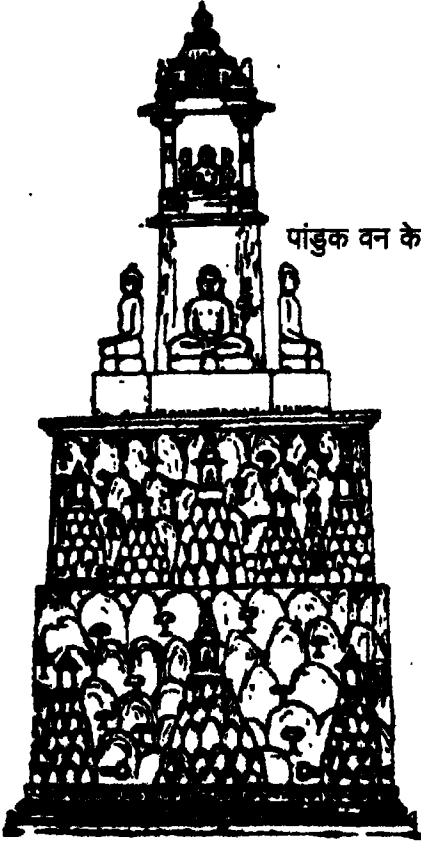
पांडुक वन के चैत्यालय - मेरुगिरी स्वरुप
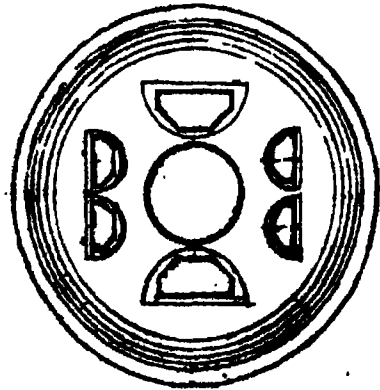
पांडुक वन के चैत्यालय - तल भाग

---

*(ति.प./४/१८५५ से १९३५, त्रि. सा./९८३ -१०००)

मन्दिर निर्माण निर्णय

यह सर्वविदित है कि जिनेन्द्र प्रभु का मन्दिर बनाना एक असीम पुण्यवर्धक कार्य है। अनेकानेक जन्मों के संचित पापकर्मों का नाश मन्दिर निर्माण से होता है। मन्दिर में स्थापित आराध्य देव की पूजा चिरकाल तक होती है। अन्य लोगों को भगवद् आराधना के निमित्त भूत मन्दिर की स्थापना करने से अकल्पनीय पुण्य मिलता है। यह पुण्य तभी कार्यकारी है जब मन्दिर का निर्माण आगम प्रणीत सिद्धान्तों के अनुसरण करते हुए किया जाये। स्वयं निर्णय कर यद्वा-तद्वा मन्दिर का निर्माण कर देने से पूजनकर्ता को भी लाभ नहीं मिलता तथा स्थापनकर्ता का भी अनिष्ट होता है।

धर्मरत्नाकर ग्रन्थ में आचार्य श्री जयसेन जी ने कथन किया है कि मन्दिर का निर्माण वास्तु शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुरुप ही किया जाना चाहिये। ऐसे मन्दिर में भगवान की अर्चना करने वाला पुण्य का अर्जन कर दोनों लोकों में सुख भोगता है तथा परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति करता है।*

मन्दिर निर्माण करने की भावना मन में आने पर सर्वप्रथम आचार्य परमेष्ठी के पास जाकर विनयपूर्वक उनसे अपने भाव प्रकट करना चाहिये। यदि समाज की सामूहिक भावना सर्वउपयोगी मन्दिर बनवाने की हो तो पहले समाज में इस पर सहमति विचार बनाकर पुनः समाज के सभी प्रमुख जनों को परम गुरु आचार्य परमेष्ठी के पास जाना चाहिये। तदुपरांत विनयपूर्वक श्रीफल अर्पणकर अपनी भावना व्यक्त कर उनसे मार्गदर्शन लेना चाहिये। जिस नगर में मन्दिर स्थापित करना प्रस्तावित है, उसके नाम राशि का मिलान प्रस्तावित तीर्थकर की राशि से करना चाहिये। उसके पश्चात् प्रतिमा स्थापनकर्ता की राशि का मिलान करना चाहिये। इसके पश्चात् ही शुभ मुहूर्त का चयनकर मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ करना चाहिये।

---

*वास्तुक सूत्र विधिना प्रविधापयन्ति, ये मन्दिर मदनविद्विषतश्चिरं ते।
रोचिष्णुविश्वरमणी रमणीयभोगा, सौख्याब्धिमध्यरचितस्थितयो रमन्ते ।। धर्म रत्नाकर / ८

स्वामी पृच्छा

किसी भी भूमि पर वास्तु निर्माण का कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व यह अपेक्षित है कि वहाँ पर स्थित क्षेत्र स्वामी देवों को संतुष्ट किया जाये तथा उनकी विनय करके उनसे कार्यारम्भ करने की अनुमति ली जाये। महान आचार्य जयसेन स्वामी ने अपना आशय इस प्रकार व्यक्त किया है -*

क्षेत्र में निवास करने वाले देव आदि को संतुष्ट करके यथा द्रव्य विधि पूर्वक सम्मानित करके पंच परमेष्ठी पूजन करे एवं दीनों को भोजनादि देकर संतुष्ट करे। इसके पश्चात् ही निर्माण कार्य प्रारम्भ करना इष्ट है।

सिद्धचक्र, इन्द्रध्वज आदि विधान एवं पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि धार्मिक प्रसंगों पर भी मंडप एवं वेदी आदि के निर्माण के पूर्व क्षेत्रपाल आदि देवों के प्रति सम्मान करते हुए उनसे आज्ञा अवश्य लेनी चाहिये।**

प्रतिष्ठाचार्य एवं यजमान प्रतिष्ठादि की यज्ञ भूमि में सर्वप्रथम भूमिस्थ देवों एवं तिर्यंच, मनुष्यादि के प्रति क्षमा याचना करे तथा सम्मान सहित अनुरोध करे कि **"हे क्षेत्ररक्षक देव, आप इस क्षेत्र में बहुत काल से निवास कर रहे हैं अतः स्वभावतः आपका इस क्षेत्र के प्रति असीम स्नेह है। हम इस क्षेत्र में मन्दिर वास्तु अथवा धार्मिक आवास अथवा भवन (अथवा गृह) का निर्माण कराना चाह रहे हैं। अथवा इस स्थान पर अमुक .... धार्मिक कार्यक्रम करना चाह रहे हैं। आप इस निर्माण कार्य (अथवा धर्म कार्य) को पूर्ण करने के लिये अपनी सम्मति प्रदान करें तथा हमें परिवार सहित सहयोग प्रदान करें ताकि हम यह कार्य निराकुल निर्विघ्न सम्पन्न कर सकें।"** इस प्रकार क्षेत्रपालादि देवों से विनय करके विधि पूर्वक पूजनादि कर्म करें तथा भूमि शुद्धि, विधि विधान पूर्वक प्रतिष्ठाचार्य सम्पन्न करायें।

तिलोय पण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रन्थों का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि मध्यलोक में सुई की नोंक के बराबर स्थान भी व्यंतरादि देवों से रहित नहीं है। ऐसी स्थिति में कोई भी निर्माण करने के पूर्व उनकी अनुमति लेना उचित ही है। इसका कारण यह भी है कि जो जीव जिस स्थान पर रहता है, उसे उससे स्नेह हो जाने के कारण वह अन्यत्र नहीं जाना चाहता।#

अतएव निर्माण कार्यारम्भ के पूर्व विधिपूर्वक इन देवों से अनुमति लेना तथा सहयोग के लिये विनय करना उपयुक्त ही है। लोकाचार में भी भूमि पर कार्यारंभ करने के पूर्व राजकीय अनुमति ली ही जाती है। अतएव वहाँ निवासी देवों से अनुमति लेना अथवा सहयोग की कामना करना उचित ही है।

---

*तत्स्थान वासान् निखिलान् सुरादीन् संतोष्य पंचेश सुमण्डलेन।
पूजां विधायेतरदीन जन्तून सम्मानेत्कारुणि को महात्मा॥ जयसेन प्रतिष्ठा पाठ

**अहो धरायामिह ये सुराश्च क्षमन्तु यज्ञादि कृतिं ददन्तु।
प्रीतिः पुराणा बहुवास योगात् क्षितावतो ऽस्मद्विनिवेदनं वः॥ २१५ जयसेन प्रतिष्ठा पाठ पृ ५२

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम्। इष्टोपदेश ४३

निर्माण प्रारंभ पूर्व भूमि पूजन

मन्दिर निर्माण प्रारम्भ करने के लिए सर्वप्रथम शुभ मुहूर्त का चयन विद्वान प्रतिष्ठाचार्य से कर लेना चाहिये। मन्दिर निर्माण कर्ता व्यक्तियों को एवं समाज को परम पूज्य आचार्य परमेष्ठी से विनय पूर्वक मन्दिर निर्माण कार्य आरम्भ करने के लिए विधिपूर्वक निवेदन करना चाहिये। आशीर्वाद प्राप्त कर चतुर्विद संघ की उपस्थिति में समस्त समाज के साथ प्रभु के प्रति भक्तिभाव रखते हुए अभिमान आदि कषाय विचारों को त्याग कर वास्तु निर्माण हेतु भूमि पूजन करना चाहिये। भूमि पूजन विधि के द्वारा वहाँ के निवासी देवों से इस सत्य कार्य को करने की अनुमति एवं सहयोग की प्रार्थना करना चाहिये। मन्दिर निर्माण कर्ता को अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक विनय गुण से सहित होकर भूमि पूजनादि कार्यों को सम्पन्न करने से कार्य निर्विघ्न होता है। इस अवसर पर प्रतिष्ठाचार्य एवं सूत्रधार को यथोचित सम्मान करना चाहिये।

निर्माण कार्य प्रारंभ हेतु भूमि खनन विधि

निर्माण कार्य प्रारंभ करने से पूर्व विधि विधान पूर्वक भगवान जिनेन्द्र की पूजा करें। तत्पश्चात् भूमि को सवौषधि एवं पंचामृत से सिंचन करें। इसके उपरांत वास्तुपूजन भूमिपूजन आदि विधान करके कार्यारम्भ करना चाहिये। मन्दिर के लिए नींव खोदने का कार्य ईशान दिशा से करना चाहिये। इसी भाग में अथवा मध्य में कूर्म शिला की स्थापना करके मन्दिर निर्माण कार्यारम्भ करना चाहिये।

खनन यन्त्र (कुदाल) का माप

मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारंभ करने के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला यन्त्र (कुदाल) का माप विषम अंगुल में रखना श्रेयस्कर है। यदि इसका माप सम अंगुल में है तो इससे निर्माता को कन्या प्राप्ति का लाभ होगा जबकि विषमांगुल माप के यन्त्र से पुत्र प्राप्ति का लाभ होगा। मध्यांगुल होने पर विपरीत फल तथा दुख होगा।

खनन यन्त्र का शुद्धिकरण

सर्वप्रथम नये खनन यंत्र को पंचामृत से सिंचन कर शुद्ध करें। ऐसा करते समय निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करें:-

"ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः"

इसके पश्चात यन्त्र पर केशर से स्वस्तिक बनाकर पंचवर्णसूत्र (कलावा) बांधना चाहिये।

अब मन्दिर स्थापनकर्ता को मस्तक पर तिलक कर रक्षा सूत्र बांधें तथा वह उत्तर की ओर मुख करके खड़े होकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए भूमि पर खनन यंत्र शक्ति से प्रहार कर खनन करें-

ॐ हूं फट् स्वाहा

खनन करते समय यन्त्र जितना अधिक भूमि में प्रविष्ट होता है उतनी ही अधिक मन्दिर वास्तु की आयु होती है।

भूमि खनन समय का निर्णय-

अधोमुख नक्षत्रों में (मूल, आश्लेषा, कृतिका, विशाखा, पू.फा., पू.बा., पू.भा., भरणी, मघा) में भूमि खनन प्रारंभ शुभ है। इन नक्षत्रों में अनुकूल चन्द्र तथा शुभ वारों में खनन प्रारंभ करें।*

भूमि खनन के समय शुभाशुभ शकुन

भूमि खनन प्रारंभ करते समय मंगल वचन, गीत, मंगल वस्तुओं का दर्शन, धर्मवाक्यों की ध्वनि, पुष्प या फल की प्राप्ति, बांसुरी, वीणा, मृदंग की ध्वनि अथवा इन वाद्ययन्त्रों का दर्शन शुभ माना जाता है।

इसी प्रकार दही, दुर्वा, कुश, स्वर्ण, रजत, ताम्र, मोती, मूंगा, मणि, रत्न, वैड्र्य, स्फटिक, सुखद मिट्टी, गारुड़ वृक्ष का फल खाद्य पदार्थ का मिलना अथवा दर्शन होना शुभ फलदायक माना जाता है।

कांटा, करेले का वृक्ष, खजूर, सर्प, बिच्छू, पत्थर, वज्र, छिद्र, लोहे का मुद्गर, केश, कपाल, कोयला, भस्म, चमड़ा, हड्डी नमक, रक्त, मज्जा का दर्शन अशुभ फलदायक माना जाता है। भूमि से केश, कपाल, कोयला आदि अशुभ पदार्थों का निकलना भी अशुभ माना जाता है।

---

*अधोमुखे च नक्षत्रे, शुभेऽन्हि शुभ वासरे।
चन्द्र तारानुकूले च खननारम्भणं शुभम्॥

मन्दिर निर्माण सामग्री प्रकरण

मूलतः वास्तु संरचना के लिये काष्ठ, लोहा, चूना, ईंट, पाषाण इत्यादि साम्ग्री का प्रयोग किया जाता है। गृह वास्तु का निर्माण इन्हीं पदार्थों से किया जाता है। किन्तु जिस भवन में तीन लोक के नाथ ईश्वर की स्थापना की जाती है उस भवन का निर्माण सिर्फ शुद्ध, पवित्र एवं श्रेष्ठ द्रव्यों से किया जाना आवश्यक है। प्राचीन काल से ही मन्दिरों का निर्माण पाषाण से किया जाता रहा है। वर्तमान युग में वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रभाव से वास्तु निर्माण कंक्रीट अर्थात् लोहा, सीमेन्ट, पाषाण से किया जाता है। सीमेन्ट के प्रयोग से कम स्थान में अधिक निर्माण संभव हो जाता है तथा मजबूती भी अधिक रहती है।

मन्दिर का निर्माण करने के लिये प्रमुखतः तीन प्रकारों की व्यवस्था है -

१. पूर्णतः पाषाण निर्मित
२. ईंट, गारे एवं पाषाण से निर्मित
३. ईंट, सीमेंट एवं लोहा कंक्रीट से निर्मित

इनमें सामान्यतः भवनों का निर्माण तीसरी शैली से किया जाता है। मन्दिरों का निर्माण भी वर्तमान में इसी पद्धति से किया जाने लगा है। किन्तु यह पद्धति प्राचीन सिद्धांतों से मेल नहीं खाती अतएव इस पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

प्रथम दो पद्धतियों से बनाये गये मन्दिर निर्माण भी सैंकड़ों वर्षों तक स्थिर रहते हैं जबकि मजबूती का दावा करने वाले कंक्रीट के निर्माण सौ वर्ष से ज्यादा टिकने में असमर्थ प्रतीत होते हैं। हाँ यह अवश्य है कि पाषाण निर्माणों में स्तंभ तथा दीवालों की मोटाई अत्यधिक रखना पड़ती है। इस कारण उपयोग के लिये स्थान में कमी आ जाती है।

लोहे के प्रयोग का निषेध *

शिल्पशास्त्रों में काष्ठ, मिट्टि, पाषाण, धातु, रत्न आदि से मन्दिर वास्तु निर्माण का निर्देश दिया है लोहे को अधम धातु मानकर इसका मंदिर निर्माण हेतु शिल्प शास्त्रों में निषेध किया गया है। लोहे में जंग लगना अथवा मजबूती को दृष्टिगत रखने के उपरांत भी इसके अधम होने के कारण इसको वर्जित किया गया है। त्रिलोकपति जिनेन्द्र प्रभु के मन्दिर का निर्माण अधम वस्तु से न किया जाये, इसका निर्माणकर्ता को ध्यान रखना आवश्यक है। ऐसा न करने पर निर्माणकर्ता एवं उपयोगकर्ता समाज दोनों को अनावश्यक विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

---

*काष्ठे मृदिष्टके चैव पाषाणे धातु रत्नजे। उत्तरोत्तरं दृढं द्रव्यं लौह कर्म विवर्जयेत्॥ शिल्प स्मृति वास्तुविद्या ६/११६
उत्तमोत्तमधात्वादि पाषाणेष्टिककाष्ठकम्। श्रेष्ठमध्यमाधमं द्रव्यं लौहं अधमाधमम्॥ शिल्प स्मृति वास्तुविद्या ६/११७

समन्वय

वर्तमान युग में सभी वास्तु संरचनायें कंक्रीट से ही बनाई जा रही हैं। जबकि प्राचीन काल में निर्मित मन्दिरों में लोहे का नामो-निशान भी नहीं था। खजुराहो के मन्दिरों का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि वहां के मन्दिर केवल पाषाण निर्मित हैं उनमें मसाले से जुड़ाई भी नहीं है। कहीं-कहीं पर पाषाणों को ताम्बे की पट्टियों से कसा गया है। अतएव यह स्पष्ट है कि पाषाण निर्मित मन्दिर बनाना असंभव नहीं है। वर्तमान में वास्तु शिल्पशास्त्र की अल्प जानकारी होने के कारण शिल्पी कंक्रीट से ही निर्माण करने का उपक्रम करते हैं। ऐसी परिस्थिति में मन्दिर का गर्भगृह तथा शिखर बिना लोहे का ही बनाना चाहिये, इसमें श्रेष्ठ द्रव्यों का ही निर्माण करना चाहिये। पाषाण भी श्रेष्ठ प्रकार का ही लेना चाहिये। प्राचीन शास्त्रों में दी गई गणनायें भी पाषाण निर्मित मन्दिर निर्माण के अनुरुप ही दी गई हैं अतः उनसे समन्वय रखने के लिये भी मन्दिर का निर्माण पाषाण से ही करना चाहिये।

प्रसंग वश यहां उल्लेख करना आवश्यक है कि मन्दिर में उपयोग किये जाने वाले उपकरण जैसे घंटा, छत्र, सिंहासन भी लोहे के नहीं बनाना चाहिये। स्टेनलेस स्टील भी लोहे का ही एक प्रकार है अतः इसका प्रयोग भी उपकरणों के लिये नहीं करें। दरवाजे, पल्ले, खिड़की आदि में भी यथा संभव लोहे का प्रयोग न करें।

मन्दिर निर्माण में काष्ठ प्रयोग

मन्दिर, कलश, ध्वजादण्ड, ध्वजादण्ड की पाटली ये सभी एक ही लकड़ी के बनाये जाने चाहिये। सागवान, केसर, शीशम, खैर, अंजन, महुआ की लकड़ी इनके लिए शुभ मानी गई है।#

निम्नलिखित काष्ठों का प्रयोग वास्तु के लिए नहीं करना चाहिये -

१.हल, २.घानी/कोल्हू, ३.गाड़ी, ४. रेहट, ५.कंटीले वृक्ष ६. केला, ७. अनार, ८. नींबू, ९.आक, १०. इमली, ११. बीजोरा, १२. पीले फूल वाले वृक्ष, १३. बबूल, १४. बहेड़ा, १५. नीम, १६. अपने आप सूखा हुआ वृक्ष, १७.टूटा हुआ वृक्ष, १८. जला हुआ वृक्ष, १९. श्मसान के समीप का वृक्ष, २०. पक्षियों के घोंसले वाला वृक्ष, २१. खजूर आदि अतिलम्बा वृक्ष, २२. काटने पर दूध निकले ऐसा वृक्ष, २३. उदुम्बर (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठूमर)*

इन वृक्षों को न तो मन्दिर में लगाना चाहिये न ही इनका काष्ठ निर्माण में प्रयोग करना चाहिये। इन वृक्षों की जड़ मन्दिर में प्रविष्ट हो अथवा मन्दिर के समीप हो तो भी क्षतिकारक है। इनकी छाया भी मन्दिर पर नहीं पड़ना चाहिये।*

देव मन्दिर, कूप, बावड़ी, श्मसान, मठ, राजमहल की लकड़ी, पत्थर, ईंट आदि का तिलमात्र भी मन्दिर में उपयोग करना क्षतिकारक है। ऐसा करने से मन्दिर सूना रहता है उसमें पूजा प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। यहां तक कि यदि घर में ये लगाये जायें तो गृहस्वामी उस मकान का उपयोग नहीं कर पाता।**

---

*हल घाणय समडमई अरहट्ट जंताणि कंटई तह य।
पंचंबुरि खीरतरु एयाण य कट्ठ वज्जिज्जा॥ व. सा. १/ १४६
बिज्जउरि केलि दाडिमजंभीरी दोहलिद अंबलिया।
बब्बूल बोरमाई कणयमया तह वि नो कुज्जा॥ व. सा. १/ १४७
एयाणं जइ वि जडा पाडिवसा उपविस्सइ अहवा।
छाया वा जम्मि गिहे कुलनासो हवइ तत्थेव॥ व. सा. १/ १४८
सुसक्क भग्ग दड्ढा मसाण खगनिलय खीर चिरदीहा।
निंब बहेडय रुक्खा न हु कट्टिज्जंति गिहहेऊ॥ व. सा. १/ १४९

**अन्य वास्तुत्युतं द्रव्यमन्य वास्तौ न योजयेत।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे च न वसेद् गृही। समरांगण सूत्रसार
पासाय कूव वावी मसाण मठ रायमंदिराणं च।
पाहाण इट्ट कट्ठा सरिसवमत्ता वि वज्जिज्जा॥ व. सा. १/ १५२

#सुहयं इग दारुमयं पासायं कलस दण्डमक्कडिअं।
सुहकट्ठ सुदिट्ठ कीरं सीसिमखयरंजणं महुवं॥ व. सा. ३/३१

मन्दिर निर्माण प्रारम्भ

उपयुक्त भूमि पर मन्दिर निर्माण करने का निर्णय हो चुकने के पश्चात् शुभ मुहूर्त का चयन एवं गुरु की अनुमति लेना चाहिये। मन्दिर निर्माण करने की प्रक्रिया मन्दिर निर्माण के कार्य स्तरों पर निर्भर होती है।

प्रक्रिया

मन्दिर निर्माण प्रारंभ करते समय क्रमशः निम्नलिखित का निर्माण करना चाहिये -

१. कूर्म शिला स्थापन
२. खर
३. जगती
४. मण्डोवर
५. स्तम्भ
६. द्वार, खिड़की
७. मण्डप निर्माण, प्रतोली, वलाणक
८. संवरणा, वितान
९. गर्भगृह
१०. शिखर निर्माण
११. कलश, पताका स्थापन
१२. प्रतिमा, स्थापन
१३. साजसज्जा

कूर्म शिला स्थापन के उपरांत किया जाने वाला सभी कार्य दक्षिण से प्रारम्भ कर उत्तर की ओर करें। इसी भांति पश्चिम से प्रारम्भ कर पूर्व की ओर करें। इस प्रकार कार्य करने से सारे कार्य निर्विघ्न एवं यथा समय पूर्ण होवेंगे। इसके विपरीत करने पर अनावश्यक व्यवधान आने की अत्याधिक संभावना रहेगी।

मन्दिर निर्माण के लिये वास्तु शास्त्र के सामान्य नियमों का अनुसरण करें तथा अपने आचार्य परमेष्ठी गुरु एवं विद्वानजनों से निरन्तर परामर्श लेते रहें। ऐसा करने से कार्य सम्पादन में सुगमता रहती है। मन्दिर निर्माण में अपनी शक्ति अनुसार द्रव्य व्यय करके उत्तम देवालय को निर्माण करना उपयुक्त है।

कूर्म (धरणी) शिला

कूर्म शिला से तात्पर्य ऐसी शिला से है जो कछुए के चिन्ह से अंकित हो। यह गर्भगृह की नींव के मध्य में स्थापित की जाने वाली नवमी शिला है।

यह कूर्म शिला स्वर्ण या रजत पत्र पर बनवाकर पंचामृत अभिषेक से स्नान कराकर स्थापित करना चाहिये।

कूर्म शिला की आकृति

कूर्म शिला के नौ भाग करें। प्रत्येक भाग पर पूर्व से आरंभ कर दक्षिणावर्त दिशा क्रम में एक- एक आकृति बनवायें। (क्षीरार्णव/ १०१)

१. पूर्वः	पानी की लहर	५. पश्चिमः	भोजन का ग्रास
२. आग्नेयः	मछली	६. वायव्यः	पूर्ण कुम्भ
३. दक्षिणः	मेंढक	७. उत्तरः	सर्प
४. नैऋत्यः	मगर	८. ईशानः	शंख
९. मध्य में	कछुआ		
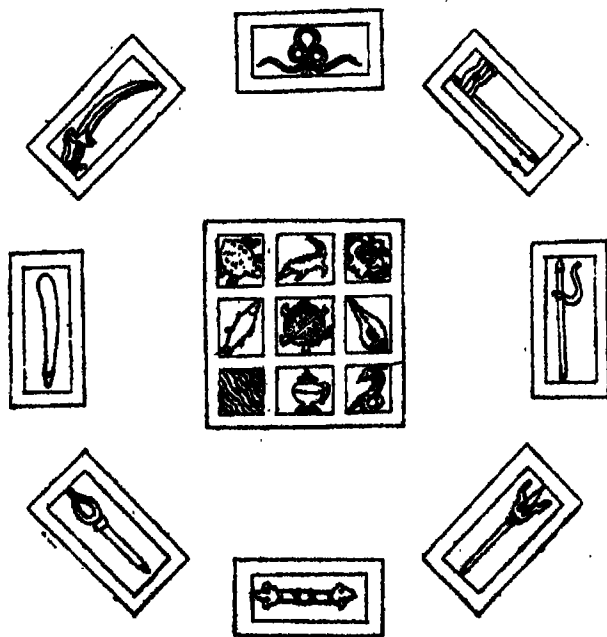
कूर्म शिला एवं अष्टशिलाएं

मन्दिर की वास्तु का निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व भूमि को इतना खोदें कि कंकरीली जमीन अथवा पानी आ जाये। कूर्म शिला को मध्य में स्थापित करें। (प्रा. मं. १/२८-२९)

ईशान दिशा से प्रारंभ कर एक- एक शिला रखनी चाहिये। मध्य में धरणी शिला स्थापित करें। कूर्म को धरणी शिला के ऊपर स्थापित करें।

शिलाओं के नाम इस प्रकार हैं :- नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला, सौभागिनी तथा धरणी। इन शिलाओं के ऊपर क्रम से वज्र, शक्ति, दण्ड, तलवार, नागपाश, ध्वजा, गदा, त्रिशुल इस प्रकार दिक्पालों के शस्त्रों को स्थापित करें। शिलाओं की स्थापना शुभ मूहूर्त में मंगल वाद्यध्वनि पूर्वक करें।

कूर्म शिला स्थापित करने के बाद उसके ऊपर एक नाली देव के सिंहासन तक रखी जाती है। इसे प्रासाद नाभि कहते हैं।

कूर्म शिला का माप

एक हाथ के चौड़ाई वाले प्रासाद में आधा अंगुल की कूर्म शिला स्थापित करें। इसके बाद पंद्रह हाथ तक प्रत्येक हाथ पीछे आधा - आधा अंगुल बढ़ायें। इसके बाद सोलह से इकतीस हाथ तक चौथाई अंगुल बढ़ाएं। इसके बाद अट्ठारह हाथ के लिए प्रत्येक हाथ अंगुल का आठवां भाग अथवा एक जव के बराबर बढ़ाते जाएं।

जिस मान की कूर्म शिला आये उसमें उसका चौथाई भाग बढ़ाएं तो ज्येष्ठ मान की शिला होगी। यदि मान से उसका चौथाई कम कर दें तो कनिष्ठ मान आएगा।

एक हाथ से पचास हाथ तक प्रासाद के लिये धरणी शिला का प्रमाण विभिन्न शास्त्रों में किंचित अंतर से है :-

धरणी शिला के मान की गणना विधि – १

(क्षीरार्णव अ.१०१ के मत से)

प्रासाद		**शिला का मान**
हाथ में	*फुट में*	*अंगुलो में / इंच में*
१	२	४ अंगुल / इंच
२ - १०	४-२०	प्रति हाथ २-२ अंगुल/ इंच बढ़ाएं
११ - २०	२२-४०	प्रति हाथ १-१ अंगुल/ इंच बढ़ाएं
२१ - ५०	४२-१००	प्रति हाथ१/२-१/२ अंगुल/ इंच बढ़ाएं

इस प्रकार के मान से शिला को वर्गाकार बनायें। इसके तीसरे भाग के बराबर मोटाई रखे। पिण्ड के आधे भाग में शिला के ऊपर रुपक एवं पुष्पाकृति बनायें।

धरणी शिला के मान की गणना विधि – २

(ज्ञान प्रकाश दीपार्णव अ. ११ के मत से)

प्रासाद		शिला का मान	मोटाई
हाथ में	फुट में	अंगुलो/इंचं में	अंगुल / इंच में
१	२	४	१, १/३
२	४	६	२
३	६	९	३
४	८	१२	४
५ - १२	१०-२४	प्रत्येक में ३/४ अंगुल /इंच बढ़ाएं	९
१३ - २४	२६-४८	प्रत्येक में १/२ अंगुल /इंच बढ़ाएं	
२५ - ३६	५०-७२	प्रत्येक में ३/४ अंगुल /इंच बढ़ाएं	१२
३७ - ५०	७४-१००	प्रत्येक में १ अंगुल /इंच बढ़ाएं	

इस प्रकार ५० हाथ के प्रासाद में ४७ अंगुल की शिला रखें।

धरणी शिला के मान की गणना विधि – ३

(अपराजित पृच्छा सूत्र १५३)

प्रासाद		शिला का मान
हाथ में	*फुट में*	*अंगुलो/इंचं में*
१	२	४
२	४	६
३	६	९
४	८	१२
५ - ८	१०-१६	प्रत्येक में ३-३ अंगुल /इंच बढ़ाएं
९ - ५०	१८-१००	प्रत्येक में २-२ अंगुल /इंच बढ़ाएं

इस प्रकार ५० हाथ के प्रासाद में १०८ अंगुल की शिला रखें।

धरणी शिला का अन्य मान

(अपराजित पृच्छा सूत्र ४७/१६)

९० अंगुल लंबी २४ अंगुल चौड़ी १२ अंगुल मोटी धरणी शिला रखें।

खर शिला

खर शिला से तात्पर्य ऐसी शिला से है जो जगती के दासा तथा प्रथम भिट्ट के नीचे आधार शिला के रुप में बनाई जाती है। यह पर्याप्त मोटी तथा चौड़ी बनायें। ईंट, चूना, पानी से इसे शक्तिशाली बनाना चाहिये। प्रासाद तल के ऊपर इसे बनायें। *

खरशिला के मान की गणना

प्रासाद की चौड़ाई		खर शिला की मोटाई
हाथ में	फुट में	अंगुलो/इंचं में
१	२	६
२-५	४-१०	प्रति हाथं १ अंगुल /इंच बढ़ाएं
६-९	१२-१८	प्रति हाथं १/२ अंगुल /इंच बढ़ाएं
१०-३०	२०-६०	प्रति हाथ १/४ अंगुल /इंच बढ़ाएं
३१-५०	६२-१००	प्रति हाथ १/८ अंगुल /इंच बढ़ाएं

इस प्रकार ५० हाथ के प्रासाद में १९, १/८ अंगुल की शिला रखें।**

अन्य मत

प्रथम भिट्ट के नीचे कूर्म शिला की मोटाई से अर्धमान की खर शिला की मोटाई रखना चाहिये।

---

*अतिस्थूला सुविस्तीर्णा प्रासादधारिणी शिला।
अतीवसुदृढा कार्या इष्टिकाचूर्णवारिभिः ।। प्रा. मं. ३/१

**प्रथमभिट्टस्याधस्तात् पिण्डो वर्ण (कूर्म) शिलोत्तमा।
तस्य पिण्डस्य चार्धेन खरशिला पिण्डमेव च ।। क्षीरार्णव १०२/५

#अप. सू. १२३ के मत से

भिट्ट

खर शिला के ऊपर वाली थर का नाम भिट्ट है। भिट्ट के ऊपर पीठ बनाया जाता है। भिट्ट से डेढ़ गुना वर्णशिला की मोटाई रखें। वर्णशिला से आधा भाग के बराबर खर शिला का मोटापन रखें। इन शिलाओं का इतना मजबूत होना आवश्यक है कि मुद्गर प्रहार भी उनके ऊपर निष्प्रभावी हो जायें। इन दृढ़ शिलाओं के ऊपर मन्दिर का निर्माण किया जाना चाहिये।

भिट्ट के मान की गणना विधि -१

एक हाथ (दो फुट) वाली चौड़ाई के मन्दिर में भिट्ट की ऊंचाई चार अंगुल/इंच रखें। इसके उपरांत दो से पचास हाथ तक(चार से सौ फुट) की चौड़ाई में प्रत्येक हाथ (दो फुट) के लिये आधा अंगुल/इंच बढ़ायें। *

भिट्ट के मान की गणना विधि -२

प्रासाद की चौड़ाई		भिट्ट की ऊंचाई
हाथ में	*फुट में*	*अंगुलो/इंच में*
१	२	४
२-५	४-१०	प्रत्येक में १ अंगुल /इंच बढ़ाएं
६-१०	१२-२०	प्रत्येक में ३/४ अंगुल /इंच बढ़ाएं
११-२०	२२-४०	प्रत्येक में १/२ अंगुल /इंच बढ़ाएं
२१-५०	४२-१००	प्रत्येक में १/४ अंगुल /इंच बढ़ाएं

इस प्रकार पचास हाथ (१०० फुट) चौड़ाई के प्रासाद में भिट्ट की ऊंचाई २४, १/४ अंगुल/ इंच होगी। #

क्षीरार्णव, अ. पृ. , वास्तु विद्या, वास्तुराज ग्रंथानुसार भिट्ट की जो ऊंचाई करना हो उसमें एक, दो या तीन भिट्ट बना सकते हैं। प्रथम भिट्ट से दूसरा भिट्ट पौन भाग का बनाएं। तीसरा भाग आधा ऊंचा ही रखना चाहिये। अपनी ऊंचाई का चौथा भाग बाहर निकलता हुआ (निर्गम) रखना उपयुक्त है। ##

प्रथम भिट्ट का बाहर निकलता भाग ऊंचाई का चौथाई रखें। दूसरे भिट्ट में तीसरा भाग रखें तथा तीसरे भिट्ट में आधा रखें।

---

* शिलोपरि भवेद् भिट्ट-मेकहस्ते युगांगुलम्। अर्धांगुला भवेद् वृद्धि-र्यावद्धस्तशतार्द्धकम्॥ प्रा. मं. ३/२

**अंगुलेनांशहीनेन अर्द्धनार्द्धेन च क्रमात्। पंचदिग्विंशतिर्यावच्छतार्द्ध च विवर्द्धयेत्॥ (प्रा. मं. ३/३)

#राज सिंह कृत वास्तुराज के मतानुसार ## क्षीरार्णव के अनुसार

जगती

मन्दिर निर्माण के लिये भूमि का चयन कर लेने के पश्चात उसमें ऐसी भूमि का रेखांकन करना चाहिये, जिस पर मन्दिर बनाना है। इस निर्धारित भूमि पर एक ऊंचा चबूतरानुमा निर्माण किया जाता है। इस निर्माण को ही जगती कहते हैं। यह एक पीठनुमा निर्माण होता है तथा सामान्यतः पाषाण निर्मित होता है। यह एक ऐसा पीठ है जो कि मन्दिर के निर्माण के लिए उसी प्रकार आधार का काम करता है जिस प्रकार राजसिंहासन रखने के लिए एक उच्चस्थान का निर्माण किया जाता है। *

जगती का आकार

मन्दिर का निर्माण कार्य जैसी भूमि पर किया जायेगा उसी प्रकार की आकृति जगती की रखना चाहिये। मन्दिर का निर्माण निम्न आकार का किया जाता है -

१. वर्गाकार
२. आयताकार
३. वृत्ताकार
४. लम्ब वृत्ताकार (अण्डाकार)
५. अष्टकोण

इसी प्रकार की आकृति जगती की रखें। यदि अष्टकोण मन्दिर बनाना हो तो जगती भी अष्टकोण रखना चाहिए।

जगती का मान

जगती का मान प्रासाद की चौड़ाई से एक निश्चित अनुपात में रखना चाहिए। यह मान तीन प्रकार का है -

१. कनिष्ठ मान- प्रासाद की चौड़ाई से तीन गुना मान की जगती का मान कनिष्ठ मान है।
२. मध्यम मान - प्रासाद की चौड़ाई से चार गुना मान की जगती का मान मध्यम मान है।
३. ज्येष्ठ मान - प्रासाद की चौड़ाई से पांच गुना मान की जगती का मान ज्येष्ठ मान कहलाता है।

विशेष - जिन (अरिहन्त) प्रभु के मन्दिरों में जगती छह से सात गुनी भी कर सकते हैं।**

---

*प्रा. मं. २/१

** प्रा. मं. २/३ अ. सू. ११५

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मण्डप के क्रम से सवा, डेढ़ अथवा दुगुनी चौड़ाई वाली जगती का निर्माण करे। जिन मन्दिरों में परिक्रमा (भ्रमणी) बनाई जाना है वहाँ पर ज्येष्ठ जगती वाले मन्दिरों में तीन भ्रमणी बनाना चाहिये। मध्यम जगती में दो भ्रमणी रखें तथा कनिष्ठ में एक भ्रमणी रखें। *

विशेष - प्रासाद के अनुरुप ही जगती बनाना चाहिये। जगती चार, बारह, बीस, अट्ठाइस या छत्तीस कोने की बनायें।

जगती की ऊंचाई का मान

प्रथम विधि – एक से बारह हाथ तक चौड़ाई वाले प्रासाद की जगती की ऊंचाई प्रासाद से आधे भाग की रखें। तेरह से बाईस हाथ तक के प्रासाद की जगती की ऊंचाई प्रासाद से तीसरे भाग की रखें। तेईस से बत्तीस हाथ तक के प्रासाद की जगती की ऊंचाई चौथाई भाग रखें। ३३ से ५० हाथ में पांचवां भाग रखें।**

प्रासाद की चौड़ाई		**जगती की ऊंचाई**
हाथ में	*फुट में*	
१ से १२	२ से २४	आधा
१३ से २२	२६से ४४	तीसरा भाग
२३ से ३२	४६से ६४	चौथा भाग
३३ से ५०	६६से १००	पांचवा भाग

द्वितीय विधि #–

प्रासाद की चौड़ाई		**जगती की ऊंचाई**	
हाथ में	*फुट में*	*हाथ में*	*फुट में*
१	२	१	२
२	४	१, १/२	३
३	६	२	४
४	८	२, १/२	५
५ से १२	१०-२४	आधा भाग	
१३ से २४	२६-४८	तीसरा भाग	
२५ से ५०	५०-१००	चौथा भाग	

---

*प्रा. मं. २/६, **प्रा. मं. २/९, #प्रा. मं. २/ १० अ. सू. ११५/ २३-२६

जगती की ऊंचाई में थरों का भाग

जगती की ऊंचाई के २८ भाग करें तथा उसमें निर्माण की जाने वाली थरों का अनुपात एवं क्रम इस प्रकार है -

सर्वप्रथम जाड्यकुम्भ	-	३ भाग
कणी	-	२ भाग
पद्मपत्र सहित ग्रास पट्टी	-	३ भाग
खुरा	-	२ भाग
कुम्भा	-	७ भाग
कलश	-	३ भाग
अन्तरपत्र	-	१ भाग
केवाल	-	३ भाग
पुष्पकण्ठ	-	४ भाग
कुल	**-**	**२८ भाग**

पुष्पकण्ठ से जाड्यकुम्भ का निर्गम आठ भाग का करना चाहिये।

शब्द संकेत

जाड्यकुम्भ	-	मन्दिर में दृष्टव्य पीठ (चौकी) का सबसे नीचे का गोटा, पीठ के नीचे का बाहर निकलता गलताकार थर
पद्म	-	कमलाकार गोटा या एक भाग
ग्रास पट्टी	-	कीर्ति मुखों की पंक्ति, जलचर विशेष के मुख वाला दासा
खुर	-	वेदिबंध का सबसे नीचे का गोटा (प्रासाद की दीवार का प्रथम थर)
वेदिबन्ध	-	अधिष्ठान अर्थात् मन्दिर की गोटेदार चौकी
कुम्भ	-	वेदिबन्ध का खुर के ऊपर का एक गोटा
कलश	-	पुष्पकोश के आकार का गोटा, जिसका आकार घट के समान है
अंतर पत्र	-	दो प्रक्षिप्त गोटों के बीच एक अंतरित गोटा
कणी	-	कर्णक, थरों के ऊपर नीचे रखी जाने वाली पट्टी
पुष्पकण्ठ	-	दासा, अन्तराल

जगती की सजावट

पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिणा क्रम से कर्ण अर्थात् कोने में दिक्पालों को स्थापित करना चाहिये। जगती को किले की भांति चारों तरफ सुशोभित करें। चारों दिशाओं में एक एक द्वार वाले वलाणक या मंडप बनायें। जल के निकास के लिए परनाले मगर के मुख वाले बनायें। द्वार के आगे तोरण एवं सीढ़ियों का निर्माण करना इष्ट है। मण्डप के आगे प्रतोली (पोल) बनाकर उसके आगे सीढ़ियां बनवायें। इसके दोनों तरफ गज (हाथी) की आकृति बनायें। प्रत्येक पद के अनुसार तोरण बनायें। तोरण के दोनों स्तम्भ की बीच की चौड़ाई का मान प्रासाद के गर्भगृह के मान अथवा दीवार के गर्भमान अथवा प्रासाद के मान का रखा जाता है।

यह जगती रुप वेदिका प्रासाद का पीठ रुप है। अतः इसे अनेक प्रकार के रुपों एवं तोरणों से सुसज्जित करें। तोरणों के झूलों में देवों की आकृतियां बनाना चाहिये। *
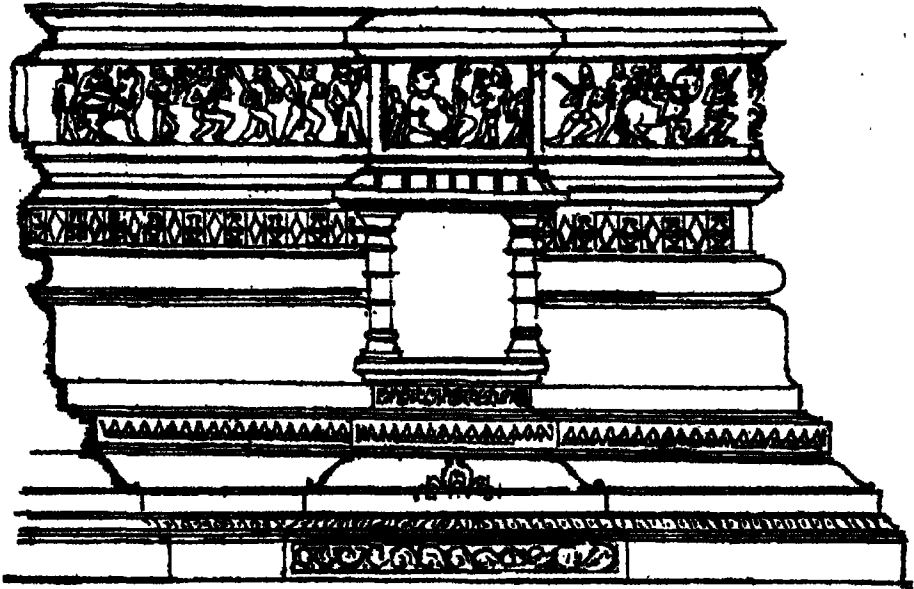
कंदरिया महादेव मंदिर खजुराहो
(जगती)

---

*प्रा. मं. २/ १५-१६, १७-१८

पीठ

पीठ का आशय प्रासाद/मन्दिर के आसन से है। प्रासाद की मर्यादित भूमि पर जगती बनाई जाती है। जगती पर मन्दिर की मर्यादित भूमि पीठ पर बनाई जाती है। मन्दिर की दीवारें पीठ पर उठाई जाती है। पीठ का प्रमाण एवं अनुपात शिल्पशास्त्र के अनुरुप ही रखना चाहिये। प्रासाद में भिट्ट के ऊपर पीठ बनायी जाती है। पीठ की ऊंचाई का प्रमाण प्रासाद की चौड़ाई के अनुपात से इस प्रकार है :- प्रा. मं. ३/५-६
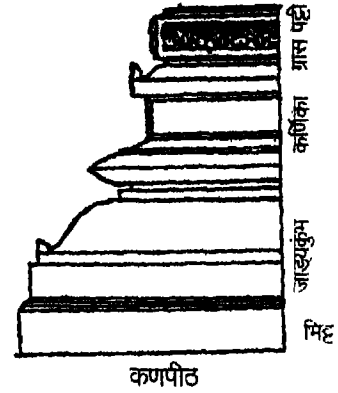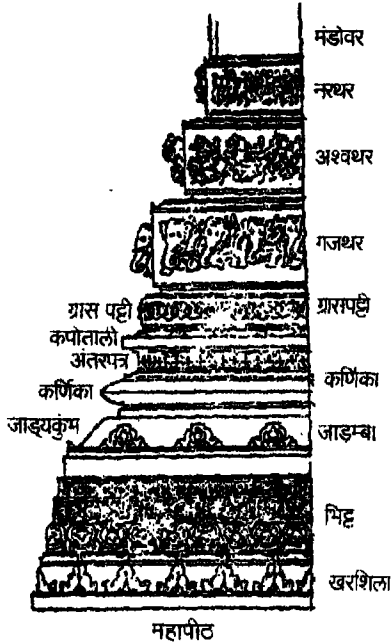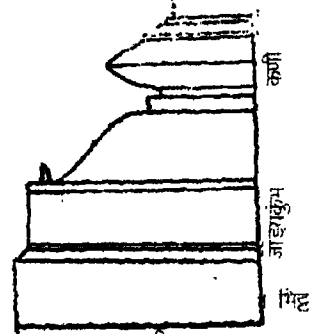
पीठ के भेद

गज पीठ - गज आदि थरों से युक्त पीठ को गज पीठ कहते हैं। ऐसी रुप वाली पीठ का निर्माण अत्यन्त व्यय साध्य कार्य है।

कामद पीठ - जाड्यकुंभ, कर्णिका, केवाल के साथ ग्रास पट्टी वाली साधारण पीठ बनायी जाये तो उसे कामद पीठ कहते हैं।

कण पीठ - जाड्यकुम्भ तथा कर्णिका वाली दो थर वाली पीठ को कण पीठ कहते हैं।

इसमें ध्यान रखें कि लतिन जाति के प्रासादों में बाहर निकलता हुआ भाग कम होता है जबकि सांधार जाति के प्रासादों के पीठ का निकलता हुआ भाग अधिक होता है।

पीठ का मान

प्रासाद की चौड़ाई		**पीठ की ऊंचाई**
हाथ में	*फुट में*	*अंगुल / इंच में*
१	२	१२
२	४	१६
३	६	१८
४	८	२७, १/२
५	१०	३०
६ से १०	१२-२०	प्रत्येक हाथ (दो फुट) पर ४ अंगुल/ इंच बढ़ाएं
११ से २०	२२-४०	प्रत्येक हाथ (दो फुट) पर ३ अंगुल/ इंच बढ़ाएं
२१ से ३६	२४-७२	प्रत्येक हाथ (दो फुट) पर २ अंगुल/ इंच बढ़ाएं
३७ से ५०	७४-१००	प्रत्येक हाथ (दो फुट) पर १ अंगुल/ इंच बढ़ाएं

इस प्रकार पचास हाथ की चौड़ाई के मन्दिर की पीठ की ऊंचाई ५ हाथ ६ अंगुल आती है। यह मध्यम मान है।

ऊंचाई का पांचवा भाग ऊंचाई में कम करें तो कनिष्ठ मान की ऊंचाई होगी।
ऊंचाई का पांचवा भाग ऊंचाई में बढ़ा दे तो ज्येष्ठ मान की ऊंचाई होगी।
ज्येष्ठ मान की पीठ का पांचवां भाग बढ़ा दें तो ज्येष्ठ-ज्येष्ठ मान होगा।
ज्येष्ठ मान की पीठ का पांचवां भाग कम कर दें तो ज्येष्ठ-कनिष्ठ मान होगा।
मध्यम मान की पीठ का पांचवां भाग कम कर दें तो कनिष्ठ - मध्यम मान होगा।
मध्यम मान की पीठ का पांचवां भाग बढ़ा दें तो मध्यम-ज्येष्ठ मान होगा।
कनिष्ठ मान की पीठ का पांचवां भाग बढ़ा दें तो ज्येष्ठ - कनिष्ठ मान होगा।
कनिष्ठ मान की पीठ का पांचवां भाग कम कर दें तो कनिष्ठ - कनिष्ठ मान होगा।

पीठ की ऊंचाई का मान

प्रासाद की चौड़ाई से आधा, तीसरा अथवा चौथाई भाग पीठ की ऊंचाई रखना चाहिये। पीठ की ऊंचाई से आधा मान पीठ का निर्गम निकलता हुआ भाग रहता है। उप पीठ का प्रमाण शिल्पकार अपनी इच्छा के अनुरुप स्थिर करें।

पासायाओ अद्धं तिहाय पायं च पीढ उदओ अ।
तस्सद्धि निग्गमो होइ उववीढु जहिच्छमाणं तु॥ व. सा. 3/3

अड्डथर, पुष्पकण्ठ, जाड्यमुख, कणी, केवाल ये पांच थर सामान्य पीठ में अनिवार्यतः होते हैं। इनके ऊपर गज थर, अश्व थर, सिंह थर, नर थर, हंस थर इन पांच थरों में सब अथवा कम - अधिक बनाना चाहिये। निर्माता की जितनी शक्ति हो उसके अनुरुप बनाना उपयुक्त है। *

पीठ के आकार का अनुपात

विभिन्न शिल्पशास्त्रों में पीठ के आकार का अनुपात पृथक-पृथक देखा जाता है। कुछ विशेष मत इस प्रकार हैं - १. अपराजित पृच्छा के मत में पीठ का मान पूर्ववत (प्रा. मं. के अनुरुप) है सिर्फ चार हाथ की चौड़ाई वाले प्रासाद में ४८, ३२ या २४ अंगुल प्रमाण ऊंची पीठ बनाने का निर्देश है। अन्य माप के प्रासादों में पीठ में पीठ का मान नहीं है।**

२. वास्तु मंजरी के मत से - प्रासाद की ऊंचाई (मंडोवर की) २१ भाग करें, इनमें ५,६,७,८ या ९ भाग का मान की पीठ की ऊंचाई रखें। #

३. क्षीरार्णव के मत से प्रा. मं. के अनुरुप माप में मात्र २ से ५ हाथ के प्रासाद में प्रत्येक हाथ पांच-पांच अंगुल बढ़ाकर ऊंचाई रखें। शेष नाम पूर्ववत् रखें। इस मत से पचास हाथ की चौड़ाई में पीठ की ऊंचाई ५ हाथ ८ अंगुल होगी।

४. वसुनन्दि श्रावकाचार के मतानुसार प्रासाद की चौड़ाई का आधा पीठ की ऊंचाई रखें। यह उत्तम मान है। इसके चार भाग करें इनका तीन भाग मध्यम तथा दो भाग कनिष्ठ मान होगा।

पीठ का थर मान

पीठ की ऊंचाई के मान के ५३ भाग करें। इसमें पीठ का निर्गम (निकलता हुआ भाग) रखना चाहिये। ऊंचाई के ५३ भाग में से ९ भाग का जाड्यकुम्भ, ७ भाग की अंतर पत्र के साथ कर्णिका, ७ भाग की कपोताली के साथ ग्रास पट्टी १२ भाग का गज थर, १० भाग का अश्व थर तथा ८ भाग का नर थर बनाना चाहिये। यदि देववाहन का थर बनाना चाहें तो इसे अश्व थर के स्थान पर भी बनाया जा सकता है।##

कर्णिका के आगे	५ भाग निकलता हुआ जाड्कुम्भ
ग्रास पट्टी से आगे	३,१/२ भाग निकलती हुई कर्णिका
अश्व थर से आगे	४ भाग निकलता हुआ नर थर

इस प्रकार २२ भाग निर्गम (निकलता हुआ भाग) रखें। गज, अश्व, नर थर के नीचे अन्तराल रखें तथा अंतराल के ऊपर व नीचे दो - दो कर्णिका बनायें।

---

*अड्ड थरं फुल्लिअओ जाडमुहो कणउ तह य कयवाली।
गय अस्स सीह नर हंस पंच थरइं भवे पीढं॥ व. सा. ३/४

**अप.सू. १२३, #अप. सू. १२३/ ७, ##प्रा. मं. ३/७-८ ,१०-११

मण्डोवर

प्रासाद/मन्दिर का निर्माण पीठ पर किया जाता है। जगती पर पीठ का स्थान बनाया जाता है। पीठ को मन्दिर का आसन कहते हैं। पीठ के ऊपर दीवार बनायी जाती है। इस दीवार को ही मंडोवर की संज्ञा दी जाती है। मण्डोवर शब्द को समझने के लिये इसे तोड़ना होगाः- मण्ड अर्थात् पीठ या आसन। इसके ऊपर जो भाग बनाया जाये वह मण्डोवर कहलाता है। मन्दिर की प्रमुख दीवार अर्थात मंडोवर के ऊपर शिखर का निर्माण किया जाता है। कुम्भा के थर से लेकर छाद्य के प्रहार थर के मध्य का भाग मंडोवर कहलाता है।*

मण्डोवर की रचना

पीठ, वेदिबन्ध तथा जंघा से मिलकर मण्डोवर की रचना होती है। मण्डोवर में तेरह थर होते हैं - उनके नाम व प्रमाण इस प्रकार हैं। पीठ के ऊपर खुरा से लेकर छाद्य तक मन्डोवर के २५ भाग करें। उन भागों में मण्डोवर की थर ऊंचाई पृथक-पृथक इस प्रकार है **-

१.	खुर	१ भाग
२.	कुम्भ-	३ भाग
३.	कलश-	१, १/२ भाग
४.	केवाल-	१, १/२ भाग
५.	मंची-	१, १/२ भाग
६.	जंघा-	५, १/२ भाग
७.	छज्जी(छाजली)-	१ भाग
८.	उर जंघा-	२ भाग
९.	भरणी -	१,१/२ भाग
१०.	शिरावटी-	१, १/२ भाग
११.	छज्जा-	२ भाग
१२.	वेराडु-	१, १/२ भाग
१३.	पहारु-	१, १/२ भाग

---

*अप. सू. १२६/१०

**व. सा. ३/ १८-१९

विभिन्न प्रकार की जाति के प्रासादों में मण्डोवर की रचना पृथक पृथक रीतियों से की जाती है। सामान्य प्रकार के प्रासादों में मण्डोवर की ऊंचाई (छज्जा से प्रारंभ कर) के २७ भाग करें। #

१. खुर	१ भाग
२. कुम्भ	४ भाग
३. कलश	१,१/२ भाग
४. अंतराल	१/२ भाग
५. केवाल	१,१/२ भाग
६. मांची	१/२ भाग
७. जंघा	८ भाग
८. उद्गम	३ भाग
९. भरणी	१,१/२ भाग
१०. केवाल	१,१/२ भाग
११. अंतराल	१/२ भाग
१२. छज्जा	२, १/२ भाग

छज्जा का निर्गम २ भाग करना चाहिये।

नागर जाति के प्रासादों में मण्डोवर की रचना

पीठ के ऊपर छज्जा के अन्त तक जो प्रासाद की ऊंचाई आये उसके १४४ भाग करें। उनका विभाजन इस प्रकार करें :-

१. खुरा-	५ भाग	८. उरजंघा-	१५ भाग
२. कुंभा-	२० भाग	९. भरणी-	८ भाग
३. कलश-	८ भाग	१०. शिरावटी	१० भाग
४. अंतराल-	२,१/२ भाग	११. कपोतिका (केवाल)	८ भाग
५. केवाल-	८ भाग	१२. अन्तराल-	२,१/२ भाग
६. मंची-	९ भाग	१३. छज्जा-	१३ भाग
७. जंघा-	३५ भाग		

छज्जा का निर्गम १० भाग रखें।##

प्रा. मं. ३/ २९-३०

##प्रा. मं. ३/२० से २३ दीपार्णव पांचवा अध्याय अ. पृ. सूत्र १२२

थरों की सजावट

कुम्भा में ब्रह्मा, विष्णु, महेश का रुप बनाएं। इनमें से एक देव मध्य में तथा शेष दो आजू- बाजू बनाएं। भद्र के कुम्भा में तीन संध्या देवियां सपरिवार बनायें। कोने के कुम्भा में अनेक प्रकार के रुप बनायें। भद्र के मध्य गर्भ में सुन्दर रथिका या गवाक्ष बनायें। कमल पत्र के आकार और तोरणद्वार स्तम्भ बनायें।

कोना तथा उपांग की फालना की जंघा में भ्रम वाले स्तम्भ बनायें। सभी मुख्य कोने की जंघा में वर्गाकार स्तंभ बनायें तथा गज, सिंह वरालक एवं मकर के रुपों से शोभायमान करें।

कर्ण की जंघा में आठ दिक्पाल पूर्वादि दिशा से प्रदक्षिण क्रम में रखें। नटराज पश्चिम भद्र में, अंधकेश्वर दक्षिण भद्र में, विकराल रुप चंडिका उत्तर दिशा के भद्र रुप में रखें। प्रतिरथ के भद्र में दिक्पालों की देवियां बनायें। वारिमार्ग (दीवार से बाहर निकला खांचा) में तपध्यानस्थ ऋषि बनायें। भद्र के गवाक्ष बाहर निकलते हुए शोभायमान करें।

मेरु जाति के प्रासादों में मण्डोवर की रचना

जिन मंडोवर में एक से अधिक जंघा होती है उन्हें मेरु मंडोवर कहा जाता है। *

इन मंडोवर में भरणी के ऊपर खुर, कुम्भ, कलश, अन्तराल, तथा केवाल ये प्रथम पांच थर नहीं बनाये जाते। मंची आदि शेष सब बनाये जाते हैं। अतएव प्रथम खुरा से लेकर भरणी तक नागर जाति के १४४ भाग के मंडोवर के अनुरुप बना लेते हैं। पश्चात् मंची आदि का मान इस प्रकार है -

१. मंची -	८ भाग	९. मंची -	७ भाग
२. जंघा -	२५ भाग	१०. जंघा -	१६ भाग
३. उद्गम -	१३ भाग	११. भरणी -	७ भाग
४. भरणी -	८ भाग	१२. शिरावटी -	४ भाग
५. शिरावटी	१० भाग	१३. पाट	५ भाग
६. केवाल	८ भाग	१४. कूटछाध -	१२ भाग
७. अंतराल	२,१/२ भाग		
८. छज्ञा	१३ भाग		

सभी थरों का निर्गम (बाहर निकलता हुआ भाग) कुम्भा का एक चौथाई भाग के बराबर रखें।

---

*प्रा. मं. ३/ २४ से २७

महामेरु मण्डोवर

जितनी प्रासाद की ऊंचाई हो, उतनी ही ऊंचाई का मंडोवर रखना चाहिये। इस मंडोवर के ऊंचाई में छह छज्जे बनायें। प्रथम छज्जा दो जंघा वाला बनायें। इस प्रकार ५० हाथ की चौड़ाई वाले प्रासाद में १२ जंघा तथा ६ छज्जा बनायें। दो दो भूमि के अन्तर से एक एक छज्जा बनायें। भरणी के ऊपर मांची रखें, छज्जा के ऊपर मंची नहीं रखें। नीचे की भूमि से ऊपर की भूमि की ऊंचाई कम रखें। यह महामेरु मंडोवर ५० हाथ के प्रासाद में बनायें। क्षीरार्णव के अनुसार

मंडोवर की मोटाई

ईंटों के प्रासाद में दीवार की मोटाई का मान प्रासाद की चौड़ाई के चौथे भाग के बराबर रखें। पाषाण एवं काष्ठ के प्रासादों में प्रासाद की दीवार का मान प्रासाद की चौड़ाई के पांचवें या छटवें भाग के बराबर रखें। सांधार प्रासाद में दीवार को आठवें भाग के बराबर रखें। धातु एवं रत्न प्रासाद में दसवां भाग रखें। पाषाण के प्रासाद में पांचवां भाग तथा काष्ठ के प्रासाद में सातवां भाग रखना उपयुक्त है। **अ. पृ. सू. १२६ के अनुसार**

प्रासाद की जाति प्रासाद की चौड़ाई का अंश के बराबर दीवार की मोटाई

	प्रा. मं. ३/३१ के अनुसार	अ.पृ.सू. १२६ के अनुसार
ईंट	१/४ भाग	१/४ भाग
पाषाण	१/५ भाग, १/६ भाग	१/५ भाग
लकड़ी	१/५ भाग, १/६ भाग	१/७ भाग
सांधार	१/८ भाग	१/८ भाग
धातु / रत्न	१/१० भाग	१/१० भाग

मंडोवर एवं महापीठ
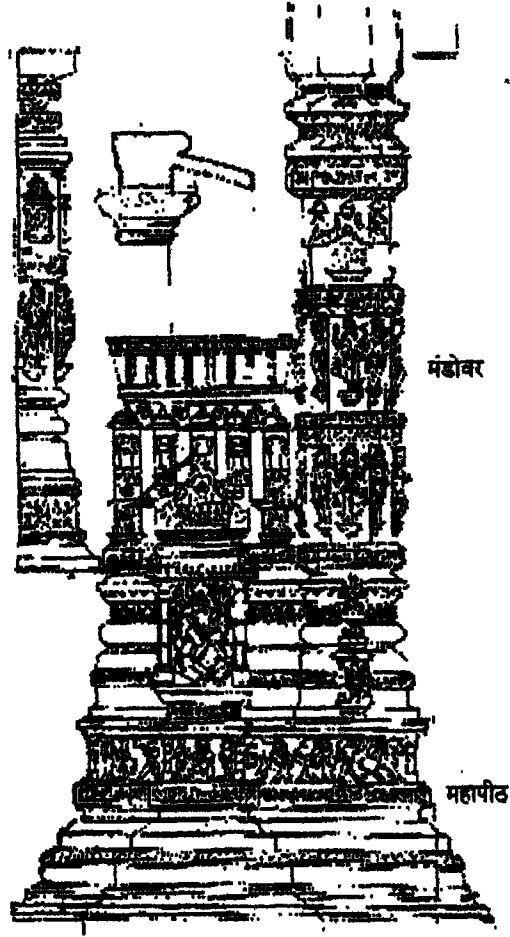
लक्ष्मण मन्दिर खजुराहो
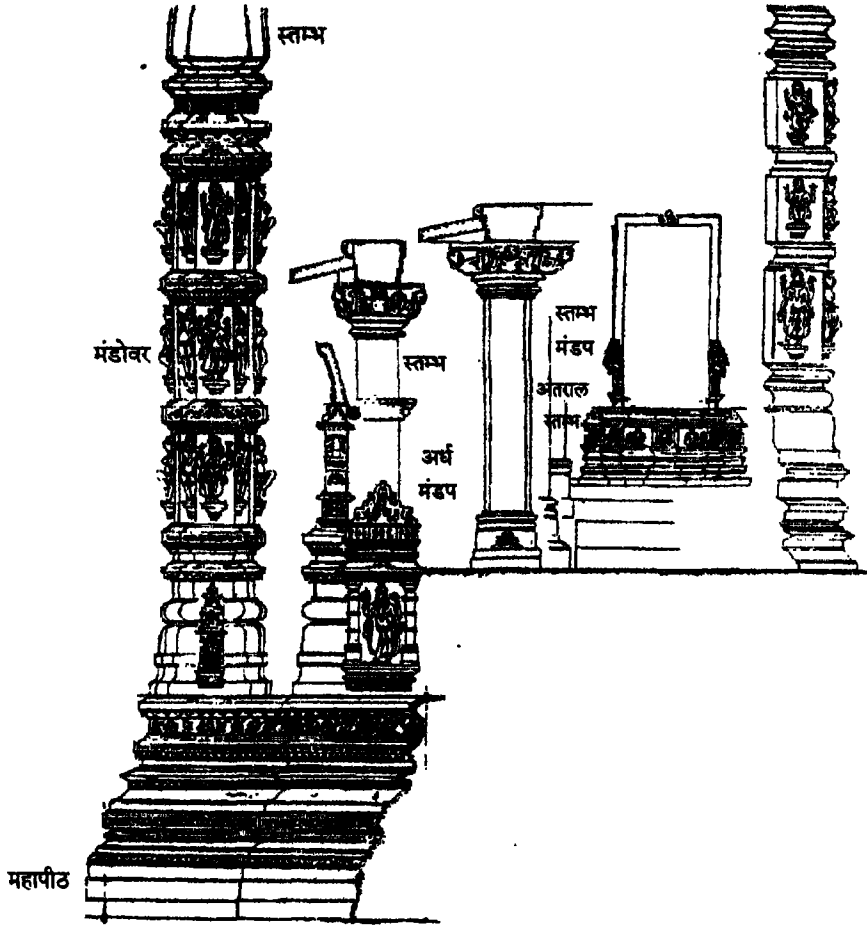
कंदरिया महादेव मंदिर खजुराहो - नागर जाति प्रासाद
(आंशिक)

एक अन्य विधि से गणना

वर्गाकार प्रासाद की भूमि की चौड़ाई के दस भाग करें। इनमें दो दो भाग की दीवार की मोटाई रखें तथा छह भाग का गर्भगृह बनायें।*

मंडोवर की ऊंचाई की गणना – विधि १**

प्रासाद की चौड़ाई		मंडोवर की ऊंचाई	
हाथ में	*फुट में*	*हाथ अंगुल में*	*फुट/इंच में*
१	२	१ - ९	२-९
२	४	२ - ७	५-२
३	६	३ - ५	६-१०
४	८	४ - ३	८-६
५	१०	५ - १	१०-२
७ - १०	१४-२०	प्रत्येक हाथ पर १४ अंगुल बढ़ाएं	
११ - ३०	२२-६०	प्रत्येक हाथ पर १२ अंगुल बढ़ाएं	
३१ से ५०	६२-१००	प्रत्येक हाथ पर ९ अंगुल बढ़ाएं	

इस प्रकार ५० हाथ चौड़ाई का मन्दिर २५ हाथ ९ अंगुल ऊंचा बनाना चाहिये।

मंडोवर की ऊंचाई की गणना– विधि २#

प्रासाद की चौड़ाई		मंडोवर की ऊंचाई
हाथ में	*फुट*	
१ से ५	२ से १०	१ से ५ हाथ (समान)
६ से ३०	१२ से ६०	प्रत्येक हाथ पीछे १२ अंगुल बढ़ाएं
३१ से ५०	६२ से १००	प्रत्येक हाथ पीछे ९ अंगुल बढ़ाएं

यह प्रासाद की ऊंचाई खुरा से छज्जा तक मानी जाएगी।

इसमें ५० हाथ (१०० फुट) के प्रासाद में ऊंचाई २४ हाथ १८ अंगुल (४९ फुट ६ इंच) आयेगी।

---

* प्रा. मं. ३/३२, **प्रा. मं. ३/१५-१६, #प्रा. मं. ३/ १७-१८
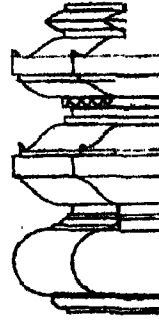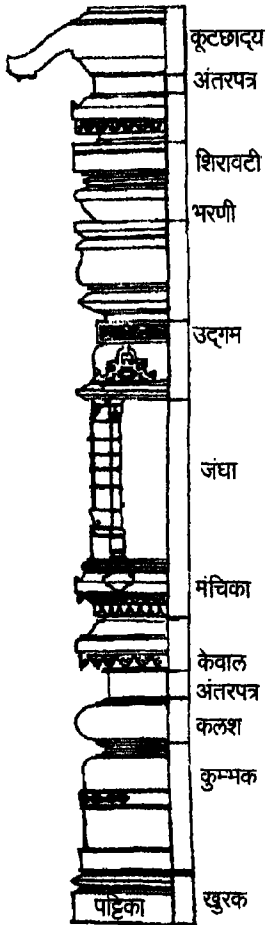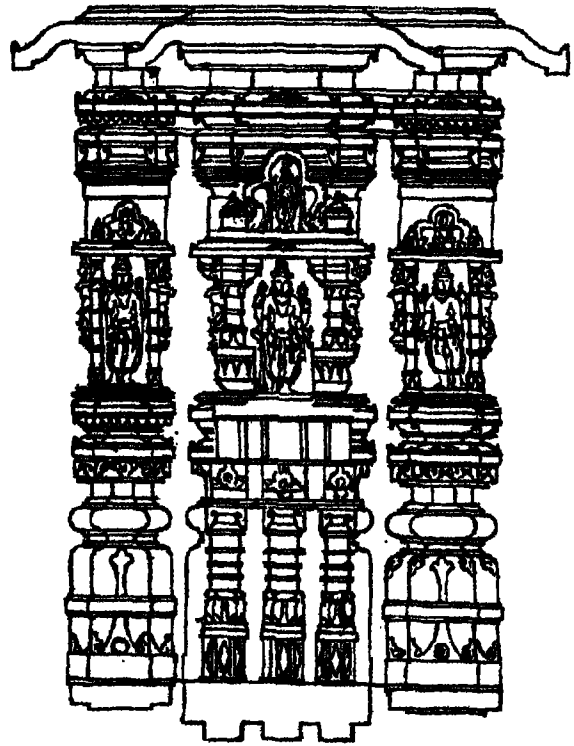
मंडोवर का स्तर विभाग

मंडोवर का स्तर विभाग

मंडोवर का मुखभद्र

मंडोवर की ऊंचाई की गणना– विधि ३

क्षीरार्णव ग्रन्थ के मतानुसार

प्रासाद की चौड़ाई		मंडोवर की ऊंचाई	
हाथ में	फुट में	हाथ/ अंगुल	फुट/इंच में
१	२	१ हाथ ९ अंगुल	३-९
२	४	२ हाथ ७ अंगुल	४-७
३	६	३ हाथ ५ अंगुल	६-५
४	८	४ हाथ १ अंगुल	८-१
५	१०.	५ हाथ	१०-०
६	१२	५ हाथ २२ अंगुल	११-१०
७	१४	६ हाथ १७ अंगुल	१३-५
८	१६	७ हाथ ८ अंगुल	१४-८
९	१८	७ हाथ १९ अंगुल	१५-७
१०	२०	८ हाथ	१६-०
१५	३०	१० हाथ ६ अंगुल	२०-६
२०	४०	१२ हाथ १२ अंगुल	२५-०
२५	५०	१४ हाथ १८ अंगुल	२९-६
३०	६०	१७ हाथ	३४-०
३५	७०	१९ हाथ ६ अंगुल	३८-६
४०	८०	२१ हाथ १२ अंगुल	४३-०
४५	९०	२३ हाथ १८ अंगुल	४७-६
५०	१००	२५ हाथ	५०-०

अर्थात् १० हाथ के बाद हर पांच हाथ में २ हाथ ६ अं. बढ़ाएं।

मंडोवर की ऊंचाई की गणना– विधि ४

व. सा. ३/२२

१ से ५ हाथ	समान १ से ५ हाथ (५ वें में एक अंगुल बढ़ाएं)
६ से ५० हाथ	प्रत्येक हाथ पर १० अंगुल बढ़ाएं

मंडोवर की ऊंचाई की गणना– विधि ५

प्रासाद की चौड़ाई		मंडोवर की ऊंचाई	
हाथ में	फुट में	हाथ अंगुल	फुट/इंच में
१-४	२-८	समान	
५	१०	५ हाथ १ अंगुल	१०-७
६	१२	५ हाथ ११ अंगुल	१०-११
७	१४	५ हाथ २१ अंगुल	११-९
८	१६	६ हाथ ७ अंगुल	१२-७
९	१८	६ हाथ १७ अंगुल	१३-५०
१०	२०	७ हाथ ३ अंगुल	१४-६
२०	४०	११ हाथ ७ अंगुल	२२-७
३०	६०	१५ हाथ ११ अंगुल	३०-११
४०	८०	१९ हाथ १५ अंगुल	३९-३
५०	१००	२३ हाथ १९ अंगुल	४७-७

अन्ततः यह ध्यान रखें कि मंडोवर की ऊंचाई की गणना प्रासाद की जाति के अनुरुप करना चाहिये।

मंडोवर की सजावट में उपयुक्त कला कृतियाँ
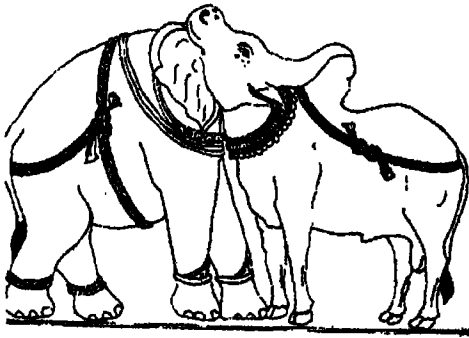
वृषभ-हस्ति युग्म
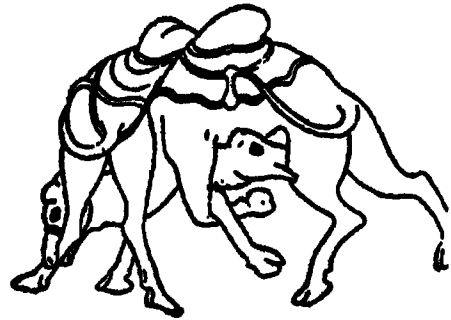
ऊंटों का जोड़ा

भित्ति

मन्दिर के लिये दीवालों का निर्माण किया जाता है। यदि सभी दीवालें अगली दीवाल से एक सूत्र में बनायी जायेंगी तो वास्तु उपयोगकर्ता के लिये सुखदायक होती है। मन्दिर की दीवालों का श्रेणी भंग होना समाज के लिये अनपेक्षित कष्टदायक होता है।

अग्र भित्ति समान सूत्र में होना शुभ कहा गया है। दीवालों का श्रेणी भंग होना पुत्र एवं धन हानि में निर्मित होता है। *

मन्दिर की दीवालों में दरार पड़ना, फटना, दीवाल सीधी न होना, उबड़-खाबड़ होना, मन्दिर एवं समाज दोनों के लिए अशुभ एवं अहितकारक है। अतएव दीवाल का निर्माण बड़ी सावधानी से करना चाहिये।

विभिन्न दिशाओं में भित्ति में दरार एवं भंग होने का फल

दीवाल की दिशा	फल
पश्चिमी दीवाल	सम्पत्ति नाश एवं चोरी का भय
दक्षिणी दीवाल	रोगबृद्धि, मृत्युतुल्य कष्ट
पूर्वी दीवाल	समाज में फूट, विवाद
उत्तरी दीवाल	आपसी वैमनस्य, अशुभ

मन्दिर की दीवालों का निर्माण करते समय यह ध्यान रखें कि सर्व प्रथम दक्षिणी दीवाल पश्चिम से पूर्व (अर्थात् नैऋत्य से आग्नेय की तरफ) बनायें। इसके उपरान्त दक्षिण से उत्तर (अर्थात् नैऋत्य से वायव्य) की तरफ बनाएं। इसके उपरांत उत्तरी दीवाल पर पश्चिम से पूर्व (अर्थात् वायव्य से ईशान) की तरफ बनायें। सभी कक्षों की दीवालें इसी प्रकार के क्रम में उठायें। इसके विपरीत क्रम में बनाने से कार्य में अनेकों विघ्न आयेंगे तथा कार्य में अनपेक्षित विलम्ब होंगे।

मन्दिर की दीवालों का कोण ९०° समकोण रखना आवश्यक है अन्यथा दीवालों में टेढ़ापन आयेगा तो महा अशुभ तथा विघ्नकारक होगा।

मन्दिर की दीवालों में सीलन(नमी) बना रहना रोगोत्पत्ति का कारण है अतएव दीवाल बनाते समय ऐसा मिश्रण-उपयोग करें कि सीलन न आये।

---

*समान सूत्रे शुभमग्र भित्तिः श्रेणी विभंजे सुत वित्त नाशः। पंचरत्नाकर

दीवार की मोटाई की गणना

शिल्पशास्त्रों में दीवार की मोटाई का प्रमाण का अनुपात मन्दिर का चौड़ाई को आधार करके निकाला जाता है साथ ही दीवार चौड़ाई को आधार करके निकाला जाता है। साथ ही दीवार के द्रव्य का भी ध्यान रखा जाता है। अग्रलिखित सारणी में दीवार की मोटाई का प्रमाण स्पष्ट है -

मंदिर की दीवार की मोटाई	मंदिर की चौड़ाई का भाग (प्रासाद मंडन ३/३१)	मंदिर की चौड़ाई का भाग (अप. सूत्र १२६)
१.ईंटों से निर्मित	१/४	१/४ भाग
२.पाषाण से निर्मित	१/५	१/५ भाग या १/६ भाग
३.काष्ठ से निर्मित	१/५	१/७ भाग
४.सांधार प्रासाद (परिक्रमायुक्त)	१/८	१/८ भाग
५.धातु निर्मित प्रासाद	१/१०	१/१० भाग
६.रत्न निर्मित प्रासाद	१/१०	१/१० भाग

मोटाई का प्रमाण निकालने की एक अन्य रीति इस प्रकार भी है -

वर्गाकार मन्दिर की भूमि चौड़ाई के १० भाग करे। उसमें २-२ भाग के बराबर दीवार की मोटाई रखें। शेष ६ भाग का गर्भगृह बनायें। (प्रा.मं. ३/३२ पृ. ५९)

स्तंभ

प्रासाद/मन्दिर का आधार दीवार तथा स्तंभ पर निर्भर होता है। स्तंभ के बिना छत एवं शिखर का भार अकेले मण्डोवर पर आ जाता है। अतएव स्तंभ यथास्थान स्थापित किये जाते हैं। इनका प्रमाण के अनुरुप ही निर्माण किया जाना चाहिये।

स्तंभ के भेद

आकृति की अपेक्षा मन्दिर में पांच प्रकार के स्तंभ स्थापित किये जाते हैं -

१. **चतुरस्र** - चार कोने वाले स्तंभ को चतुरस्र स्तंभ कहते हैं।
२. **भद्रक** - भद्रयुक्तस्तंभ को भद्रक कहते हैं।
३. **वर्धमान** - प्रतिरथ युक्त स्तंभ को वर्धमान कहते हैं।
४. **अष्टास्र** - आठ कोने वाला स्तंभ अष्टास्र कहलाता है।
५. **स्वस्तिक** - आसन के भद्र तथा आठ कोने वाला स्तंभ स्वस्तिक कहलाता है।

स्तंभ और मण्डोवर का समन्वय

स्तंभ एवं मण्डोवर के थरों में एक रुपता रखना आवश्यक है तभी मन्दिर के स्तंभ शोभायमान होंगे। ऐसा करने के लिये निम्न लिखित को समसूत्र में रखना अत्यंत आवश्यक है। -

१. मंडोवर का कुम्भ तथा स्तंभ की कुम्भ
२. मंडोवर का उद्गम तथा स्तंभ की मथाला
३. मंडोवर की भरणी तथा स्तंभ की भरणी
४. मंडोवर की मपोताली तथा स्तंभ की शिरावटी

इसके अतिरिक्त पाट के पेटा भाग तक छज्जे का नमता हुआ भाग रखना चाहिये।

प्रा.मं. ३/३४-३५ पूर्वार्द्ध.
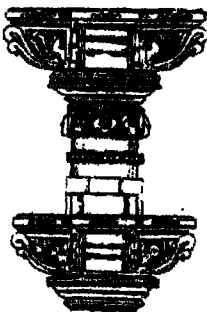
स्तम्भशीर्ष

स्तम्भ के मान की गणना

विभिन्न विद्वानों ने अपने दृष्टिकोणं से स्तंभ के विस्तार का मान दिया है वे मान इस प्रकार हैं -

विधि १- मन्दिर की चौड़ाई के १० वें, ११वें या १२वें भाग के समान प्रमाण की चौड़ाई का स्तम्भ बनाना चाहिये। (प्रा. मं. ७/१४)

विधि २-मन्दिर की चौड़ाई के १३ वें एवं १४वें भाग के बराबर प्रमाण की चौड़ाई का स्तंभ भी बनाया जा सकता है। (अप. सू. १८४/३५ प्रा.मं. पृ. १२१)

विधि ३- क्षीरार्णव के मतानुसार

प्रासाद की चौड़ाई		**स्तंभ की चौड़ाई**
हाथ में	*फुट में*	*अंगुल / इंच*
१	२	४ अंगुल / इंच
२	४	७ अंगुल / इंच
३	६	९ अंगुल / इंच
४-१०	८-२०	प्रत्येक हाथ के २-२ अंगुल बढ़ाएं
११-३०	२२-६०	प्रत्येक हाथ के १,१/४ अंगुल बढ़ाएं
३१-४०	६२-८०	प्रत्येक हाथ के १ अंगुल बढ़ाएं
४१-५०	८२-१००	प्रत्येक हाथ के ३/४ अंगुल बढ़ाएं इसमें

५० हाथ (१०० फुट) वाले प्रासाद में स्तंभ की चौड़ाई २ हाथ १७,१/२ अंगुल (५ फुट५,१/२ इंच) होगी।

विधि ४- ज्ञानप्रकाश दीपार्णव के मतानुसार

प्रासाद की चौड़ाई		**स्तंभ की चौड़ाई**
हाथ में	*फुट में*	*अंगुल / इंच*
१	२	४ अंगुल / इंच
२	४	७ अंगुल / इंच
३	६	९ अंगुल / इंच
४	८	१२ अंगुल /इंच
५-१२	१०-२४	प्रत्येक हाथ के १,१/२ अंगुल बढ़ाएं
१३-३०	२६-६०	प्रत्येक हाथ के १ अंगुल बढ़ाएं
३१-५०	६२-१००	प्रत्येक हाथ के १/२ अंगुल बढ़ाएं

इसमें ५० हाथ वाले प्रासाद में स्तंभ की चौड़ाई २ हाथ २,१/२ अंगुल होगी। स्तम्भ की चौड़ाई से चार गुनी स्तंभ की ऊंचाई रखें।
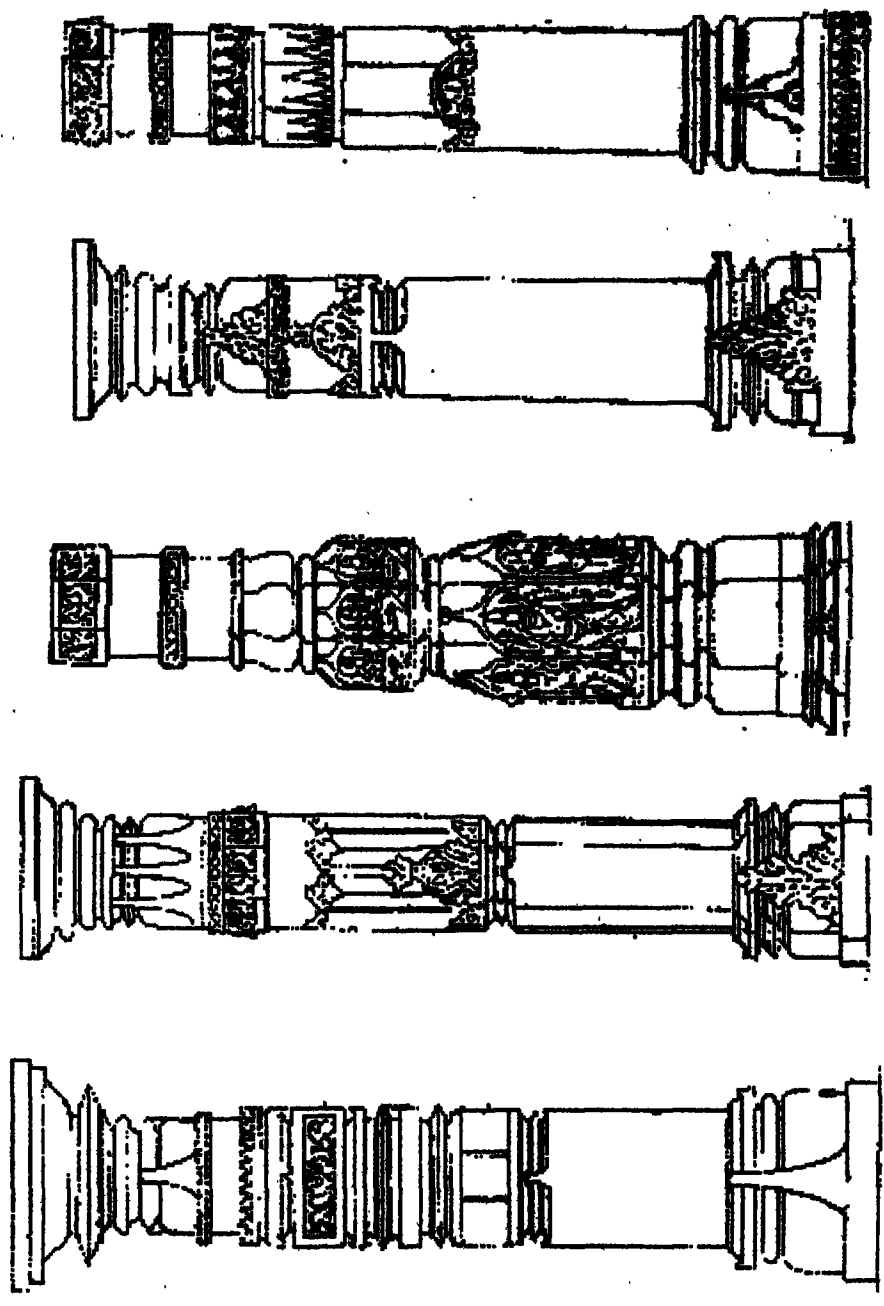
स्तंभों की विभिन्न शैलियाँ
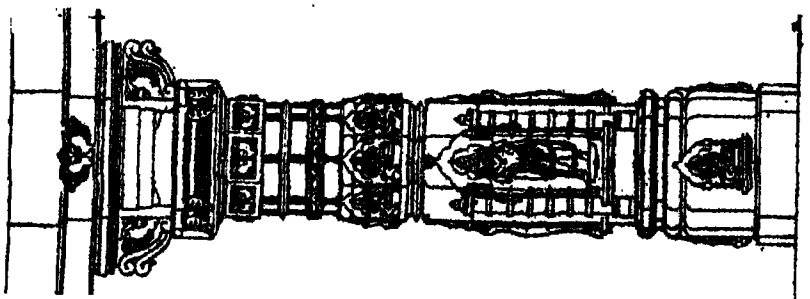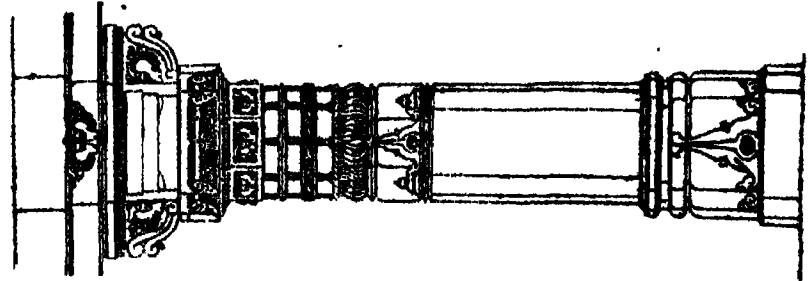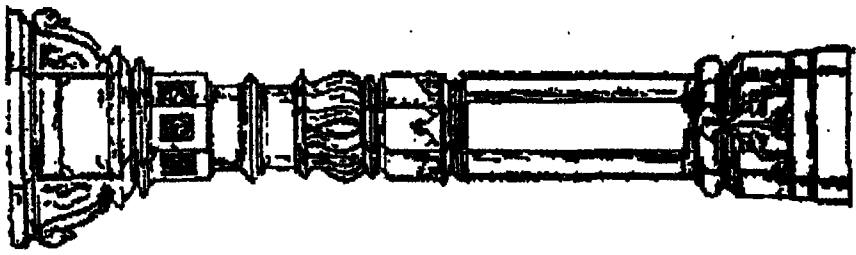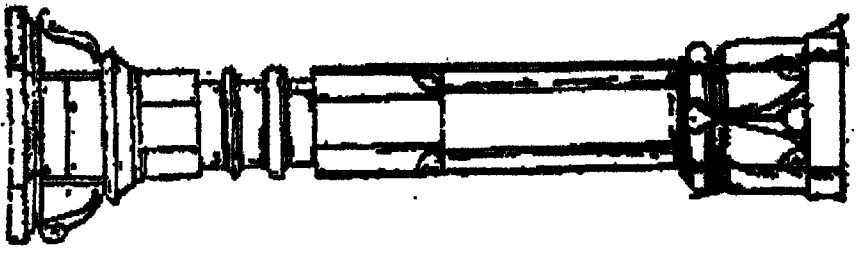
स्तंभों की विभिन्न शैलियाँ

स्तंभों की विभिन्न आकृतियाँ
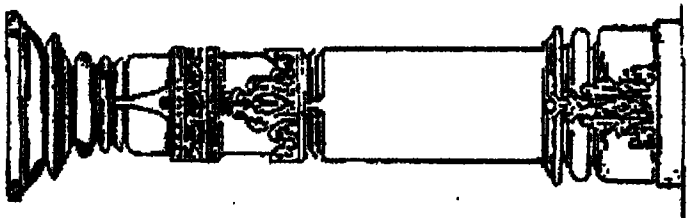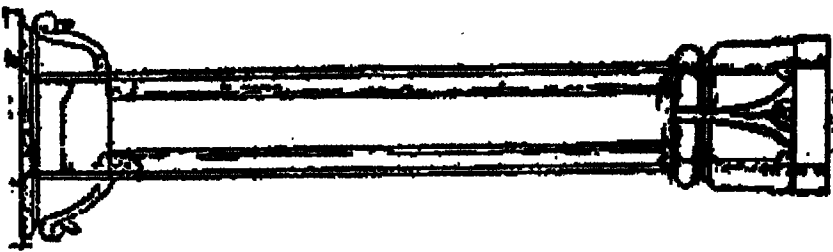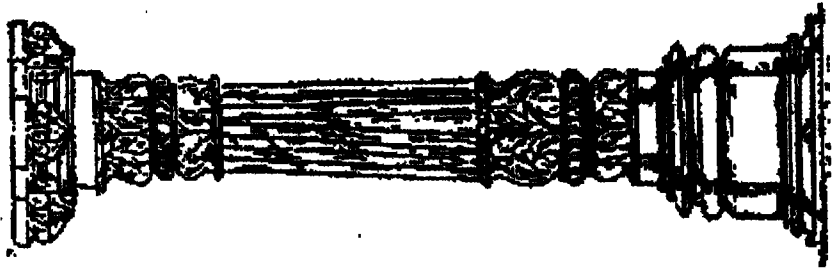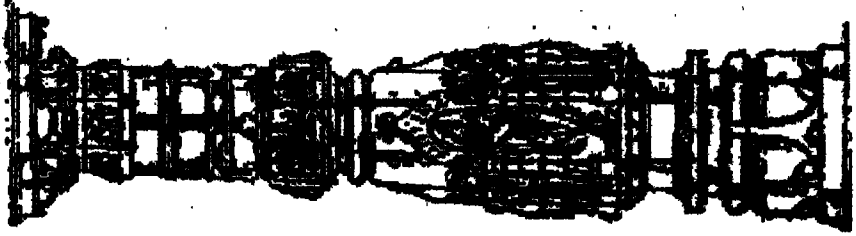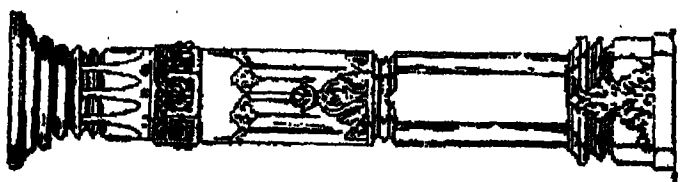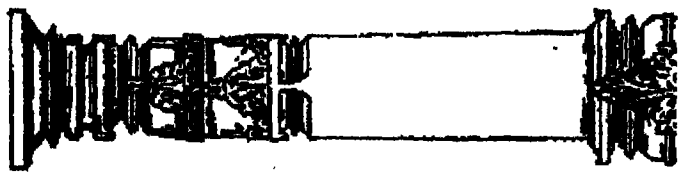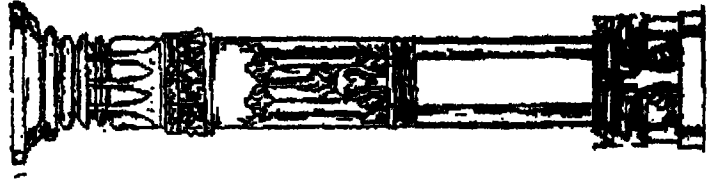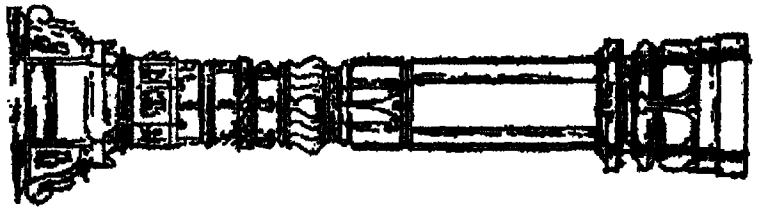
स्तंभों की विभिन्न शैलियाँ

स्तंभों की विभिन्न शैलियाँ
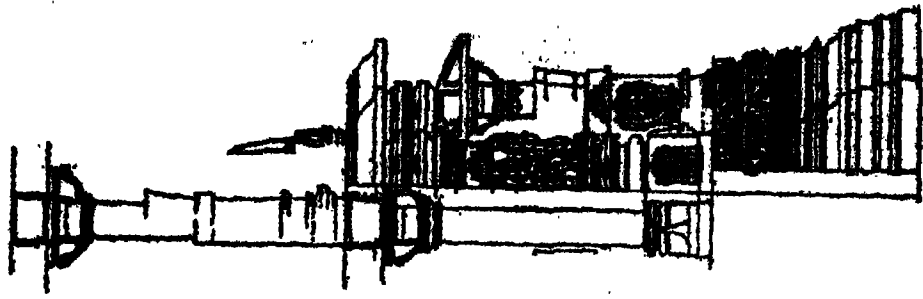
स्तम्भ और मंडोवर का समन्वय
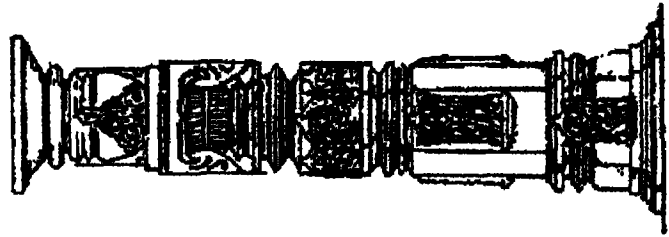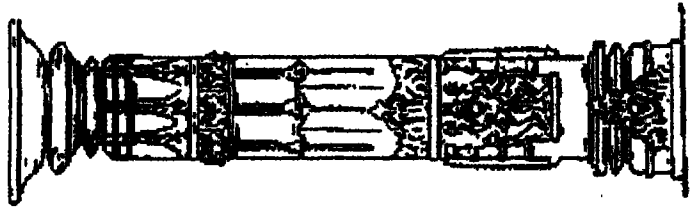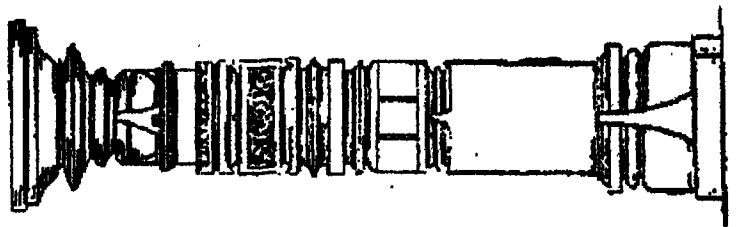
देहरी

आवास की भांति मंदिर में भी दरवाजों की चौखट एवं देहरी का विशिष्ट महत्व है। द्वार प्रमुख हो अथवा भीतर के, चौखट युक्त दरवाजा होना आवश्यक है। वर्तमान में बिना चौखट अथवा मात्र तीन भुजाओं के फ्रेम में दरवाजा लगाने का चलन है किन्तु यह उपयुक्त नहीं है। दरवाजा चौखट युक्त होना श्रेष्ठ एवं उपयोगी है।

चौखट में नीचे की भुजा को उदुम्बर या देहरी कहा जाता है। ऊपर की भुजा को उत्तरंग कहा जाता है। प्रवेश या निर्गम करते समय देहरी के ऊपर से जाया जाता है। उपासक गण मंदिर में प्रवेश करने से पूर्व देहरी को नमन करते हैं उसके पश्चात् भीतर प्रवेश करते हैं। देहरी को नमन करना मात्र भक्ति का अतिरेक नहीं है, न ही किसी प्रकार का आडम्बर। वास्तव में जिन मन्दिर स्वयं भी एक पूज्य देवता है। जैन आगम शास्त्रों में नव देवताओं का व्याख्यान किया गया है। ये सभी नव देवता पूज्य हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं -

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु
जिन धर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय .

चैत्यालय (मन्दिर) स्वयं भी एक देवता होने से पूज्य हैं। उपासकगण मन्दिर में प्रवेश करते समय देहरी को स्पर्श कर नमन करते हैं। उसके पश्चात ही मन्दिर में प्रवेश करते हैं। स्त्रियां भी पर्वादिक के समय देहरी की कुंकुम आदि द्रव्यों से पूजा करती हैं। इस प्रकार चैत्यालय की देहरी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अतएव बिना देहरी के मुख्य द्वार बनाने की कल्पना भी नहीं करना चाहिये।

देहरी का पर्याप्त व्यवहारिक महत्व भी है। रेंगकर चलने वाले प्राणी सर्प, गोह, छिपकली, बिच्छू आदि देहरी होने से भीतर प्रवेश करने में समर्थ नहीं होते।

देहरी का निर्माण कराते समय उसमें उपयुक्त नक्काशी भी कराना चाहिये। शोभायुक्त देहरी द्वार की शोभा संवर्द्धित करती है।

मन्दिर के प्रवेश द्वार देहरी के बगैर बनाना अत्यंत अशुभ है। गर्भगृह में भी देहरी युक्त चौखट अवश्य बनवाना चाहिये।

उदुम्बर (देहरी) का निर्माण

मन्दिर के कोने के समसूत्र में देहरी बनवाना चाहिये। इसकी ऊंचाई कुम्भा की ऊंचाई के बराबर रखें। इसकी स्थापना करते समय इसके नीचे पंच रत्न रखें। यदि ऊंचाई कम करना इष्ट हो तो कुम्भा की ऊंचाई का आधा, एक तिहाई, अथवा एक चौथाई भाग कम कर सकते हैं। इससे ऊंची अथवा नीची देहरी बनाना उचित नहीं है। देहरी स्थापना के समय शिल्पी का सम्मान करें। *

देहरी (उदुम्बर) की रचना

देहरी की चौड़ाई के तीन भाग समान करें। उसमें से मध्य के भाग के मध्य में अर्धचन्द्र की आकृति का तथा कमल पत्रों से युक्त मन्दारक बनायें। देहरी की ऊंचाई के आधे भाग में जाड्य कुम्भ तथा कर्णा, ऐसी दो थर वाली कण पीठ बनायें। मन्दारक के दोनों ओर एक- एक भाग में ग्रास मुख (कीर्ति मुख) बनायें। उसके पार्श्व में शाखा के तल का रुपक बनायें।

खुरथर के बराबर अर्धचन्द्र की ऊंचाई रखें तथा इसके ऊपर देहरी रखें। गर्भगृह के भूमि तल की ऊंचाई उदुम्बर से आधा, तिहाई या चौथाई रखें। बाहर के मण्डपों का भूमितल पीठ की ऊंचाई के समान रखें तथा रंग मंडप का भूमितल पीठ के नीचे के अंतिम भाग में रखें।**

---

*मूलकर्णस्य सूत्रेण कुम्भेनोदुम्बरः समः
तदधः पंचरत्नानि स्थापयेच्छिल्पि पूजया॥ प्रा. मं. ३/३८
कुम्भस्यार्धे त्रिभागे वा पादे हीनं उदुम्बरः।
तदर्धे कणकं मध्ये पीठान्ते बाह्य भूमिका॥ प्रा. मं. ३/४१
उदुम्बरं तथा वक्ष्ये कुम्भिकान्तं तदुच्छ्रयम्।
तस्यार्धेन त्रिभागेन पादोनरहितं तथा॥
उक्तं चतुर्विधंशस्तं कुर्याच्चैवमदुम्बरम्।
अत्युत्तमाश्च चत्वारो न्यूनादुष्यास्तथाधिका॥ अ. पृ.सूत्र १२९

**द्वार व्यास त्रिभागेन मध्ये मन्दारको भवेत।
वृत्तं मन्दारक कुर्याद् मृणालं पद्मसंयुतं। प्रा. मं. ३/३९
जाड्य कुम्भः कणाली च कीर्तिवक्त्रद्वयं तथा।
उदुम्बरस्य पार्श्वे शाखायास्तलरुपकम्॥ प्रा. मं. ३/४०
खुरकोर्ध्वेऽर्द्धचन्द्र स्यात् तदूर्ध्वं स्यादुदुम्बरः।
उदुम्बरार्द्धे त्र्यंशे वा पादे वा गर्भभूमिका॥ अ.पृ.सू. १२९/११
मण्डपेषु च सर्वेषु पीठान्ते रंगभूमिका।
एषा युक्तिर्विधातव्या सर्वकामफलोदया॥ अ.सू.१२९/१२

यदि किसी कारण से देहरी की ऊंचाई कम करना पड़े तो भी कुम्भी तथा स्तंभ का मान पूर्ववत् ही रखें कम न करें। शेष मन्दिरों में चाहें वे सांधार हों या निरंधार, कुंभी की ऊंचाई देहरी के बराबर ही रखना चाहिये। *
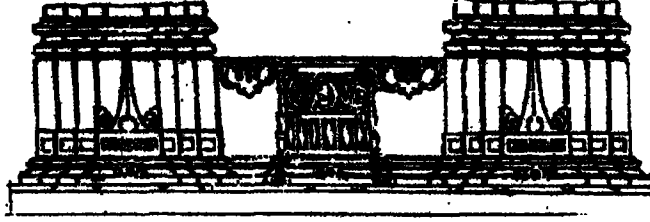
उदुम्बर देहरी

शंखावर्त अर्धचन्द्र

देहरी के आगे बनाई जाने वाली अर्धचन्द्राकृति रचना को शंखावर्त कहते हैं। यह देहली के आगे की अर्धचन्द्राकार शंख और लताओं वाली आकृति होती है। इसका प्रमाण इस प्रकार रखना चाहिए -

इसकी ऊंचाई खुरथर की ऊंचाई के समान रखें। द्वार की चौड़ाई के बराबर लम्बा अर्धचन्द्र बनायें तथा लम्बाई से आधा निर्गम रखें। लम्बाई के तीन भाग करके उसके दो भागों का अर्धचन्द्र बनायें तथा आधे आधे भाग के दो गगारक बनायें। अर्धचन्द्र और गगारक के बीच में पत्ते वाली बेलयुक्त शंख और कमलपत्र जैसी सुशोभित आकृति बनायें। गगारक देहली के आगे अर्धचन्द्राकृति के दोनों तरफ की फूल पत्ती की आकृति होती है। **

---

*उदुम्बरे क्षते कुम्भी स्तम्भकं चावपूर्वकम्।
सान्धारे च निरन्धारे कुम्भिकान्तमुदुम्बरम्॥ क्षीरार्णव अ. १०९

**खुरकेन समं कुर्याद्र्धचन्द्रस्य चोच्छ्रतिः।
द्वार व्यास समं दैर्घ्यं निर्गमं स्यात् तदर्धतः॥ प्रा. मं. ३/ ४२/ क्षीरार्णव १०९/२४
द्विभागमर्धचन्द्रं च भागेन द्वौ गगारकौ।
शंखपत्र समायुक्तं पद्माकारैलंकृतम्॥ प्रा. मं. ३/ ४३ /क्षीरार्णव १०९/२५

द्वार

मन्दिर में प्रवेश के स्थान पर द्वार निर्माण करना चाहिये। प्रमुख प्रवेश के स्थान पर मुख्य द्वार तथा भीतर सामान्य द्वारों का निर्माण किया जाता है। मुख्य द्वार मन्दिर का प्रमुख अंग है तथा उसका निर्माण अत्यंत गंभीरता से प्रमाण सहित ही किया जाना चाहिये। द्वार का निर्माण निर्दोष करना अत्यंत आवश्यक है।

द्वार का निर्माण करते समय सामान्य नियमों का तो ध्यान रखना ही चाहिये। साथ ही मन्दिर के गर्भगृह के समसूत्र तथा आकार के अनुपात का भी ध्यान रखना आवश्यक है। गर्भगृह के आकार, प्रतिमा के आकार तथा द्वार के आकार में एक निश्चित अनुपात का होना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा न किये जाने पर मन्दिर तो शोभाहीन होगा ही साथ ही इसके परिणाम भी अत्यन्त भीषण होंगे।

द्वारों का निर्माण कलात्मक रीति से किया जाना चाहिये किन्तु उनकी कलाकृति से उनके आकार में अन्तर न आये यह सावधानी रखें।

द्वार के लिये नियम

१) मन्दिर का मुख्य द्वार मूलनायक प्रतिमा के ठीक सामने होना चाहिये। गर्भालय का द्वार भी आगे के दरवाजे के समसूत्र में रखना चाहिये। गर्भालय एवं आगे के दरवाजों को समसूत्र में रखना शुभ एवं फलदायक है। किंचित भी न्यूनाधिक विषम सूत्र न रखें।

२) दरवाजे के किवाड़ यदि अंदर के भाग में ऊपर की तरफ झुके होंगे तो यह मन्दिर के लिये धन नाश का निमित्त बनेगा।

३) दरवाजे के किवाड़ यदि बाहर के भाग में ऊपर की ओर झुके होंगे तो समाज में कलह एवं रोग का कारण बनेगा।

४) दरवाजा खोलते या बन्द करते समय आवाज निकलना अशुभ एवं भयकारक है।

५) दरवाजा भीतर की ओर ही खुलना चाहिए। अन्यथा रोग होंगे।

६) दरवाजे की चौड़ाई एवं ऊंचाई निर्धारित मान के अनुकूल रखें अन्यथा विषम परिस्थितियां जैसे - भय, अकारण चिन्ता, स्वास्थ्य हानि, अकस्मात धननाश आदि स्थितियां बन सकती हैं।

७) यदि द्वार स्वयमेव खुले या बन्द होवें तो उसे अशुभ समझें। इससे व्याधि, पीड़ा, वंशहानि के संकट समाज में आ सकते हैं।

८) यदि द्वार पत्थर का हो तो चौखट पत्थर की बनायें।

९) दरवाजे यदि लकड़ी के हों तो लकड़ी की चौखट तथा लोहे के हों तो लोहे की चौखट लगायें।

१०) सुरक्षा की दृष्टि से गर्भगृह एवं मूलद्वार के अन्दर चैनल गेट लगा सकते हैं किन्तु इनसे भगवान की दृष्टि अवरोध नहीं होना चाहिए।

११) यथासंभव मन्दिर में चिटखनी, सांकल, कब्जे आदि पीतल के लगायें, लोहे के न लगाएं।

१२) बिना द्वार का मन्दिर कदापि न बनायें। यह समाज के लिए अशुभ, हानिकारक है तथा नेत्ररोगों की वृद्धि का निमित्त होगा।

१३) दरवाजे एवं चौखट एक ही लकड़ी के बनवायें। लोहे के दरवाजे अथवा शटर न बनवायें।

१४) एक दीवाल में तीन दरवाजे या तीन खिड़की न रखें। एक दरवाजा एवं तीन खिड़की रख सकते हैं।

१५) पूरी वास्तु में दरवाजे सम संख्या में हों किंतु दशक में न हों। २,४,६,८,१२,१४,१६ हों किन्तु १०,२०,३० न हों।

द्वार वेध

द्वार वास्तु का एक प्रमुख अंग है। द्वार से ही वास्तु के भीतर आना जाना किया जा सकता है। द्वार का अपने प्रमाण में होना तो निस्संदेह आवश्यक है साथ ही द्वार के समक्ष किसी भी प्रकार का अवरोध उसमें वेध दोष उत्पन्न करता है। इसका विपरीत फल वास्तु के उपयोगकर्ता को भोगना पड़ता है। निर्माता एवं शिल्पकार दोनों को यह सावधानी रखनी आवश्यक है कि द्वारों में किसी प्रकार का वेध न हो। अग्रलिखित सारणी में द्वार वेध के परिणामों कीं ओर निर्देश किया गया है -

द्वार वेध के परिणाम

मुख्य द्वार के सामने वेध	फल
द्वार के नीचे पानी के निकलने से	निरन्तर धन का अपव्यय
द्वार के सामने कीचड़ जमा रहना	समाज में शोक
द्वार के सामने वृक्ष	बच्चों को कष्ट
द्वार के सामने कुंआ	रोग
द्वार से मार्गारम्भ	यजमान का नाश
द्वार में छिद्र	धननाश

द्वार वेध दोष परिहार

मुख्य द्वार की ऊंचाई से दुगुनी भूमि छोड़कर यदि वेध है तो वह दोष नहीं है। यदि द्वार एवं वेध के मध्य मुख्य राजमार्ग होवे तो भी वेध का दोष नहीं माना जाता है।

द्वार का आकार

१. द्वार का आकार चौकोर आयताकार रखें।
२. त्रिकोण, सूप के आकार का, वर्तुलाकार दरवाजा न बनवायें।
३. दरवाजे दो पलड़े के ही बनवायें। एक पलड़े का दरवाजा न बनवायें।
४. द्वारों का आकार विषम नहीं होना चाहिये।

विषमाकार दरवाजों का परिणाम

द्वार की आकृति	**परिणाम**
त्रिकोणाकृति	स्त्री दुःख
सूपाकार	धन नाश
वर्तुलाकार	कन्या जन्म
धनुषाकार	कलह
मुरजाकार	धन नाश

अतएव द्वार चौकोर एवं सम प्रमाण ही बनायें।

द्वार के आकार का अनुपात

प्राचीन वास्तु शास्त्रों में मन्दिर के द्वार का प्रमाण मन्दिर के विस्तार के अनुपात में बताया गया है। मन्दिर का मूल गर्भगृह वर्गाकार समचतुरस्र बनाया जाता है। सही अनुपात में निर्माण किए गये द्वार शोभावर्धक होने के साथ ही मंगलकारी भी होते हैं। यह विशेष रुप से उल्लेखनीय है कि मन्दिर में स्थापित देव प्रतिमा की दृष्टि द्वार के विशिष्ट स्थान पर ही आना चाहिये। इसका विशेष उल्लेख पृथक प्रकरण में दिया गया है।

द्वार की ऊंचाई के मान की गणना

द्वार की ऊंचाई का एक निश्चित मान मन्दिर की ऊंचाई से होता है।

सामान्यतया द्वार के अनुपात में ऊंचाई से चौड़ाई आधी रखने का विधान है। नागर, भूमिज, द्राविड़ प्रासादों में यही अनुपात मान्य है। विशेष गणना के लिए अग्रलिखित सारणियां दृष्टिगत रखना चाहिये।

नागर जाति के मन्दिरों का मान दृष्टव्य है। इसका १० वां भाग कम करें तो स्वर्ग के तथा अधिक करें तो पर्वत के आश्रित मन्दिर के द्वार का मान होता है।

उत्तम द्वार का मान - ऊंचाई से आधी चौड़ाई रखें।

मध्यम द्वार का मान-उत्तम द्वार की चौड़ाई से एक चौथाई कम रखें।

कनिष्ठ द्वार का मान - मध्यम मान की चौड़ाई से एक चौथाई कम रखें।

शिवालय में ज्येष्ठ द्वार, मनुष्यालय में कनिष्ठ द्वार तथा सर्व देवों के मन्दिर में मध्यम द्वार रखना चाहिये। भूमिज एवं द्राविड़ प्रासादों के द्वार के मान किंचित पृथक हैं।

नागर जाति के प्रासादों के द्वार मान की गणना *

मन्दिर की चौड़ाई			द्वार की ऊंचाई
हाथ में	फुट में		अंगुल/इंच
१	२		१६ अंगुल
२	४		३२ अंगुल
३	६		४८ अंगुल
४	८		६४ अंगुल
५ से १०	१०-२०	*(४-४ अंगुल बढ़ायें)*	६८-७२-७६-८०-८४-८८
११ से २०	२२-४०	*(३-३ अंगुल बढ़ायें)*	९१-९४-९७-१००-१०३-१०६-१०९-११२-११५-११८
२१ से ३०	४२-६०	*(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	१२०-१२२-१२४-१२६-१२८-१३०-१३२-१३४-१३६-१३८
३१ से ५०	६२-१००	*(१-१ अंगुल बढ़ायें)*	१३९-१४०-१४१-....१५८

भूमिज जाति के प्रासादों के द्वार मान की गणना

मन्दिर की चौड़ाई		द्वार की ऊंचाई
हाथ में	फुट में	अंगुल / इंच
१	२	१२ अंगुल
२ से ५	४-१०	२४,३६,४८,६० अंगुल
६ से ७	१२-१४	६५ अंगुल
८ से ९	१६-१८	७४, ७८
१० से २०	२०-४० *(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	८०,८२,८४,८६,८८,९०...१००
२१ से ३०	४२-६०*(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	१०२.. ....१२०
३१ से ४०	६२-८० *(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	१२२ ...... १४०
४१ से ५०	८२-१०० *(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	१४२ ...... १६० अंगुल

द्वार की ऊंचाई से चौड़ाई आधी रखनी चाहिये। यदि चौड़ाई में ऊंचाई का सोलहवां भाग बढ़ाये तो अधिक श्रेष्ठ होता है। उदाहरणार्थ अनुपात इस प्रकार होगा :-

४ हाथ (८ फुट) ऊंचाई व २ हाथ (४ फुट) चौड़ाई तथा २,१/४ हाथ (४,१/२ फुट) चौड़ाई श्रेष्ठ शोभार्थ।

---

*क्षीरार्णव के अनुसार

द्राविड़ जाति के प्रासादों के द्वार मान की गणना

मंदिर की चौड़ाई			द्वार की ऊंचाई
हाथ में	फुट में		अंगुल /इंच
१	२		१० अंगुल
२ से ६	४-१२	*(६-६ अंगुल बढ़ायें)*	१६, २२, २६, ३४, ४० अंगुल
७ से १०	१४-२०	*(५-५अंगुल बढ़ायें)*	४५, ५०, ५५, ६० अंगुल
११ से २०	२२-४०	*(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	६२, ६४, ६६, ६८, ७०, ७२, ७४, ७६, ७८, ८० अंगुल
२१ से ३०	४२-६०	*(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	८२, ८४, ... १०० अंगुल
३१ से ४०	६२-८०	*(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	१०२, १०४, ...१२० अंगुल
४१ से ५०	८२-१००	*(२-२ अंगुल बढ़ायें)*	१२२, १२४, ...१४० अंगुल

द्वार की ऊंचाई से चौड़ाई आधी रखें। चौड़ाई में यदि ऊंचाई का सोलहवां भाग बढ़ाएं तो अधिक शोभायमान होगा। उदाहरणार्थ अनुपात इस प्रकार होगा :-

४ हाथ (८ फुट) ऊंचाई व २ हाथ (४ फुट) चौड़ाई तथा २,१/४ हाथ (४,१/२ फुट) चौड़ाई श्रेष्ठ शोभार्थ

विभिन्न जातियों के मंदिरों के द्वार मान

भूमिज जाति के द्वार मान के बराबर – विमान, वैराट, वलभी जाति के मंदिरों में

नागर जाति के द्वार मान के बराबर – मिश्र, ललिज, विमान, नागर, पुष्पक, सिंहावलोकन जाति के मंदिरों में

द्राविड़ जाति के द्वार मान के बराबर – फांसांकार, धातु, रत्न, दारुज, रथारुह जाति के मंदिरों में

पालकी, रथ, गाड़ी, पलंग, मन्दिर का द्वार, गृहद्वार की ऊंचाई से चौड़ाई आधी रखना चाहिये। अगर चौड़ाई बढ़ाना इष्ट हो तो ऊंचाई का सोलहवां भाग ही बढ़ाना चाहिये।

द्वार की आय

द्वार से ध्वजादिक आय की विशुद्धि के लिये द्वार की ऊंचाई में आधा या डेढ़ अंगुल कम ज्यादा किया जाये तो कोई दोष नहीं है। द्वार उपयुक्त आय में ही बनाना आवश्यक है। *

---

*अंगुलं सार्धमर्धं वा कुर्याद्धीनं तथाधिकम। आय दोष विशुद्ध्यर्थं, ह्रस्ववृद्धि न दूषयेत्॥ शि. र. ३/१५६

द्वार शाखा

द्वार के दोनों पार्श्व स्तम्भों में कई फालना या भाग बनाये जाते हैं, इन्हें द्वार शाखा कहते हैं अर्थात् द्वार की चौखट के एक पक्खा को द्वार शाखा कहा जाता है। द्वार एक से प्रारंभ कर नौ शाखाओं तक के होते हैं। महेश के प्रासाद में नव शाखा का; अन्य देवों के प्रासाद में सात शाखा का; चक्रवर्ती नरेशों के प्रासाद में पांच शाखा का तथा सामान्य राजाओं का प्रासाद तीन शाखा का द्वार बनाना चाहिये। एक शाखा वाला द्वार द्विजों एवं शूद्रों के लिए आवास में बनायें। जिन मन्दिर में सात या नौ शाखा वाला द्वार बनायें।*

शाखाओं के आधार पर द्वारों के नाम , गुण एवं आय#

शाखाओं की संख्या	नाम	गुण	आय
नवशाखा	पद्मिनी	उत्तम	ध्वज आय
आठ	मुकुली	ज्येष्ठ	ध्वांक्ष आय
सात	हस्तिनी	उत्तम	गज आय
छह	मालिनी	ज्येष्ठ	खर आय
पांच	नन्दिनी	उत्तम	वृषभ आय
चार	गांधारी	मध्यम	श्वान आय
तीन	सुभगा	मध्यम	सिंह आय
दो	सुप्रभा	कनिष्ठ	धूम आय
एक	स्मरकीर्ति		

प्रासाद के भद्र आदि तीन, पांच, सात या नव अंग हैं। उनमें जितने अंग का प्रासाद हो उतनी ही शाखाएं बनानी चाहिये। अंग से कम शाखा न बनायें , अधिक बनाना सुखद है। **

शाखा स्तम्भ का निर्गम (निकलता हुआ भाग) :-

द्रव्य की अनुकूलता के अनुसार शाखा के स्तम्भ का बाहर निकलता हुआ भाग एक, डेढ़, पौने दो अथवा दो भाग तक रख सकते हैं। $

---

*एकशाखं भवेद् द्वारं शूद्रे वैश्ये द्विजे सदा।
समशाखं च धूमाये श्वाने रासभवायसे ॥ प्रा. मं. ३/५५

** त्रिपंचसप्तनन्दांगे शाखाः स्युरंगतुल्यकाः।
हीनशाखं न कर्तव्यमधिकाद्यं सुखावहम् ॥ प्रा. मं. ३/५६

#अप. सू. १३१

$ एकांशं सार्धभागं च पादोनद्वयमेवच।
द्विभागे निर्गमेकुर्यात् स्तम्भं द्रव्यानुसारतः ॥ प्रा. मं. ३/६०

त्रिशाखा द्वार

शाखा की चौड़ाई के चार भाग करें। उसमें दो भाग का रुप स्तंभ बनाएं। यह स्तंभ पुरुष संज्ञक है। इसके दोनों तरफ एक एक भाग की शाखा रखें। यह शाखा स्त्री संज्ञक है। रुप स्तंभ का बाहर निकलता भाग एक भाग का रखना श्रेष्ठ है। द्रव्य की अनुकूलता से शाखा के स्तंभ का निकलता हुआ भाग एक, डेढ़, पौने दो अथवा दो भाग तक रख सकते हैं। शाखा की चौड़ाई का चौथा भाग शाखा का निकलता भाग रखें। रुप स्तंभ के दोनों तरफ शोभा के लिये एक एक कोणिका बनाएं। इसमें चम्पा के फूलों की अथवा जलवट की आकृति करें। सभी शाखाओं का प्रवेश शाखा की चौड़ाई का चौथा, साढ़े चार अथवा पांचवा भाग करें। द्वार की ऊंचाई चार भाग करके एक भाग की ऊंचाई में द्वारपाल बनायें तथा तीन भाग की ऊंचाई में स्तम्भ और शाखा आदि बनाएं।

पंच शाखा द्वार

पांच शाखा द्वार की चौड़ाई के छह भाग करें। उसमें एक एक भाग की चार शाखा तथा दो भाग का रुप स्तम्भ बनायें। रुपस्तंभ का निर्गम (निकलता हुआ भाग) एक भाग रखें। इसके दोनों तरफ कोणी बनावें। दूसरी शाखा का निर्गम एक भाग रखें। उसके समसूत्र में चौथी व पांचवीं शाखा एक एक भाग निकलती रखें। स्तंभ का निर्गम सवा अथवा डेढ़ भाग भी रख सकते हैं। द्वार की ऊंचाई का आठवां भाग बराबर शाखा के पेटाभाग की चौड़ाई रखें।

पांच शाखाओं का नाम-प्रथम -	पत्र शाखा
द्वितीय -	गन्धर्व शाखा
तृतीय -	रुप स्तंभ
चतुर्थ -	खल्व शाखा
पंचम -	सिंह शाखा
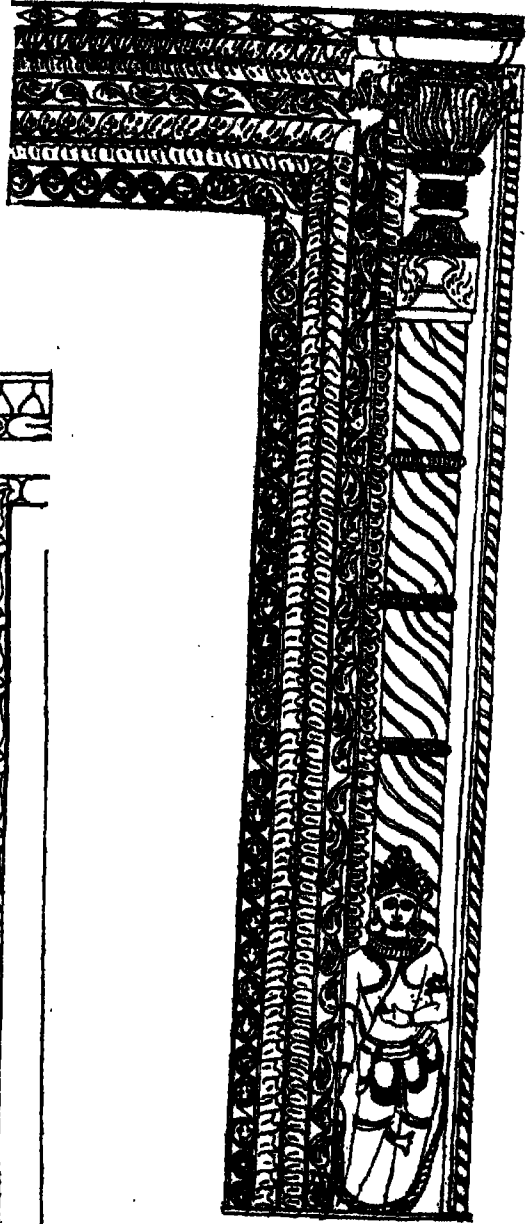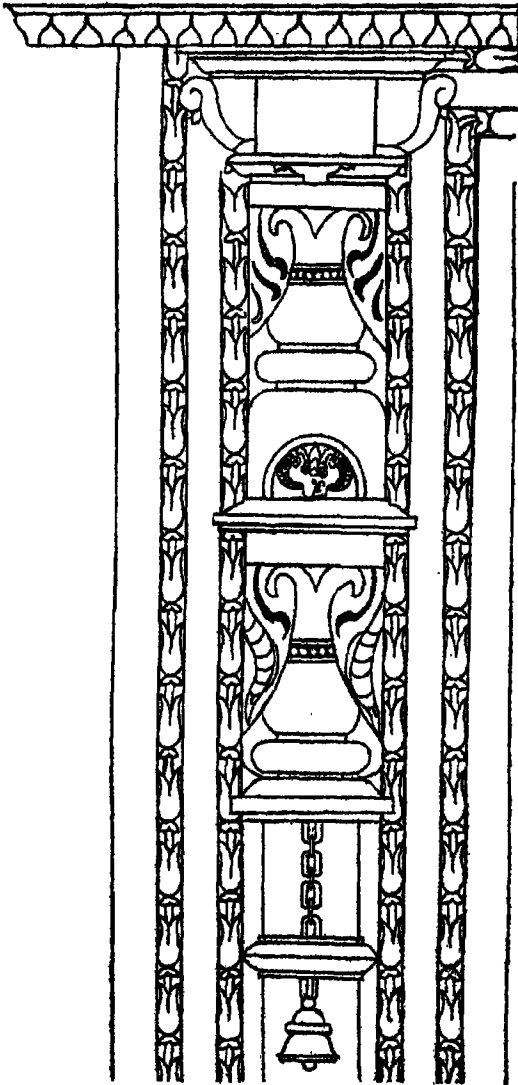
अलंकृत द्वार शाख

सप्त शाखा द्वार

सप्त शाखा की चौड़ाई के आठ भाग करें। मध्य में चौथी शाखा स्तंभ शाखा की चौड़ाई दो भाग करें। दोनों तरफ तीन- तीन शाखा एक एक भाग की रखें। स्तम्भ में दोनों तरफ चौड़ाई में तथा निर्गम में चौथाई चौथाई भाग की कोणिका बनायें। डेढ़ भाग का निकलता हुआ स्तंभ श्रेष्ठ है। दूसरी एवं सातवीं शाखा का निर्गम एक एक भाग रखें। अन्य शाखाओं का निर्गम आधा आधा भाग रखना चाहिये। मध्य में स्तंभ शाखा तीसरी व पांचवी शाखा से आगे निकलती हुई रखें।

सात शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं - प्रथम पत्र शाखा, दूसरी गन्धर्व शाखा, तीसरी रुप शाखा, चौथी स्तंभ शाखा, पांचवीं रुप शाखा, छठवीं खल्व शाखा, सातवीं सिंह शाखा है।
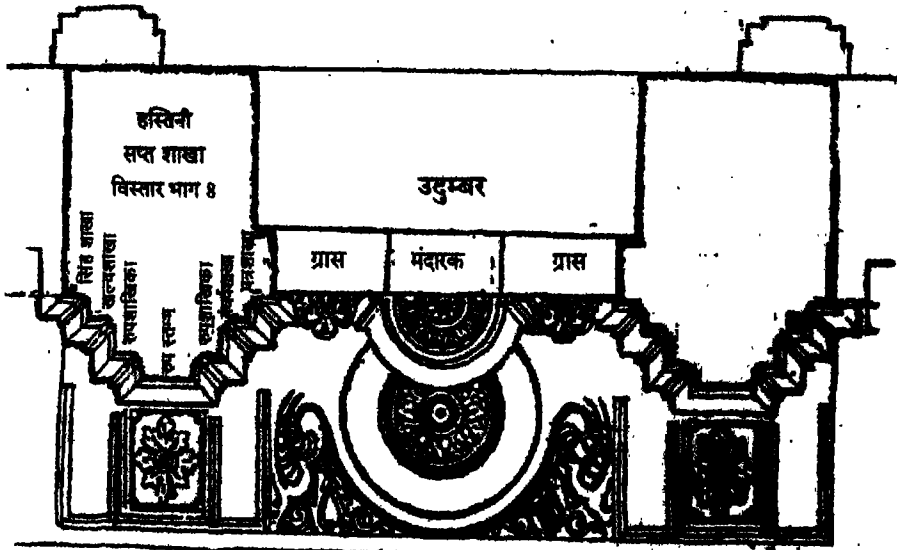
सप्तशाखा द्वार एवं उदुम्बर की रचना

नवशाखा द्वार

नवशाखा की चौड़ाई के ग्यारह भाग करें। उसमें दोनों स्तंभ दो दो भाग रखें। उसके दोनों तरफ चौथाई चौथाई भाग की कोणिकाएं बनायें। स्तंभ की निर्गम डेढ़ा या पौने दो गुना रखें। इन नव शाखाओं में दो स्तंभ शाखा तथा दो गन्धर्व शाखा है। दोनों स्तम्भ की चौड़ाई दो दो भाग रखें। प्रत्येक शाखा की चौड़ाई एक एक भाग रखें।

नव शाखाओं का विस्तार प्रासाद के कोने तक किया जाता है। नवशाखाओं के नाम इस प्रकार हैं - प्रथम पत्र शाखा, द्वितीय गंधर्व शाखा, तृतीय स्तंभ शाखा, चतुर्थ खल्व शाखा, पंचम गंधर्व शाखा, षष्टम रुप स्तंभ, सप्तम रुप शाखा, अष्टम खल्व शाखा, नवम सिंह शाखा है।
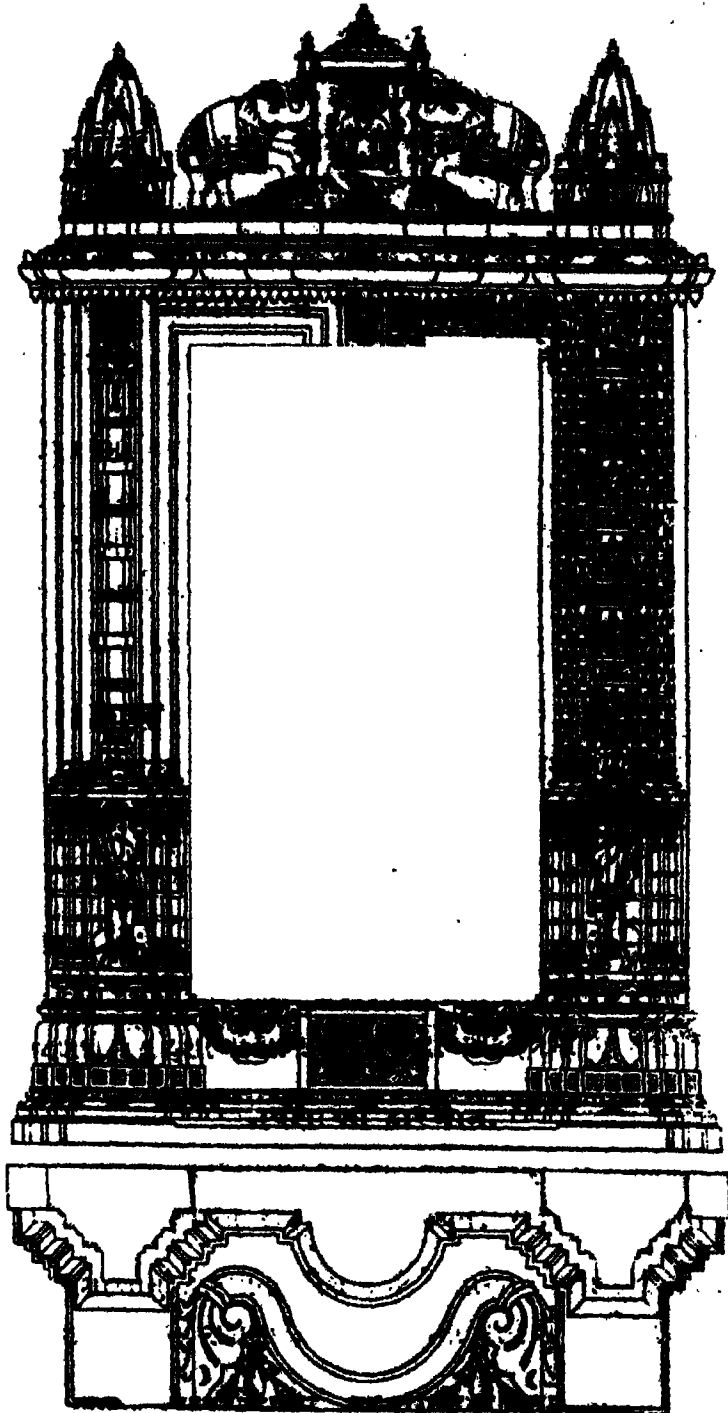
सप्तशाखा द्वार
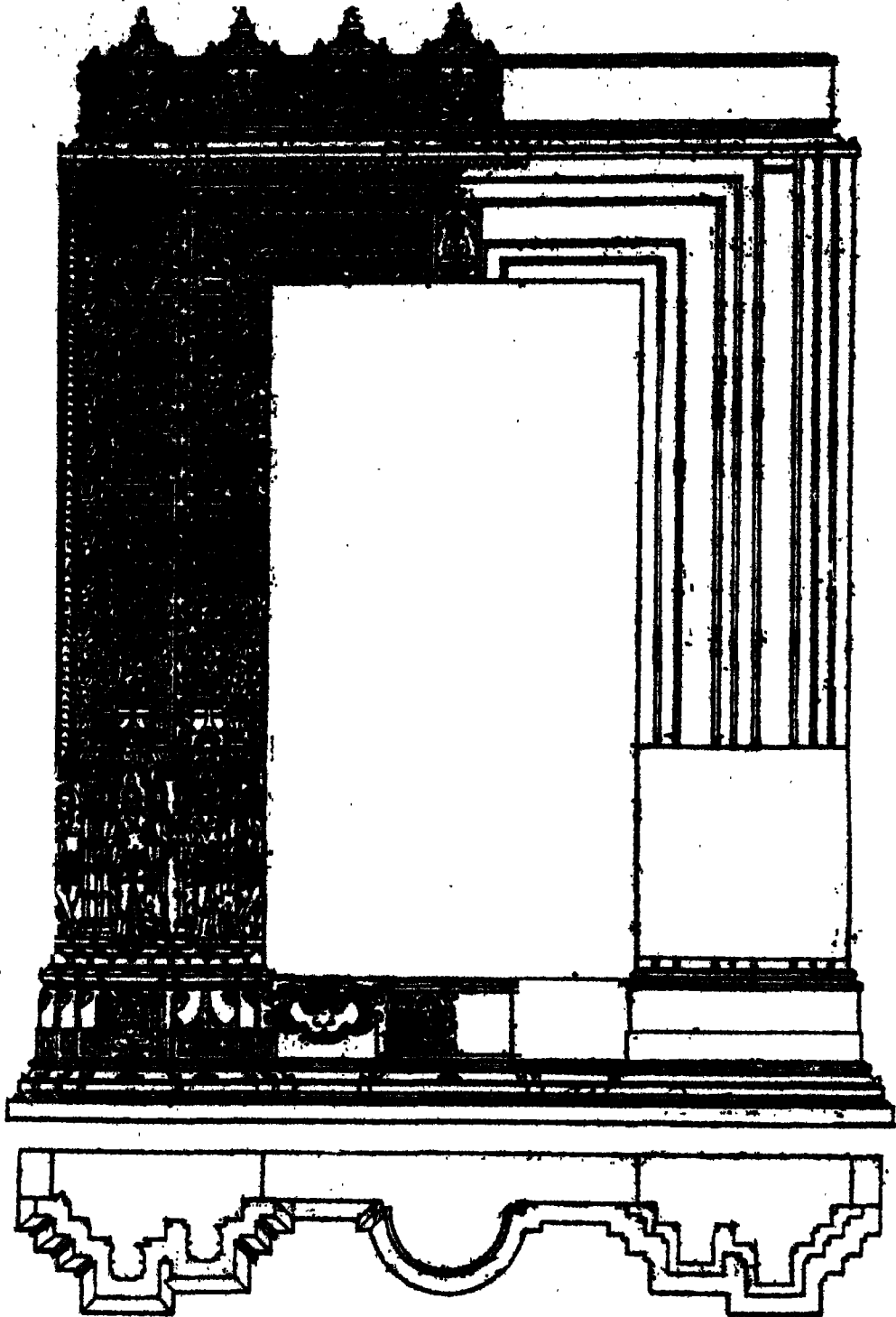
नवशाखा द्वार

उत्तरंग

द्वार शाखा के ऊपर का मथाला (ऊपरी भाग) उत्तरंग कहलाता है। यह भाग सिर के ऊपर वाला भाग है। देहरी या उदुंबर नीचे रहती है जबकि उत्तरंग ऊपर रहता है। उत्तरंग की ऊंचाई द्वार की देहरी की ऊंचाई से सवाई रखना चाहिये।

उत्तरंग की रचना

उत्तरंग की ऊंचाई के इक्कीस भाग करें। उनमें से ढाई भाग की पत्र शाखा एवं त्रिशाखा बनायें। इसके ऊपर तीन भाग का मालाधर, पौन भाग की छज्जी, पौन भाग की फालना, सात भाग की रथिका (गवाक्ष), एक भाग का कण्ठ और छह भाग का उद्‌गम बनायें। इस प्रकार का उत्तरंग बनाना मन्दिर की शोभा में वृद्धि तो करता ही है साथ ही पुण्यवर्धक भी है। *

प्रासाद के गर्भगृह में जिस देवता की प्रतिमा की स्थापना की गई हो उस देव की मूर्ति द्वार के उत्तरंग में बनाई जाना चाहिये। शाखाओं में देव परिवार का रुप बनाना चाहिये। जिनेन्द्र प्रभु के मन्दिर में जिन प्रतिमा उत्तरंग में लगायें। अनेकों स्थानों पर गणेश प्रतिमा को गणेश के अतिरिक्त अन्य मंदिरों में भी विघ्ननाशक के रुप में उत्तरंग में स्थापित किया जाता है, इसमें कोई हानि नहीं है। ऐसा करना मंगलकारक है।**
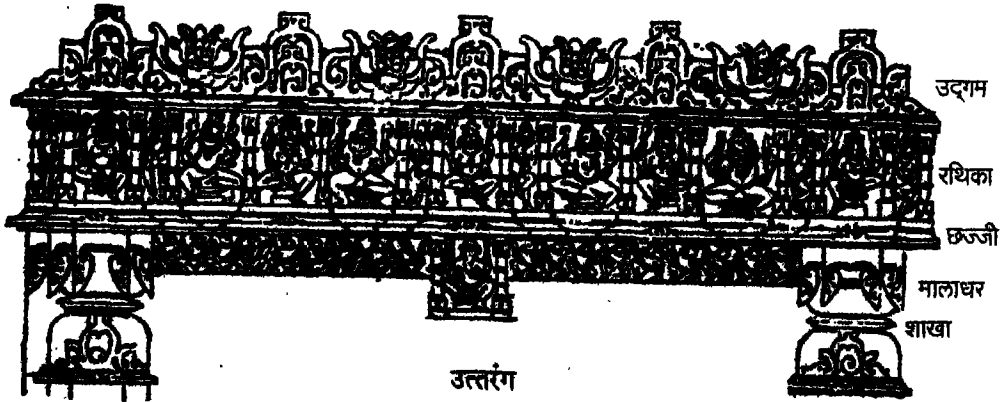
उत्तरंग

*उदुम्बरसपादेन उत्तरंगं विनिर्दिशेत्। तदुच्छ्रयं यं विभजेत भाग अथैक विंशति॥
पत्र शाखा त्रि शाखा च द्वि सार्धा तु कारयेत्। मालाधरं च त्रिभागं कर्तव्यं वामदक्षिणे।
ऊर्ध्वे घाद्यकः पादोन पादोना फालना तथा। रथिका सप्तभागाश्च भागैकं कण्ठं भवेत्।
षड्भागमुत्सेधं कार्य मुद्‌गमं च प्रशस्यते। इद्दशं कारयेत् प्राज्ञः सर्वयज्ञफलं भवेत॥ वास्तु विद्या अ. ६

**यस्य देवस्य या मूर्तिः सैव कार्योत्तरंगके। शाखायां च परिवारो गणेशश्चोत्तरंगके॥ प्रा. मं. ३/ ६८
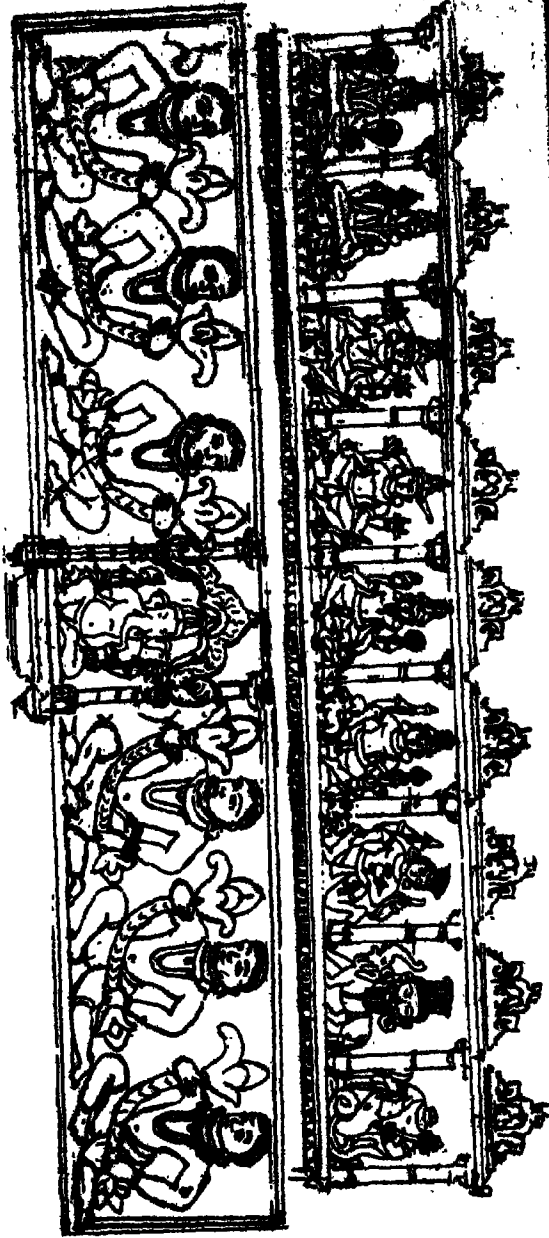
मालाधर और नवग्रह से सुसज्जित उत्तरंग
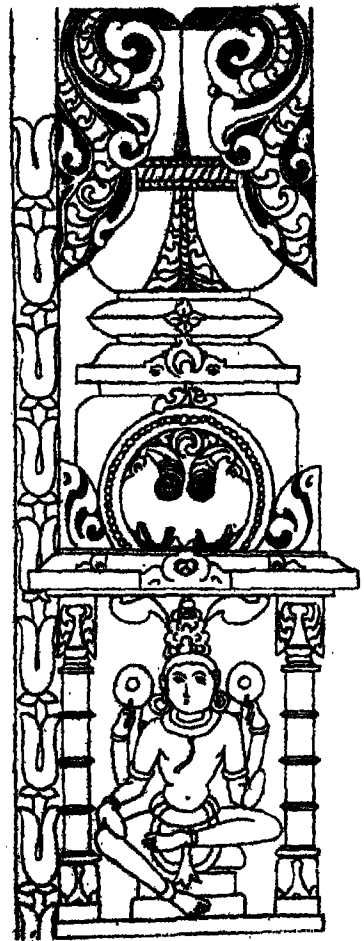
अलंकृत द्वार शाख

महाद्वार

मन्दिर के प्रांगण में प्रवेश के स्थान पर एक द्वार बनाया जाता है। तीर्थ क्षेत्रों में भी परिसर के प्रवेश स्थान पर द्वार बनाया जाता है। इसे महाद्वार की संज्ञा दी जाती है। यह द्वार प्रांगण के उत्तर , ईशान अथवा पूर्व दिशा में बनाना चाहिए। द्वार की स्थिति सम्मुख पथ के अनुरुप निम्न है -

सड़क की दिशा	द्वार की स्थिति
पूर्वी सड़क में	पूर्वी ईशान में अथवा पूर्व में
उत्तरी सड़क में	उत्तरी ईशान में अथवा उत्तर में
दक्षिणी सड़क में	दक्षिणी आग्नेय में
पश्चिमी सड़क में	पश्चिमी वायव्य में

महाद्वार की रचना

महाद्वार की रचना दो बड़े चौकोर स्तंभों से की जाती है। इन स्तंभों के ऊपर नगार खाना, निरीक्षण तथा सुन्दर कलात्मक तोरण या कमानी होती है। इस द्वार की ऊँचाई लगभग १५ फुट रखना चाहिए तथा चौड़ाई इतनी रखें कि भारी वाहन, रथ आसानी से प्रवेश कर सके।

द्वार की रचना में पश्चिमी अथवा दक्षिणी भाग में द्वार रक्षक का कक्ष बनाया जाता है। द्वार के ऊपर सुंदर कलाकृति तथा ध्वज एवं कलश भी आरोहित किया जाता है। महाद्वार की भव्यता से भीतर स्थित मन्दिर की भव्यता का आभास होता है। इस द्वार में दो पल्लों का द्वार लगायें। द्वार भीतर की ओर खुलने वाला हो। द्वार चौकोर बनाना श्रेष्ठ है। महाद्वार के निर्माण में चौड़ाई और ऊंचाई का अनुपात प्रवेश द्वार की भांति ही समझना चाहिए।
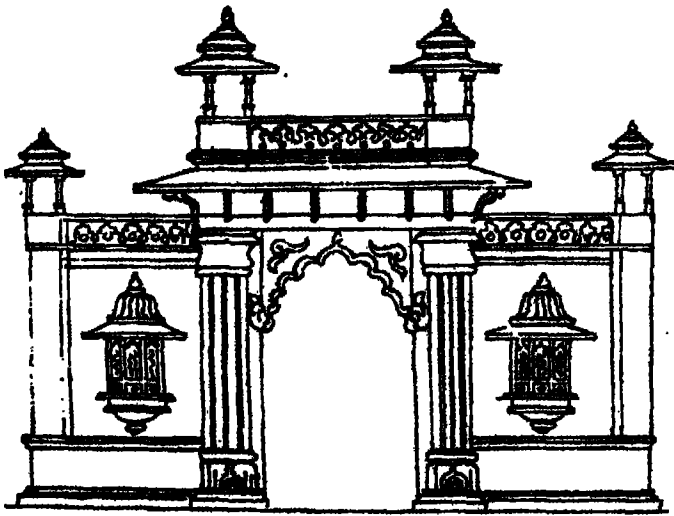
गवाक्ष युक्त प्रवेश द्वार
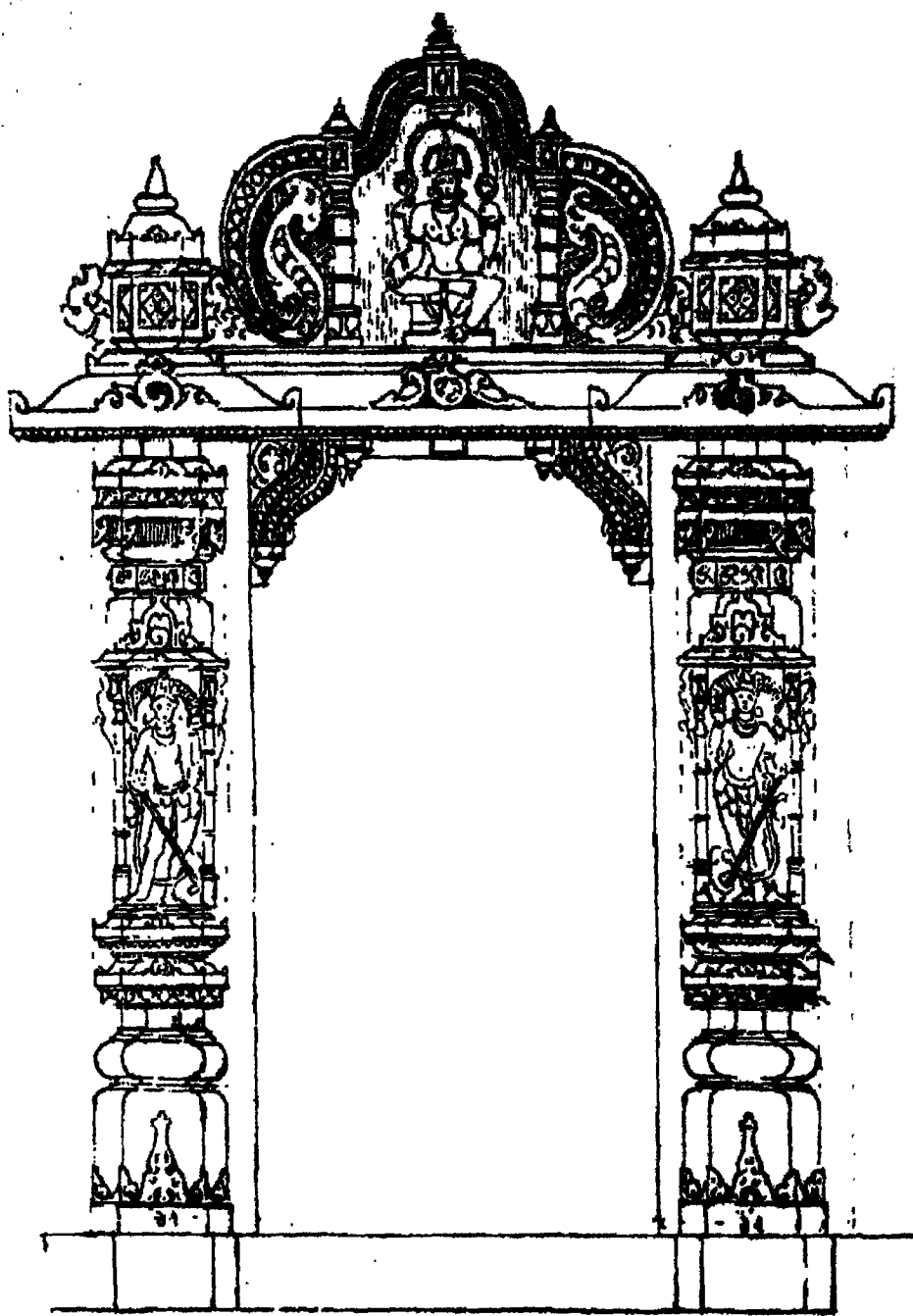
प्रवेश द्वार
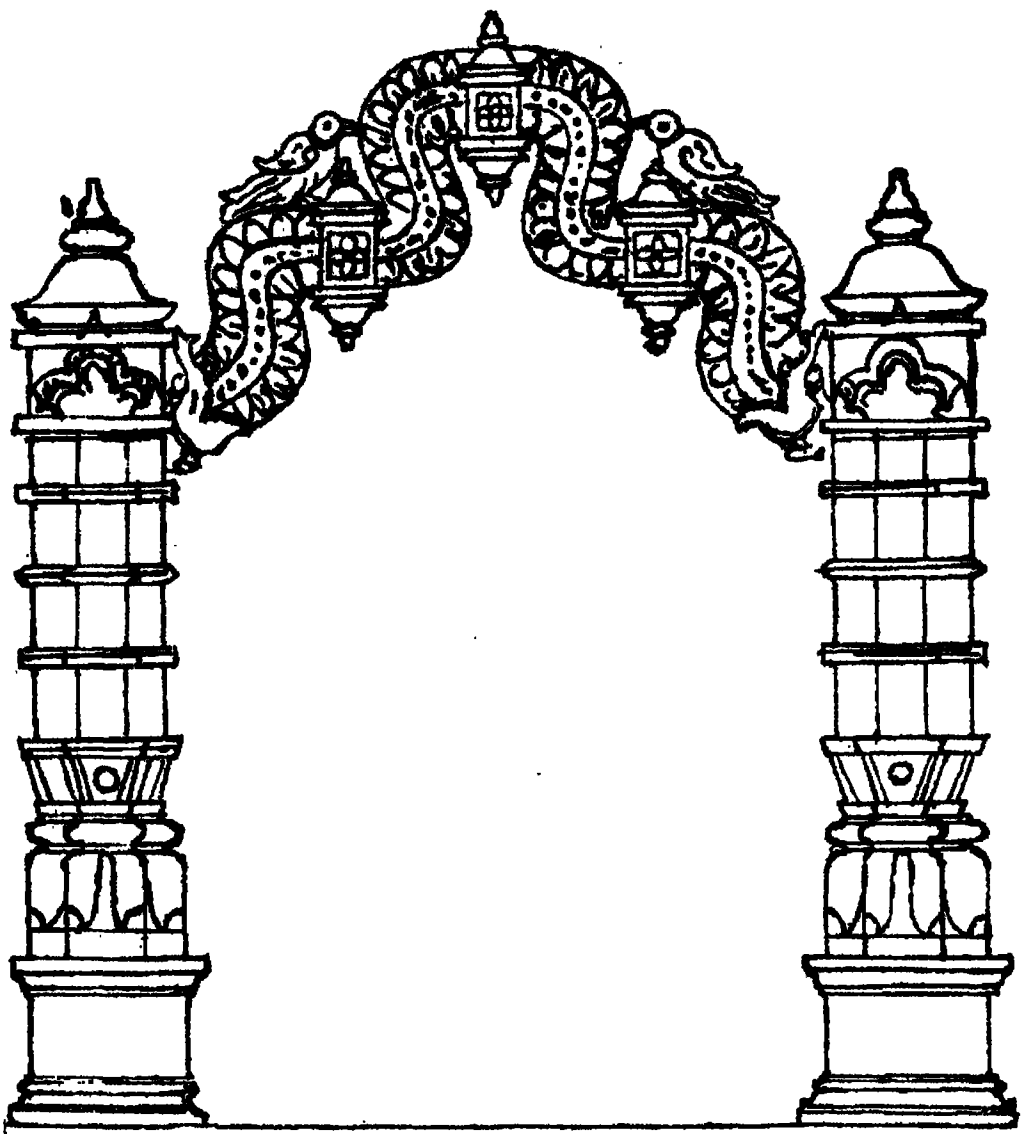
स्तम्भ-तोरण द्वार

खिड़की

मंदिरों मे खिड़की बनाने का अपना विधान है। यदि मंदिर ऐसे देव का है जिनके लिए प्रकाश युक्त/निरंधार/प्रदक्षिणा रहित / व्यक्त प्रासाद बनाया जा सकता है तो ऐसी स्थिति में मंदिर में दरवाजों के सूत्र में तथा ऊपरी भाग में खिड़की लगा सकते हैं।

यदि ब्रह्मा, विष्णु , शिव एवं सूर्य का मंदिर बनाया जाता है तो इनमें सूर्य प्रकाश आना अर्थात् भिन्न दोष युक्त होना दोषकारक नहीं है। इन मंदिरो में लम्बे दालान, जाली अथवा दरवाजों से प्रकाश आना दोष नहीं माना जाता।

जिनेन्द्र प्रभु के मंदिर, गौरी, देवी एवं मनु के उपरान्त होने वाले देवों के मंदिरों में सूर्य प्रकाश का प्रवेश अर्थात् भिन्न दोष होना दोषकारक है अतएव इनके मंदिरों में सूर्य प्रकाश का सीधा प्रवेश नहीं होना चाहिए। ऐसा सभी प्राचीन मंदिरों में सामान्यतः देखा जा सकता है।

वर्तमान शैली के मंदिरों में पर्याप्त वायु प्रवाह एवं प्रकाश के लिए खिड़की बनाना अपरिहार्य माना जाता है। ऐसी स्थिति में जिन मंदिरों में भिन्न दोष रहित मंदिर बनाना आवश्यक हो वहाँ गर्भगृह में खिड़की न बनायें।

खिडकियां बनाने के नियम

१. खिडकियां सम संख्या २, ४, ६, ८ में बनायें।
२. खिडकियों के पल्ले भीतर खुलने वाले हों।
३. खिडकियां दो पल्ले वाली ही बनायें।
४. खिडकियों की सजावट मुख्य द्वार के समकक्ष भव्य नहीं करके सामान्य शैली में करें।
५. यदि मन्दिर में खिडकियां बनाना अपरिहार्य हो तो इन्हें उत्तर एवं पूर्व दिशा में बनाना चाहिये।
६. जिन मन्दिरों में सूर्य किरण प्रवेश उपयुक्त न हो उनमें खिडकी के ऊपर इस प्रकार का छज्जा लगायें कि सीधी सूर्य किरण मन्दिर में प्रवेश न करें।
७. गर्भगृह के पीछे परिक्रमा में खिड़की एवं झरोखा न बनायें।गर्भगृह के पीछे खिड़की या झरोखा बनाने से मंदिर में पूजा, अभिषेक शनैः-शनैः बन्द हो जाता है। *

---

*शूचिमुखं भवेच्छिद्रं पृष्ठे यदा करोति च।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे कीड.न्ति राक्षसाः ॥ शिल्पदीपक
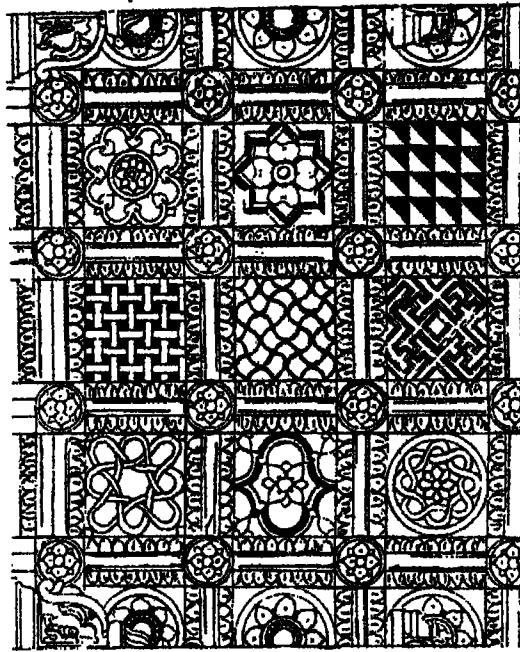
खिड़की की कलात्मक जाली
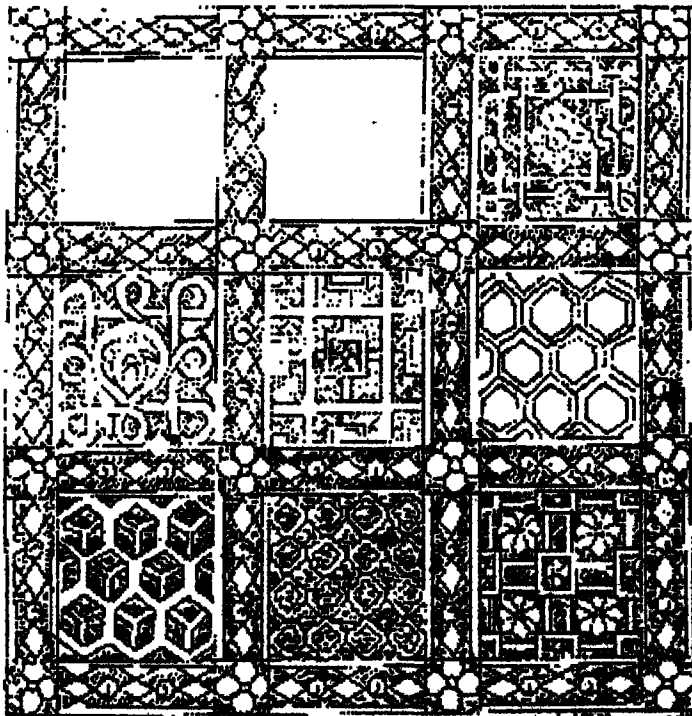
खिड़की की कलात्मक जाली

जाली एवं गवाक्ष

मन्दिर में प्रकाश एवं वायु प्रवाह के लिए जाली एवं गवाक्ष (झरोखों) की रचना की जाती है। जाली की सुन्दरता से मन्दिर की सुन्दरता में अभिवृद्धि होती है।

जाली का प्रमाण

द्वार की ऊंचाई के तीन भाग करें। दो भाग की जाली तथा झरोखा बनायें। जाली लम्बाई में छोटी भी हो तो दोष नहीं माना जाता। द्वार जाली तथा गवाक्ष ऊपरी बाढ़ से एक समसूत्र बनाना चाहियें।

शि.र. ४/१४०

गवाक्ष की रचना

गवाक्ष की रचना मंडोवर पर भी सजावट के लिए की जाती है, जिसमें अनेकों देव-देवियों के रुप बनाते हैं। इसमें जाली नहीं देकर प्रतिमायें बनायी जाती है। गवाक्ष से मन्दिर की सुन्दरता में अभिवृद्धिं होती है।

गवाक्ष के भेद

गवाक्ष की शैलियों के अनुरुप उनके विभिन्न भेद होते हैं। मन्दिर निर्माणकर्ता अपने द्रव्य के अनुरुप इनका निर्माण करता है। इनके कुछ भेदों के नाम इस प्रकार है :-

१.	त्रिपताक	२.	उभय	३.	स्वस्तिक	४.	नंदावर्तक
५.	प्रियवक्रासुमुख	६.	सुवक्र	७.	प्रियंग	८.	पद्मनाभ
९.	दीपचित्र (चार छाद्य युक्त)			१०.	वैचित्र- पांच छाद्य युक्त		
१०.	सिंह	१२.	हंस	१३.	मतिद		
१४.	बुध्यर्णव	१५.	गरुड़				
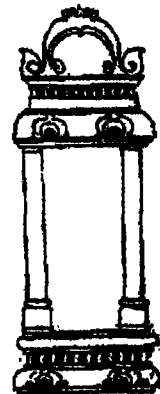
मंडोवर के गवाक्ष

गवाक्ष के विभिन्न भेद
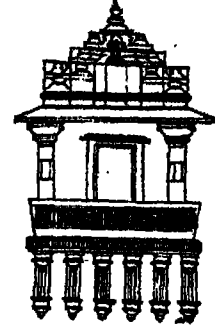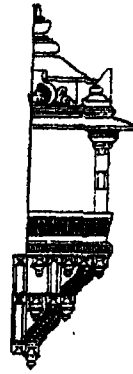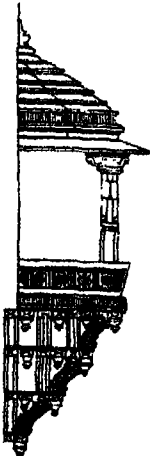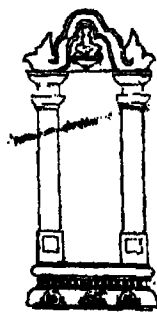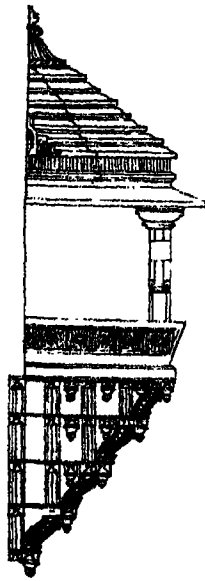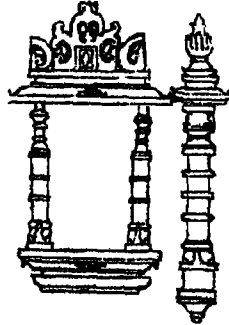
जिन मन्दिर में मण्डप

जिन मन्दिर का निर्माण करते समय गर्भगृह के सामने के भाग में मन्दिर की उपयोगिता एवं शोभा दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के मण्डपों की निर्माण किया जाता है। मण्डप सामान्यतः चार स्तम्भों पर आधारित कलापूर्ण कक्ष होते हैं जिनका उद्देश्य उपासकों को पूजा, आरती, नृत्य आदि के लिए समुचित स्थान प्रदान करना है। गर्भगृह गहन तथा छोटा होता है तथा उसमें अधिक मात्रा में जनसमुदाय का बैठना, उपासना अथवा आरती, नृत्यादि करना संभव नहीं होता। साथ ही उसमे अत्यधिक आवागमन से वातावरण में अशुचिता बढ़ने की शंका होती है। अतएव ऐसी परिस्थितियों के लिए ही विभिन्न मंडपों का निर्माण किया जाता है। आधुनिक युग में गर्भगृह के सामने के भाग में लम्बे हॉल बनाने की प्रथा चल पड़ी है कमोवेश इसका उद्देश्य भी समान ही है। मन्दिर निर्माता को चाहिये कि मण्डपों का निर्माण सुविज्ञ शिल्पी से शास्त्रोक्त पद्धति से ही करायें। मण्डप चारों तरफ दीवार से बन्द भी होते हैं तथा दोनों ओर से खुले भी। *

जिन प्रासाद का मण्डप क्रम

गर्भगृह के बाहर गूढ़ मण्डप का निर्माण किया जाना चाहिये। प्रासाद में गर्भगृह के आगे गूढ़ मण्डप की अर्थात् दीवार युक्त मण्डप की रचना करें। इसके उपरान्त त्रिक मण्डप अथवा चौकी मण्डप बनाये। चौकी मण्डप के आगे रंगमण्डप अथवा नृत्य मण्डप बनाना चाहिये। रंग मण्डप के आगे तोरण युक्त बलाणक (द्वार के ऊपर का मण्डप) बनायें।**

मण्डप का अन्य क्रम

जिन प्रासाद के गर्भगृह के आगे गूढ़ मण्डप बनायें। गूढ़ मण्डप के आगे त्रिक तीन (नव चौकी) बनायें। इसके आगे नृत्य मण्डप (रंग मण्डप) बनायें। इनके आगे तोरण युक्त द्वार के ऊपर का मण्डप (बलाणक) बनायें। #

अन्य मत

जिन प्रासाद के आगे (अर्थात् गर्भगृह) के आगे समवशरण बनायें। शुक नास (कवली मण्डप) के आगे गूढ़ मण्डप बनायें। इसके आगे चौकी मंडप बनायें तथा उसके आगे नृत्य मंडप बनायें। ##

प्रासाद के दाहिनी एवं बायीं ओर शोभामण्डप तथा गवाक्ष युक्त शाला (झरोखा युक्त ढोल के आकार की छत सहित आयताकार मन्दिर /कक्ष) बनाना चाहिए। जिसमें गंधर्व देव गीत, नृत्य मनोरंजन आदि करते हुए होवें।$

---

*व. सा. ३/४९, ** प्रा. मं. ७/३, #प्रा. मं. २/२२, ; ##प्रासाद मंजरी /४५-४७, $व. सा. ३/५०

बलाणक

गर्भगृह के आगे के मण्डप को बलाणक कहते हैं। इसे मुखमण्डप भी कहते हैं। देवालय के द्वार के आगे तथा प्रवेश द्वार के ऊपर इसे बनाया जाता है। राजमहल, गृह, नगर, जलाशय आदि के द्वार के आगे भी इसे बनाया जाता है। जिनेन्द्र देव, शिव, सूर्य, ब्रह्म, विष्णु, तथा चंडिका के समक्ष बलाणक बनाना चाहिये। *

बलाणक की चौड़ाई जगती के मान से चौथाई रखते हैं। इसे इस चौथे भाग का पुनः चार भाग करके एक भाग कम भी रख सकते हैं। कक्ष अथवा दालान के मान से, प्रासाद के गर्भगृह की चौड़ाई के मान से अथवा प्रासाद की चौड़ाई के बराबर वलाणक की चौड़ाई रख सकते हैं। **

मण्डप का द्वार और बलाणक का द्वार मुख्य प्रासाद के बराबर रखना चाहिये। यदि द्वार का मान (ऊंचाई) में वृद्धि करना इष्ट हो तो द्वार की ऊंचाई जितने हाथ की हो, उतने अंगुल की बढ़ा सकते हैं। चूंकि द्वार का ऊपरी भाग उत्तरंग समसूत्र में रखा जाना आवश्यक है अतएव यह वृद्धि नीचे के भाग में ही करना चाहिये।#

बलाणक के भेद

बलाणक के पांच भेद निम्न हैं :-

१. जगती के आगे की चौकी पर जो बलाणक बनाते हैं उसके बायीं तथा दाहिनी तरफ के द्वार पर वेदिका (पीठ) तथा मत्तवारण (कटहरा) बनाया जाता है। इसे **वामन** नामक बलाणक कहते हैं।##
२. राजद्वार के ऊपर पांच या सात भूमि वाला बलाणक उत्तुंग नाम से जाना जाता है।
३. जलाशय के बलाणक को **पुष्कर** नाम दिया जाता है।
४. गृह द्वार के आगे एक, दो या तीन भूमि वाला बलाणक **हर्म्यशाल** कहलाता है। यह गोपुराकृति होता है। $
५. किले के द्वार के ऊपर **गोपुर** नामक बलाणक बनाया जाता है।

---

*शिवसूर्यो ब्रह्माविष्णु चण्डिका जिन एव च।
एतेषां च सुराणां च कुर्यादग्रे बलाणकम्॥ अप. सू. १२३

**जगतीपादविस्तीर्णं पादपादेन वर्जितम्। शालालिन्देन गर्भेण प्रासादेन समं भवेत्॥ प्रा.मं. ७/३९

#मूलप्रासादवद् द्वारं मण्डपे च बलाणके। न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं दैर्घ्ये हस्तांगुलाधिकम्॥ प्रा.मं. ७/४१

##जगत्यग्रे चतुष्किका वामनं तद् बलाणकम्। वामे च दक्षिणे द्वारे वेदिकामत्तवारणम्॥ प्रा. मं. ७/४३

$हर्म्यशालो गृहे वापि कर्त्तव्यो गोपुराकृतिः। एकभूम्यास्त्रिभूम्यन्तं गृहाग्रद्वारमस्तके॥ प्रा. मं. ७/४६

बलाणक का मान

ज्येष्ठ मान के प्रासाद में कनिष्ठ मान का बलाणक बनाया जाता है।
मध्यम मान के प्रासाद में मध्यम मान का बलाणक बनाया जाता है।
कनिष्ठ मान के प्रासाद में ज्येष्ठ मान का बलाणक बनाया जाता है।

बलाणक का स्थान

यह प्रासाद से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह या सात पद (भाग) के अन्तर से दूर बनाया जाता है।

बलाणक की रचना*

गर्भगृह के आगे बलाणक या मुख मंडप की ऊंचाई के १३, १/२ अथवा १४, १/२ अथवा १५, १/२ भाग करें। उनमें ८, ९ या १० भाग का खुला भाग (चन्द्रावलोकन) रखें। आसन पट्ट के ऊपर एक हाथ अथवा २१ अंगुल का कटहरा (मत्तवारण) बनाना चाहिये। खुले भाग के नीचे से मंडप के तल तक ५, १/२ भाग करें। उसमें १, १/४ भाग का राजसेन तथा ३, १/४ भाग की वेदी एक एक भाग का आसन पट्ट बनायें।

आसन पट्ट के ऊपर के पाट के तलभाग तक ७, १/२ भाग करें। उसमें से ५, १/२ भाग का स्तंभ रखें। उसके ऊपर ३/४ भाग या १/२ भाग की भरणी तथा इसके ऊपर १, १/४ या १, १/२ भाग की शिरावटी रखें।

शिरावटी के ऊपर दो भाग का पाट रखें। उसके ऊपर तीन भाग निकलता तथा पाट के पेटा भाग तक नमित (झुका हुआ) सुन्दर छज्जा बनायें। उसके ऊपर १/२ भाग की केवाल बनायें। पाट की चौड़ाई दो भाग रखें।

---

*प्रा. मं. ७/९-१३
अ.प.पृ. सू. १८४ श्लोक ५ से १३
शब्द संकेत-

पेटा भाग-	नीचे का भाग
आसन पट्ट-	बैठने का तकिया
राजसेन-	मंडप की पीठ के ऊपर का थर
शिरावटी-	भरणी के ऊपर का थर
भरणी-	प्रासाद की दीवार का तथा स्तंभ के ऊपर का थर

प्रतोली

मन्दिर के आगे भाग में द्वार के स्थान पर दो अथवा चार स्तंभ से युक्त तोरण आकृति का निर्माण किया जाता है, इसे प्रतोली कहते हैं। यह अत्यंत कलात्मक आकृतियों से युक्त बनाया जाता है। इसे जगती के अग्रभाग में बनाते हैं। इसके पांच प्रकार हैं -

१.	उत्तंग	-	दो स्तंभ वाली प्रतोली
२.	मालाधर	-	जोड़ रुप दो स्तंभ वाली प्रतोली
३.	विचित्र	-	चार स्तंभ की चौकी और तोरण युक्त वाली प्रतोली
४.	चित्ररुप	-	'विचित्र' प्रतोली के दोनों ओर कक्षासन वाली प्रतोली
५.	मकरध्वज	-	चौकी युक्त जुड़वां स्तंभ होवें ऐसी प्रतोली
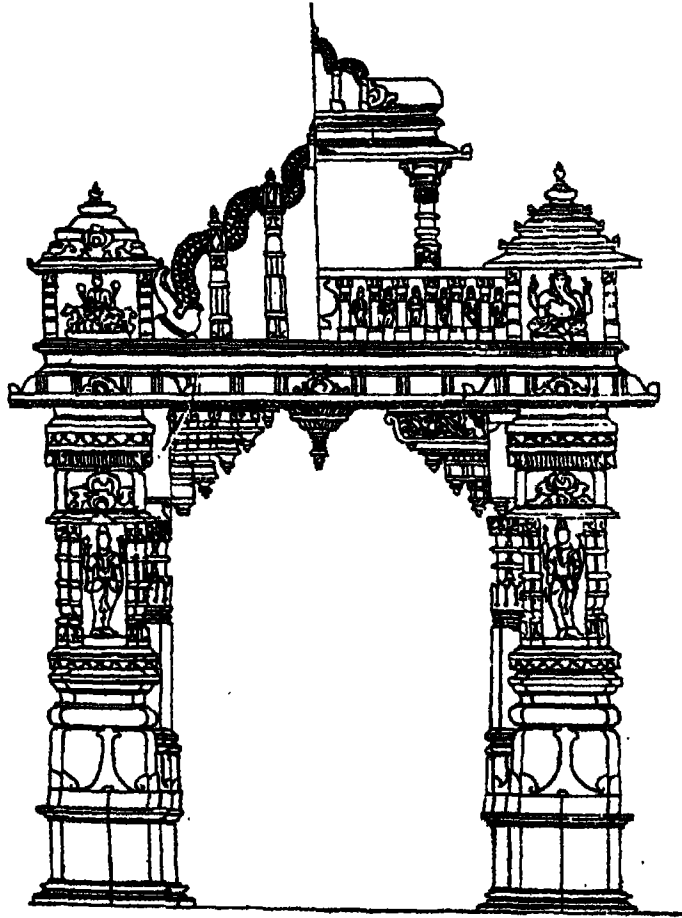
मदल युक्त प्रवेश द्वार (प्रतोल्या)
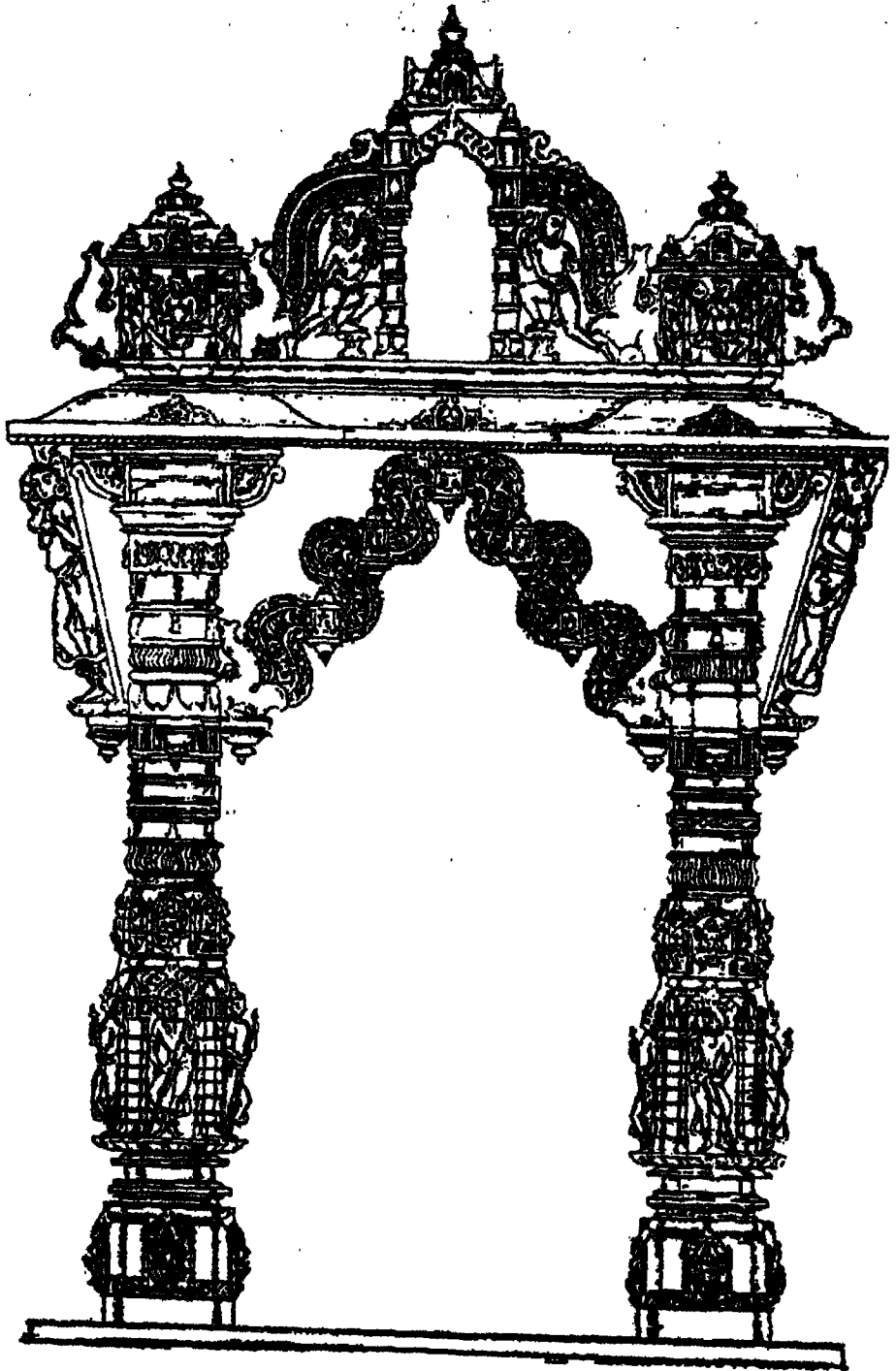
सजावटी तोरण एवं स्तम्भ युक्त प्रवेश द्वार (प्रतोल्या)

चौकी मण्डप

चार स्तम्भों के मध्य के स्थान को चौकी कहते हैं। चौकी की संख्या के आधार पर चौकी मण्डपों में बारह प्रकार के भेद किये जाते हैं। *जिन प्रासाद के समक्ष नव चौकी वाला मंडप बनाना चाहिये। ये भेद नाम सहित इस प्रकार हैं $-

चौकी मंडप का नाम	रचना
१.सुभद्र	गूढ़ मंडप के आगे एक चौकी वाला
२. किरीट	तीन चौकी
३. दुन्दुभि	तीन चौकी के आगे एक चौकी
४. प्रान्त	तीन-तीन चौकी की दो कतार
५. मनोहर	छह चौकी के आगे एक चौकी
६. शान्त	तीन-तीन चौकी की तीन कतार
७. नन्द	तीन-तीन चौकी की तीन कतार के आगे एक चौकी
८. सुदर्शन	तीन-तीन चौकी की तीन कतार के दोनों बाजू में एक-एक चौकी, आगे नहीं
९. रम्यक	तीन-तीन चौकी की तीन कतार के दोनों बाजू में एक एक चौकी, आगे एक चौकी
१०. सुनाभ	तीन-तीन चौकी की चार कतार
११. सिंह	तीन-तीन चौकी की चार कतार के दोनों बगल में एक चौकी, आगे नहीं
१२. सूर्यात्मक	तीन-तीन चौकी की चार कतार के दोनों बगल में एक एक चौकी, आगे एक चौकी

---

*एकत्रिवेदषट्सप्तांकचतुष्क्यस्त्रिकत्रये।
अग्रे भद्रं विना पार्श्वे पार्श्वयोरग्रतस्तथा ॥ प्रा.मं. ७/२२
अग्रतस्त्रिचतुष्क्यश्च तथा पार्श्वद्वयेऽपि च।
मुक्तकोणे चतुष्के चेदिति द्वादश मण्डपाः ॥ प्रा.मं. ७/२३
गूढस्याग्रे प्रकर्त्तव्या नानाचतुष्किकान्विताः।
चतुरस्रादिभेदेन वितानैर्बहुभिर्युताः ॥ प्रा.मं. ७/२४
$अ.पृ.सू. १८७

चौकी मंडप

सुभद्र
३ पद
किरीट
८ स्तंभ
४ पद
दुन्दुभि
१० स्तंभ
६ पद
प्रान्त
१२ स्तंभ
७ पद
मनोहर
१४ स्तंभ
९ पद
शान्त
१६ स्तंभ
नन्द
१० पद
१८ स्तंभ
१२ पद
सुदर्शन
२०स्तंभ
१२ पद
रम्यक
२२ स्तंभ
सुनाभ
१४पद
२४ स्तंभ
१६ पद
२६ स्तंभ
सिंह
सूर्यात्मक
१८ पद
२८ स्तंभ
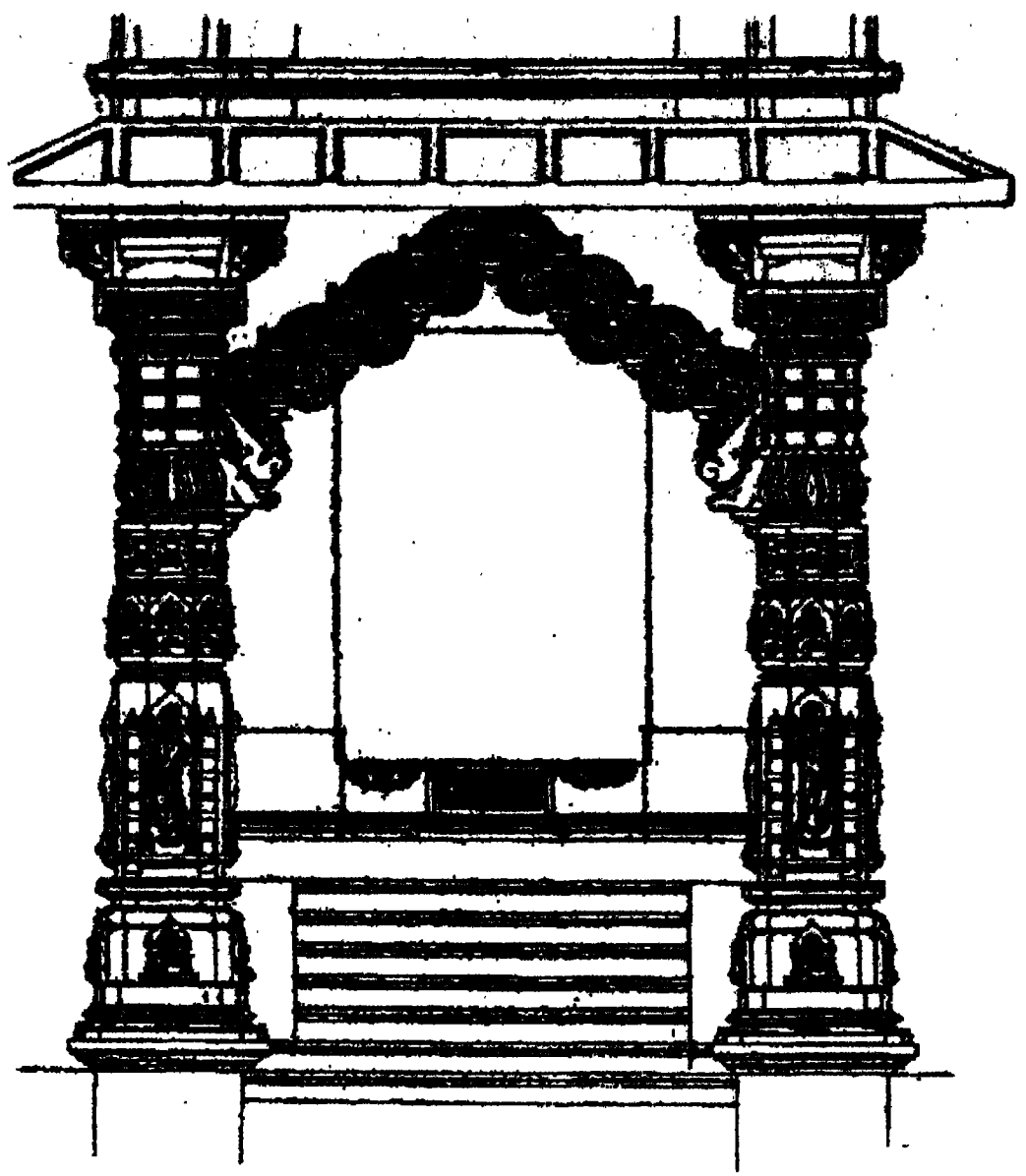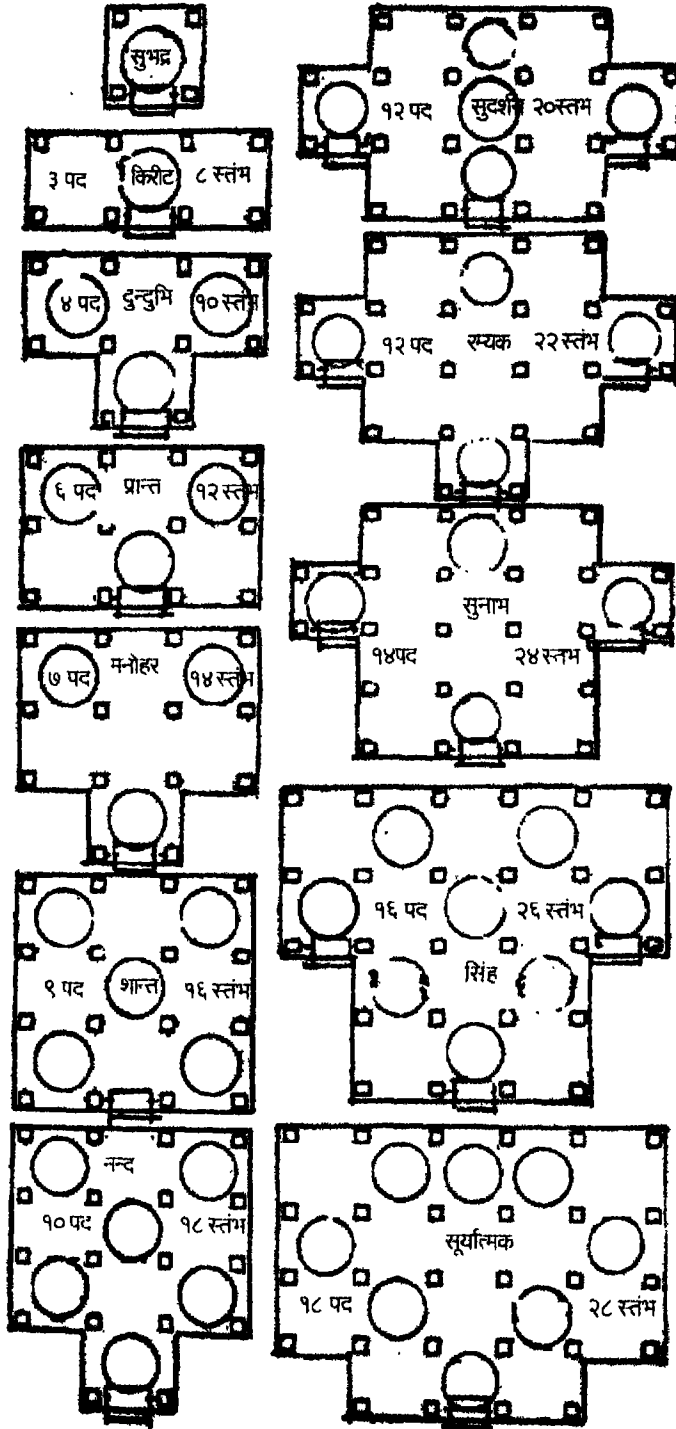
चौकी मंडप

विश्वकर्मा कथित २७ मण्डप

सत्ताईस प्रकार के मंडपों के तल सम या विषम किये जा सकते है, किन्तु उनके स्तंभ सम संख्या में ही रखना आवश्यक है। प्रथम मण्डप १२ स्तंभों का होता है तथा २-२ स्तंभ बढ़ाने से अन्तिम मण्डप में ६४ स्तंभ हो जाते हैं। (समरांगण सूत्रधार अ. ६७; अ.पृ. १८६)
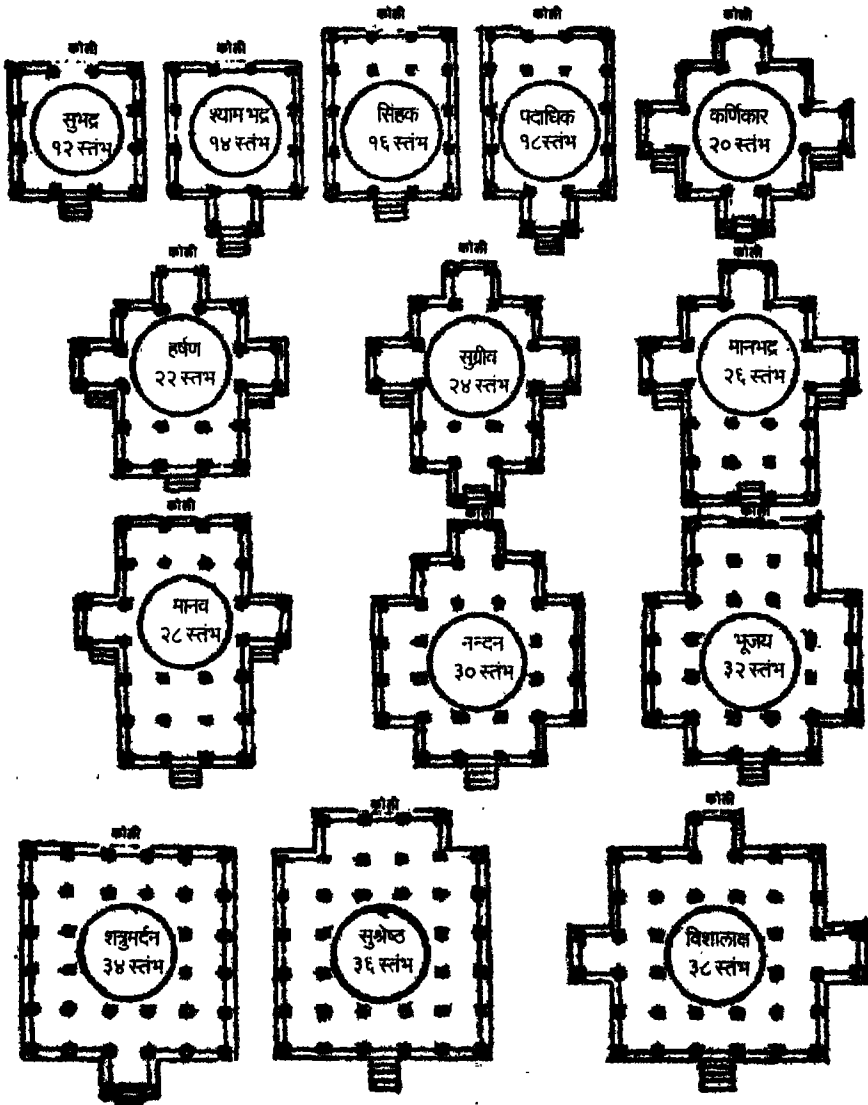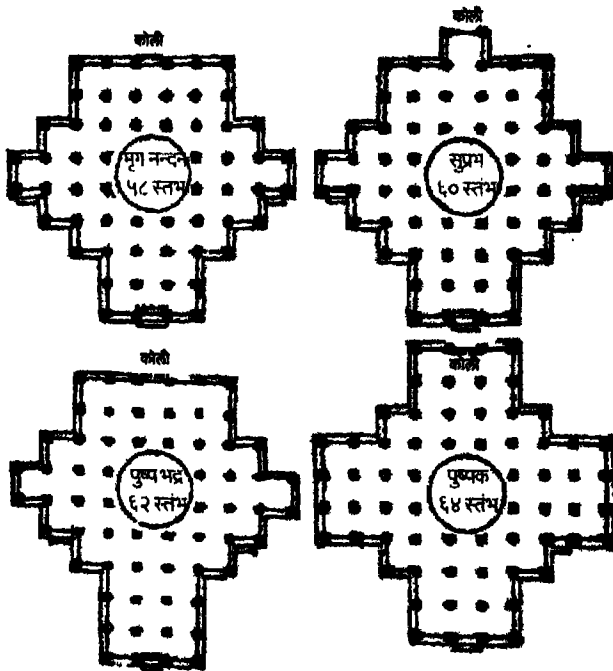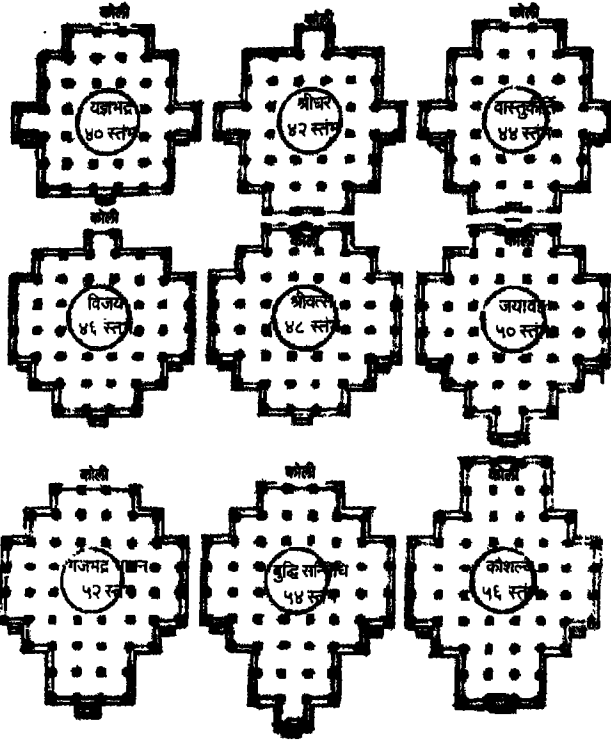
विश्वकर्मा कथित २७ मण्डप की नामावली

१- सुभद्र १२ स्तंभ
२- श्याम भद्र १४ स्तंभ
३- सिंहक १६ स्तंभ
४- पदाधिक १८स्तंभ
५- कर्णिकार २० स्तंभ
६- हर्षण २२ स्तंभ
७- सुग्रीव २४ स्तंभ
८- मानभद्र २६ स्तंभ
९- मानव २८ स्तंभ
१०- नन्दन ३० स्तंभ
११- भूजय ३२ स्तंभ
१२- शत्रुवर्धन ३४ स्तंभ
१३- सुश्रेष्ठ ३६ स्तंभ
१४- विशालाक्ष ३८ स्तंभ
१५- यज्ञभद्र ४० स्तंभ
१६- श्रीधर ४२ स्तंभ
१७- वास्तुकीर्ति ४४ स्तंभ
१८- विजय ४६ स्तंभ
१९- श्रीवत्स ४८ स्तंभ
२०- जयावह ५० स्तंभ
२१- गजभद्र पावन ५२ स्तंभ
२२- बुद्धि सन्निधि ५४ स्तंभ
२३- कौशल्य ५६ स्तंभ
२४- मृग नन्दन ५८ स्तंभ
२५- सुप्रभ ६० स्तंभ
२६- पुष्प भद्र ६२ स्तंभ
२७- पुष्पक ६४ स्तंभ

गूढ़ मण्डप

गर्भगृह के आगे प्रासाद की चौड़ाई के बराबर डेढ़ी, पौने दो गुनी अथवा दुगुनी चौड़ाई का गूढ़ मण्डप बनाना चाहिये। मण्डप में तीन या पांच सीढ़ियां बनायें। मण्डप में चारों दिशाओं में चौकियां बनायें। *

गूढ़ मण्डप का प्रमाण**

प्रासाद की चौड़ाई	मण्डप का आकार (चौड़ाई)
१ एवं २ हाथ (२ से ४ फुट)	सिर्फ चौकी बनायें
३ हाथ (६ फुट)	दुगुना
४ हाथ (८ फुट)	पौने दो गुना
५ से १० हाथ (१० से २० फुट)	डेढ़ा
१० से ५० हाथ (२० से १०० फुट)	समान या सवाया

प्रायः मण्डप का प्रमाण डेढ़ा या दूना अलिन्द (द्वार के सामने दालान) के अनुसार जानना चाहिये।

गूढ़ मण्डप की दीवारों की रचना

गूढ़ मंडपों की दीवार की रचना प्रासाद की रचना की तरह करना चाहिये। प्रासाद की दीवार जितने थर वाली हो वैसी ही उतने थर वाली बनायें। रुपों की आकृति भी गूढ़ मंडप में प्रासाद के अनुरुप ही बनायें।

---

*व सा ३/५१, **प्रा. मं ७/५-६

शब्द संकेत-

चौकी	-	खांचा, चार स्तम्भों के मध्य का स्थान
मुख भद्र	-	प्रासाद का मध्य भाग
भद्र	-	प्रासाद का मध्य भाग (मध्यवर्ती प्रक्षेप)
प्रतिरथ	-	कोने के पास का चौथा कोना (भद्र और कर्ण के बीच का प्रक्षेप)
नन्दी	-	भद्र के पास की छोटी कोनी, कोणी

गूढ़ मण्डप की फालना (दीवार के खांचे)

कोने से दुगुना भद्र तथा पौन भाग का प्रतिरथ रखें। भद्र से आधा मुख भद्र रखें। नन्दी आदि छटवें या आठवें भाग की रखें। खांचों का बाहर निकलता भाग चौथाई अथवा आधा करें। पीठ, जंघा आदि की मेखलाएं* मुख्य प्रासाद के बाहर निकलती हुई बनायें।

गूढ़ मण्डप के भद्र में जाली अथवा गवाक्ष बनायें। कोने में दीवार बनायें अथवा भद्र में खुला भाग रखें।

गूढ़ मण्डप में तीन अथवा एक द्वार बनायें। द्वार के आगे चौकी मंडप बनायें। *

गूढ़ मण्डप के आठ भेद फालना की अपेक्षा

१.वर्धमान	सम चौरस,
२. स्वस्तिक	सुभद्र,
३. गरुड़,	प्रतिरथ वाला,
४. सुरनन्दन	मुखभद्र,
५. सर्वतोभद्र	दो प्रतिरथ वाला,
६. कैलास	तीन प्रतिरथ वाला,
७. इन्द्रनील	कर्ण जलान्तर वाला तथा
८. रत्नसंभव	भद्र जलान्तर वाला।

शब्द संकेत-

जलान्तर - बरसाती पानी के बहाव के लिए कटी बारीक नालियां

मेखला- दीवार का खांचा

*मुखभद्रयुतो वापि द्वित्रिप्रतिरथैर्युतः। कर्णोदकान्तरेणाथ भद्रोदकविभूषितः ॥ १७
कर्णतो द्विगुण भद्रं पादोनप्रतिकर्णकः। भद्रार्धं मुखभद्रं च शेषं षड्वसु भाजितम् ॥ १८
दलेनार्धेन पादेन दलस्य निर्गमो भवेत्। मूलप्रासादवद् बाह्ये पीठजघांदिमेखला ॥१९
गवाक्षेणान्वितं भद्र-मथ जालकसंयुतम्। गूढोऽथ कर्णगूढो वा भद्रे चन्द्रावलोकनम् ॥ २०
त्रिद्वारे चैकवक्त्रेऽथ मुखे कार्या चतुष्किका। गूढे प्राकाशके वृत्त- मर्धोदयं करोटकम् ॥ २१ प्रा. मं. ७/१७ से २१

गूढ मंडप
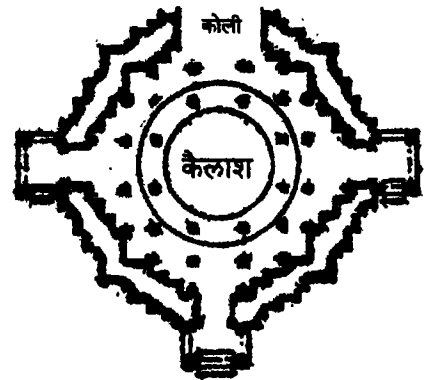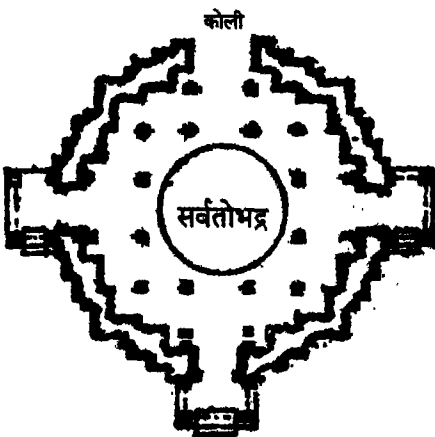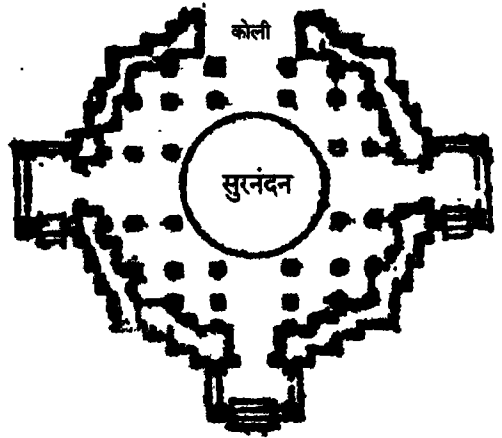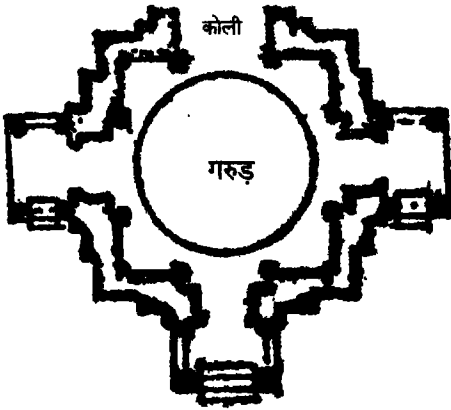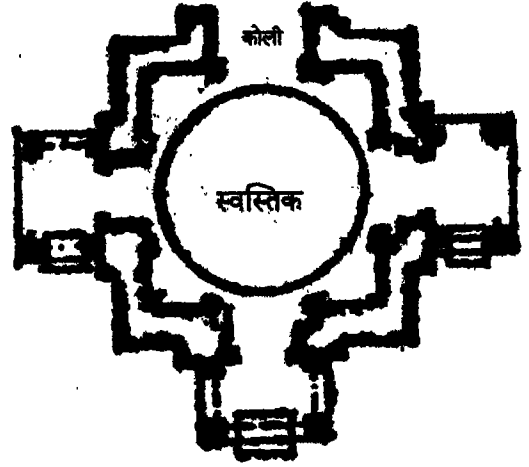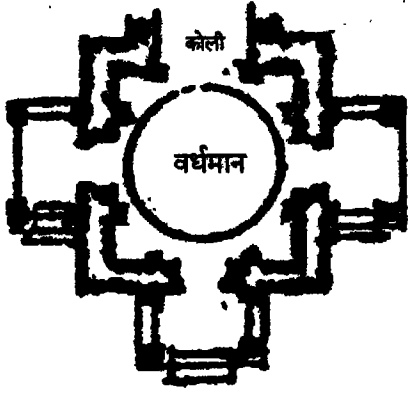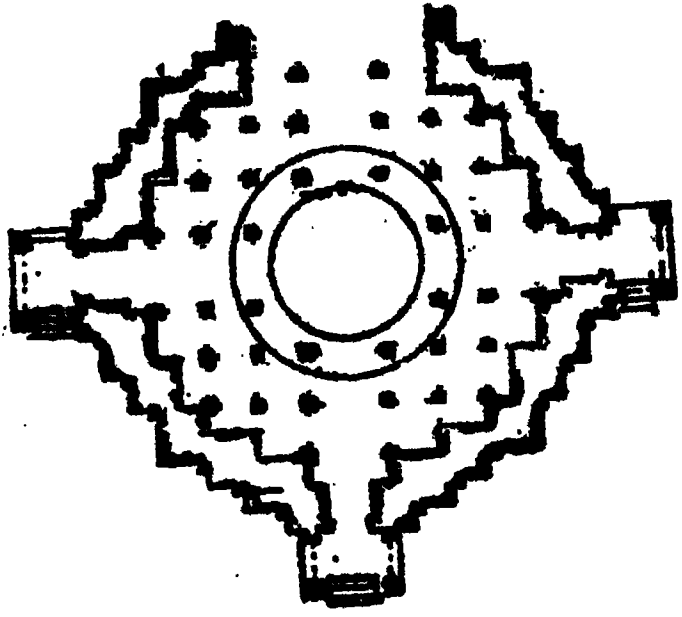
कोली
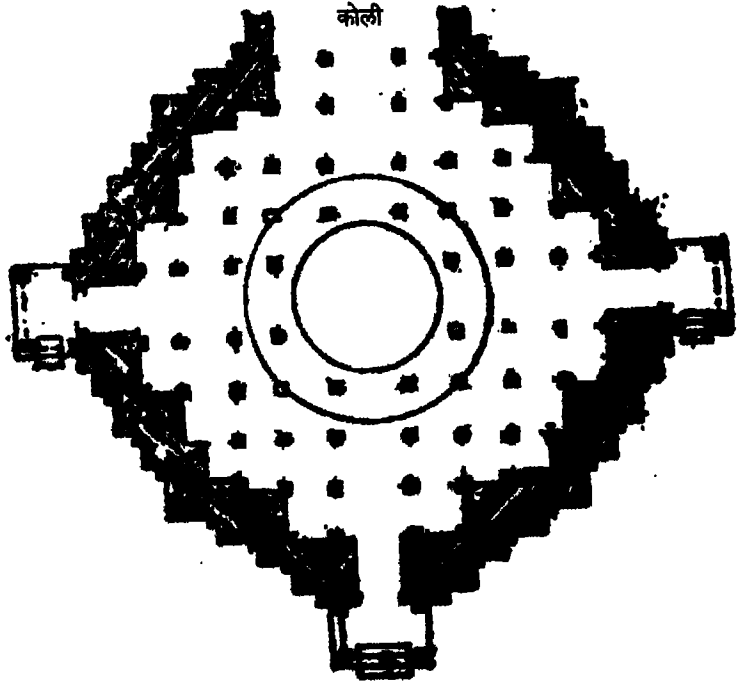
वितान (गूमट)

गूमट की ऊंचाई

गूढ़ मण्डप के गूमट के भेद ऊंचाई की अपेक्षा निम्नलिखित हैं-

१. मंडप की गोलाई की चौड़ाई से आधे मान का गूमट (करोटक) की ऊंचाई रखना चाहिये। इसका नाम वामन उदय है। यह शुभ, शांतिदायक है।

२. गूमट की ऊंचाई के नौ भाग कर उसके सात भाग यदि ऊंचाई रखें तो इसे अनन्त उदय कहते हैं। यह सर्वसुख कारक है।

३. गूमट की ऊंचाई के नौ भाग करके उसके छह भाग यदि ऊंचाई रखें तो इसे वाराह उदय कहते हैं। यह अनंत फलदायक है।

गूमट की ऊंचाई उपरोक्त तीन अनुपातों के अलावा अन्य किसी अनुपात में न करें अन्यथा अनपेक्षित अनिष्ट घटनाएं होंगी।
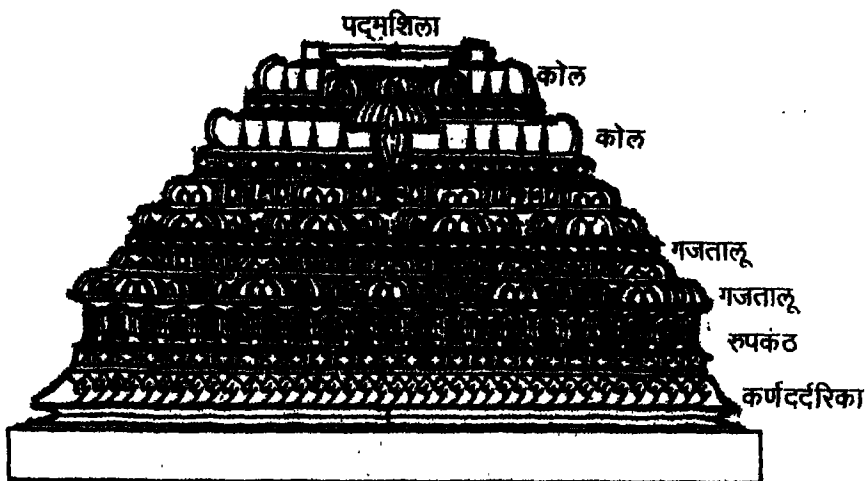
वितान (गूमट) के थर

गूमट की आंतरिक सजावट
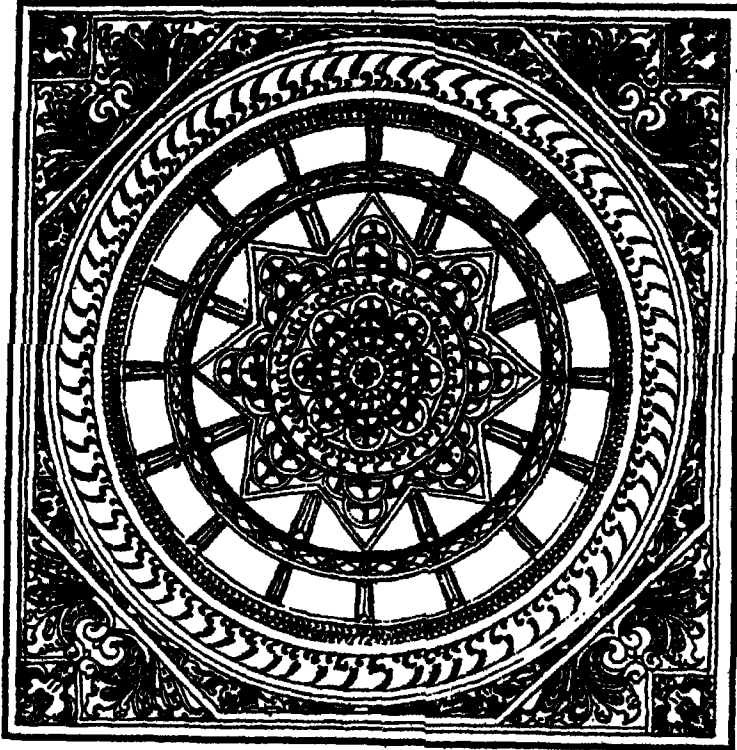
वितान का तलदर्शन
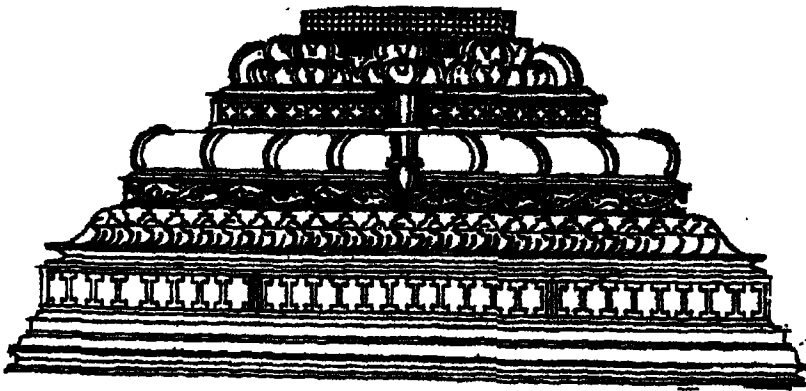
वितान का विभाग

वितान की सजावट के लिए विद्याधर आकृतियाँ

संवरणा

मंडप का आच्छादन संवरणा से किया जाता है। बाहर का कलात्मक भाग संवरणा कहलाता है। जबकि भीतरी भाग गूमट कहलाता है। संवरणा के २५ प्रकार है। संवरणा की रचना घंटी रथिका कूट और तवंग से की जाती है। प्रथम संवरणा में तल भाग ८ भाग करें तथा उसके बाद प्रत्येक में ४-४ भाग बढ़ाते जाएं।

१- पुष्पिका - ५ घंटिका तल भाग - ८ भाग
२- नन्दिनी - ९ घंटिका तल भाग - १२ भाग
३- दशाक्षा - १३ घंटिका तल भाग - १६ भाग
४- देवसुन्दरी - १७ घंटिका तल भाग - २० भाग
५- कुलतिलका - २१ घंटिका तल भाग - २४ भाग
६- रम्या - २५ घंटिका तल भाग - २८ भाग
७- उद्भिन्ना - २९ घंटिका तल भाग - ३२ भाग
८- नारायणी - ३३ घंटिका तल भाग - ३६ भाग
९- नलिका - ३७ घंटिका तल भाग - ४० भाग
१०- चम्पका - ४१ घंटिका तल भाग - ४४ भाग
११- पद्मा - ४५ घंटिका तल भाग - ४८ भाग
१२- समुद्भवा - ४९ घंटिका तल भाग- ५२ भाग
१३- त्रिदशा - ५३ घंटिका तल भाग- ५६ भाग
१४- देवगान्धारी - ५७ घंटिका तल भाग- ६० भाग
१५- रत्नगर्भा - ६१ घंटिका तल भाग- ६४ भाग
१६- चूडामणि - ६५ घंटिका तल भाग- ६८ भाग
१७- हेमकूटा - ६९ घंटिका तल भाग- ७२भाग
१८- चित्रकूटा - ७३ घंटिका तल भाग- ७६ भाग
१९- हिमाख्या - ७७ घंटिका तल भाग- ८० भाग
२०- गन्धमादिनी - ८१ घंटिका तल भाग- ८४ भाग
२१- मन्दरा - ८५ घंटिका तल भाग- ८८ भाग
२२- मालिनी - ८९ घंटिका तल भाग- ९२ भाग
२३- कैलासा - ९३ घंटिका तल भाग- ९६ भाग
२४- रत्नसंभवा - ९७ घंटिका तल भाग- १०० भाग
२५- मेरुकूटा - १०१ घंटिका तल भाग- १०४ भाग
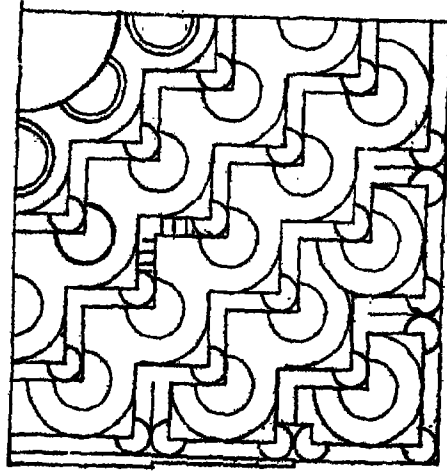
सम्वर्णा का तलदर्शन
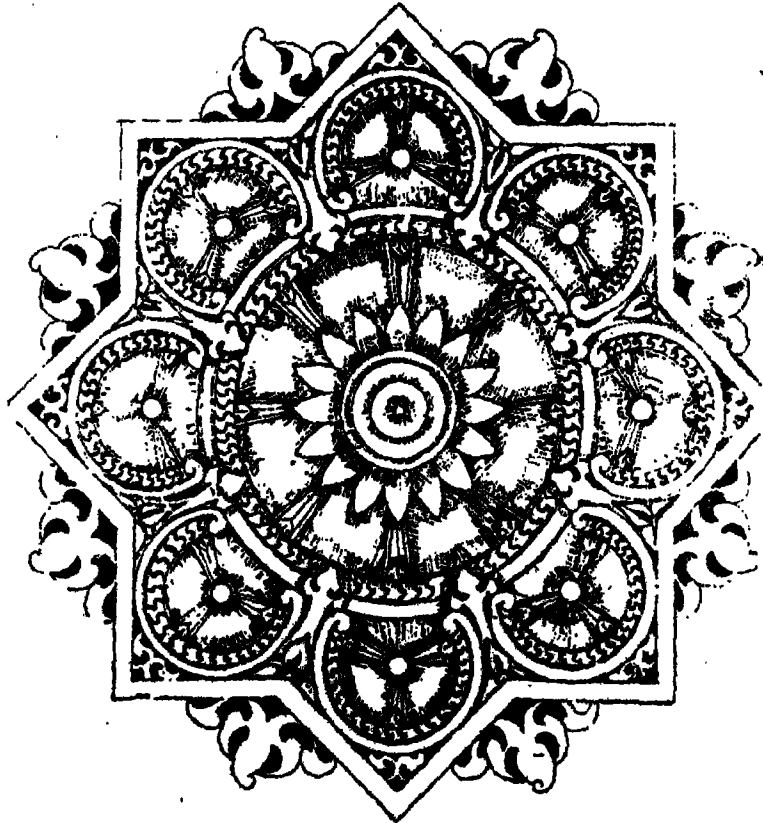
वितान का तलदर्शन - छत की पुष्पनुमा आकृति
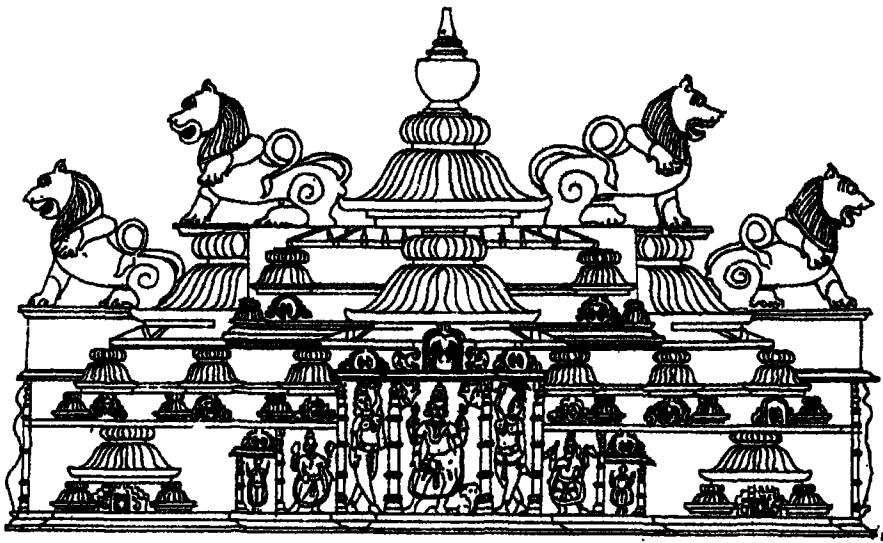
सम्वर्णा की प्राचीन शैली का बाहरी दृश्य
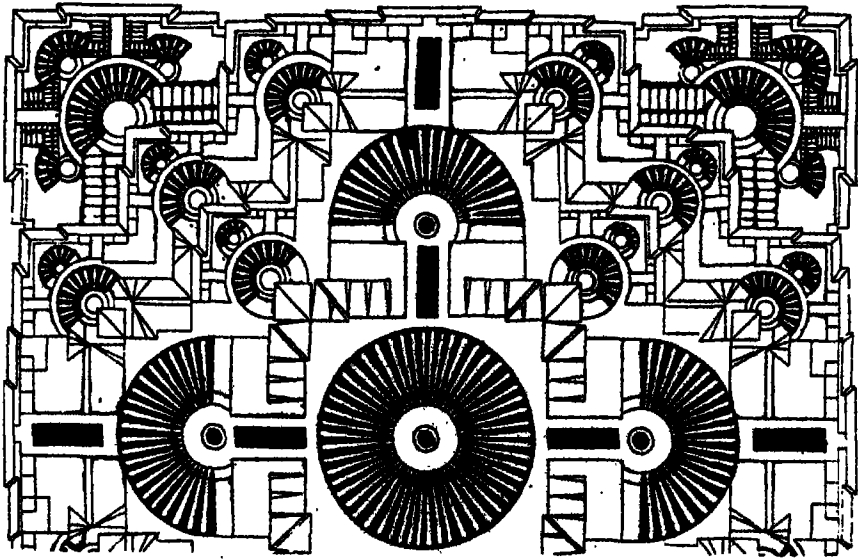
सम्वर्णा की प्राचीन शैली का तलदर्शन रेखांकन

सम्वर्णा
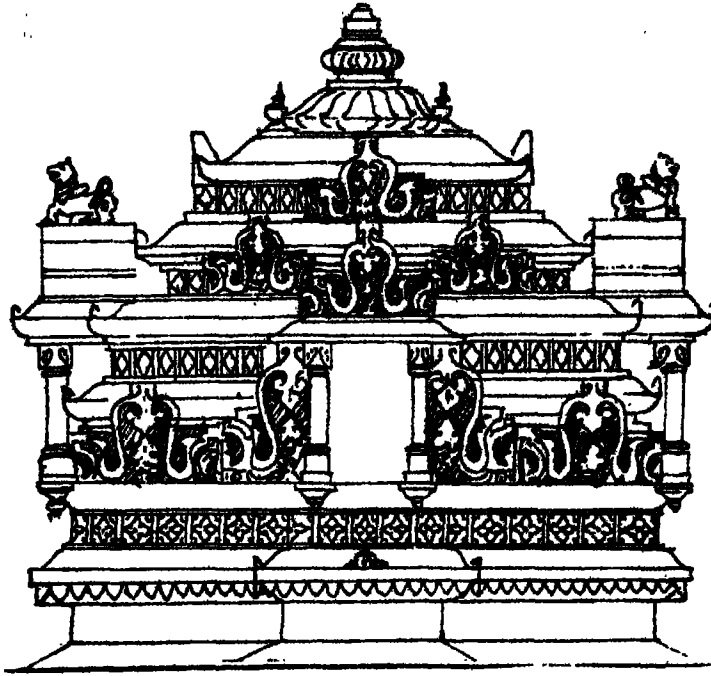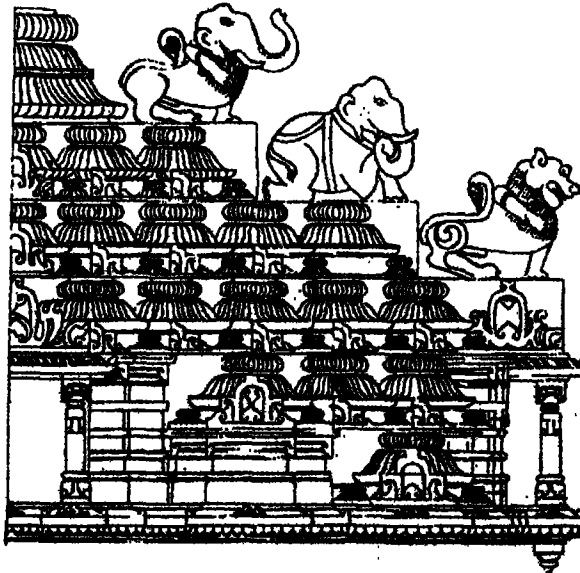
सम्वर्णा का पार्श्वदर्शन

गर्भगृह

प्रासाद का सबसे प्रमुख भाग गर्भगृह होता है। गर्भगृह का तात्पर्य गूढ़ स्थल से है। जिनेन्द्र प्रभु अथवा पूज्य देव की प्रतिमा की स्थापना इसी में की जाती है। गर्भगृह का निर्माण पर्याप्त सावधानी से किया जाना आवश्यक है।

आकार की अपेक्षा गर्भगृह केभेद

१. सम चौरस (वर्गाकार)
२. लम्ब चौरस(आयताकार)
३. गोल (वृत्ताकार)
४. लम्बगोल (अण्डाकार)
५. अष्टकोण

प्रासाद के गर्भगृह का माप एक से पचास हाथ तक कहा गया है। कुंभक या जाड्यकुंभ का निकास इसके अतिरिक्त गर्भगृह की दीवार के बाहर होना चाहिये। विभिन्न थरों का निर्गम, पीठ एवं छज्जे का निर्गम (निकलता हुआ भाग) भी समसूत्र के बाहर समझना चाहिये।

गर्भगृह समरेखा में चौकोर (वर्गाकार) होना चाहिये। उसी में फालना (खांचे) देकर प्रासाद में तीन, पांच, सात या नौ भाग किये जा सकते हैं। गर्भगृह की चौड़ाई में चौथाई भाग के बराबर दोनों ओर कोण रखें तथा मध्य में आधा भाग भित्ति को खांचा देकर थोड़ा सा आगे निकाल देवें। यह तीन अंगों वाला प्रासाद कहलाता है।

इसी प्रकार दो कोण, दो खांचे, एक भित्ति रथ वाला प्रासाद पंचांग वाला प्रासाद कहा जायेगा। दो कोण, दो- दो उपरथ (कोने के बीच का तीसरा कोना) तथा एक भित्तिरथ वाला सप्तांग प्रासाद कहलाता है।

दो कोण, चार- चार उपरथ, एक रथिका युक्त प्रासाद नवांग प्रासाद कहलाता है।

ये प्रासाद त्रिरथ, पंचरथ, सप्तरथ या नवरथ प्रासाद भी कहे जाते हैं। इन्हीं खांचों के आधार पर प्रासाद की पूरी ऊंचाई खड़ी की जाती है। प्रा. मं. १/..

सावधानी -

१. प्रासाद का माप प्रासाद की दीवार के बाहर कुम्भी के कोण तक गिनना चाहिये।

२. गर्भगृह वर्गाकार ही बनाना चाहिये। काष्ठ मन्दिर तथा वल्लभी जाति के प्रासाद यदि लम्बाई में अधिक भी हों तो दोष नहीं लगता। गर्भगृह एक, दो या तीन अंगुल भी लम्बाई में अधिक हो तो यमचुल्ली नामक दोष लगता है। यह मन्दिर निर्माता के गृह नाश का निमित्त बनता है। अतएव गर्भगृह लम्बा न बनायें।

विवेक विलास के मत से -

प्रासाद के चौड़ाई के चौथे भाग से एक अंगुल कम या ज्यादा करके प्रतिमा रखना चाहिये अथवा प्रासाद की चौड़ाई की चौथाई भाग के पुनः दस भाग कर उसका एक भाग बढ़ाकर या घटाकर प्रतिमा का प्रमाण निकालें।

गर्भगृह में प्रतिमा की स्थिति

गर्भगृह की महिमा उसमें स्थित जिन प्रतिमा के कारण है। गर्भगृह की चौड़ाई इस प्रकार रखें कि चौड़ाई के दस भाग में गर्भगृह बनायें तथा दो दो भाग की दीवार बनायें। गर्भगृह की चौड़ाई के तीसरे भाग के मान की प्रतिमा बनाना उत्तम है। इस मान का दसवां भाग घटा देवें तो मध्यम मान की प्रतिमा का मान आयेगा। यदि पांचवां भाग घटा देवें तो कनिष्ठ मान आयेगा।•
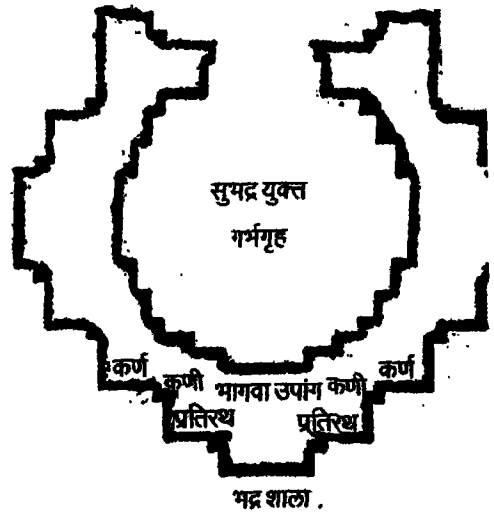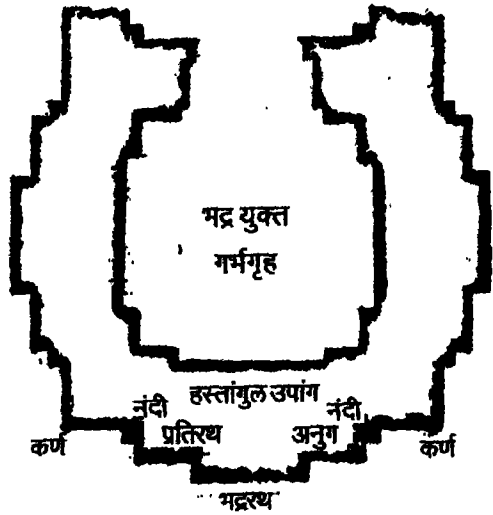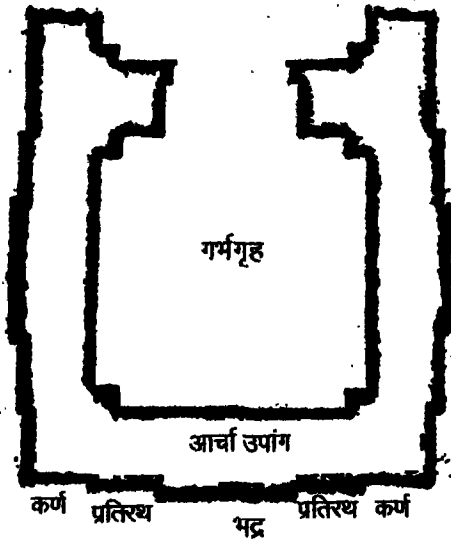
• प्रा. मं. ४/४ इसका विस्तृत विवरण प्रतिमा प्रकरण में दृष्टव्य है।

भद्र रथिका
नंदी
उपरथ
नंदी
प्रतिकर्ण
नंदी
कर्णरेखा
ओसार
समदल
प्रासाद तल
ओसार
ओसार
भद्र रथ
कर्णरेखा
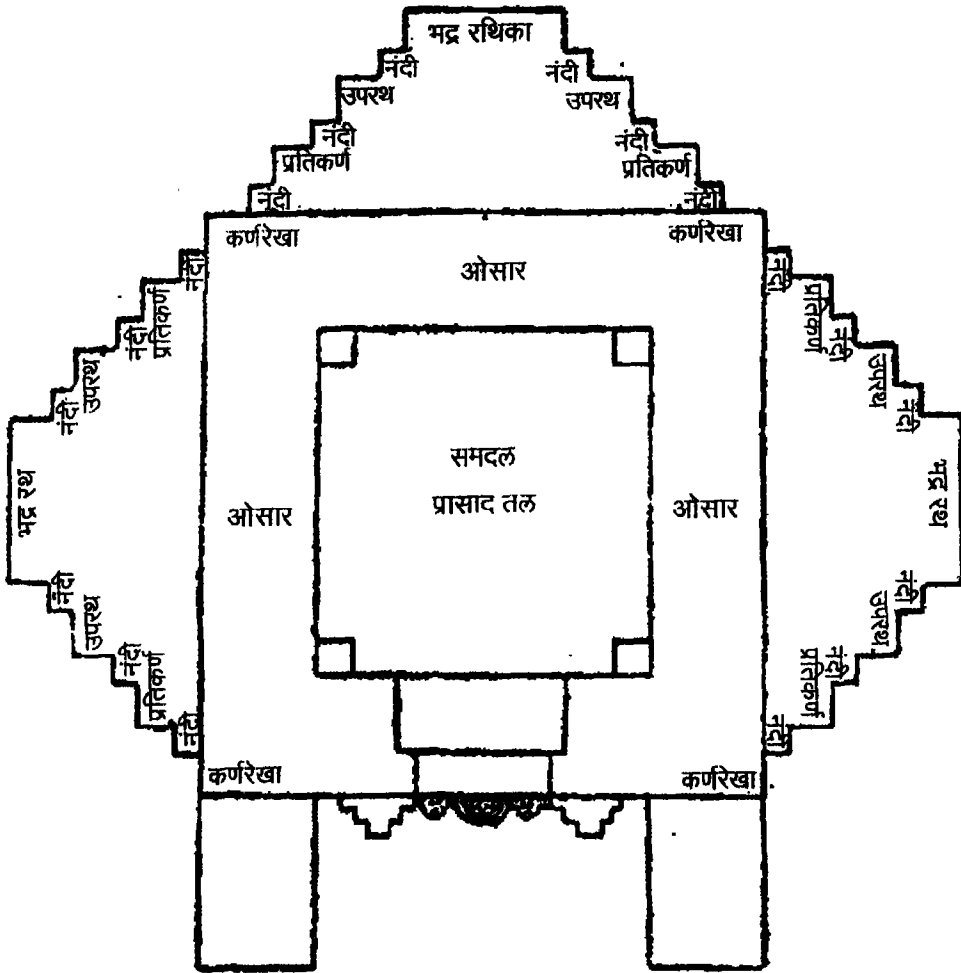
प्रासाद का स्वरुप
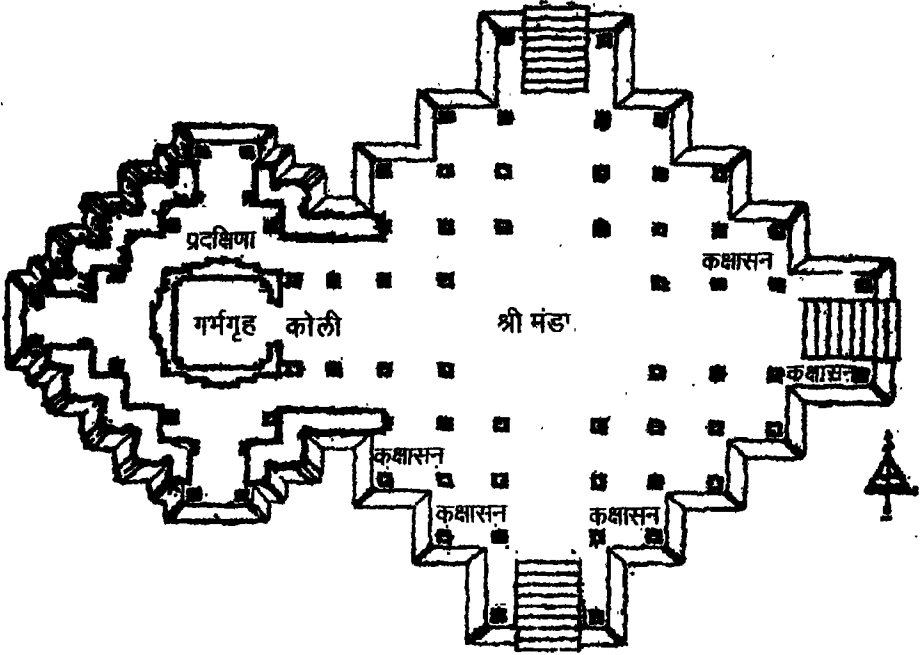
सांधार प्रासाद, धुमली, नवलखी (सौराष्ट्र) - तल दर्शन
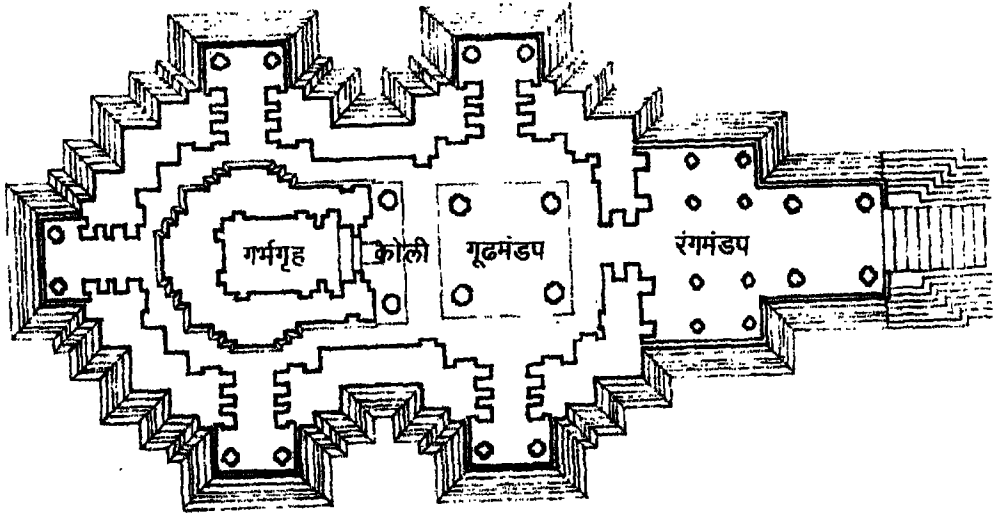
कंदरिया महादेव मन्दिर खजुराहो - तल दृश्य

गर्भगृह
कोली
गूढ मंडप
चौकी
चौकी
त्रिक मंडप
९ चौकी
चौकी
नृत्य मंडप
चौकी
श्रृंगार चौकी

शृंगार चौकी मंडप
रंग मंडप
रंग मंडप
रंग मंडप
त्रिक मंडप
त्रिक मंडप
त्रिक मंडप
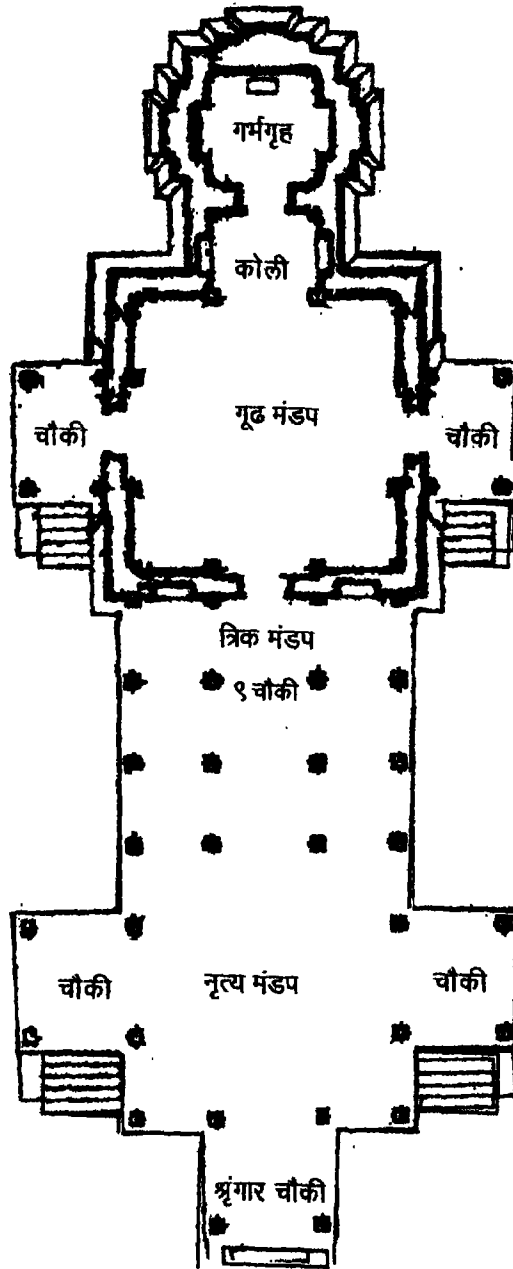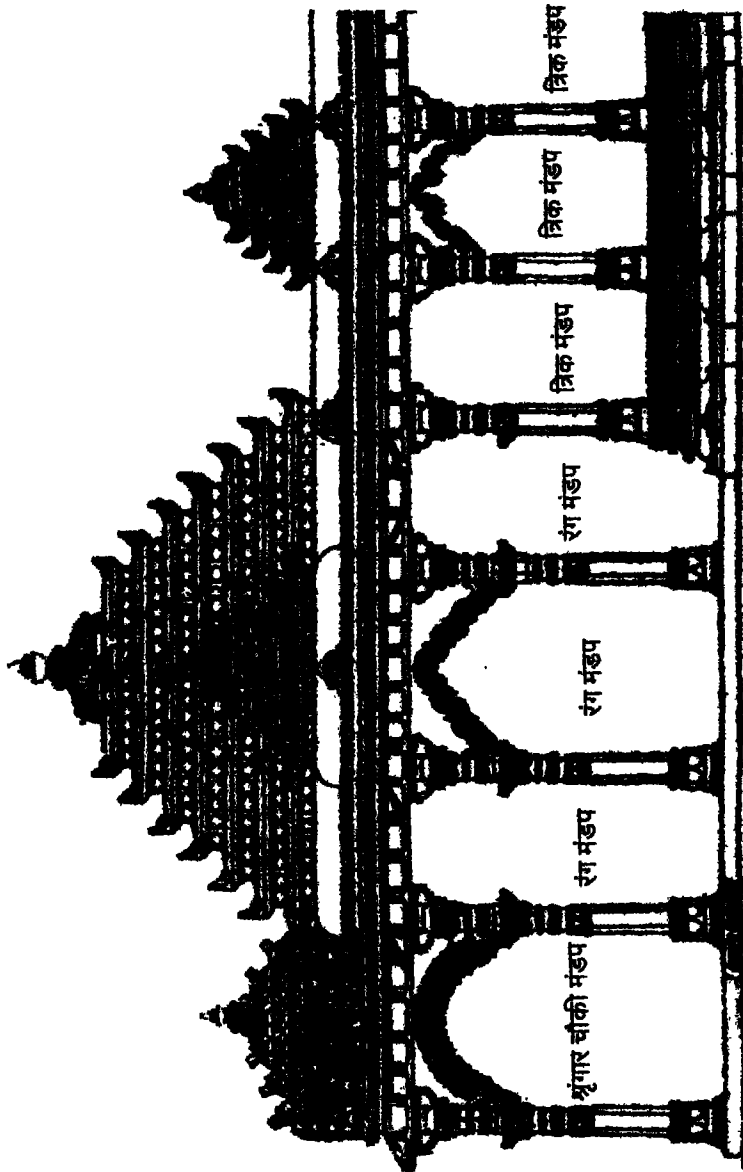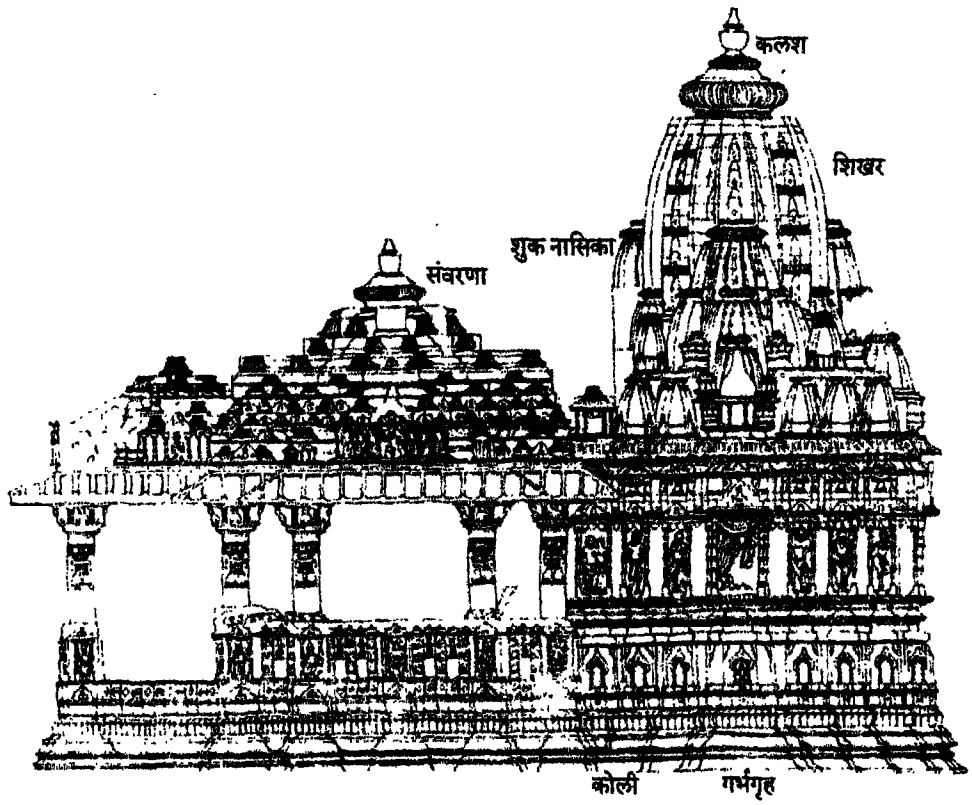
नागर जाति के मन्दिर का पार्श्व दर्शन

नीलकंठ महादेव मन्दिर - शुनक गुजरात
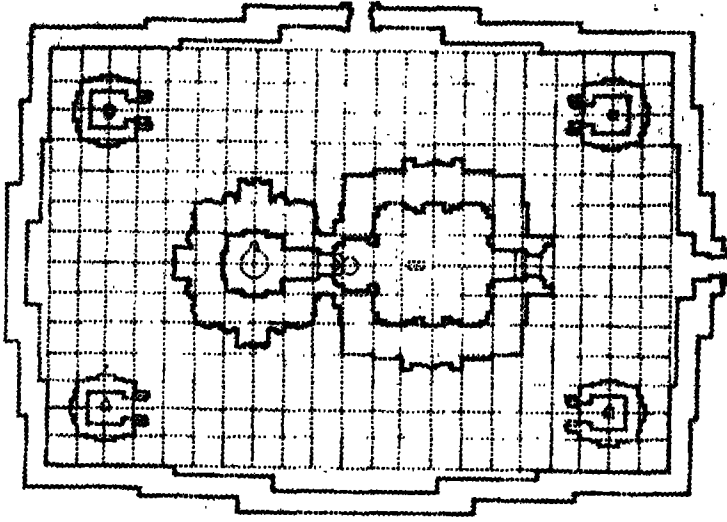
ब्रम्हेश्वर मन्दिर भुवनेश्वर - मण्डपक्रम एवं तल दर्शन
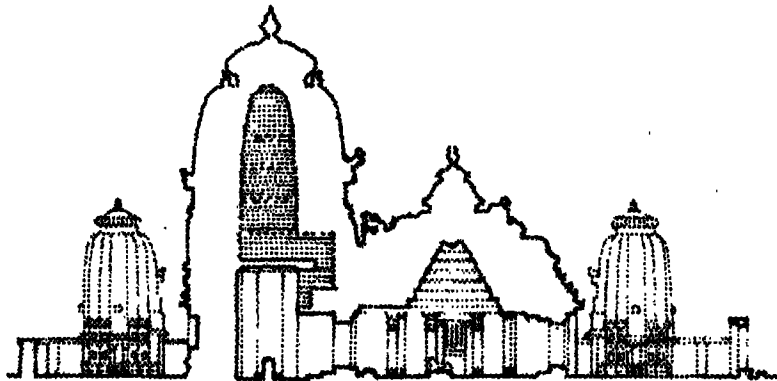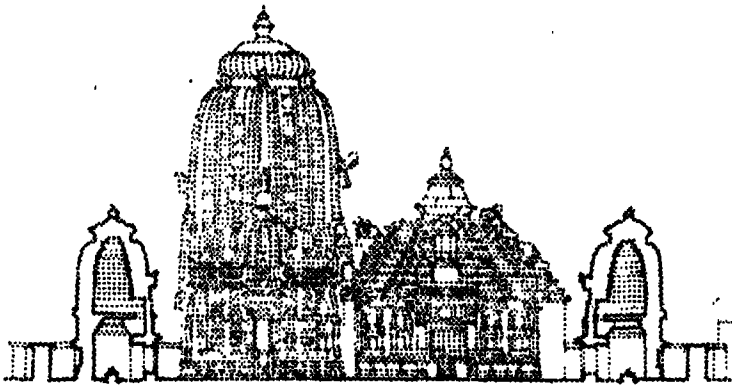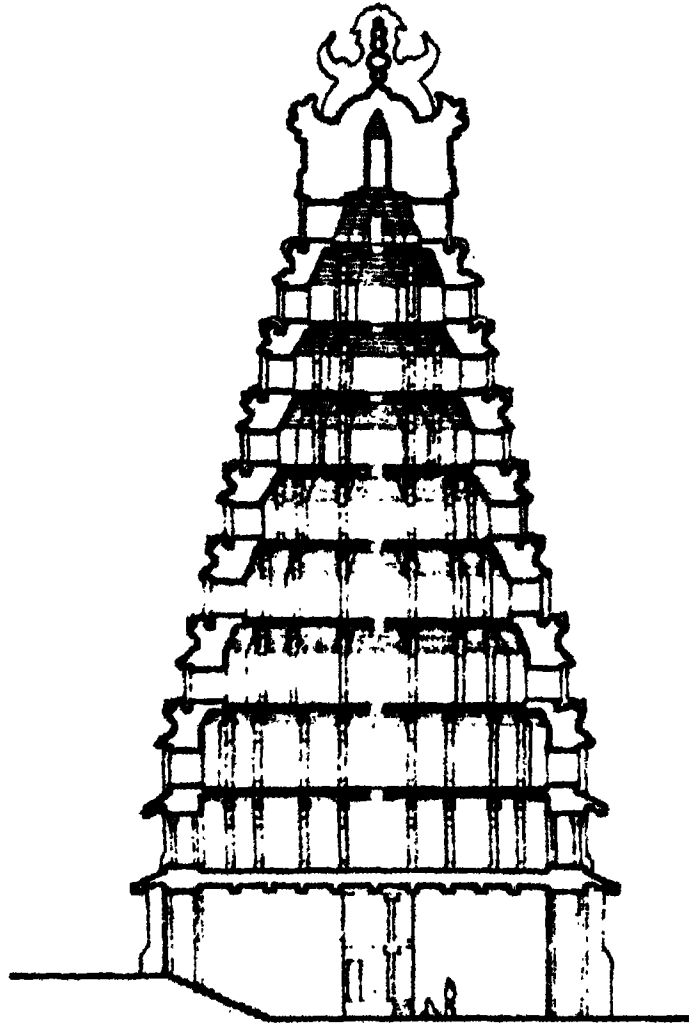
शिव मीनाक्षी मन्दिर, मदुराई-दक्षिणी गोपुरम
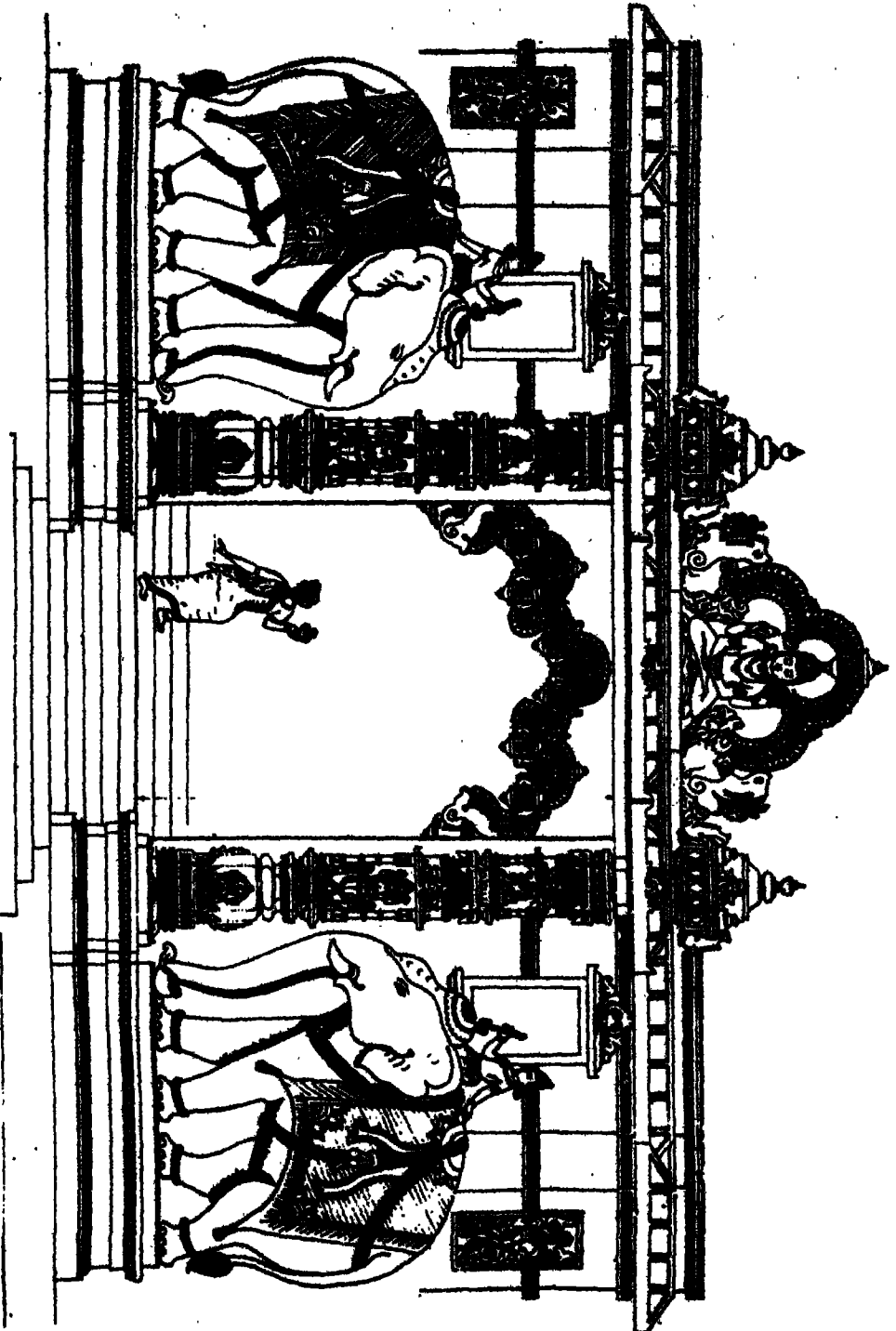
श्यामलाजी मंदिर का प्रवेश द्वार

शिखर

मन्दिर के ऊपरी भाग में पर्वत की चोटी के आकार की उच्च आकृति निर्माण की जाती है। इसे शिखर कहते हैं। दूर से दर्शनार्थी को शिखर के दर्शन होते हैं जिनसे यह आभास हो जाता है कि यहां पर देवालय है। उत्तर भारतीय शैली में शिखर सामान्यतः वक्रीय होता है। दक्षिण भारतीय शैली में शिखर गुम्बदाकार अथवा अष्टकोण या चतुष्कोण होता है। दक्षिण भारतीय शैली के शिखरों पर अनेक कलश होते हैं। शिखर विहीन मन्दिर भी बनाये जाते थे किन्तु शिखर मन्दिर के अपरिहार्य अंग हैं सिर्फ शोभा नहीं। दक्षिण में हेमाड़ पन्थी मन्दिरों में शिखर नहीं हैं। सांची एवं मुकुन्दरा आदि स्थलों में भी शिखर विहीन मन्दिर मिले हैं।

कुछ समय पूर्व एक भ्रामक विचार शैली ने जन्म लिया। इसमें शिखरयुक्त जिनालय को मन्दिर तथा शिखर विहीन जिनालय को चैत्यालय कहा जाने लगा। वास्तव में गृह चैत्यालयों में शिखर नहीं होता तथा उनका पृथक निर्माण यदि किया जाये तो भी गृह चैत्यालयों में कलश नहीं रखा जाता। गृह चैत्यालयों का आकार काफी छोटा होता है तथा सामान्यतः ये काष्ठ निर्मित होते हैं।

शिखर निर्माण

शिखर के नीचे के दोनों कोनों के दस भाग करें। इनके छह भाग के बराबर शिखर के स्कन्ध की चौड़ाई रखें। छह भाग से न अधिक रखें न ही कम।*

प्रासाद के वर्गाकार क्षेत्र के दस भाग करें। उनमें से दो दो भाग के दो कोण बनायें। तीन भाग का भद्र तथा डेढ़ डेढ़ भाग के दो प्रतिकर्ण बनायें। शिखर की ऊंचाई चौड़ाई से सवा गुनी होना चाहिये। स्कन्ध छह भाग का ही रखें। अब स्कन्ध के नौ भाग करें। चार भाग के दोनों कोण तीन भाग के दोनों प्रतिकर्ण तथा दो भाग का पूरा भद्र बनायें। अब रेखाओं को बनायें। **

शिखर की ऊंचाई का मान

खर शिला से कलश के अन्त भाग तक की ऊंचाई के बीस भाग करें। उनमें आठ, साढ़े आठ अथवा नौ भाग मण्डोवर (मन्दिर की दीवार) की ऊंचाई रखें। शेष ऊंचाई का शिखर बनायें। यह क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठ मान है। $

मूल रेखा के विस्तार से चार गुना सूत्र लेकर दोनों कोने के मूल बिन्दु से दो वृत्त बनाएं। जिसके दोनों वृत्तों के स्पर्श से कमल की पंखुड़ी जैसा आकार (पद्मकोश) बन जाता है। उसमें दोनों कोने के मध्य की चौड़ाई से सवाया शिखर की ऊंचाई रखें। #

इस प्रकार सवाया शिखर करने के बाद जो पद्मकोश की ऊंचाई शेष रहती हैं उसमें ग्रीवा, आमलसार कलश बनावें।

*प्रा. मं. ४ / १२, **(ज्ञान रत्नकोष), $प्रा. मं. ४ / २२ अप. सू. १३८, #प्रा. मं. ४ / २३

शिखर की रचना

उरुश्रृंग

उरुश्रृंग की रचना-

शिखर का तल विभाग
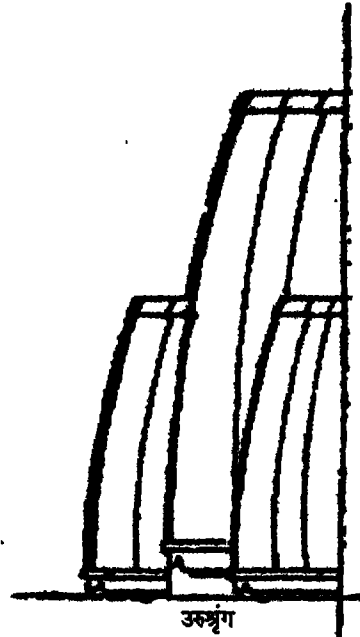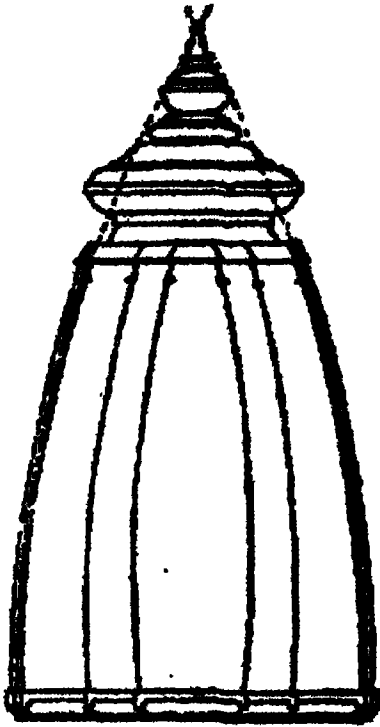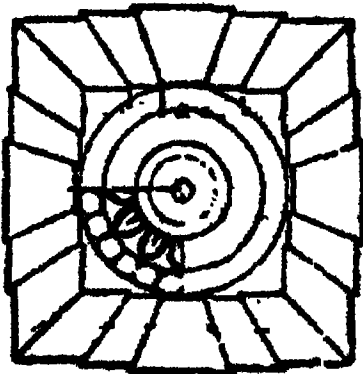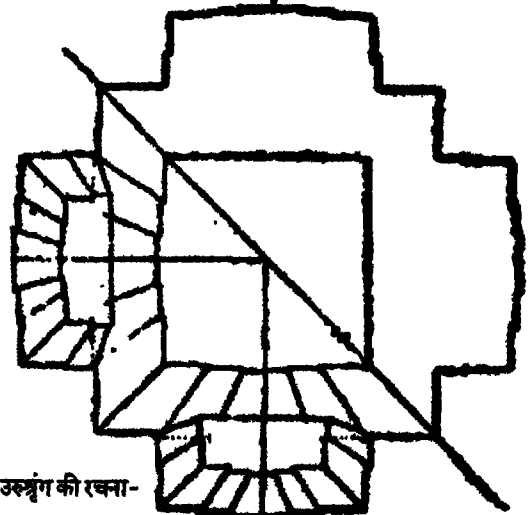
शिखर निर्माण
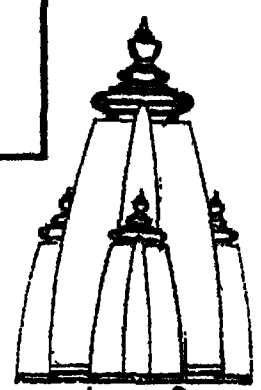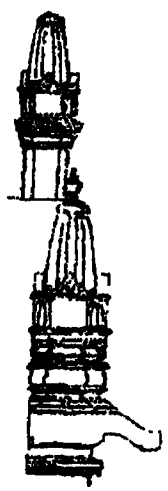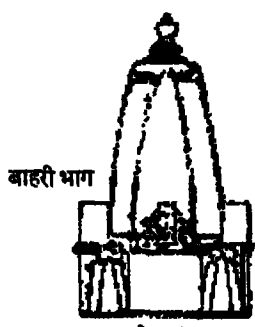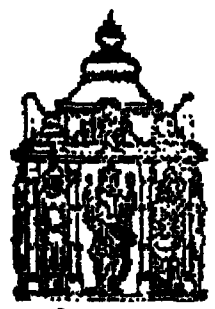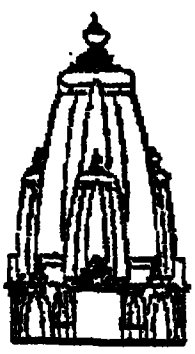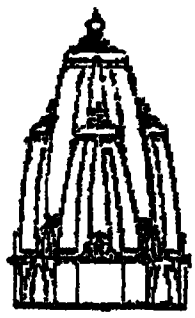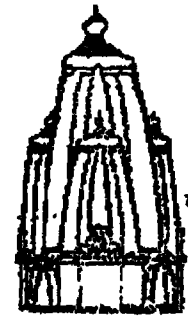
शिखर के पृथक भाग
बाहरी भाग
श्रीवत्स श्रृंग
कूट
तल का विभाग
उरूश्रृंग युक्त शिखर
बाहरी भाग
केसरी
तिलक मंजरी
तल का विभाग
श्रृंगोपश्रृंग
बाहरी भाग
सर्वतो भद्र
नन्दन
नन्दशालि
तल का विभाग

शिखर की ऊंचाई की गणना के लिये सूत्र का माप

मूल कर्ण (पायचा) से शिखर की ऊंचाई सवाई करना हो तो पांयचे के विस्तार से चार गुना सूत्र लेवें। यदि शिखर डेढ़ गुना करना हो तो पांच गुना सूत्र लें। यदि शिखर पौने दो गुना करना हो तो पौने सात गुना सूत्र लें। यदि शिखर १, १/३ गुना करना हो तो साढ़े चार गुना सूत्र लें।

इस सूत्र से मूल कर्ण के दोनों बिन्दुओं से दो गोल बनायें। इससे कमल की पंखुड़ी जैसा आकार बन जाता है। इसमें अपने इच्छित मान की ऊंचाई में शिखर का स्कंध तथा शेष रही ऊंचाई में आमलसार, कलश आदि बनाना चाहिए।

कला रेखा

मण्डोवर के ऊपर शिखर की रचना की जाती है। शिखर की रचना नीचे के भाग में चौड़ी होती है तथा ऊपरी भाग में अपेक्षाकृत कम होती जाती है। इस शिखर की रचना को निर्धारित करने के लिये प्रथमतः शिखर की चौड़ाई को २५६ रेखाओं में विभाजित करना होता है। ये रेखाएं उत्तरोत्तर झुकती हुई सी बनाई जाती है। ये रेखायें कला रेखा के नाम से जानी जाती है।
अब एक तरफ के कोने के दो भाग करें। उसमें प्रथम भाग के चार भाग करें। दूसरे भाग के तीन भाग करें। अब दूसरी तरफ के कोने के भी इसी तरह भाग करें। इसके बाद दोनों प्रतिकर्णों की दो रेखाएं मिला दें। इस प्रकार कुल सोलह रेखाएं हो जायेंगी।

इन सोलह रेखाओं की ऊंचाई में सोलह- सोलह भाग करें। इस प्रकार कुल २५६ (दो सौ छप्पन) रेखाएं हो जायेंगी। ये कला रेखाएं हैं।

शिखर की ऊंचाई की भेदोद्भव रेखा

मूल रेखा की चौड़ाई से शिखर की ऊंचाई सवाई करें। इस सवाये शिखर में दोनों कोनों के मध्य २५ (पचीस) रेखाएं होती हैं। ऊंचाई में ये रेखाएं झुकती हुई सी होती हैं। प्रा. मं. ४ / १३-१४

कला भेदोद्भव रेखा

शिखर की ऊंचाई के पांच से उनतीस खण्ड करें। उन खण्डों में अनुक्रम से ऊंचाई में एक एक कला रेखा बढ़ाएं। प्रथम पांच खण्डों में एक से पांच कला होंगी। पश्चात छठवें से आगे प्रत्येक में उतनी ही कला रेखा होंगी अर्थात् ६ वें में ६, ७ वें में ७, ८ वें में ८ इत्यादि २९ वें में २९। इतनी कला संख्या स्कन्ध में भी बनाई जाना चाहिये।

प्रथम समचार की त्रिकखंडों में आठ आठ कला रेखा है। पीछे आगे के प्रत्येक खण्ड में चार चार कला रेखा बढ़ाने से अठारहवें खण्ड में अड़सठ कला रेखा होती है। ऊंचाई में जितनी कला रेखा हों उतनी ही स्कन्ध में भी बनाएं, एक भी कम करें को शोभा न होगी।
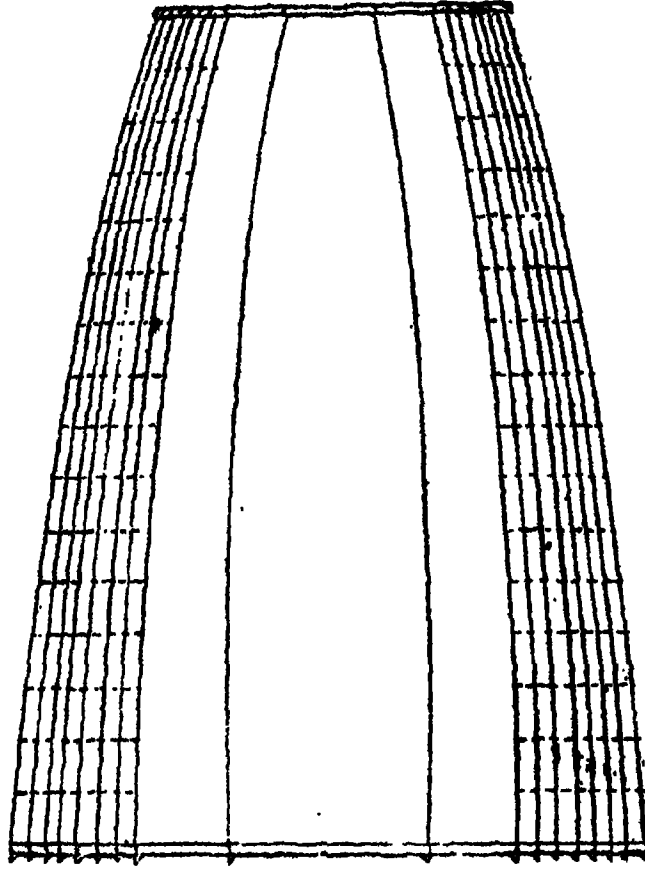
शिखर की कला रेखाएं -२५६ रेखा का चित्र

शिखर की ऊंचाई में अट्ठारह तथा तिरछी सोलह रेखाएं होती है। ऐसा चक्र बनाने से २५६ रेखाएं होती हैं।

अब सोलह प्रकार के चारों की त्रिखण्डा कला रेखाएं बनाएं। त्रिखण्ड से एक एक खण्ड बढ़ाते हुए अट्ठारह खण्ड तक बढ़ाएं। प्रथम प्रत्येक त्रिखण्ड में समचार की आठ आठ कला रेखाएं हैं। इस प्रकार सोलह चार हैं। *

त्रिखण्डा कलारेखाएं जानने के लिए अग्रलिखित सारणी का प्रयोग करें **-

---

*(चार अर्थात् जिसमें चौथाई चौथाई भाग सोलह बार बढ़ाया जाता है)

**प्रा. मं. ४ / १५ से २० तक

त्रिखंडा कला रेखाओं की सारणी

क्रं	चार का नाम	रेखा का नाम	प्रथम खण्ड की कला	द्वितीय खण्ड की कला	तृतीय खण्ड की कला		कला की कुल सख्या
१	समचार	८×१=८	शशिनी	८	८	८	२४
२	सपादचार	८×१,१/४=१०	शीतला	८	९	१०	२७
३	सार्धचार	८×१,१/२=१२	सौम्या	८	१०	१२	३[illegible]
४	पादोनद्वयचार	८×१,३/४=१४	शान्ता	८	११	१४	२[illegible]
५	द्विगुणचार	८×२=१६	मनोरमा	८	१२	१६	३[illegible]
६	सपाद द्विगुण चार	८×२,१/४=१८	शुभा	८	१३	१८	[illegible]
७	सार्ध द्विगुणचार	८×२,१/२=२०	मनोभवा	८	१४	२०	४[illegible]
८	पादोनत्रय चार	८×२,३/४=२२	वीरा	८	१५	२२	४
९	त्रिगुण चार	८×३=२४	कुमुदा	८	१६	२४	४८
१०	सपाद त्रिगुण चार	८×३, १/४=२६	पद्मशेखरा	८	१७	२६	५१
११	सार्ध त्रिगुण चार	८×३,१/२=२८	ललिता	८	१८	२८	५४
१२	पादोन चतुष्क चार	८×३,३/४=३०	लीलावती	८	१९	३०	५७
१३	चतुर्गुणाचार	८×४=३२	त्रिदशा	८	२०	३२	६०
१४	सपाद चतुर्गुणाचार	८×४,१/४=३४	पूर्णमण्डला	८	२१	३४	६३
१५	सार्ध चतुर्गुणाचार	८×४,१/२=३६	पूर्णभद्रा	८	२२	३६	६६
१६	पादोन पंचक चार	८×४,३/४=३८	भद्रांगी	८	२३	३८	६९

इस प्रकार चार खंडों की कला रेखाएं चार के भेदों से समझनी चाहिये। सोलह प्रकार के कलाचारों के भेद से प्रत्येक त्रिखंण्डादि में सोलह सोलह रेखाएं बनती हैं। अतः कुल रेखाएं २५६ होती हैं। शिखर की ऊंचाई में जितनी कला रेखा हो, उतनी ही स्कन्ध में भी बनाना चाहिये।
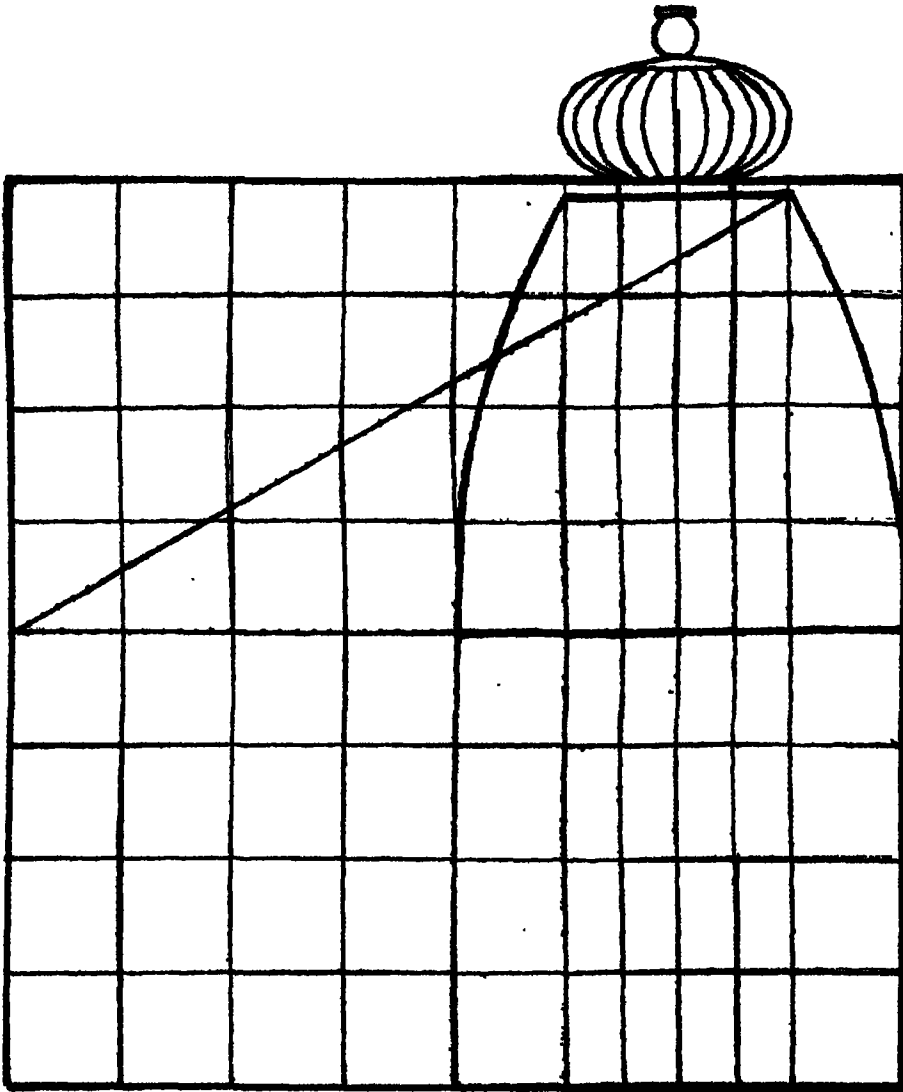
लतिन प्रासाद की शिखर निर्माण योजना

ग्रीवा, आमलसार तथा कलश का मान

शिखर की ऊंचाई करने के पश्चात पद्मकोश की जो शेष ऊंचाई में ग्रीवा, आमलसार और कलश बनावें। शिखर के स्कन्ध से पद्मकोश के अन्तिम बिन्दु तक की ऊंचाई के सात भाग करें। उसमें से एक भाग की ग्रीवा, डेढ़ भाग का आमलसार, डेढ़ भाग का पद्मछत्र (चन्द्रिका) तथा तीन भाग का कलश बनायें। द्विभाग की चौड़ाई वाले कलश का बिजौरा बनावें। कलश के अण्डा का विस्तार (चौड़ाई) प्रासाद के आठवें भाग का रखना चाहिये।*

शुक नासिका का मान

छज्जा से शिखर के स्कन्ध तक की ऊंचाई के इक्कीस भाग करें। इनमें से ९, १०, ११, १२ या १३ भाग तक की शुकनासिका की ऊंचाई रखें।

छज्जा के ऊपर शुकनासिका की ऊंचाई पांच प्रकार की मानी गई है। उनमें से शुकनासिका की ऊंचाई के नौ भाग करें। इनमें से १, ३, ५, ७, ९ इन पांच भागों में से किसी भी भाग में सिंह स्थान की कल्पना करें। उस स्थान पर सिंह रखा जाता है।**

कपिली

शुक नासिका के दोनों तरफ शिखर के आकार वाला मण्डप कपिली कहा जाता है। इसे कवली या कोली भी कहते हैं।

गर्भगृह के द्वार के ऊपर दाहिनी और बायीं ओर छह प्रकार से कपिली बना सकते हैं। उसकी ऊंचाई में शुक नासिका बनायें, यह प्रासाद की नासिका है।

प्रासाद की चौड़ाई के दस भाग करें उसमें दो, तीन या चार भाग की अथवा आधा चौथाई एवं तिहाई इस प्रकार से छह प्रकार के मान से कपिली बनाते हैं।#

इन छह प्रकार की कपिली के नाम इस प्रकार हैं ##-

१. प्रासाद की चौड़ाई के दस भाग में से दो भाग की - अंचिता
२. प्रासाद की चौड़ाई के तीन भाग में से दो भाग की - कुंचिता
३. प्रासाद की चौड़ाई के चार भाग में से दो भाग की - शस्या
४. प्रासाद की चौड़ाई के चौथे भाग बराबर की - मध्यस्था
५. प्रासाद की चौड़ाई के तीसरे भाग बराबर की - भ्रमा
६. प्रासाद की चौड़ाई के आधे भाग बराबर की - सभ्रमा

---

* प्रा. मं. ४ / २३,२४,२५, **प्रा. मं. ४/२६-२७, ## अ.सू. १३८

#प्रासादो दशभागश्च द्वित्रिवेदांशसम्मिताः। प्रासादार्धेन पादेन त्रिभागेनाथ निर्मिता ।। प्रा.मं.४/२९

शिखर के नमन (झुकाव) का विभाग

शिखर के मूल में दस भाग करें। ऊपर स्कन्ध के नौ भाग करें। उनमें से डेढ़ डेढ़ भाग के दो प्रतिरथ तथा दो दो भाग के दोनों कोने बनाएं। शेष तीन भाग नीचे तथा दो भाग ऊपर के बराबर का भद्र बनायें।

आमलसार

मन्दिर के शिखर के स्कन्ध के ऊपर कुम्हार के चाक की आकृति नुमा गोल कलश आमलसार कहलाता है।

दोनों प्रतिरथ के मध्य की चौड़ाई के मान का गोल आमलसार बनाना चाहिये। इसकी ऊंचाई का मान चौड़ाई से आधा रखें। ऊंचाई के चार भाग करें। उनमें पौन भाग की ग्रीवा बनाएं। सवा भाग का आमलसार बनाएं। एक भाग की चन्द्रिका बनाएं। एक भाग की आमलसारिका बनाएं। आमलसारिका गोल आकृति की होती है। प्रा. मं. ४/ ३२-३३

आमलसार का मान निकालने की अन्य विधि

स्कन्ध की चौड़ाई के छह भाग तथा आमलसार की चौड़ाई सात भाग रखें। आमलसार की चौड़ाई के अट्ठाइस तथा ऊंचाई के चौदह भाग करें। ऊंचाई में तीन भाग की ग्रीवा रखें। पांच भाग का अंडक बनाएं। तीन भाग की चन्द्रिका बनाएं। तीन भाग की आमलसारिका रखें। आमलसार के मध्य गर्भ की चौड़ाई में साढ़े छह भाग निकलती आमलसारिका रखें। इससे ढाई भाग निकलती चन्द्रिका रखें तथा इससे पांच भाग निकला अंडक (आमलसार) रखें। ज्ञान. प्र. दी. अ. ९

आमलसार के नीचे शिखर के कोण रुप

शिखर के आमलसार के नीचे और स्कन्ध के कोने में जिनदेव की प्रतिकृति रखी जाती है।
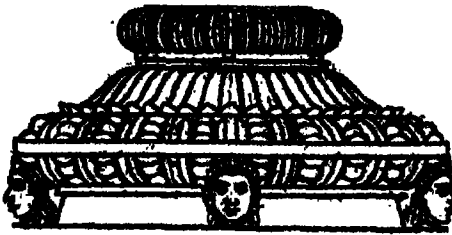
ग्रीवा, आमलसार एवं कलश

सुवर्ण पुरुष

आमलसार कलश के मध्य भाग में सफेद रेशम के वस्त्र से टंका हुआ चंदन का पलंग रखें। इस पलंग के ऊपर कनक पुरुष (स्वर्ण का प्रासाद पुरुष) रखना और इसके पास घृत से भरा हुआ ताम्र कलश रखें। यह क्रिया शुभ- मुहूर्त में कराये। यह प्रासाद का मर्मस्थान (जीव स्थान) है।#

सुवर्ण पुरुष का मान

प्रथम विधि : एक हाथ की चौड़ाई वाले प्रासाद में कनक पुरुष आधे अंगुल का बनायें। इसके बाद प्रत्येक हाथ के लिए चौथाई अंगुल बढ़ाना चाहिये।**

द्वितीय विधि: प्रासाद की चौड़ाई एक हाथ से पचास हाथ तक की चौड़ाई के लिए प्रत्येक हाथ आधा आधा अंगुल बढ़ाकर बनाएं।

सुवर्ण पुरुष की स्थापना

कनक पुरुष मन्दिर का जीव माना जाता है। इसकी स्थापना का स्थान छज्जा के प्रवेश में, शिखर के मध्य भाग में, अथवा उसके ऊपर, शुक नासिका के अन्तिम स्थान में, वेदी के ऊपर और दो माल के मध्य गर्भ में रखना चाहिये। सामान्यतः इसकी स्थापना आमलसार कलश में की जाती है। यह स्वर्ण, रजत या ताम्र का बनाकर जलपूर्ण कलश में स्थापन करें। बाद में उसे पलंग के ऊपर रखें। इसके बाद अपने नाम से अंकित स्वर्ण मुद्रा से भरे चार कलश पलंग के चारों पायों के पास रखें।

इस प्रकार कनक पुरुष की स्थापना चिरकाल तक देवालय निर्माता को सुखी करती है।$

#(अप. पृ. सू. १५३),

*आमलसारय मज्झे चंदनखट्टासु सेयपट्टचुआ। तस्सुवरि कणयपुरिसं घयपूरतओ य वरकलसो॥ व.सा. ३/ २७

**अद्धंगुलाइ कमसो पायंगुलवुड्ढिकणयपुरिसो अ। कीरइ धुव पासाए इगहत्थाई खबाणंते॥ व. सा. ३/३३

$प्रमाणं पुरुषस्यार्धांगुलं कुर्यात् करं प्रति। त्रिपताकं करे वामे हृदिस्थं दक्षिणाम्बुजम्॥ प्रा.म. ४/३५

कलश

कलश मन्दिर के शिखर के सबसे ऊपरी भाग में स्थापित किया जाता है। शिखर से मन्दिर में शोभा आती है उसे भांति कलश से शिखर में शोभा आती है। कलश मन्दिर के मुकुट की भांति है। कलशारोहण के उपरांत ही मन्दिर के कार्य को पूर्ण समझा जाता है अतएव इस कार्य को पूरी गंभीरता से करना चाहिये।
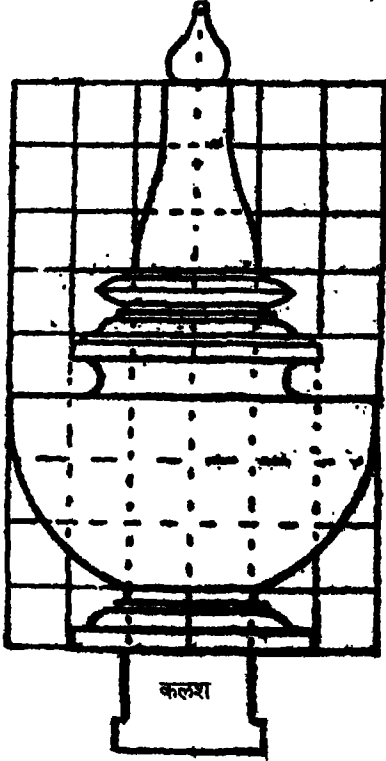
कलश की निर्माण सामग्री

कलश का निर्माण उसी द्रव्य से किया जाना चाहिये , जिसे द्रव्य से मन्दिर का निर्माण किया जा रहा हो। काष्ठ का कलश ही लगाना चाहिये। धातु के मन्दिर में धातु का तथा पाषाण के मन्दिर में पाषाण का कलश लगाना चाहिये।

बहुमूल्य धातु यथा स्वर्ण अथवा रत्न का भी कलश लगाया जा सकता है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा (अथवा प्राण प्रतिष्ठा) होने के उपरांत स्वर्ण या रत्न कलश चढ़ाया जा सकता है।

कलश का आकार

शिखर के स्कन्ध से पद्मकोश तक के अंतिम बिन्दु तक की ऊंचाई के सात भाग करें। इसमें एक भाग की ग्रीवा, डेढ़ भाग का आमलसार, डेढ़ भाग के पद्मछत्र या चंद्रिका तथा तीन भाग का कलश बनायें। द्विभाग की चौड़ाई वाले कलश का बीजोरा बनाएं। प्रा. मं. ४/ ३७-३८-३९

कलश की ऊंचाई के मान में उसका सोलहवां भाग बढ़ावें तो ज्येष्ठ मान का कलश होगा। यदि बत्तीसवां भाग बढ़ाएं तो मध्यम मान की कलश की ऊंचाई होगी। जो ऊंचाई आये उसके नौ भाग करें। उसमें एक भाग की ग्रीवा और पीठ, तीन भाग का अंडक (कलश का पेट), दोनों कर्णिका (एक छज्जी और एक कणी) एक एक भाग की तथा तीन भाग का बीजोरा ऊंचाई में रखें।

बीजोरा के अग्र भाग की चौड़ाई एक भाग तथा मूल भाग की चौड़ाई दो भाग, ऊपर की कणी की चौड़ाई तीन भाग, आधी पीठ की चौड़ाई दो भाग (पूरी पीठ की चौड़ाई चार भाग) तथा कलश के पेट की चौड़ाई छह भाग है।

ध्वजा (पताका)

ध्वजा, ध्वजाधार एवं पाटली

ध्वजा का अर्थ पताका या झण्डे से है। ध्वजा से तात्पर्य है वस्त्र से निर्मित एक टुकड़ा जो एक डंडे में लगाया जाता है तथा यह ध्वजा अपने धारण करने वाले के अस्तित्व का द्योतक है। यदि ध्वजा मंदिर पर लगी है तो मंदिर होने की सूचना देती है। दूर से ही ध्वजा को देखकर उसके आकार, रंग के अनुरुप मंदिर, महल का अनुमान लग जाता है। राजा अथवा राष्ट्रप्रमुख के महल पर लगी ध्वजा उसके सत्तापक्ष के अस्तित्व को प्रकट करती है। मन्दिर के अतिरिक्त राष्ट्र, राजनैतिक दल, संगठनों की भी अपनी-अपनी ध्वजा होती है।

मन्दिरों में ध्वजा लगाना एक मंगल कार्य भी है क्योंकि ध्वजा अष्ट मंगल द्रव्यों में से एक है। ध्वजा का आरोपण एक ध्वजादण्ड के सिरे पर लगाकर उसे ध्वजाधार से मजबूती से कस दिया जाता है। शिल्पशास्त्रों में ध्वजा, ध्वजादण्ड, ध्वजाधार के पृथक-पृथक प्रमाण दिये गये हैं।

ध्वजा वस्त्र की ही बनाना चाहिये। ध्वजा के आकार का तांबे या चांदी का पता काटकर उसे ध्वजा के स्थान पर लगाने की प्रथा वर्तमान में देखी जा रही है किन्तु शास्त्रों में वस्त्र निर्मित ध्वजा का ही उल्लेख प्राप्त होता है। अतएव धातु के पतरे की ध्वजा बनाने से ध्वजा लगाने का उद्देश्य पूरा नहीं होता।

ध्वजा का आरोपण निश्चित स्थान एवं दिशा में ही करना आवश्यक है। यदि वातावरण के प्रभाव से ध्वजा फट जाती है अथवा बदरंग हो जाती है तो इसे शीघ्रतिशीघ्र परिवर्तित कर देना आवश्यक है। फटी एवं बदरंग ध्वजा अशुभ लक्षण उत्पन्न करती है।

मन्दिर के शिखर पर शोभा के लिए झण्डा या पताका लगाई जाती है। यह वस्त्र अथवा धातु की निर्मित होती है तथा दूर से ही उपासकों को देवस्थान होने की सूचना देती है। पताका मन्दिर की शोभा के स्थान पर शुभ भी है। अतः जैन एवं वैदिक सभी मन्दिरों में पताका लगाने की परम्परा है।

ध्वजा लगाने के स्थान

शिल्प रत्नाकर ग्रन्थकार कहते हैं कि चिन्ह रहित शिखर (कलशहीन) तथा ध्वजरहित देवालय असुरवासी हो जाते हैं। अतएव बिना कलश का शिखर न बनायें तथा बिना पताका (ध्वजा) के मन्दिर न बनायें। * पुर, नगर, कोट, रथ, राजगृह, वापी, कूप, तालाब में भी ध्वजा लगाना चाहिये ताकि दूर से ही इनकी पहचान हो सके।

मंदिर में पताका लगाने का स्थान

पताका लगाने का स्थान मन्दिर में शिखर के ऊपरी भाग में निर्धारित किया गया है। वहां पर ध्वजादंड का रोपण करके उसमें ध्वजा लगाना चाहिये।

ध्वजा लगाने का स्थान ईशान दिशा में लगाना चाहिये। चतुर्मुखी प्रासाद में किंचित ईशान दिशा में ध्वज दण्ड लगाना चाहिये। **

ईशान दिशा में लगे ध्वजा से राज्य में वृद्धि तथा राजा प्रजा दोनों को आनंद होता है।

ध्वजा का आकार एवं निर्माण विधि

बारह अंगुल लम्बी और आठ अंगुल चौड़ी मजबूत कपड़े की पताका बनाना चाहिये। $

प्रासाद मण्डन कार ने ध्वजा का मान अन्य रुपेण किया है। ध्वजादण्ड की लम्बाई के मान के समान ध्वजा की लम्बाई करें तथा लम्बाई का आठवां भाग चौड़ाई रखें। यह अनेक वर्ण के वस्त्रों की बने तथा अग्रभाग में तीन या पांच शिखाएं बनाना चाहिए -

ध्वजा का कपड़ा श्वेत, लाल, श्वेत, पीला, श्वेत, काला हो तथा फिर उसी क्रम से इन्हीं रंगों वाला हो। इस ध्वजा में चंद्रमा, माला, छोटी घंटियां, तारा आदि नाना प्रकार के चित्र से सजायें। #

कपड़े से बनायी गयी ध्वजा सुखदायक, लक्ष्मीदायक, यशकीर्ति वर्धक होती है। राज, प्रजा, बाल, वृद्ध, पशु सभी के लिये समृद्धिकारक होती है।

---

*निश्चिन्हं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजाहीनं सुरालयं। असुरावासमिच्छन्ति ध्वजाहीनं न कारयेत्॥ (शि. र. ५ /१०२)
निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीने सुरालये। असुरावासमिच्छन्ति ध्वजाहीनं न कारयेत्।(प्रा. मं. ४ / ४८)
पुरे च नगरे कोटे रथे राजगृहे तथा। वापी कूप तड़ागेषु ध्वजाः कार्याः सुशोभनाः (प्रा. मं. ४ / ४७)
**चतुर्मुखे ततो वक्ष्ये प्रासाद सर्व कामदे। ईशानीं दिशामाश्रित्य ध्वजा दण्ड निवेशनम्॥ शि. र.५ / ९८)
ईशान्यां कुरुते किंचित् स्थपकः स्थापकः सदा। राज्यवृद्धिः स्थले वृद्धिः प्रजा सौख्यं नन्दति॥
$हस्तत्रिभाग विस्तीर्णेरर्धहस्तायतैर्दृढैः। वस्त्रोत्तम सुसंश्लिष्टं ध्वजं निर्मापयेच्छुभम्॥
ध्वजादण्ड प्रमाणेन दैर्घ्येष्टांशेन विस्तरे। नानावर्णैर्विचित्राद्यै स्त्रिपंचाग्रशिखोत्तमा॥ प्रा. मं. ४/४६
सितं रक्त सितं पितं सितं कृष्ण पुनः पुनः। यावत्प्रासाद दीर्घत्वंता उत्संयत्वयेतक्रमात॥
चन्द्रार्धचन्द्र मुक्तास्रक किंकिणी तारकादिभिः। नाना सद्रुप युग्मैश्च चित्रै पत्रै विचित्रयेत्॥

ध्वजाधार

स्थान निश्चित करने की विधि

प्रथम विधि -

शिखर की ऊंचाई के छह भाग करें। ऊपर के छठवें भाग के पुनः चार भाग करें। इनमें से नीचे का एक भाग छोड़कर दाहिने प्रतिरथ में ध्वजाधार बनायें। अर्थात् ऊंचाई के चौबीस भाग करके बाइसवें भाग में ध्वजाधार बनायें। ध्वजाधार का अन्य नाम स्तम्भ वेध है।*

द्वितीय विधि -

शिखर की रेखा के ऊपर के आधे भाग के तीन भाग करें। ऊपर के तीसरे भाग के पुनः चार भाग करें। इसमें नीचे का एक भाग छोड़कर उसके ऊपर के भाग में ध्वजाधार बनाएं। यह ईशान अथवा नेऋत्य कोण में प्रासाद के पिछले भाग में दाहिने प्रतिरथ में दीवार के छठवें भाग जितना मोटा बनायें।**

ध्वजाधार की मोटाई दीवार का छठवां भाग रखें। ध्वजादण्ड को मजबूत रखने के लिए स्तम्भिका रखी जाती है। उसकी ऊंचाई ध्वजाधार से आमलसार की ऊंचाई तक रखें। उसकी मोटाई प्रासाद के मान के बराबर हस्तांगुल (जितने हाथ का हो उतने अंगुल) रखें। उसके ऊपर कलश रखें। ध्वजादण्ड एवं स्तम्भिका को अच्छी तरह वज्र बन्ध करें।

ध्वजादण्ड की रचना

ध्वजादण्ड बढ़िया लकड़ी का बनाना चाहिये जिसमें न तो गांठें हों न ही पीलापन। ध्वजादण्ड सुन्दर एवं गोलाकार बनायें। दण्ड में पर्व या विभागों की संख्या विषण तथा ग्रन्थी (या चूड़ीं) सम संख्या में रखना चाहिए। $

---

*रेखायाः षष्ठमे भागे तदंश पादवर्जिते।
ध्वजाधारस्तु कर्तव्यः प्रतिरथे च दक्षिणे ।। ज्ञान प्र. दी. अ./ ९

**स्तम्भ वेधस्तु कर्तव्यो भित्याश्च षष्ठमांशकः।
घण्टोदय प्रमाणेन स्तम्भिकोदयः कारयेत ।।
धाम हस्तांगुल विस्तार स्तस्योर्ध्वे कलशो भवेत् ।ज्ञान प्र. दी. अ ९

$ सुवृतः सारदारुश्च ग्रन्थिकोटर वर्जितः।
पर्वभिर्विषमैः कार्यः समग्रन्थि सुखावहः ।। प्रा. मं. ४/४४

ध्वजा दण्ड की पाटली

ध्वजादण्ड की मर्कटी या पाटली जिसमें ध्वजा लटकाई जाती है अर्ध चन्द्राकार बनाएं। इसकी लम्बाई का प्रमाण ध्वजादण्ड की लम्बाई का छठवां भाग रखें तथा चौड़ाई लम्बाई से चौड़ाई आधी रखें। चौड़ाई की तीसरा भाग मोटाई रखें। इसके कोने में घंटियां लगाएं तथा ऊपर कलश लगाएं।*

मर्कटी का मान एक और विधि से निकाला जाता है (अ.सू. १४४)

ध्वजादंड की लंबाई		**पाटली की लंबाई**
हाथ में	फुट में	
१ से ५	२ से १० फुट	ध्वजादंड की चौड़ाई का सात गुना
६ से १२	१२ से २४ फुट	ध्वजादंड की चौड़ाई का छह गुना
१३ से ५०	२६ से १०० फुट	ध्वजादंड की चौड़ाई का पांच गुना

पाटली की चौड़ाई का मान पाटली की लम्बाई के तीसरे भाग के बराबर रखें।

ध्वजादण्ड निर्माण करने की काष्ठ

ध्वजा दण्ड निर्माण करने के लिए बांस, अंजन, महुआ, शीशम अथवा खैर की लकड़ी का प्रयोग करें। **

ध्वजादण्ड की ऊंचाई का मान निकालने की विधियां

१. प्रासाद की खर शिला से कलश के अग्रभाग तक की ऊंचाई के एक तिहाई के बराबर मान का ध्वजादण्ड ज्येष्ठ मान का है। इसमें आठवां भाग कम करें तो मध्यम मान आयेगा। यदि चौथा भाग कम करें तो कनिष्ठ मान का ध्वजादण्ड होगा। #

२. प्रासाद की चौड़ाई के बराबर ध्वजादण्ड की लम्बाई रखें। यह ज्येष्ठ मान है। इसका दसवां भाग कम करें तो मध्यम मान तथा पांचवां भाग कम करें तो कनिष्ठ मान होता है। यही मत अधिक प्रचलित भी है।##

---

*दण्ड दीर्घषडंशेन मर्कट्यर्धेन विस्तृता।
अर्धचन्द्राकृतिः पार्श्वेघण्टोर्ध्वे कलशस्तथा ।। प्रा. मं ४/४५

**वंशमयोऽथ कर्तव्यः आंजनो मधुकस्तथा।
सीसपः खादिरश्चैव पिण्डश्चैव तु कारयेत् ।। शि. र. ५/८२

#दण्डः कार्यस्तृतीयांशः शिलातः कलशान्तकम्।
मध्योष्टांशेन हीनोऽसौ ज्येष्ठ पादोनः कन्यसः ।। प्रा. मं. ४/४१

##प्रासाद व्यास मानेन दण्डोज्येष्ठः प्रकीर्तितः।
मध्यो हीनो दशांशेन पंचमांशेन कन्यसः ।। प्रा. मं. ४/४२

३. गर्भगृह या शिखर के नीचे के पायचे के चौड़ाई के बराबर लम्बा ध्वजादण्ड बनायें। यह ज्येष्ठ मान है। उसका बारहवां भाग कम करें तो मध्यम मान आयेगा। यदि छठवां भाग कम करें तो कनिष्ठ मान आयेगा। *

४. प्रकाश वाले अर्थात् बिना परिक्रमा वाले मन्दिर का ध्वजादण्ड मन्दिर की चौड़ाई के बराबर लम्बा बनायें। परिक्रमा वाले मन्दिर (अथात् सांधार) मन्दिर का ध्वजादण्ड मध्य मन्दिर के बराबर अर्थात् गर्भगृह के दोनों तरफ दीवार तक की चौड़ाई के बराबर बनायें। परिक्रमा और उसकी दीवार को छोड़कर सिर्फ गर्भगृह की दीवार गिनें।**

ध्वजादण्ड की चौड़ाई का मान

एक हाथ (२ फुट) चौड़ाई वाले प्रासाद के ध्वजादण्ड की चौड़ाई पौन अंगुल/ इंच रखें। बाद में पचास हाथ (१०० फुट) तक प्रति हाथ (२ फुट) आधा-आधा अंगुल/ इंच बढ़ाएं।#

शिखर कलश से ध्वजा की ऊंचाई का फलाफल

शिल्पशास्त्रों में शिखर पर लगाई जाने वाली पताका की ऊंचाई का एक निश्चित अनुपात बताया गया है। शिखर के सबसे ऊपर के भाग में कलश आरोहित किया जाता है ।

शिखर पर लगाई जाने वाली पताका कलश से भी ऊंची लहराना चाहिये। जितनी अधिक ऊंची ध्वजा होगा उतना ही श्रेष्ठ परिणामों की प्राप्ति होगी।

शिखर कलश से ध्वजा की ऊंचाई के अनुरुप फल का उल्लेख अग्रलिखित सारणी में उद्धृत है $-

शिखर कलश से ध्वजा की ऊंचाई		**फल**
हाथ में	फुट में	
१	२	निरोगता
२	४	पुत्रादि की वृद्धि
३	६	सम्पत्ति वृद्धि
४	८	राज सुख, राज्य वृद्धि
५	१०	सुभिक्षता
६	१२	वृद्धि

---

*मूल रेखा प्रमाणेन ज्येष्ठः स्याद् दण्डसंभवः। मध्यमो द्वादशांशोनः षडंशोनः कनिष्ठकः ।। अ.सू. १४४

**दण्डः प्रकाशे प्रासादे प्रासादकर संख्यया। सांधकारे पुनः कार्यो मध्य प्रासाद मानतः ।। विवेक विलास १/१७९

एक हस्ते तु प्रासादे दण्डः पादोनमंगुलम। कुर्यादर्धांगुला वृद्धिर्यावत्पंचाशद्धस्तकम् ।। प्रा.मं. ४/४३

#इग हत्थे पासाए दंड पउणंगुलं भवे पिंड। अद्धंगुलवुड्ढिकमे जाकर पन्नास कन्दुए। व. सा. 3/34

$आशाधर प्रतिष्ठा सारोद्धार

ध्वजा पर देवता की प्रतिष्ठा विधि

ध्वजारोहण मन्दिर निर्माण के उपरांत की जाने वाली प्रमुख धार्मिक क्रिया है। मन्दिर में जिन विम्ब की स्थापना के उपरान्त विधिपूर्वक ध्वजा का आरोहण किया जाता है।

सर्वप्रथम सर्वान्ह यक्ष की पूजा करें -

ॐ ह्री सर्वान्ह यक्ष सहित सर्वध्वज देवते एहि एहि संवौषट तिष्ठतिष्ठ ठः ठः

अत्र सन्निहितो भव वषट् इदं स्नपनमर्चनम् च गृहाण गृहाण ।

इस मन्त्र से आवाहन कर स्थापना करें। सर्वान्ह यक्ष की अष्ट द्रव्य से पूजा करें। इसके लिये निम्न विधि है-

सर्वोषधि सहित नौ कलशों की स्थापना करें। जल शुद्धि मन्त्र से जल को मन्त्रित करके सर्वान्ह यक्ष की मूर्ति के समक्ष अथवा ध्वज पट के समक्ष दर्पण स्थापन करें। गंध, पुष्प, मंगल, उपकरण आदि स्थापन करें। ध्वज पट के दर्पण में प्रतिबिम्ब का उपरोक्त मन्त्र से अभिषेक करें। साथ में सर्वान्ह यक्ष की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करें। पश्चात आवाहन आदि कर मन्त्र से पूजा करें। फिर मुख, वस्त्र, नयनोन्मीलन, विलेपनादि कर ध्वजारोहण करना चाहिये।

नयनोन्मीलन मन्त्र

ॐ ह्री अर्हं नमः णमो अरिहंताण सर्वान्ह यक्षाय धर्मचक्र विराजिताय चतुर्भुजाय श्यामवर्णाय गजाधिकढाय सर्वजन नयन आल्हादन कराय नयनोन्मीलनमहं करोमि स्वाहा।

इस मन्त्र से ध्वज-पट पर चित्रित सर्वान्ह यक्ष का नयनोन्मीलन करें। स्वर्ण शलाका को दोनों आंखों पर फेरें।

इस प्रकार ध्वजा पर देवता की प्रतिष्ठा सम्पन्न होती है।

अब तीन कोकिला से संयुक्त बांस दण्ड को दर्भमाला से बेष्टित करके अशोक, आम आदि के पत्ते बांधे। फिर ध्वजदण्ड की ठीक प्रकार अर्चना करके ध्वजारोहण के गड्ढे में शाल्यादि डालकर अर्ध चढ़ावे। नाना वाद्यों के वादन के साथ ध्वजा को दण्ड में बांधकर ध्वजारोहण कर देवें। सभी लोग णमोकार मन्त्र का पाठ करें।

प्रतिष्ठाचार्य निम्न लिखित मन्त्र पढ़कर मन्दिर या वेदिका पर ध्वजारोहण करायें।

ध्वजारोहण मन्त्र

ॐ णमो अरिहन्ताणं स्वस्ति भद्रं भवतु सर्व लोकस्य शांतिः भवतु स्वाहा

विशेष: मन्दिर पर ध्वज चढ़ाने के उत्सव में सम्मिलित होना पुण्यवर्धक कार्य है।*

ध्वजा प्रथम फड़कने का फलाफल

जिस समय ध्वजादण्ड पर ध्वजा चढ़ाई जाती है, उसके उपरांत वायु के प्रवाह से वह ध्वजा फड़फड़ाती है। ध्वजा के प्रथमतः फड़फड़ाने से शुभ-अशुभ लक्षणों के संकेत मिलते हैं। यदि उत्तर की ओर से हवा दक्षिण की ओर चलेगी तो यह दक्षिण की ओर फड़केगी। दक्षिणी तीनों ही दिशाओं में प्रथम फड़कना अशुभ माना जाता है। अग्रलिखित सारणी में दिशानुवार फल दृष्टिगोचर होते हैं -**

ध्वजा प्रथम फड़कने की दिशा	फल
पूर्व	सर्वकामना सिद्धि
उत्तर	आरोग्य, संपदा
पश्चिम/ वायव्य/ ईशान	शुभ , वृष्टि
आग्नेय/दक्षिण/ नैऋत्य	शांति कराना चाहिये। दान पूजा करें।

---

*यावंतः प्राणिनः के ते लग्ना कुर्युप्रदक्षिणाम् ।
तावंत प्राप्नुवंत्यैव क्रमेण विमल पद्म ।। १५ आशाधर प्रतिष्ठा सारोद्धार
**मुक्ते प्राचीगते केतौ सर्वकामान् वाप्नुयात ।
उत्तरांगते तस्मिन स्वस्थारोग्यंच सम्पदः ।। १६
यदि पश्चिमतो याति वायव्ये वा दिशाश्रये ।
ऐशानेवाततो वृष्टि कुर्यात् केतु शुभानिसा ।। १७
अन्येस्मिन दिग्विभागेतु केतौ मरुद्वशात् ।
शांतिकं तत्र कर्तव्यं दान पूजा विधानतः ।। १८

नागरजाति के मंदिर का आधार एवं शिखर दर्शन

पारिभाषिक शब्द सूचक
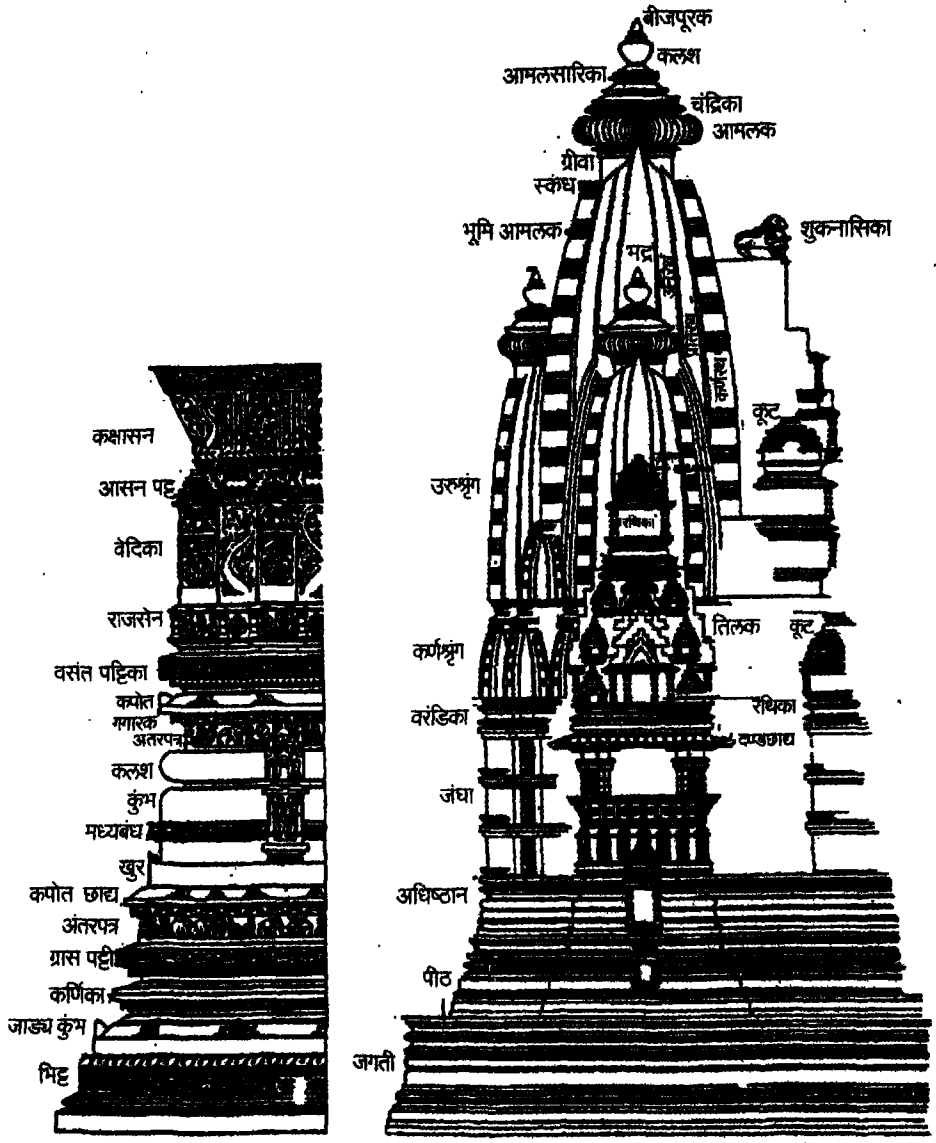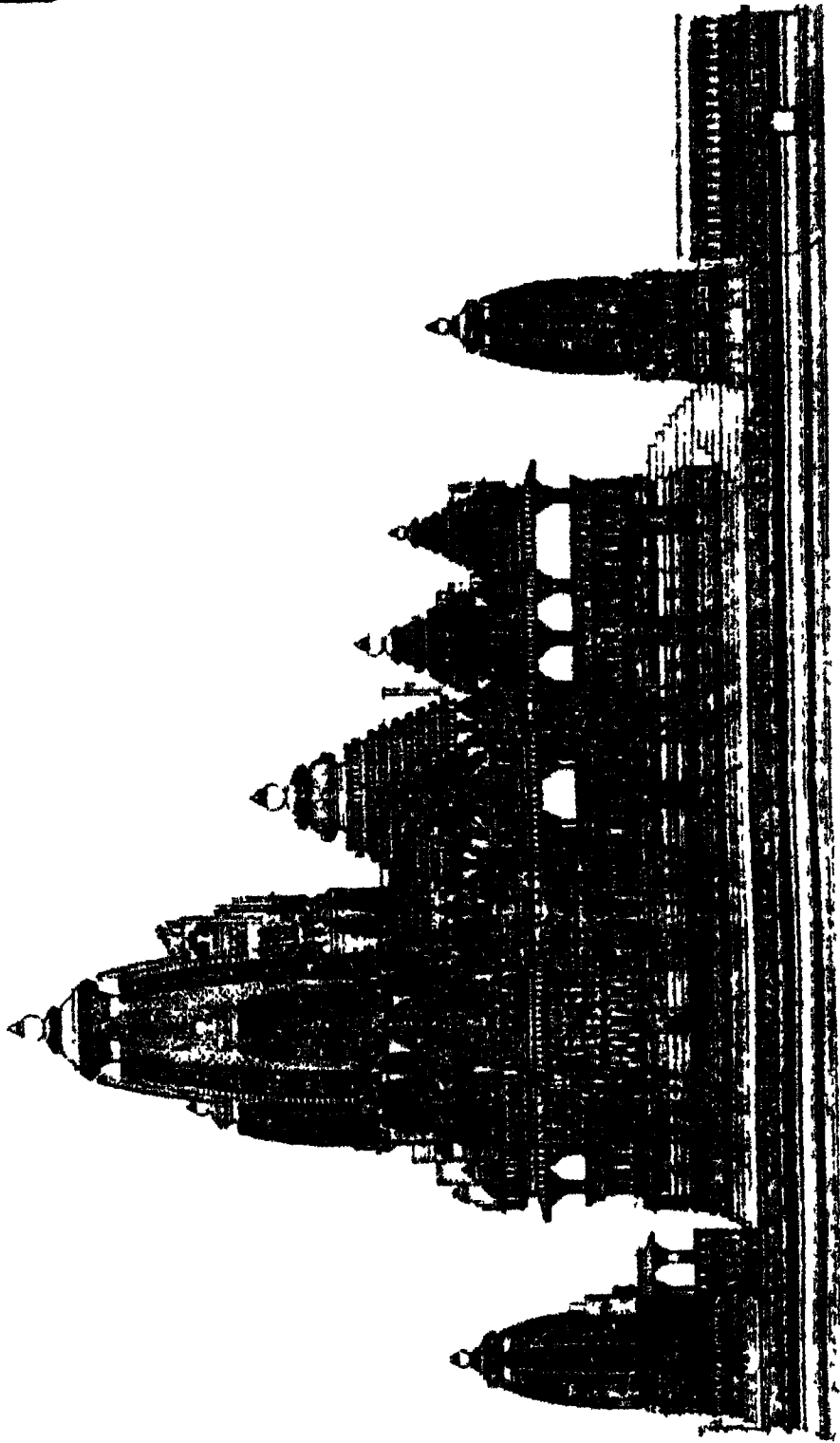
लक्ष्मण मन्दिर खजुराहो - नागर शैली
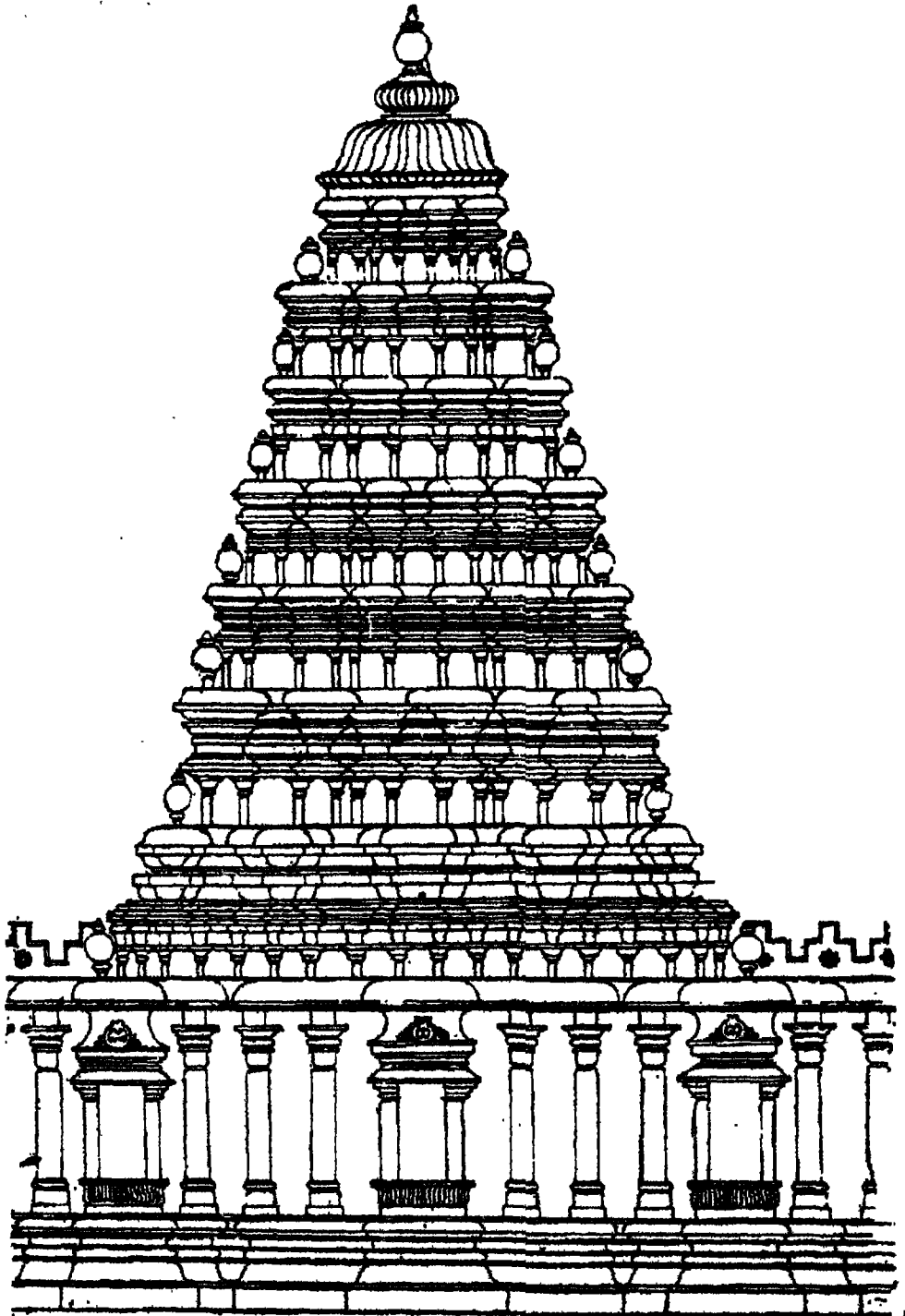
कुलपाक जी मन्दिर के शिखर का रेखाचित्र (आन्ध्रप्रदेश)
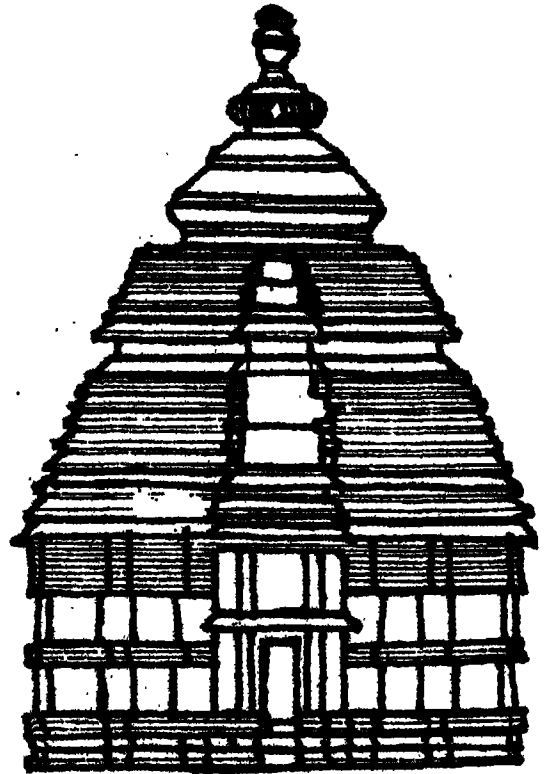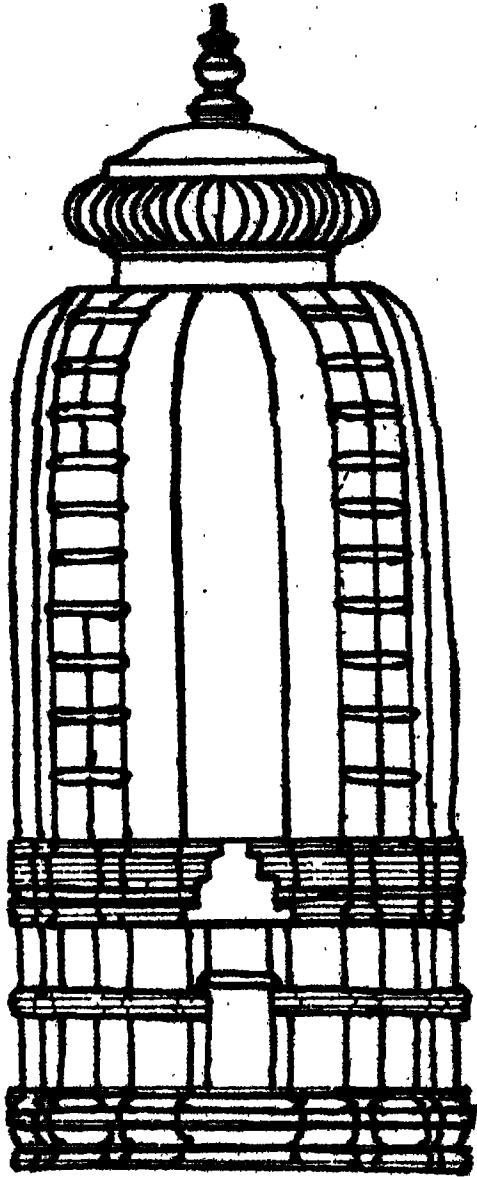
लिंगराज मंदिर, भुवनेश्वर

शिखर संयोजना
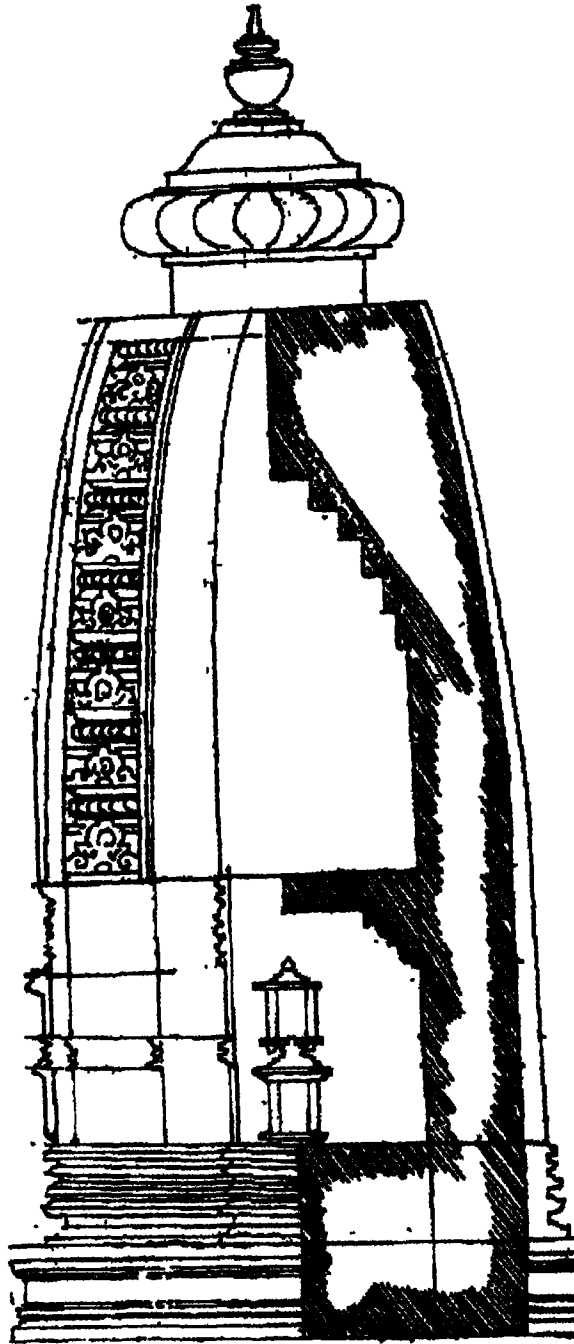
कलिंग प्रासाद का शिखर

वेदी प्रकरण

गर्भगृह में देवमूर्ति की स्थापना वेदी पर की जाती है। यह एक ठोस चबूतरानुमा निर्माण होता है। इसे पबासन भी कहते हैं। इसका प्रमाण शास्त्रानुकूल तथा स्थापित की जाने वाली प्रतिमा एवं द्वार के मान के अनुकूल होना आवश्यक है। वेदी पर प्रतिमाओं की स्थापना एक अथवा तीन कटनियों में की जाना चाहिये।

गर्भगृह में परिक्रमा का स्थान छोड़कर जिनबिम्ब (प्रतिमा) को स्थापित करने के लिये मनोरम वेदी का निर्माण किया जाना चाहिये। गर्भगृह में १, १/२ हाथ ऊंची वेदिका बनाना चाहिये।

वेदी का आकार चार प्रकार से किया जा सकता है :-*

१. चतुष्कोण वेदी
२. कमलाकृति वेदी
३. अर्धचन्द्राकृति वेदी
४. अष्टकोण वेदी

चतुष्कोण वेदी (वर्गाकार अथवा समचतुरस्र वेदी)

इसमें लम्बाई एवं चौड़ाई बराबर होना चाहिये। प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा की स्थापना के लिये यह सर्वश्रेष्ठ है।

कमलाकृति वेदी- इसे पद्मिनी वेदी भी कहा जाता है। इसमें वेदी को खिले हुए कमल की आकृति का बनाया जाता है तथा उस पर प्रतिमा स्थापित की जाती है। विशेष रुप से इस वेदी का प्रयोग तीर्थंकर प्रभु के ज्ञान कल्याणक के समय किया जाता है।

अर्धचन्द्राकृति वेदी - इसे श्रीधरी वेदी भी कहा जाता है। इस वेदी को अर्धचन्द्र का आकार दिया जाता है जिसका समतल भाग ऊपर रहता है। इस वेदी का प्रयोग तीर्थंकर के जन्म कल्याणक के समय किया जाता है।

अष्टकोण वेदी- इसे सर्वतोभद्र वेदी भी कहा जाता है। इसमें आठ कोण, आठ भुजाएं होती हैं। आठों भुजाओं का मान समतुल्य होता है। इस वेदी का प्रयोग विशेष रुप से तीर्थंकर के दीक्षा कल्याणक के समय किया जाता है।

वेदी का निर्माण करते समय अत्यधिक सतर्कता रखना अत्यंत आवश्यक है। किंचित भूल भी अत्यन्त विपरीत परिस्थिति का निर्माण कर सकती है।

---

*वेदी चतुर्विधा तत्र चतुरस्रा च पद्मिनी,
श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु।
चतुरस्रा चतु:कोणा वेदी सौख्य फलप्रदा
केचिच्चैत्य प्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसंनिभा ॥

आ. जयसेन प्रतिष्ठा पाठ श्लोक २२८/२२९
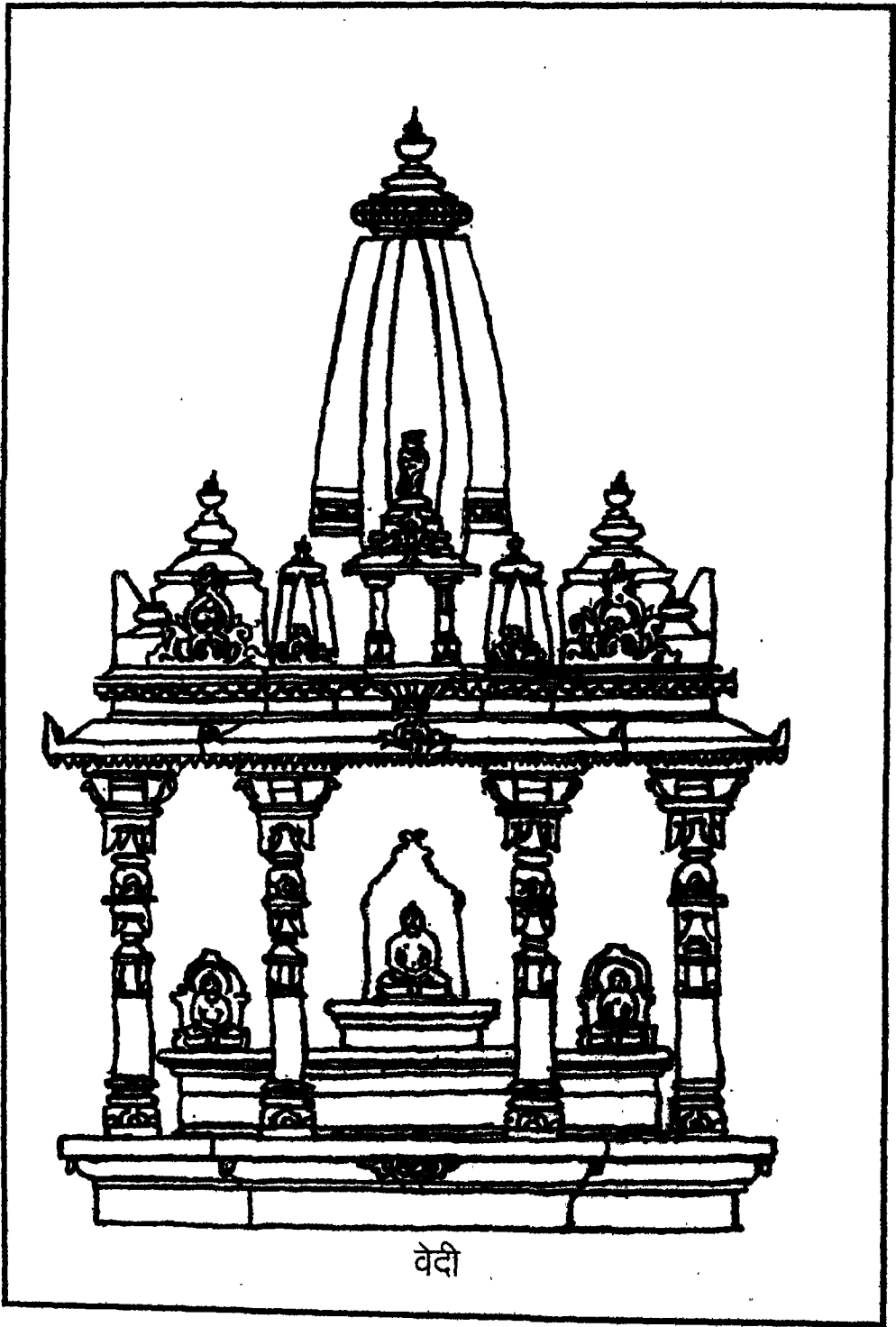
वेदी

वेदी निर्माण करते समय ध्यान रखने योग्य बातें -

१. वेदी पोली न बनायें। वेदी ठोस ही बनायें।
२. वेदी में एक या तीन कटनियों का ही निर्माण करें।
३. दो अथवा चार या अधिक कटनियां नहीं बनायें।
४. मूल नायक प्रतिमा वेदी के ठीक मध्य में स्थापित करें।
५. मूलनायक की प्रतिमा से बड़े आकार की प्रतिमा वेदी पर स्थापित न करें।
६. मूल नायक प्रतिमा का चिन्ह स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो।
७. वेदी में मूलनायक प्रतिमा के अतिरिक्त प्रतिमाएं यदि स्थापित की जाती हैं तो उनमें पर्याप्त अन्तर रखना अत्यंत आवश्यक है। एक प्रतिमा से दूसरी प्रतिमा के मध्य में प्रतिमा के मान से आधी दूरी का अन्तर रखना आवश्यक है।
८. प्रतिमा दीवाल से चिपकाकर न रखें तथा वेदी दीवाल से चिपकाकर न बनाएं।
९. स्थापित मूर्तियां पृथक- पृथक हों। आपस में संघर्ष न हो।
१०. मूलनायक प्रतिमा पूरे परिकर एवं यक्ष यक्षिणी सहित ही बनायें।
११. यदि यक्ष- यक्षिणी की प्रतिमाएं मूल वेदी से पृथक स्थापित करना हो तो मूल वेदी के दाहिनी ओर यक्ष की प्रतिमा की वेदी स्थापित करना चाहिये। मूलनायक के बायें ओर यक्षिणी की प्रतिमा स्थापित करें।
१२. मूल नायक प्रतिमा यदि अचल यंत्र से स्थापित की गई हैं तो उसे किंचित भी विस्थापित नहीं करना चाहिये।
१३. कोई भी वेदी दीवाल से सटाकर न बनायें।
१४. परिक्रमा के लिये उपयुक्त स्थान अवश्य रखें।
१५. प्रतिमा के परिकर में भामंडल के स्थान पर यंत्र नहीं लगाना चाहिये।
१६. प्रतिमा के नीचे अथवा चिन्ह के स्थान को ढांककर यंत्रों को कदापि न रखें।
१७. यथासंभव प्रतिमा की वेदी समचतुरस्र वर्गाकार ही निर्माण करें।
१८. गोल वेदी अथवा कोने कटी हुई वेदी कदापि न बनवायें।
१९. मूलनायक प्रतिमा पद्मासनस्थ आकृति में करना चाहिये।
२०. मूलनायक प्रतिमा तीर्थंकर प्रभु की ही बनाना चाहिये।
२१. किस तीर्थंकर की प्रतिमा मूलनायक बनाना है, इसके लिये मन्दिर निर्माता तथा तीर्थंकर के जन्म नक्षत्रादि का गुण मिलान अवश्य करना चाहिये।
२२. प्रत्येक वेदी पर कलश स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है।
२३. वेदियों पर ध्वजा अवश्य ही लगायें।
२४. वेदियों पर लगायी गई तोरण इतनी बड़ी न हो कि उससे भीतर स्थापित प्रतिमाएं ढक जायें।
२५. यदि वेदी लम्बाई में चौड़ाई से किंचित भी लम्बी हो तो दोषकारक है। समचतुरस्र वेदी ही सर्वश्रेष्ठ है।

पीठिका

पीठिका का तात्पर्य है हमेशा बैठा जा सकने वाला आसन। राजा महाराजा सिंहासन पर बैठते हैं। तीर्थंकर प्रभु कमलासन पर बैठते हैं। द्रविड़ ग्रन्थों में नौ प्रकार की पीठिकाओं का उल्लेख है :-

१. भद्र पीठ २. पद्म पीठ ३. महाम्बुज पीठ ४. वज्र पीठ
५. श्रीधर पीठ ६. पीठ पद्म ७. महावज्र ८. सौम्य ९. श्रीकाम्य

दक्षिण एवं उत्तर दोनों क्षेत्रों में भद्रपीठ, पद्मपीठ तथा महाम्बुज पीठ का निर्माण देखा जाता है।

प्रसंगवश यह ध्यान रखें की पीठिका एवं वाहन पृथक-पृथक हैं। हनुमान के लिए ऐसा नहीं है क्योंकि वे श्रीराम के चरणों के समीप सेवक मुद्रा में बैठते हैं। खड़े हुए रुप में वे एक हाथ में गदा तथा दूसरे में पर्वत उठाते हैं। प्रमाण मुद्रा में भी हनुमान की प्रतिमाएं बनाई जाती हैं। बालकृष्ण का कोई आसन नहीं है किन्तु राजा रुप में कृष्ण सिंहासन पर बैठते हैं।
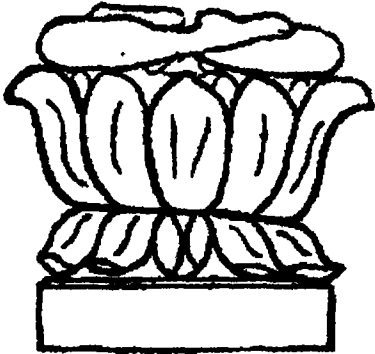
महाम्बुज पीठ
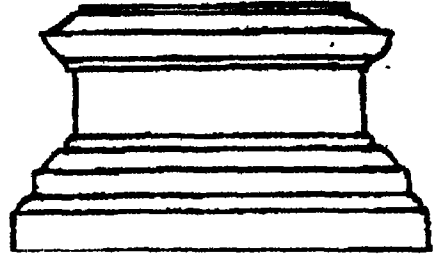
भद्रपीठ
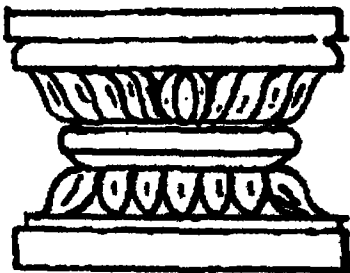
पद्मपीठ
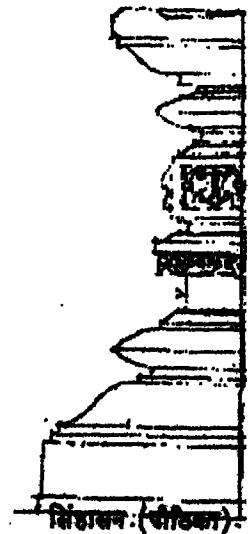
सिंहासन (पीठिका)

वेदी की सजावट

वेदी पर तीर्थंकर प्रभु की प्रतिमा की स्थापना करने के उपरांत वेदी की सजावट भी विभिन्न रूपों में की जाती है। वेदी में नीचे अष्ट मंगल, अष्ट प्रातिहार्य, तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्न, अभय दृश्य (जिसमें सिंह एवं गौ एक साथ जल पीते हैं) इत्यादि दृश्यों की चित्रकारी अथवा बेलबूटे आदि रुपक बनाना चाहिये।

सर्वज्ञदेव के पाद पीठ में नवग्रह की स्थापना करना चाहिये। जिन मन्दिर के गर्भगृह की दीवालों के अन्दर के भाग में तीर्थो की रचना की चित्रकारी, तीर्थकरों एवं महापुरुषों की जीवन गाथा के अंश की कलाकृतियां कराना चाहिये। चित्रकारी में युद्ध के दृश्य, क्रूर दृश्य, दानवों के चित्र, कंटीली झाड़ी, उजाड़ गांवों के चित्र कदापि न बनायें। संसार मधु बिन्दु दर्शन, षट्लेश्या दर्शन इत्यादि धर्मवर्धक दृश्यों की चित्रकारी से वेदी की शोभा बढ़ती है साथ ही उपासकों को सत् प्रेरणा भी मिलती हैं।

वेदी प्रतिमाओं की ऊंचाई का मान

द्वार की ऊंचाई का आठ, सात या छह भाग करें। ऊपर का एक भाग छोड़ दें। शेष भाग के पुनः तीन भाग करें। उसमें ऊपर के दो भाग की प्रतिमा बनायें तथा एक भाग की पीठ बनायें।

विशिष्ट जैनेतर प्रतिमाओं के लिये मान

द्वार की ऊंचाई का आधा भाग के बराबर शयनासन प्रतिमा की पीठ बनायें।
जलशय्या वाली प्रतिमा का मान द्वार की चौड़ाई से अधिक न रखें।

मंदिर में स्थापित की जाने योग्य प्रतिमा का आकार

शिल्पशास्त्र में गृह चैत्यालय एवं मंदिर में पूजनीय प्रतिमाओं के आकार के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश दिये हैं। यह विवेक रखना अत्यंत आवश्यक है कि किस आकार की प्रतिमा मन्दिर में स्थापित की जाये। एक हाथ से छोटे आकार के मन्दिर में स्थिर प्रतिमा रखने का निषेध किया है। इस स्थिति में केवल चल प्रतिमा ही रखना चाहिये। प्रतिमा के आकार की गणना मन्दिर के एवं द्वार के आकार के अनुरुप की जाती है।#

गृह चैत्यालय में एक से बारह अंगुल तक की प्रतिमा की ही पूजा हेतु स्थापना करना उचित है। इससे अधिक आकार की प्रतिमा मन्दिर में ही पूजी जानी चाहिये। चूँकि विषमांगुल की प्रतिमाएं ही पूजा में शुभफल देती हैं अतः ग्यारह अंगुल तक की ही प्रतिमा गृह मन्दिर में रखना चाहिये।

ग्यारह अंगुल से नौ हाथ तक की प्रतिमाओं की पूजा मन्दिर में ही करना चाहिये। ग्रन्थांतर में सोलह हाथ तक की प्रतिमा मन्दिर में पूजने योग्य कही गई है।

दस हाथ से छत्तीस हाथ तक की प्रतिमा पृथक-पृथक एवं बिना शिखर के स्थापित की जानी चाहिये।*

छत्तीस हाथ से पैंतालीस हाथ तक की प्रतिमा ऊंचे चबूतरे पर ही स्थापित की जानी चाहिये।

तात्पर्य यह है कि वृहदाकार प्रतिमाओं के अनुपात में मन्दिरों का निर्माण संभव नहीं है अतएव इस भांति की प्रतिमाएं खुले में ही स्थापित की जाती हैं। दक्षिण भारत में स्थित श्रवणबेलगोला की गोम्मटेश्वर बाहुबली की ५७ फुट ऊंची प्रतिमा सारे विश्व में विख्यात है। यदि इतनी विशाल प्रतिमा को आच्छादित करके मन्दिर बनाया जाये तो प्रमाण के अनुकूल न होने के कारण सुफलदायी नहीं होगा।

अतएव स्थापित की जाने वाली प्रतिमा का आकार मात्र भक्ति के अतिरेक में निश्चित न करें बल्कि शास्त्र की आज्ञा के अनुरुप ही करें।$ *रुप मंडन १/७-८-९, मत्स्य पुराण २५७-२३*

#नैक हस्तादितोऽ न्यूने प्रासादें स्थिरता नयेत्।
स्थिरं ना स्थापयेत् गेहे, गृहीणां दुख.कृद्भियत्।। शिल्पस्मृति वा.वि. अ. ६/ १३०

*आरम्भैकांगुला दूर्ध्वं पर्यन्तं द्वादशांगुला।
गृहेषु प्रतिमा पूज्या नाधिका शस्यते ततः।। रु. मं. १/७
तदूर्ध्वं नवहस्तान्तं पूजनीया सुरालये।
दशहस्तादितो याऽर्चा प्रासदिन विनाऽर्चयेत्।। रु. मं. १/८
दशादि करषष्ठया (करवृद्धया) तु षटत्रिंशत् प्रतिमा (:) पृथक।
वाणवेद करान् यावद चतुष्कां (चतुष्क्याम्) पूजयेत् सुधीः।। १/९ रु.मं.

$आषोडशाा तु प्रासादे कर्त्तव्या नाधिका ततः।। मत्स्य पुराण २५७/२३

जिन प्रतिमा प्रकरण

जिन प्रतिमा का अर्थ है जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा या मूर्ति जो कि उनके स्वरुप का आभास कराने के लिए स्फटिक, पाषाण, धातु, काष्ठ आदि द्रव्यों से निर्मित की जाती है। प्रतिमाएं कृत्रिम रुप से वीतराग प्रभु की छवि का आभास कराकर हमें वीतराग प्रभु की स्तुति करने के लिए निमित्त कारण हैं।

प्रतिमा अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठियों की बनाई जाती है। प्रतिमा का निर्माण शास्त्रों के निर्देश के अनुरुप होना चाहिये। यदि शास्त्र प्रमाण के अनुकूल प्रतिमा नहीं बनाई जायेगी तो विभिन्न प्रकार के अनिष्ट होने का अवसर बना रहता है।

अरिहन्त की प्रतिमा पूरे परिकर से सहित होना चाहिये। यक्षादि तथा अन्य समवशरण की विभूतियों से सहित होना चाहिये। सिद्ध प्रतिमा बिना परिकर की होती है। अरिहन्त प्रतिमा के साथ अष्ट प्रातिहार्य एवं मंगल द्रव्य अवश्य ही रहना चाहिये।

सामान्यतः जिन प्रतिमाएं एक ही द्रव्य की पूर्ण वीतराग निर्मित होती हैं। किन्तु सुमेरु पर्वत के भद्रशाल वन में स्थित चार चैत्यालयों में रंगीन मणिमय प्रतिमा होती है। पाण्डुक वन में भी ऐसी ही प्रतिमाएं होती हैं।

जिन प्रतिमा चूंकि अरिहंतादि परमेष्ठी की प्रतिकृति है अतः इसे जिन बिम्ब भी कहा जाता है। प्रतिमाओं को चैत्य नाम से सम्बोधित किया जाता है। पृथक रुप से नव देवताओं की कोटि में जिन चैत्य को देवता माना गया है। अतः न केवल परमेष्ठी वरन् उनकी प्रतिमा भी पूज्य है तथा उनके रहने का स्थान अर्थात् चैत्यालय (जिनालय) भी पृथक देवता है तथा पूज्य है।

जिनेन्द्र प्रतिमाओं का निर्माण एवं माप शास्त्रोक्त विधि से ही किया जाना चाहिये। प्रतिमा निर्माण के उपरांत जब तक पूर्ण विधान पूजन विधि तथा दि. जैन साधु / आचार्य के द्वारा सूरिमन्त्र से प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं हो जाती तब तक प्रतिमा की पूजा नहीं की जाती।

शिला परीक्षा आदि शास्त्रोक्त विधियों के द्वारा परीक्षित शिला से ही जिन प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये।

जिन प्रतिमा स्थापना निर्णय राशि मिलान का सुझाव

जिन प्रतिमा का निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व पूज्य आचार्य परमेष्ठी एवं गुरुजनों से आशीर्वादपूर्वक अनुमति लेना चाहिये। तदुपरांत उनसे वेदी एवं मन्दिर के आकार के अनुरुप मूर्ति का आकार, आसन, वर्ण तथा किन तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापनकर्ता की राशि, नवांश तथा तीर्थंकर की राशि का मिलान एवं नगर की राशि का मिलान कर आचार्य से उपयुक्त दिशा निर्देश ग्रहण करना चाहिये। इसके उपरांत ही जिन प्रतिमा के निर्माण का समय, शिला परीक्षण एवं शिला लाने जाने का समय निर्धारित करना चाहिये। यह विशेष ध्यान रखें कि बिना गुरु आचार्य की अनुमति एवं आशीर्वाद के स्वतः जिन प्रतिमा एवं मन्दिर निर्माण का कार्य नहीं करना चाहिये।

प्रतिमा निर्माण के द्रव्य

सूर्यकान्त मणि, चन्द्रकांत तथा सभी रत्न, मणियों की प्रतिमाएं सर्वगुणयुक्त होती हैं। सुवर्ण, रजत, तांबा धातुओं की प्रतिमा बनाना श्रेष्ठ है। पीतल की प्रतिमा भी बना सकते हैं किन्तु अन्य मिश्र धातु जैसे कांसा आदि की प्रतिमाएं नहीं बनाना चाहिये।

यदि काष्ठ की प्रतिमा बनवाना इष्ट हो तो श्री पर्णी, चन्दन, बेल, कदम्ब, पियाल, गूलर और शीशम की काष्ठ ली जा सकती है। इन वृक्षों की जिस शाखा से प्रतिमा बनाना हो, वह निर्दोष तथा वृक्ष पवित्र भूमि में उगा हुआ हो।

पाषाण में संगमरमर अथवा ग्रेनाइट की प्रतिमा बनाना श्रेष्ठ है। निर्दोष दाग रहित श्वेत संगमरमर की प्रतिमा की आभा निश्चय ही उपासक को दर्शन मात्र से प्रफुल्लित करती है।

इतना अवश्य ध्यान रखें कि धातु निर्मित प्रतिमाओं के लिए उपयोग की जाने वाली धातु नई हो। पुराने बर्तनों आदि को गलाकर प्रतिमा कदापि न बनवायें। यह महा अशुभ तथा अनिष्टकारी है।

विभिन्न द्रव्यों की प्रतिमा बनाने का फल

प्रतिमा निर्माण द्रव्य	***परिणाम***	
लकड़ी या मिट्टी	आयु, श्री, बल, विजय प्राप्ति	
मणि रत्न	सर्वजन हितकारी	
स्वर्ण	पुष्टि लाभ	
रजत	यश लाभ	
ताम्र	सन्तति लाभ	
पाषाण	अत्यधिक भूमि लाभ	वृहत्संहिता ४ / ५ पृ ४००

पोली एवं कृत्रिम द्रव्यों की प्रतिमा का निषेध

वर्तमान युग में अनेकों कृत्रिम द्रव्यों की प्रतिमायें निर्मित की जाने लगी हैं। प्लास्टिक, एक्रिलिक, नायलोन आदि की प्रतिमायें या आकृतियां बनने लगी हैं। प्लास्टर ऑफ पेरिस की भी मूर्तियाँ आजकल सामान्यतः देखने में आती हैं। प्लास्टिक/एक्रिलिक प्रतिमा में नाइटलैम्प लगाकर उसे सजावट के काम में लाने लगे हैं। टाइल्स में भी प्रतिमायें या भगवान की फोटो लगाने लगे हैं। ये सभी फोटो अथवा प्रतिमायें पूजा के लिए उपयुक्त नहीं हैं। ये अशुभ एवं अनिष्टकारक हैं।

धातु की प्रतिमा ठोस होना आवश्यक है। उसमें पोलापन किंचित भी नहीं होना चाहिये। अन्यथा भीषण संकटों का सामना करना पड़ सकता है। पोली मूर्तियों की पूजा करना उचित नहीं है। एक्रिलिक, प्लास्टिक आदि की मूर्तियां सामान्यतः पोली ही बनती है। चांदी, सोना अथवा पीतल की भी पोली मूर्तियों की न तो पूजा करना चाहिये, न ही इनकी प्राण प्रतिष्ठा करानी चाहिये। पोली मूर्तियों की पूजा प्रतिष्ठा अत्यंत अनिष्टकारक है। प्लास्टिक अथवा कृत्रिम रसायनों से निर्मित ठोस प्रतिमा भी पूज्य नहीं है। केवल शुद्ध धातु अथवा काष्ठ अथवा पाषाण की शास्त्रोक्त प्रतिमायें ही पूजा प्रतिष्ठा के योग्य हैं।

गर्भगृह में प्रतिमा का प्रमाण

गर्भगृह की महिमा उसमें स्थित जिन प्रतिमा के कारण है। गर्भगृह की चौड़ाई इस प्रकार रखें कि चौड़ाई के दस भाग में गर्भगृह बनायें तथा दो दो भाग की दीवार बनायें।

गर्भगृह की चौड़ाई के तीसरे भाग के मान की प्रतिमा बनाना उत्तम है। इस मान का दसवां भाग घटा देवें तो मध्यम मान की प्रतिमा का मान आयेगा। यदि पांचवां भाग घटा देवें तो कनिष्ठ मान आयेगा।*

द्वार के अनुपात में प्रतिमा के आकार की गणना

यह गणना अनेक प्रकार से की जाती है। माप उत्तरंग से नीचे तथा देहली के ऊपर का लेना चाहिये गणना की विधियां इस प्रकार हैं : -

१. द्वार की ऊंचाई के आठ या नौ भाग करें। ऊपर का एक भाग छोड़ देवें। शेष भाग में पुनः तीन भाग करें। उनमें से एक भाग की पीठिका तथा दो भाग की प्रतिमा बनाना चाहिये।**

२. द्वार की ऊंचाई के बत्तीस भाग करें। उनमें १४, १५, १६ भाग के मान की प्रतिमा खड्गासन में बनायें। पद्मासन मूर्ति / बैठी मूर्ति १४, १३, १२ भाग की बनाना चाहिये। #

क्षीरार्णव अ. ११ एवं वसुनन्दि श्रावकाचार का मत

३. द्वार की ऊंचाई के आठ भाग करें। ऊपर का एक भाग छोड़ दें। शेष सात भाग के तीन भाग करें। उनमें दो भाग की प्रतिमा तथा एक भाग की पीठ (पबासन) बनायें।

४. द्वार की ऊंचाई के सात भाग करें। ऊपर का एक भाग छोड़ दें। शेष छह भाग के तीन भाग करें। दो भाग की प्रतिमा तथा एक भाग की पीठ रखें।

५. द्वार की ऊंचाई के छह भाग करें। ऊपर का एक भाग छोड़ दें। शेष पांच भाग के तीन भाग करें। ऊपर के दो भाग की प्रतिमा तथा एक भाग की पीठ बनायें। यह कायोत्सर्ग प्रतिमा का मान है।

६. प्रासाद की चौड़ाई का चौथाई भाग प्रमाण प्रतिमा रख सकते हैं।

७. द्वार की ऊंचाई के आठ भाग करें। उसमें ऊपर के एक भाग को छोड़ देवें। नीचे के सातवें भाग के पुनः आठ भाग करें। इसके सातवें भाग में भगवान की दृष्टि रखना चाहिये। अर्थात् द्वार की ऊंचाई का चौसठ भाग करके उसके पचपनवें भाग में भगवान की दृष्टि रखना चाहिये।##

८. द्वार की ऊंचाई के नौ भाग करें। इसके सातवें भाग में पुनः नौ भाग करें। सातवें भाग की गणना नीचे से करें अर्थात् नीचे के छह तथा ऊपर के दो भाग छोड़ देवें। इस प्रकार सातवें भाग के नौ भाग में से सातवें भाग में प्रतिमा की दृष्टि रखना चाहिये। इस प्रकार इक्यासी भाग में से इकसठवें भाग में प्रतिमा की दृष्टि आना चाहिये। $

इनके अतिरिक्त स्फटिक, रत्न, मूंगा अथवा सुवर्ण आदि बहुमूल्य धातु की प्रतिमा रखने के लिये यह आवश्यक नहीं है। ये प्रतिमाएं अपनी भावना एवं क्षमता के अनुरुप रखना श्रेयस्कर है। $$

---

*प्रा. मं. ४/४ **प्रा. मं. ४/१, # प्रा. मं. ४/२, ## व. सा. ३/४४ प्रा. मं. ४/५,
$वसुनन्दि श्रावकाचार (व. सा. पृ १३१), $$ व. सा. ३/३९

गर्भगृह में प्रतिमा स्थापना का स्थान

गर्भगृह की पिछली दीवाल से गर्भगृह के मध्य बिन्दु तक के मध्य पृथक-पृथक स्थानों में विभिन्न देवताओं की प्रतिमा स्थापित की जाती है। इस हेतु विभिन्न विद्वानों के पृथक-पृथक मत हैं :-

प्रथम मत - गर्भगृह की पिछली दीवाल से गर्भगृह के मध्य बिन्दु तक पांच भाग करें। मध्य बिन्दु से प्रारंभ कर पांचवें भाग में यक्ष, गंधर्व, क्षेत्रपाल, स्थापन कर सकते हैं। चौथे भाग में देवियों की स्थापना, **तीसरे भाग में जिनदेव,** कृष्ण, सूर्य, कार्तिकेय, दूसरे भाग में ब्रह्मा तथा प्रथम भाग में शिवलिंग स्थापित करें। मध्य बिन्दु से थोड़ा हटकर शिवलिंग स्थापित करें। *

द्वितीय मत- गर्भगृह की पिछली दीवाल से गर्भगृह के मध्य बिन्दु तक दस भाग करें। मध्य बिन्दु से प्रारंभ कर पहले भाग में ब्रह्मा, दूसरे भाग में हर और उमा, तीसरे भाग में उमा और देवियाँ, चौथे भाग में सूर्य, पांचवें भाग में बुद्ध, छटवे भाग में इन्द्र, **सातवें भाग में जिनेन्द्र देव,** आठवें भाग में गणेश और मातृका, नवमें भाग में गंधर्व, यक्ष, क्षेत्रपाल व दानव तथा दसवें भाग में दानव, राक्षस, ग्रह और मातृका की स्थापना करना चाहिये। **

तृतीय मत- गर्भगृह की पिछली दीवाल से गर्भगृह के मध्य बिन्दु तक अट्ठाईस भाग करें। मध्य बिन्दु से प्रारंभ कर दूसरे भाग में शालिग्राम और ब्रह्मा, तीसरे भाग में नकुलीश, चौथे भाग में सावित्री, पांचवें भाग में रुद्र, अर्धनारीश्वर, छठवें भाग में कार्तिकेय, सातवें भाग में ब्रह्मा, सावित्री, सरस्वती, हिरण्यगर्भ, आठवें भाग में दशावतार, उमा, शिव, शेषशायी, नवमें भाग में मत्स्य, वराह, पद्मासन एवं ऊर्ध्वासन विष्णु, दसवें भाग में विश्वरुप, उमा, लक्ष्मी, ग्यारहवें भाग में अग्नि, बारहवें भाग में सूर्य, तेरहवें भाग में दुर्गा, लक्ष्मी, **चौदहवें भाग में गणेश लक्ष्मी, वीतराग, जिनेन्द्र देव,** पंद्रहवें भाग में ग्रह, सोलहवें भाग में मातृका, लक्ष्मी, देवियाँ, सत्रहवें भाग में गणदेव, अठारहवें भाग में भैरव, उन्नीसवें भाग में क्षेत्रपाल, बीसवें भाग में यक्षराज, इक्कीसवें भाग में हनुमान, बाईसवें भाग में मृगघोर, तेईसवें भाग में अघोर, चौबीसवें भाग में दैत्य, पच्चीसवें भाग में राक्षस, छब्बीसवें भाग में पिशाच तथा सत्ताईसवें भाग में भूत स्थापित करें। पहले और अट्ठाईसवें भाग में किसी को भी स्थापित न करें। #

दीवाल से चिपकाकर प्रतिमा स्थापना का निषेध

गर्भगृह में प्रतिमा की स्थापना दीवाल से चिपकाकर कदापि न करें। देव प्रतिमा तथा महापुरुषों की प्रतिमा दीवाल से चिपकाकर स्थापित करना अत्यंत अशुभ है। चित्रों को दीवाल से चिपकाकर लगा सकते हैं। ##

---

*व.सा. ३/४५-४६, विवेक विलास, प्रासाद तिलक।

**वास्तु मंजरी, वास्तु राज

#शि.र. ४/१३८-१५६, ज्ञान प्रकाश, दीपार्णव, क्षीरार्णव, अ.पृ.सूत्र

##व.सा ३/४७, शि.र. १२/२०४

दृष्टि प्रकरण

जैनेतर देवताओं की प्रतिमा की दृष्टि एवं द्वार की स्थिति

निम्नलिखित सारणी से यह ज्ञात होता है कि ६४ भाग में से कौन से भाग में प्रतिमा की दृष्टि रखना चाहिये, भाग की गणना उदुम्बर (देहली) से ऊपर की तरफ (उत्तरंग) करना चाहिये। प्रासाद के द्वार मान से सर्वदेवों का दृष्टि स्थान उदुम्बर से उत्तरंग तक के ६४ भाग करें। *

देव का नाम	दृष्टि का स्थान
आदि तत्व	१
सृष्टि तत्व	३
तत्व	५
अष्टि तत्व	७
आयुरतत्व	९
लक्ष तत्व	११
विज्ञ तत्व	१३
प्राज्ञ तत्व	१५
शांति तत्व	१७
अव्यक्त	१९
व्यक्ताव्यक्त	२१
व्यक्त	२३
शेष नाग	२५
जलशायी	२७
गरुड़	२९
मातृगण	३१
कुबेर	३३
भृंग - वाराह अवतार	३५
उमा- रुद्र	३७
बुद्ध भगवान	३९
ब्रह्मा सावित्री	४१
दुर्वासा, अगस्त्य, नारद	४३
लक्ष्मी नारायण	४५
धाता- ब्रह्मा	४७
शारदा गणपति	४९
पद्मासन ब्रह्मा	५१
हरसिद्धि	५३
ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु,	५५
जिन	**५५**
शुक्राचार्य	५७
चंडिका	५९
भैरव	६१
वैताल	६३

**शिल्प रत्नाकर अ- ४ श्लोक क्र २०६ से २१३*

आय भागे भजेद् द्वारमष्टमूर्ध्वतः त्यजेत् ।
सप्तमा सप्तमे दृष्टिर्वृषेसिंहे ध्वजे शुभा ।। प्रा. मंजरी १६५
षट भागस्य पंचाशे लक्ष्मीनारायणस्यदक् ।
शयनार्चांश लिंगानि द्वारार्ध्वेन व्यतिक्रमात् ।। प्रा.मंजरी १६६

जिन प्रतिमा निर्माण प्रारंभ करने के लिए शुभ मुहूर्त

प्रतिमा निर्माता मूर्ति शिल्पी को प्रसन्न चित्त से यथोचित सम्मान कर प्रतिमा निर्माण करने के लिए प्रार्थना करें तथा शिल्पी अत्यंत प्रसन्न मन से मनोहारी जिन बिम्ब बनाने का कार्य शुभ काल में प्रारंभ करे।

शुभ वार- सोम, गुरु, शुक्र, किन्ही के मत से बुध भी

शुभ नक्षत्र- तीनों उत्तरा, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, घनिष्ठा, आर्द्रा

मतांतर से - अश्विनी, हस्त, अभिजीत, मृगशिर, रेवती, अनुराधा भी शुभ नक्षत्र हैं।

शुभ तिथि- २, ३, ५, ७, ११, १३

अथवा जिन तीर्थंकर की प्रतिमा बनानी है उनके गर्भकल्याणक की तिथि

शुभ योग- गुरु पुष्य अथवा रवि हस्त योग

शिला लाने के प्रस्थान करने हेतु नक्षत्र

रेवती, श्रवण, हस्त, पुष्य, अश्विनी, पूनर्वसु, ज्येष्ठा, अनुराधा, घनिष्ठा, मृग इन नक्षत्रों में शिला लेने के लिये जाना चाहिये। पूर्व से लगाकर कृत्तिका तक के नक्षत्रों में यात्रा के लिए न जायें।

हस्त, पुष्य, अश्विनी, अनुराधा ये नक्षत्र यात्रा के लिये शुभ हैं किंतु दक्षिण दिशा में जाने के लिए मंगल, बुध एवं रविवार को न जायें।

यात्रा के लिये जाने से पूर्व नक्षत्र, लग्न, गोचर शुद्धि देखकर ही जायें।

प्रतिमा हेतु शिला परीक्षण

प्रतिमा के निर्माण के लिये शिला परीक्षण करके ही लाना चाहिये। वर्तमान काल में प्रायः संगमरमर की प्रतिमाएं निर्मित होती हैं। सादे देसी पत्थर की प्रतिमाओं का निर्माण प्राचीन काल से किया जाता रहा है। सुविधा एवं प्रभावना की दृष्टि से संगमरमर की प्रतिमाओं का निर्माण निःसंदेह श्रेयस्कर है। चाहे किसी भी पाषाण की प्रतिमा हो, पाषाण सुलक्षण युक्त होना चाहिये।

अनुभवी शिल्पकार के साथ शुभ मुहूर्त में प्रयत्नपूर्वक उत्साह के साथ शिला परीक्षा के लिये पुण्य प्रदेश में अथवा नदी, पर्वत, वन में शिला का अनुसंधान करना चाहिये।

शिला सफेद, लाल, काली, पीली, मिश्रवर्ण, कपोत (कबूतर) के वर्ण की, मूंगे के रंग की, कमल की आभा के समान, मंजीठ की आभा के समान अथवा हरे रंग की होवे। शीतल स्निग्ध, सुस्वादु, अच्छे स्वर से युक्त तथा मजबूत सुगंध युक्त, प्रभायुक्त तथा मनोरम होना चाहिये।

ऐसी शिला जिसमें शब्द न हो. बिन्दु रेखा दाग आदि हों, रुखी, दुर्गंध युक्त, बदरंग हो, मूर्ति निर्माण के लिये अनुपयोगी है।

शिला परीक्षण की विधि

शिला या काष्ठ जिसकी प्रतिमा बनाना इष्ट है, उसका दाग प्रगट करने के लिये निर्मल कोजी के साथ बेल वृक्ष के फल की छाल को पीसकर पत्थर या काष्ठ पर लेप करना चाहिये। ऐसा करने से दाग प्रगट हो जाता है।

यदि दाग ऐसे स्थान पर आने की संभावना हो कि हृदय, मस्तक, कपाल, दोनों स्कन्ध, दोनों कान, मुख, पेट, पीठ, दोनों हाथ, दोनों पैर आदि में किसी एक या अनेक भागों में नीले आदि रंग वाली रेखा हो तो इस शिला का प्रतिमा के लिये उपयोग न करें। अन्य अंगों पर भी यदि ये रेखा हो तो मध्यम है। चीरा आदि दोषों से रहित स्वच्छ , चिकनी, शीतल अपने रंग के जैसी ही रेखा हो तो दोष नहीं हैं। यदि दाग या रेखा अन्य वर्ण की हो तो महान दोष है। काष्ठ या पाषाण में कील, छिद्र, पोलापन, जीवों के जाले, संधि, कीचड़ अथवा मंडलाकार रेखा हो तो महादोष है।

यदि मंडल जैसा देखने में आये तो मधु के जैसा मंडल हो तो भीतर जुगनू जानें। भस्म जैसा मंडल हो तो रेत है। गुड़ के जैसा मंडल हो तो भीतर लाल मेंढक हैं, आकाशी रंग का मंडल हो तो जल है। कपोत वर्ण का मंडल हो तो छिपकली है। मंजीठ रंग मंडल देखने में आये तो मेंढक है। लाल वर्ण का मंडल दिखे तो गिरगिट है। पीले रंग का मंडल देखने में आये तो गोह है। कपिल वर्ण का मंडल दिखे तो चूहा है। काले वर्ण का मंडल देखने में आये तो सर्प है। विचित्र वर्ण का मंडल देखने में आये तो बिच्छू है। इस प्रकार विभिन्न रंग के मंडल प्रगट होने से भीतर अमुक प्राणी है, यह समझें।

उपरोक्त प्रकार के दाग वाले पाषाण या काष्ठ प्रतिमा निर्माण के लिये वर्जित हैं। अन्यथा धन, संतति की हानि होने का कष्ट होगा। अपवित्र स्थान में उत्पन्न चीरा, मसा, नस आदि दोषों से सहित पाषाण या काष्ठ की प्रतिमा कदापि न बनायें।

शिला में शुभ लक्षण

यदि पत्थर या काष्ठ में नंद्यावर्त, घोड़ा, श्रीवत्स, कछुआ, शंख, स्वस्तिक, हाथी, गाय, बैल, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, छत्र, माला, ध्वजा, शिव लिंग, तोरण, हिरण, प्रासाद, मन्दिर, कमल, वज्र, गरुड़ अथवा शिव की जटा जैसी रेखा दीखती हो तो यह शुभ लक्षण मानना चाहिये।

शिला लाने की प्रक्रिया

शिला परीक्षण के उपरांत शिला तराशने के बाद अपने स्थान पर वापस आ जाये। इसके बाद रात्रि में शयन से पूर्व जिनेन्द्र प्रभु का भावपूर्वक स्मरण करें। सिद्धभक्ति एवं णमोकार मन्त्र का पाठ करें। पश्चात निम्न मन्त्र को कह कर शयन करे -

ॐ नमोस्तु जिनेन्द्राय ॐ प्रज्ञाश्रमणे नमो नमः केवलिने तुभ्यं नमोस्तु परमेष्ठिने हे देवि मम स्वप्ने शुभाशुभं कार्यं ब्रूहि ब्रूहि स्वाहा।

रात्रि में शयन में स्वप्न में शुभाशुभ लक्षणों का ज्ञान हो जाने के उपरांत प्रातः शिला लाने के लिये जाना चाहिये। वहां जाकर शिला पूजन करके मन में स्मरण करे कि जिस प्रकार पूर्वकाल में नारायण महापुरुषों ने कोटि शिला उठाई थी उसी भांति हे महाशिला, मैं भी तुम्हें उठाता हूं, तुम शीघ्र चलो।

इसके बाद सात बार शिला को अभिमंत्रित करके रथ या अन्य वाहन में स्थापित करें। यदि पीठ के लिये शिला चाहिये तो भी इसी विधि का अनुसरण करना चाहिये। शिला लेकर नगर में उत्सवपूर्वक प्रवेश करें तथा तीन प्रदक्षिणा पूर्वक जिनालय दर्शन करें।

शिला का निर्णय हो चुकने के पश्चात वहां उत्साहपूर्वक **हूं कार मन्त्र** से शस्त्रादि को अभिमंत्रित करें तथा शिला एवं शस्त्र दोनों का उचित मान पूजा करें। पश्चात शिला को शस्त्र से तराशकर पुनः गंधादि से पूजा करें। इसके उपरांत प्रदोष काल में दोनों हाथों से सुगंधित पदार्थ का विलेपन करना चाहिये।

शिला प्रक्षालन करने के पूर्व इस मन्त्र का पाठ करें -

ॐ झं वं ह : पः क्ष्वीं क्ष्वीं स्वाहा.

इस मन्त्र का पाठ करते हुए शिला को धोकर उस पर सुगंधित जल डालें। इसके बाद शिला को तराशते के पूर्व इस मंत्र का पाठ करें :-

ॐ हूं फट् स्वाहा

शिला से प्रतिमा निर्माण की दिशा

जब यह निर्णय हो जाये कि किस शिला से प्रतिमा का निर्माण करना है तो उसकी दिशा का निर्धारण कर यह भी निश्चित करें कि प्रतिमा का सिर किस भाग में बनेगा।

जो शिला पूर्व पश्चिम लम्बाई में पड़ी हो उस शिला के पश्चिम भाग में प्रतिमा का सिर बनाना चाहिये।

इसी भांति जो शिला उत्तर दक्षिण दिशा में लम्बाई में पड़ी हो उस शिला के दक्षिण भाग की ओर प्रतिमा का सिर बनाना चाहिये।*

---

*प्राक् पंचादक्षिणे सौम्ये स्थिता भूमौ तु या शिला।
प्रतिमायाः शिरस्तस्याः कुर्यात् पश्चिम दक्षिणे ।। रु. मं. १/१५

प्रतिमा का आसन

सामान्य रुप से बैठक की मुद्रा आसन कहलाती है। प्रतिमा विधान में अनेकानेक आसनों (८४ तक) के उल्लेख हैं।

प्रतिमाओं के आसन के प्रमुख भेद -

१. कायोत्सर्ग प्रतिमा - जिन प्रतिमाओं में सिर से पांव तक एक सूत्र में खड़ी हुई मुद्रा होती है उन्हें कायोत्सर्ग प्रतिमा कहते हैं।

२. पद्मासन प्रतिमा - जिन प्रतिमाओं में पालथी लगाकर दोनों हाथ गोद में रखे जाते हैं उसे पद्मासन या योगासन कहते हैं।

३. बद्धपद्मासन प्रतिमा - दोनों पैरों को बांधकर पालथी मारकर बैंठे तथा दोनों पंजे खुले दिखाई दें। बायें हाथ के ऊपर दायां हाथ गोद में रखा हो। बुद्ध एवं जैन तीर्थकरों की प्रतिमाएं इसी प्रकार रखी जाती है। इसे बद्ध पद्मासन कहते हैं।

४. अर्ध पर्यंकासन प्रतिमा - बैठक में एक पैर मोड़कर तथा दूसरे को नीचे लटकता रखा जाता है इस आसन को अर्ध पर्यकासन कहते हैं।

५. भद्रासन प्रतिमा - भद्रासन में बैठक पर बैठकर दोनों पैर खुले रखे जाते हैं।

६. गोपालासन प्रतिमा - कृष्ण की बंसी बजाती खड़ी मूर्ति गोपालासन में होती है।

७. वीरासन प्रतिमा - एक पैर आधा खड़ा रखकर दूसरा घुटने से मोड़कर आधी बैठी स्थिति वीरासन कहलाती है।

८. पर्यंकासन प्रतिमा - शेषशायी विष्णु अथवा बुद्ध निर्वाण की लेटी हुई मूर्ति पर्यंकासन कहलाती है।

उत्कटासन
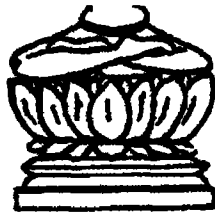
पद्मासन

वीरासन

गोपाल आसन

भंगासन

अर्धपर्यंकासन

प्रेतासन

ललित आसन

जिन प्रतिमा के लक्षण

प्रतिमा जिनेन्द्र प्रभु के वीतराग स्वरुप का रुपक है उसमें अनेकों शुभ लक्षण होते हैं। वह मनोज्ञ, आकर्षक, सौम्य, शान्त, वीतराग, श्रीवत्ससहित, खड्गासन अथवा पद्मासन होना चाहिये। बिम्ब का चेहरा प्रफुल्लित, नेत्र शांत, मुदित, भार्या (पत्नी) से रहित होना चाहिये। प्रतिमा का माप शिल्प शास्त्र में दर्शाये गये मापों से मेल खाता हो। जिन प्रतिमा आयुधादि से रहित सुन्दर, चित्तहर्षक होना चाहिये। यह ध्यान रखें कि कांख एवं मूंछ दाढ़ी के बालों के चिन्ह न हों। दृष्टि ठीक हो। अर्ध उन्मीलित नयन हों।

अरिहन्त प्रतिमा के विशेष लक्षण

अरिहन्त तीर्थंकर की प्रतिमा छत्र, चामर, भामंडल, अशोक वृक्ष, सिंहासन आदि अष्ट प्रातिहार्यों से संयुक्त होना चाहिये।

प्रतिमा के नीचे के भाग में नवग्रह हों। प्रतिमा के बायीं ओर यक्षिणी तथा दाहिनी ओर यक्ष होना चाहिये। क्षेत्रपाल का स्थान आसन पीठ के मध्य में हो। यक्ष- यक्षिणियों की प्रतिमा सर्वांगसुन्दर, वाहन, आयुध, वस्त्र, अलंकर, श्रृंगार से संयुक्त होना चाहिये।

सिंहासन में भी दोनों ओर यक्ष, यक्षिणी, सिंह युगल, गज युगल, चंवरधारी देव, चक्रेश्वरी देवी (मध्य में) अवश्य बनायें। चक्रेश्वरी गरुड़ वाहन पर चतुर्भुजी शास्त्रानुकूल बनायें।

तीर्थंकर प्रतिमा के आसन

तीर्थंकरों की प्रतिमाएं सामान्यतः दो आसनों में निर्मित की जाती हैं। इन्हीं आसनों से तीर्थंकर प्रभु का मोक्षगमन होता है। ये आसन इस प्रकार है :-

१. खड्गासन अथवा कायोत्सर्ग आसन   २. पद्मासन *

सभी तीर्थंकर प्रतिमाएं इन्हीं दो आसनों में बनाई जाती हैं। तीर्थंकरों का जिस आसन से मोक्षगमन हुआ हैं उसी आसन में भी मूर्ति बनाई जा सकती है। वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों के मोक्षगमन का आसन निम्नानुसार है :-

प्रथम ऋषभनाथ, १२ वें वासुपूज्य तथा २२ वें नेमिनाथ स्वामी का मोक्षगमन पद्मासन से हुआ है। शेष २१ तीर्थंकरों का मोक्षगमन खड्गासन स्थिति में हुआ है। जिन तीर्थंकरों का निर्वाण खड्गासन से हुआ है उनकी पद्मासन प्रतिमा भी बनाई जा सकती है, इसमें कोई दोष नहीं है।

---

*मध्य काल में दक्षिण भारत में पद्मासन के एक भेद अर्धपद्मासन में प्रतिमाएं बनाई गईं। ऐलोरा, पैठण, जिन्तूर एवं अन्य अनेकानेक स्थानों में अर्धपद्मासन प्रतिमाएं मिलती हैं। इनमें बैठक में एक पांव ऊपर तथा एक पांव नीचे रखा जाता है। ये प्रतिमाएं भी समचतुरस्र संस्थान में बनाई जाती है। इनका प्रमाण पद्मासन प्रतिमाओं की भांति ही होता है।

जिन प्रतिमा का वर्ण

सामान्यतः जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमाएं श्वेत अथवा श्याम वर्ण मे बनायी जाती हैं। चौबीस तीर्थंकरो के अपने -अपने वर्ण में भी तीर्थंकर प्रतिमा स्थापित की जाती है। विशेष रुप से चौबीसी में (चौबीस तीर्थंकरों के एकत्रित जिनालय में) तीर्थंकरों की प्रतिमाएं अपने स्व वर्ण में स्थापित की जाती हैं।

प्राचीन लघु चैत्य भक्ति (भगवान गौतम स्वामीकृत) में चौबीस तीर्थंकरों के अपने - अपने वर्ण (रंग) बताये गये हैं -*

तीर्थंकरों का नाम	वर्ण
चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त	श्वेत
सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	नील
पद्म प्रभ, वासुपूज्य	लाल
मुनिसुव्रत, नेमिनाथ	हरा
आदिनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ ,	कंचन (स्वर्ण)
अभिनन्दन नाथ , सुमतिनाथ, शीतलनाथ,	कंचन (स्वर्ण)
श्रेयांसनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ,	कंचन (स्वर्ण)
शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ,	कंचन (स्वर्ण)
नमिनाथ, वर्धमान स्वामी	कंचन (स्वर्ण)

---

*द्वौ कुन्देन्दु तुषार हार धवलौ, द्वाविन्द्रनील प्रभौ ,
द्वौ बन्धूक समप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगु प्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म मृत्यु रहिताः सन्तप्त हेम प्रभा-
स्ते सज्ज्ञान दिवाकराः सुर नुता : सिद्धिं प्रयच्छन्तु न : ॥ ५॥ प्राचीन लघु चैत्य भक्ति (भगवान गौतम स्वामीकृत)

प्रालेयनील हरितारुणपीतभासं, यन्मूर्ति मव्यय सुखावसथंमुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां, त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ सुप्रभात स्तोत्रम् /१०
श्वे. परंपरा- रक्तौ च पद्मप्रभुवासुपूज्यौ,
शुक्लौ च चंद प्रभु पुष्पदंतौ। शि.र. १२/५
कृष्णौ पुनः नेमिमुनिसुव्रतौ,
नीलौ श्री मल्लि पार्श्वौ कनकत्विसः षोडशः। शि.र. १२/६

प्रतिमा का ताल मान

शिल्प शास्त्र में प्रतिमाओं का मान ताल के प्रमाण से किया जाता है। प्रतिमा के मुख, हाथ, पैर सभी अंगोपांग इस प्रकार निर्मित किये जाना चाहिये कि उनका रुप सुडौल एवं सुरुचिपूर्ण लगे।

प्रतिमा के ही बारह अंगुल के मान को एक ताल कहा जाता है। इसी प्रमाण से देव प्रतिमा की ऊंचाई नवताल की अर्थात् १०८ अंगुल के बराबर ग्रहण की जाती है। पद्मासन प्रतिमा का प्रमाण ५६ अंगुल माना जाता है। सदैव यह स्मरण रखें कि इस मान में प्रयुक्त अंगुल का मान गज या कंबिया का या इंच के मान का अंगुल नहीं है। यहां पर प्रतिमा के अंगुल का ही ग्रहण किया जाता है।

प्रतिमा के ललाट से दाढ़ी तक चेहरे का माप एक ताल मान कहलाता है।१२ अंगुल का मान इसी के तुल्य आता है। #

अपनी मुट्ठी के चतुर्थांश को एक अंगुल मानना चाहिये। ऐसे बारह अंगुल का ताल जानना चाहिये।$

विभिन्न प्रतिमाओं की ताल मान सारणी

ग्रास	१ ताल	गणेश, वाराह, कुमार	६ ताल
पक्षी	२ ताल	मानव	७ ताल
हाथी	३ ताल	सर्व देवियां	८ ताल
किन्नर, अश्व	४ ताल	सर्व देवता, जिन	९ ताल
वृषभ, शूकर	५ ताल	राम, बलराम, रुद्र, ब्रह्मा	१० ताल
वामन बालक	५ ताल	विष्णु, सिद्ध, जिन	१० ताल
स्कंध, हनुमान, भूत, चंडी	११ ताल	वैताल, भैरव, नरसिंह, हयग्रीव	१२ ताल
राक्षस	१३ ताल	दैत्य, दानव	१४ ताल
राहू, भृगु, चामुण्डा	१५ ताल	क्रूर देवताओं की मूर्ति	१६ ताल
हिरण्यकश्यप, हिरणाक्ष,	१६ ताल	असुर, जयमुकुल	१६ ताल
नमुचि, निशुंभ, शुंभ	१६ ताल	स्वच्छन्द भैरव	२१ ताल

सामान्यतः जिन प्रतिमा ९ ताल में निर्मित की जाती है। प्रतिमा के अंगोपांग के मान शास्त्रों में ९ ताल के मान से उद्धृत है। कुछ ग्रन्थों में जिन प्रतिमा १० ताल की बनाने का निर्देश मिलता है।*

मुख मानेन कर्तव्या सर्वावयव कल्पयेत्। मत्स्य पुराण २५७/१

#नवत्ताल भवेद्रुयं तालस्य द्वादशांगुलम् ।आंगुलानीन कम्बाया किन्तु रुपस्य तस्यहि ॥ विवेक विलास १/१३५

जिन सहिंता, रुप मंडन, शिल्प रत्नाकर, दस ताल माण लक्खवा -त्रिलोक सार /१८७

$स्वस्वमुष्टेश्चतुर्थांशो ह्यंगुलं परिकीर्तितम् ।

तदंगुलै द्वादशांगुलाभि र्भवेत्तालस्य दीर्घता ॥ ६/८२ शुक्राचार्य

#नवताल हवइ रुवं रुवस्स य बारसंगुलो तालो।

अंगुल अठ्ठहिसयं ऊदढं बासीण छप्पन्नं ॥ व.सा. २/५

जदोदेव मणुस्स णेरइयाण मुस्सेधो दस णव अट्ठताल पमाणेण भणिदो। षट खंडागम धवला (पुस्तक ४ पृ ४०)

निजांगुल प्रमाणेन साष्टांगुलशतायुतन तालं मुखं वितस्तिस्यादेकार्थं द्वादशांगुलं तेन मानेनतद्बिम्बं नवधा प्रविकल्पयेत्
वसुनन्दि प्रतिष्ठासार

जिन प्रतिमा का मान

समचतुरस्र पद्मासन प्रतिमा का मान

ललाट से लगाकर गुह्य स्थान तक के नाप ९ ताल के उपरोक्त	५२	भाग
घुटना	४	भाग
	५६	भाग

वत्थुसार के अनुसार ५६ भाग की प्रतिमा बनना चाहिये जबकि प्रतिष्ठा भाग संग्रह में ५४ भाग का निर्देश है।

पद्मासन प्रतिमा में समसूत्र प्रमाण

पद्मासन प्रतिमा में निम्नलिखित चार माप एक समान रहना आवश्यक है : -

१. दायें घुटने से बायां घुटना
२. दायें घुटने से बायां कंधा
३. बायें घुटने से दायां कंधा
४. नीचे से मस्तक (पादपीठ आसन से केशान्त तक)

दाहिने घुटने से बायें कंधे तक एक सूत्र, बायें घुटने से दाहिने कंधे तक दूसरा सूत्र, एक घुटने से दूसरे घुटने तक तीसरा सूत्र, नीचे वस्त्र की किनार से कपाल से केस तक चौथा सूत्र। ये चारों सूत्र बराबर रहना चाहिये। इस प्रतिमा को समचतुरस्र संस्थान प्रतिमा कहा जाता है। ऐसी पद्मासन प्रतिमा की दाहिनी जंघा तथा पिण्डी के ऊपर बायां हाथ एवं बायां चरण रखें। बायीं जंघा एवं पिण्डी पर दाहिना चरण एवं दाहिना हाथ रखें। यह आसन पर्यंकासन कहा जाता है।

व. सा. २ /४, विवेक विलास
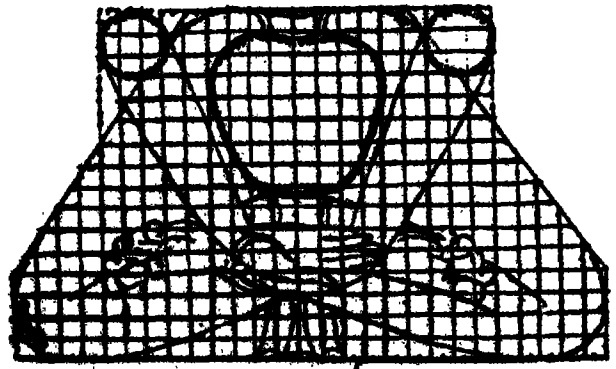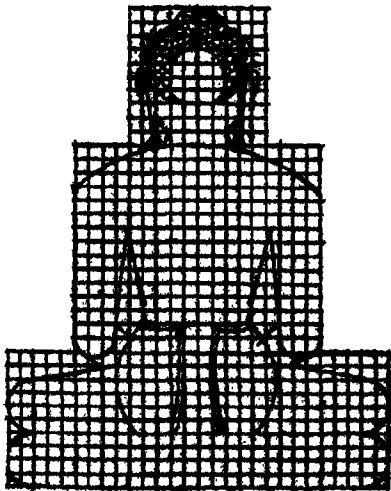
पद्मासन प्रतिमा का मान

कायोत्सर्ग नवताल की प्रतिमा १०८ भाग की होती है। अग्रलिखित अनुपात एवं मान इसी के आधार पर हैं। कपाल, नासिका, मुख, गर्दन, हृदय, गुह्य और जानु इनके नाप कायोत्सर्ग प्रतिमा के समान ही होते हैं। इस प्रकार पद्मासन में कुल ऊंचाई छप्पन भाग होती है।

कपाल	४ भाग
नासिका	५ भाग
मुख	४ भाग
गला	३ भाग
गले से हृदय तक	१२ भाग
हृदय से नाभि तक	१२ भाग
नाभि से गुह्य इन्द्रिय	१२ भाग
जानु	४ भाग
कुल	५६ भाग

समचतुरस्र पद्मासन जिन प्रतिमा
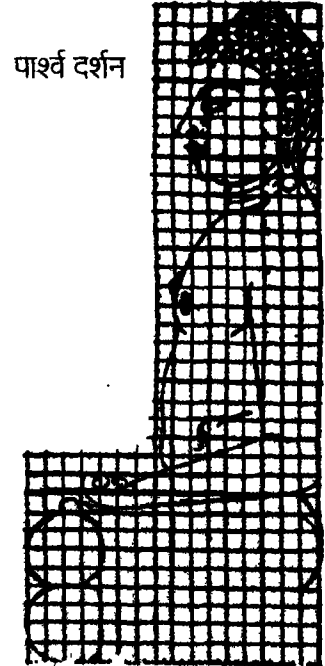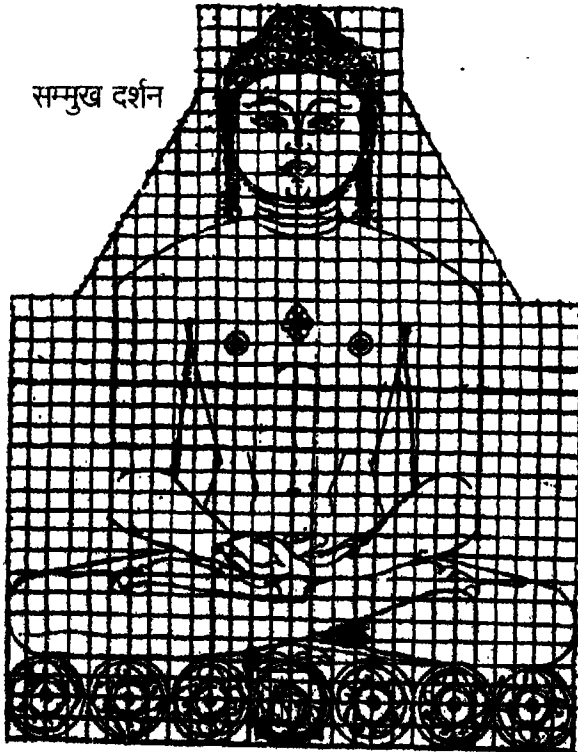
कमलाकृति वेदी पर स्थापित पद्मासन जिन प्रतिमा

पद्मासन प्रतिमा के प्रत्येक अंग का विस्तृत विवेचन

कुल भाग १०८ के अनुपात में मान

दोनों कानों के अंतराल में मुख की चौड़ाई	१४ भाग
गले की चौड़ाई	१० भाग
छाती प्रदेश	३६ भाग
कमर की चौड़ाई	१६ भाग
तनु पिण्ड की मोटाई (शरीर की मोटाई)	१६ भाग
कान की ऊंचाई	१० भाग
चौड़ाई	३ भाग
कान की लोलक	२,१/२ भाग नीची
कान का आधार	१ भाग

केशान्त तक मस्तक के बराबर अर्थात् नयन रेखा के समानान्तर ऊंचा कान बनाना चाहिये।

नयन

नासिका की शिखा के मध्य गर्भसूत्र से १-१ भाग दूर आंख रखें।

आंख की लम्बाई	४ भाग
आंख की काली कीकी	१ भाग
आंख की भृकुटी	२ भाग
आंख की नीचे का कपोल भाग	६ भाग

नासिका एवं ओंठ

चौड़ाई	३ भाग
ऊंचाई	२ भाग
अग्रभाग की मोटाई	१ भाग
नाक की शिखा	१/२ भाग
ओंठ की लम्बाई	५ भाग
ओंठ की चौड़ाई	१ भाग

स्तन वक्षस्थल

ब्रह्मसूत्र* के मध्य में छाती में ५ भाग ऊंचा, ४ भाग चौड़ा श्रीवत्स करें -

गोलस्तन की चौड़ाई	१,१/२ भाग
नाभि की गहराई	१ भाग
नाभि की चौड़ाई	१ भाग
स्तन एवं कोख का अंतर	५ भाग
मुसल (स्कन्ध)	८ भाग
कुहनी	७ भाग
मणिबंध	४ भाग
जंघा	१२ भाग
जानु (घुटना)	८ भाग
पैर की एड़ी	४ भाग
स्तनसूत्र से नीचे के भाग में भुजा	१२ भाग
स्तन सूत्र से ऊपर स्कन्ध	६ भाग

नाभि स्कन्ध तथा केशांत भाग गोल बनाये-

हाथ और पैर का अन्तर	१ भाग
गोद की लम्बाई	९ भाग
गोद की चौड़ाई	४ भाग
कुहनी से कुक्षी का अंतर	३ भाग
पलांटी से जल निकलने का मार्ग की ऊंचाई	२ भाग
पलांटी से जल निकलने का मार्ग की चौड़ाई	३ भाग

ब्रह्म सूत्र* (मध्यगर्भ सूत्र) से पिण्डी तक के अवयवों के अर्धभाग

गला	-	६ भाग
कान	-	१० भाग
शिखा	-	२ भाग
कपाल	-	२ भाग
दाढ़ी	-	२ भाग
भुजा के ऊपर की भुज संधि-		७ भाग
पैर	-	८ भाग

---

*ब्रह्मसूत्र - जो सूत्र प्रतिमा के मध्य गर्भ भाग से लिया जाये उसे ब्रह्मसूत्र कहते हैं। यह शिखा, नाक, श्रीवत्स और नाभि के बराबर मध्य में आता है।

दोनों घुटनों के बीच में एक तिरछा सूत्र रखें तथा नाभि से पैर के कंकण के ६ भाग तक एक सीधा समसूत्र तिरछे सूत्र तक रखें। इस समसूत्र का प्रमाण -

पैरों से कंकण तक	१४ भाग
पैरों से पिंडी तक	१६ भाग
पैरों से जानु तक	१८ भाग होता है

दोनों परस्पर घुटने तक एक तिरछा सूत्र रखा जाये तो यह नाभि से नीचे १८ भाग दूर रहता है।

चरण के मध्य भाग की रेखा (अर्थात् एड़ी से मध्य अंगुली तक)	१५ भाग
एड़ी से अंगूठे तक	१६ भाग
एड़ी से छोटी अंगुली तक	१४ भाग
मध्य की अंगुली की लम्बाई	५ भाग
तर्जनी तथा अनामिका	४-४ भाग
छोटी अंगुली	३ भाग
अंगूठा	३ भाग
अंगुलियों के नख	१ भाग
अंगूठे के साथ करतल पट की चौड़ाई	७ भाग
चरण की लम्बाई	१६ भाग
चरण की चौड़ाई	८ भाग
चरण की मोटाई (एड़ी से पैर की गांठ तक)	४ भाग
हथेली के मध्य भाग से मध्य की लम्बी अंगुली तक	९ भाग
हथेली के मध्य भाग से अनामिका की लम्बी अंगुली तक	८ भाग
हथेली के मध्य भाग से तर्जनी की लम्बी अंगुली तक	८ भाग
हथेली के मध्य भाग से कनिष्ठ की लम्बी अंगुली तक	६ भाग
मध्य की बड़ी अंगुली की लम्बाई	५ भाग
तर्जनी एवं अनामिका अंगुली की लम्बाई	४-४ भाग
अंगूठा की लम्बाई	३ भाग
अंगुलियों के नख	१ भाग
अंगूठे से करतलपट की चौड़ाई	७ भाग
गले की ऊंचाई	३ भाग
गले तथा कान का अंतराल	१,१/२ चौड़ा भाग
गले तथा कान का अंतराल	३ ऊंचा भाग
लंगोट (अंचलिका) (श्वे. प्रतिमा में)	८ चौड़ा भाग
लंगोट लम्बाई गादी के मुख तक	
केशांत से शिखा की ऊंचाई	५ भाग
गादी की ऊंचाई	८ भाग

कायोत्सर्ग प्रतिमा का मान

१. वसुनंदि श्रावकाचार के अनुरूप

मुख की ऊंचाई	१२ भाग
गला की ऊंचाई	४ भाग
गले से हृदय तक का अंतर	१२ भाग
हृदय से नाभि तक का अंतर	१२ भाग
नाभि से लिंग तक का अंतर	१२ भाग
लिंग से जानु तक का अंतर	२४ भाग
जानु से गुल्फ तक का अंतर	२४ भाग
गुल्फ से पैर के तल तक	४ भाग
	१०८ भाग

मुख की चौड़ाई १२ भाग तथा मुख की केशांत तक लम्बाई १२ भाग इसमें ललाट ४ भाग, नासिका ४ भाग, मुख से दाढ़ी, भाग केशस्थान, ५ भाग (शिखा २ भाग ऊंची तथा केश स्थान ३ भाग)

२. वत्थुसार के अनुरूप

ललाट	४ भाग	गुह्य से जानु तक	२४ भाग
नासिका	५ भाग	घुटना	४ भाग
मुख	४ भाग	घुटने से पैर की गांठ	२४ भाग
गर्दन	३ भाग		
गले से हृदय	१२ भाग	चरणताल	४ भाग
हृदय से नाभि	१२ भाग	नाभि से गुह्य	१२ भाग

कुल - १०८ भाग

जानु - घुटना

गुल्फ- पैर का टखना या गांठ

३. कायोत्सर्ग प्रतिमा का मान*

कायोत्सर्ग प्रतिमा ९ एवं १० ताल दोनों प्रमाणों में बनायी जाती है। उनके मान इस प्रकार है। यदि छोटी प्रतिमा में बनाना हो तो भी अनुपात यही रखें :-

	९ ताल	१० ताल
ललाट	४ इंच/अंगुल	४ इंच/अंगुल
नासिका	४ इंच/अंगुल	४ इंच/अंगुल
मुख	४ इंच/अंगुल	४, १/२ इंच/अंगुल
ग्रीवा (गला)	४ इंच/अंगुल	४ इंच/अंगुल
ग्रीवा से हृदय तक	१२ इंच/अंगुल	१३, १/२ इंच/अंगुल
हृदय से नाभि	१२ इंच/अंगुल	१३, १/२ इंच/अंगुल
नाभि से गुह्य स्थान	१२ इंच/अंगुल	१३, १/२ इंच/अंगुल
गुह्य स्थान से घुटना के ऊपर	२४ इंच/अंगुल	२७ इंच/अंगुल
घुटना	४ इंच/अंगुल	४ इंच/अंगुल
घुटना के नीचे से गांठ तक	२४ इंच/अंगुल	२७ इंच/अंगुल
गांठ से पैर के	४ इंच/अंगुल	४ इंच/अंगुल
दोनों पैरों के बीच तले तक	४ इंच/अगुल	
	१०८ इंच (९ ताल)	१२० इंच (१० ताल)

---

* आचार्य जयसेन प्रतिष्ठा पाठ के अनुरूप

मन्दिर के अनुरूप पद्मासन एवं खड्गासन प्रतिमा का मान *

सारणी

मन्दिर का मान		प्रतिमा का मान पद्मासन		प्रतिमा का मान खड्गासन	
गज	फुट	ग. अं.	इंच	ग. अं.	इंच
१	२	०-६	६	०-११	११
२	४	०-१२	१२	०-२१	२१
३	६	०-१८	१८	१-०७	३१
४	८	१-०	२४	१-१७	४१
५	१०	१-३	२७	१-१७	४१
६	१२	१-६	३०	१-२१	४५
७	१४	१-९	३३	१-२३	४७
८	१६	१-१२	३६	२-१	४९
९	१८	१-१५	३९	२-३	५१
१०	२०	१-१८	४२	२-५	५३
२०	४०	२-४	५२	२-१५	६३
३०	६०	२-१४	६२	३-१	७३
४०	८०	३-०	७२	३-११	८३
५०	१००	३-१०	८२	३-२१	९३

---

* (प्रासाद मंजरी के मतानुसार)

मन्दिर के अनुरूप पद्मासन एवं खड्गासन प्रतिमा का मान *

प्रासाद का		पद्मासन		खड्गासन	
गज	फुट	ग. अं.	इंच	ग. अं.	इंच
१	२	०-६	६	-११	११
२	४	०- १२	१२	-२२	२२
३	६	०- १८	१८	१-७	३१
४	८	१-०	२४	१-१७	४१
५	१०	१-३	२७	१-१९	४३
६	१२	१-६	३०	१-२१	४५
७	१४	१-९	३३	१-२३	४७
८	१६	१-१२	३६	२-१	४९
९	१८	१-१५	३९	२-३	५१
१०	२०	१-१८	४२	२-५	५३
२०	४०	२-४	५२	२-१९	६७
३०	६०	२-१४	६२	३-१	७३
४०	८०	३-०	७२	३-११	८३
५०	१००	३-१०	८२	३-२१	९३

---

* भारतीय शिल्प संहिता
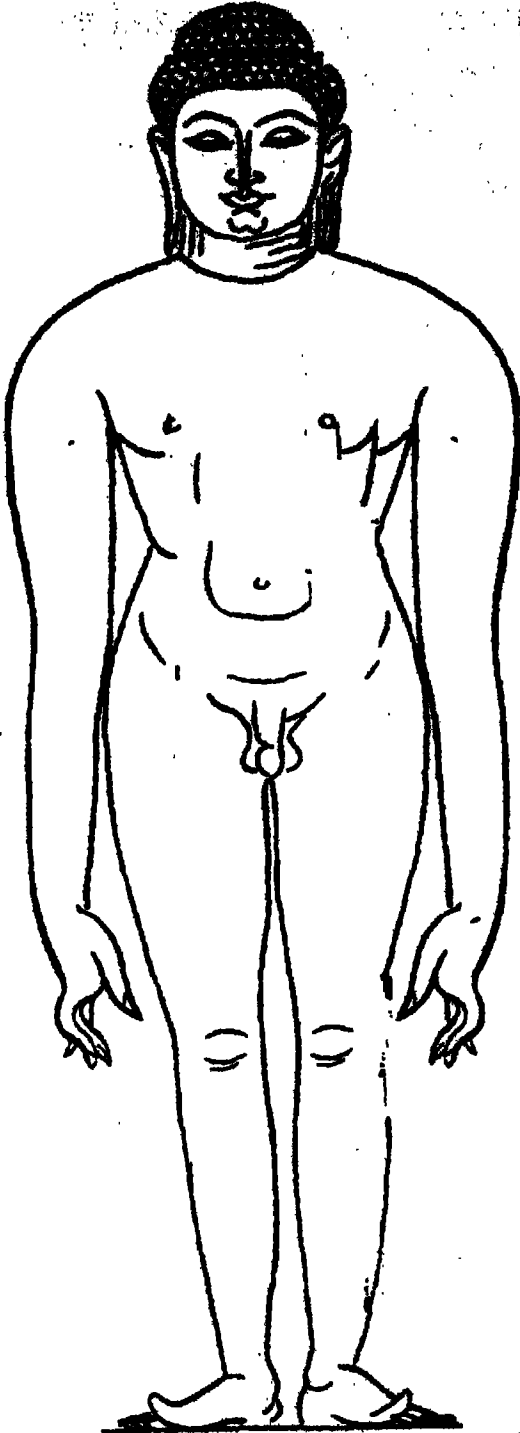
नव ताल कायोत्सर्ग जिनप्रतिमा
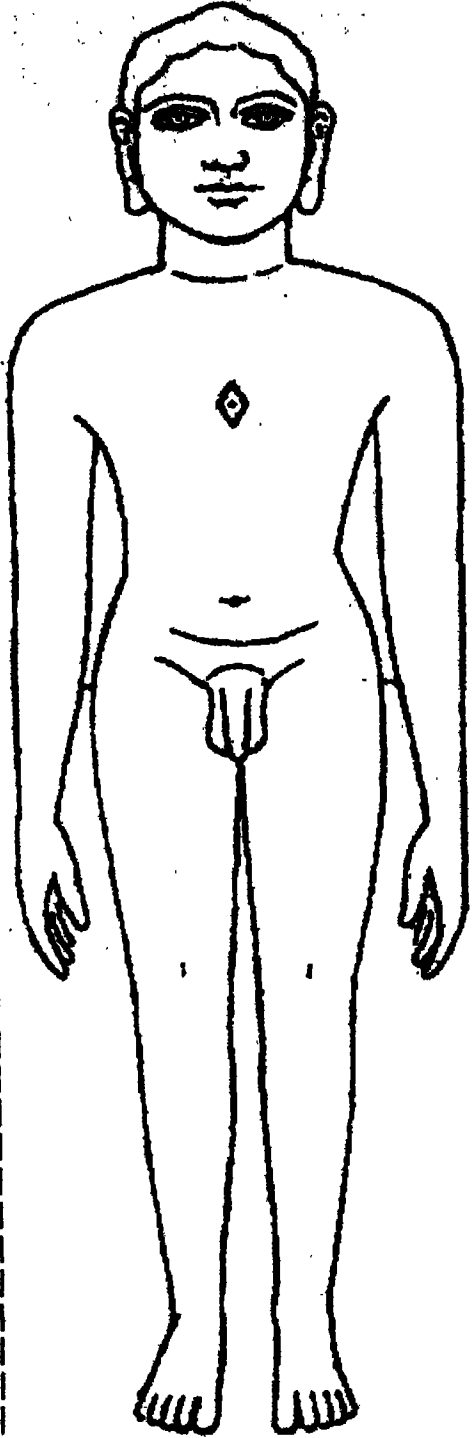
दस ताल कायोत्सर्ग जिनप्रतिमा

कायोत्सर्ग प्रतिमा के मान का विस्तृत विवरण

९ ताल = १०८ भाग की प्रतिमा का माप

मस्तक का माप

१. मस्तक के केशों से लेकर ठोढ़ी तक १२ भाग प्रमाण ऊंचा तथा इतना ही चौड़ा मुख करें। उसमें १ ताल अर्थात् ४ भाग ललाट, ४ भाग नासिका, ४ भाग मुख और ठोढ़ी करें। ललाट ८ भाग चौड़ा तथा ४ भाग ऊंचा करें। अष्टमी के चन्द्रमा के समान ललाट करें।
२. ललाट के ऊपर उष्णीश चोटी तक ५ भाग प्रमाण केश करें।
३. उसके ऊपर २ भाग प्रमाण किंचित ऊंची गोल चोटी रखें।
४. चोटी से ग्रीवा के पिछले भाग तक ५ भाग प्रमाण केश करें अर्थात् ललाट से चोटी तक १२ भाग रखें। पीछे केश से चोटी तक १२ भाग प्रमाण रखें।
५. मस्तक के उभय पार्श्वों में ४-४ भाग प्रमाण चौड़े (धनुषाकार मध्य में मोटे, दोनों ओर छोटे) शंख नाम के दो हाड़ करें।
६. ललाट के ४ भाग नीचे तथा ४१/२ लम्बे दोनों भंवारे (भौंह) करें। आदि में १, १/२ भाग चौड़ा अन्त में १/४ भाग चौड़ा करें।

नेत्र का माप

१. ३ भाग प्रमाण लम्बी नेत्रों की सफेदी कमल पुष्प दल के समान करें।
२. सफेदी के मध्य में १ भाग श्याम तारा करें।
३. तारा के मध्य में १/३ भाग गोल छोटी श्याम तारिका करें।
४. भृकुटी के मध्य से लेकर नीचे की ओर बाफुणी (ऊपरी पलक) तक ३ भाग आंखों की चौड़ाई करें।

नासिका भाग का माप

१. नासिका के मूल में २ भाग दोनों नेत्रों का अंतराल करें।
२. ऊपर नीचे के दोनों ओंठ २-२ भाग प्रमाण लम्बे तथा १-१ भाग ऊंचे (मोटे) करें। ४ भाग मुख का खुलता भाग रखें। मुख के मध्य में २ भाग ओंठों को खुला करें। १-१ भाग दोनों बगलें मिली हुई करें।
३. नासिका के नीचे और ऊपर के ओंठ के मध्य १/२ भाग लम्बी १/३ भाग चौड़ी नाली करें १ भाग लंबी १/२ भाग मोटी सृक्किणई (ओंठों की बायीं दायीं बगलें) करें।
४. २ भाग मोटा हनु (गाल के ऊपर के समीप का हाड़) करें।
५. हनु के मूल से चिबुक (गालों के नीचे काम के पास तक का हाड़) का अन्तराल ८ भाग करें।
६. कान ४ भाग लम्बे २ भाग चौड़े करें। ४ भाग पास (कान के मध्यवर्ती कड़ी नस के आगे परनाली

रुप खाल) करें। पास के ऊपर की वर्तिका (गोट) १/४ भाग करें।

कर्ण भाग का माप

१. १/२ भाग कर्ण छिद्र मध्य में यवनलिका के समान करें।

२. ४, १/२ भाग नेत्र और कर्ण का अंतराल करें।

३. दोनों कानों का अंतराल १८ भाग पीछे तथा १४ भाग सामने हो।

४. इस प्रकार कानों के समीप मस्तक की परिधि ३२ भाग तथा ऊपर के मस्तक की परिधि १२ भाग होना चाहिये।

बाहु भाग का माप

१. हाथ की कोहनी का विस्तार १६/३ भाग तथा परिधि १६ भाग रखें।

२. कोहनी से पौंचा तक चूड़ा उतार से बाहु करें।

३. भुजा का मध्य भाग १३/३ भाग तथा परिधि में १४ भाग करें।

४. पौंचे का विस्तार ४ भाग तथा परिधि १२ भाग करें।

५. पौंचे से मध्यम अंगुली तक १२ भाग करें।

६. मध्यम अंगुली ५ भाग करें।

७. मध्यम अंगुली से १/२ - १/२ पर्व कम तर्जनी तथा अनामिका अंगुली करें।

८. अनामिका से १ पर्व कम कनिष्ठिका अंगुली करें।

९. पौंचे से कनिष्ठिका तक ५ भाग अंतराल करें।

१०. तर्जनी और मध्यमा के प्रमाण से कनिष्ठिका की मोटाई १/२ भाग कम करें। अंगुष्ठ में २ पर्व करें। शेष अंगुलियों में ३-३ पर्व करें।

११. अंगुष्ठ की परिधि ४ भाग रखें।

१२. १/२ पर्व के बराबर पांचों अंगुलियों में नख करें।

१३. हथेली ७ भाग लम्बी ५ भाग चौड़ी करें।

१४. हथेली की मध्य परिधि १२ भाग करें।

१५. अंगुष्ठ मूल तथा तर्जनी के मूल का अन्तराल २ भाग करें।

१६. भुजा गोल संधि जोड़ से मिली, गोड़ा तक लम्बी करें।

१७. अंगुलियों को मिलापयुक्त स्निग्ध, ललित, उपचय, संयुक्त, शंख, चक्र, सूर्य, कमल आदि उत्तम चिन्हों से संयुक्त करें।

वक्ष भाग का माप

१. वक्षस्थल २४ भाग चौड़ा करें।

२. पीठ सहित वक्षस्थल की परिधि ५६ भाग रखें।

३. वक्षस्थल के मध्य श्रीवत्स का चिन्ह बनायें।

४. मय भुजा के वक्षस्थल ३६ भाग करें।

५. दोनों स्तनों के मध्य अंतराल १२ भाग बनायें
६. स्तनों की चूचियां २ भाग वृत्ताकार बनायें।
७. चूंचियों के मध्य में १/४ भाग वीटलियां बनायें।
८. वक्षस्थल से नाभि तक १२ भाग अंतराल बनायें।

उदर भाग का माप

१. वक्षस्थल से नाभि के मध्य का भाग उदर कहलाता है।
२. नाभि का मुख १ भाग चौड़ा हो।
३. नाभि दक्षिणावर्त रुप में गोल मनोहर शंख के मध्य समान करें।
४. नाभि के मध्य से लेकर लिंग के मूल तक ८ भाग पेडू करें।
५. पेडू में ८ रेखाएं बनाएं।
६. कटि १८ भाग चौड़ी बनायें।
७. कटि की परिधि ४८ भाग बनायें।
८. तिकूणा (बैठक का हाड़) ८ भाग चौड़ा बनायें।
९. दोनों कूल्हे ६ भाग गोल बनायें
१०. स्कन्ध के सूत से गुदा तक ३६ भाग लम्बा तथा १/२ भाग मोटा रीढ़ का हाड़ रखे।
११. ४ भाग लम्बा लिंग रखें। मूल में २ भाग मोटा मध्य में १ भाग तथा अंत में १/४ भाग मोटा रखें। सर्वत्र मोटाई से तिगुनी परिधि रखें।
१२. दोनों पोतों को आम की गुठली के समान चढ़ाव उतार रुप में ५-५ भाग लम्बे ४ भाग चौड़े पुष्ट रुप में बनायें।

कमर के नीचे का माप

१. दोनों जांघे २४- २४ भाग पुष्ट बनायें।
२. दोनों जांघे मूल में ११- ११ भाग, मध्य में ९-९ भाग अंत में ७-७ भाग रखें। इनकी परिधि सर्वत्र अपनी मोटाई से तिगुनी होना चाहिये।
३. जांघों से नीचे तथा पीड़ियों के ऊपर दोनों घुटने ८ भाग लम्बे, ४ भाग चौड़े करें।
४. घुटने से नीचे टिकुन्या तक २४- २४ भाग दोनों पीड़ियां बनायें। दोनों पीड़ियां मूल में ७-७ भाग,
५. मध्य में ६-६ भाग अंत में १३/३ - १३/३ भाग रखें। परिधि मोटाई से तिगुनी रखें।
६. दोनों पगों की चारों टखनों को १-१ भाग करें। परिधि तिगुनी रखें।
७. दोनों पगों के चरण तल १४- १४ भाग लम्बे करें। टखना से अंगुष्ठ के अग्र भाग १२ भाग लम्बे करें
८. टखनों के पीछे एड़ी २ भाग करें।
९. एड़ी नीचे २ भाग बगल में कुछ कम मध्य में ऊंची गोल हो। परिधि ६ भाग हो। अंगुष्ठ ३ भाग लम्बा, मध्य में २ भाग, आदि अन्त में कुछ कम चौड़ा हो।

१०. (प्रथम अंगुली) प्रदेशिनी ३ भाग लम्बी हो।
११. मध्यमा इससे १/१६ भाग कम करें। २१५/१६
१२. अनामिका इससे १/८ भाग कम करें अर्थात् २, ७/८ भाग
१३. कनिष्ठिका इससे १/८ भाग कम करें अर्थात् २, ३/४ भाग
१४. चारों ही अंगुलियां १-१ भाग मोटी तथा तिगुनी परिधि की हो।
१५. अंगूठों में २-२ पर्व करें।
१६. अंगुलियों में ३-३ पर्व करें।
१७. अंगुष्ठ का नख १ भाग करें
१८. प्रदेशिनी का नख १/२ भाग करें। शेष अंगुलियों के नख अनुक्रम से कम करें।
१९. पादतली को एड़ी के पास ४-४ भाग
२०. मध्य में ५-५ भाग
२१. अंत में ६-६ भाग चौड़ी बनायें।
२२. शंख, चक्र, अंकुश, कमल, यव, छत्र आदि शुभ चिन्हों से संयुक्त चरण बनायें।

जिन मन्दिर में दोषयुक्त प्रतिमा का फल

प्रतिमा में दोष	फल
रौद्र रुप-	प्रतिमा कर्ता का मरण
कृश काय-	द्रव्य क्षय
हीनाधिक अंग-	स्वपर कष्टकारक
हीन अंगोपांग-	क्षय
अधिक अंग -	शिल्पी का नाश
दुर्बल अंग -	धनक्षय
अधिक मोटी -	धन क्षय
अधिक लम्बी -	धन क्षय
छोटा कद-	प्रतिमा कर्ता का मरण
तिरछी दृष्टि दायीं या बायीं ओर -	मूर्ति अपूजनीय, दृष्टिधन नाश, विरोध, भयोत्पत्ति, शिल्पकार एवं आचार्य का नाश
नीची दृष्टि-	पुत्र हानि, धन हानि, भय, पूजकों को हानि , विघ्नकारक
नेत्र रहित-	दृष्टि क्षय
खराब नेत्र -	दृष्टि नाश
अतिगाढ़ दृष्टि -	अशुभकारक
ऊर्ध्व दृष्टि-	राजा, राज्य, स्त्री, पुत्र नाश
स्तब्ध दृष्टि-	शोक, उद्वेग, संताप, धन क्षय
छोटा मुख-	शोभा एवं कांति क्षय
ऊर्ध्व मुख -	धन नाश
अधोमुख -	चिन्ताकारक
ऊंचे नीचे मुख-	परदेश गमन
टेढ़ी गरदन -	स्वदेश नाश
दीर्घ उदर-	रोगोत्पत्ति
कृश उदर-	अकाल
कृश हृदय-	उद्वेग, हृदय रोग, महोदर
नीचा कन्धा-	भ्रातृ मरण
लम्बी कांख -	इष्ट वियोग
लम्बी नाभि-	कुल क्षय
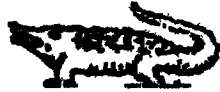
प्रतिमा में दोष	फल
पतली कमर-	प्रतिमा कर्ता का घात
छोटी कमर-	वाहन नाश
कमर के नीचे का भाग पतला-	शिल्पियों का सुख नाश
टेढ़ी नाक, मुख, पैर टेढ़े -	कुल नाश, भीषण दुख
हाथ, भाल, नख, मुख पतले-	कुल नाश
छोटे पांव-	पशुधन हानि
पतली जांघ-	राजा का नाश
छोटी जांघ -	पुत्र मित्र नाश
चपटी मूर्ति-	दुखदायक
हीन आसन -	त्रद्धि नाश
विषम आसन -	व्याधि
हंसती या रोती हुई -	प्रतिमा कर्ता की हानि
गर्व से भरे अंग वाली-	प्रतिमा कर्ता की हानि

तीर्थंकरों के चिन्ह

तीर्थंकर प्रतिमाओं का स्वरुप वीतराग तथा समान होता है। उनको पहचान करने के लिये उनके चिन्ह निर्धारित किये जाते हैं। इनका निर्धारण सौधर्म इन्द्र के द्वारा प्रभु के जन्माभिषेक के अवसर पर उनके दाहिने अंगूठे पर बने चिन्ह को देखकर किया जाता है। यही चिन्ह प्रभु की प्रतिमा की पादपीठ पर लगाया जाता है।

चौबीस तीर्थंकरों के चिन्हों की सारणी

क्रमांक	तीर्थंकर	चिन्ह (दिग.)*	चिन्ह (श्वे.)**
१.	ऋषभनाथ	बैल	बैल
२.	अजितनाथ	गज	गज
३.	संभवनाथ	अश्व	अश्व
४.	अभिनंदननाथ	वानर	वानर
५.	सुमतिनाथ	चकवा	क्रौंच पक्षी
६.	पद्मप्रभु	कमल	लाल कमल
७.	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक	स्वस्तिक

क्रमांक	तीर्थंकर	चिन्ह (दिग.)	चिन्ह (श्वे.)
८.	चन्द्रप्रभु	अर्द्धचन्द्र	अर्द्धचन्द्र
९.	सुविधिनाथ	मगर	मगर
१०.	शीतलनाथ	श्रीवृक्ष	श्रीवत्स
११.	श्रेयांसनाथ	गैंडा	खंगपक्षी
१२.	वासुपूज्य	भैंसा	भैंसा
१३.	विमलनाथ	शूकर	शूकर
१४.	अनंतनाथ	सेही	श्येनपक्षी
१५.	धर्मनाथ	वज्र	वज्र
१६.	शांतिनाथ	हरिण	हरिण

क्रमांक	तीर्थंकर	चिन्ह (दिग.)	चिन्ह (श्वे.)
१७.	कुंथुनाथ	बकरा	बकरा
१८.	अरहनाथ	मत्स्य	नन्द्यावर्त
१९.	मल्लिनाथ	कलश	कलश
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	कूर्म	कूर्म
२१.	नमिनाथ	उत्पल	उत्पल (नील कमल)
२२.	नेमिनाथ	शंख	शंख
२३.	पार्श्वनाथ	सर्प	सर्प
२४.	वर्धमान	सिंह	सिंह

*क्षेपक श्लोक - पूज्यपादाचार्य कृत ' निर्वाण भक्ति ',

**शि.र. १२ /७-८
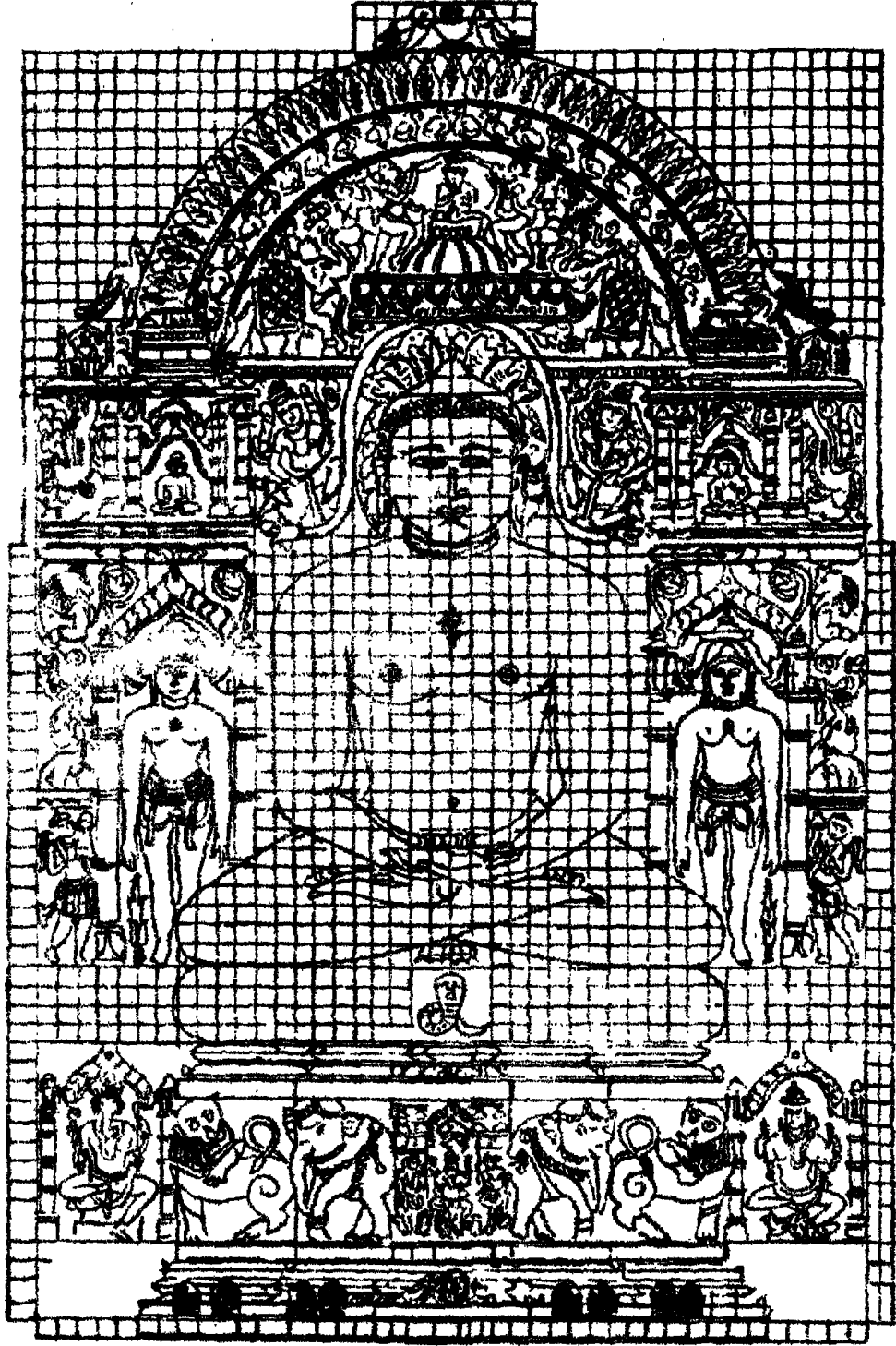
परिकर सहित तीर्थंकर प्रतिमा (श्वे.)
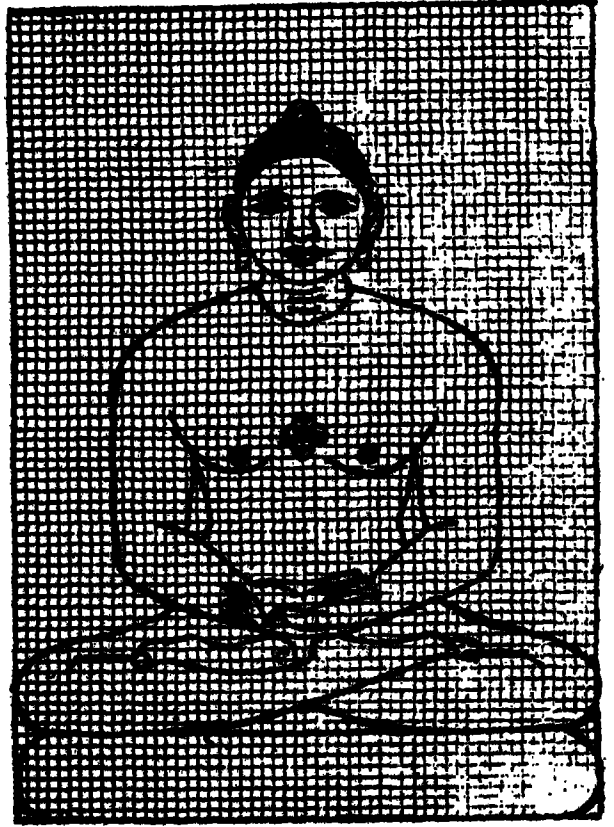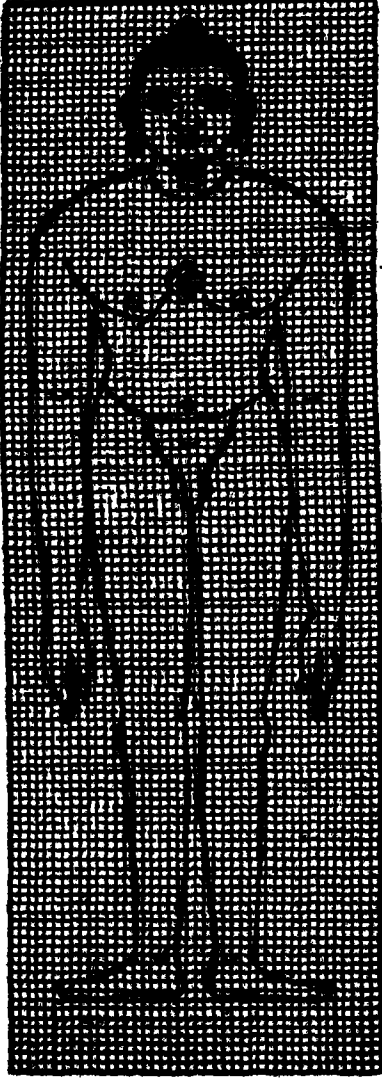
समचतुरस्र कायोत्सर्ग एवं पद्मासन जिन प्रतिमा

प्रशस्ति लेख

प्रतिमा के नीचे पीठ पर प्रशस्ति लेख उत्कीर्ण किया जाता है। यह इस बात को दर्शाता है कि प्रतिमा की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कब तथा किनके द्वारा की गई। समय-समय पर इस लेख की शैली में किंचित् परिर्वतन भी हुए हैं। यह लेख पुरातत्व संरक्षण तथा संस्कृति संरक्षण दोनों दृष्टियों से अत्यंत उपयोगी हैं।

सामान्य रीति के लेख का प्रारुप इस प्रकार है -

स्वस्ति श्री वीर निर्वाण संवत्सरे २५ ......तमे.......विक्रमाब्दे २०...........
तमे.........मासे.......तमे.......पक्षे.....तिथौ.......वासरे..................
मूलसंघे श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्दाचार्याम्नाये..................स्थाने
जिन बिम्ब प्रतिष्ठोत्सवे............दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८..................
सान्निध्ये प्रतिष्ठाचार्यत्वे............ इत्येतैः प्रतिष्ठापितमिदं जिन बिम्बं
सर्वलोकस्य कल्याणाय भवतु।

प्रतिष्ठित प्रतिमा की स्थापना

मन्दिर निर्माण के उपरांत उसमें प्रतिमा की स्थापना की जाती है। प्रतिमा को पंचकल्याण प्रतिष्ठा विधान से प्रतिष्ठित किया जाता है। उसके उपरांत उत्साहपूर्वक शुभ मुहूर्त में मंत्रोच्चार पूर्वक प्रतिमा को पीठिका पर विराजमान किया जाता है।

प्रतिमा के आकार का अवलोकन करके पहले से ही यह निर्णय कर लेना आवश्यक है कि प्रतिमा की प्रतिष्ठा पंचकल्याण मण्डप में की जाये अथवा मन्दिर में ही की जाये। यदि प्रतिमा का आकार इतना बड़ा हो कि उसे मुख्य द्वार से लिटाकर अथवा टेढ़ी करके भीतर लाना पड़े तो ऐसी स्थिति उचित नहीं है। ऐसी स्थिति में प्रतिमा पहले से ही वेदी पर स्थापित कर उसके पश्चात प्रतिष्ठा करानी चाहिये।

यदि मन्दिर का प्रमाण शास्त्रोक्त है तथा द्वार का प्रमाण भी अनुरुप है तो प्रतिमा आसानी से आ जायेगी। किन्तु पूर्व निर्मित मन्दिर में बड़ी प्रतिमा स्थापित करते समय उपरोक्त निर्देश का अनुकरण आवश्यक है।

जिस समय प्रतिमा वेदी पर स्थापित की जाती है उस समय स्थापित की जाने वाली प्रतिमा का मुख नगर की ओर रखना चाहिये तथा पीठ वेदी की ओर रखना चाहिये। इसके विपरीत करने पर महान अनिष्ट होने की आशंका रहती है।

सिंहासन का स्वरुप

जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा सिंहासन में ही विराजमान करना चाहिये। सिंहासन में मध्यभाग में धर्मचक्र बनायें तथा बायें एवं दाहिने भाग में क्रमशः यक्षिणी एवं यक्ष की स्थापना करें। सिंहासन को गज एवं सिंह की आकृतियों से सुसज्जित करें। *

सिंहासन का विस्तृत विवरण

सिंहासन के दोनों ओर यक्ष यक्षिणी, दो सिंह, दो हाथी, दो चंवर धारी देव, मध्य में चक्रेश्वरी देवी बनायें। सिंहासन के मध्य की चक्रेश्वरी देवी गरुड़ वाहन पर आसीन हो तथा चतुर्भुजी स्वरुप वाली हों। उसकी ऊपर की दोनों भुजाओं में चक्र की स्थापना करें। नीचे की दाहिनी भुजा में वरदान हस्त हो। नीचे की बायीं भुजा में बिजौरे का फल हो। चक्रेश्वरी देवी के नीचे एक धर्मचक्र बनायें। धर्मचक्र के दोनों तरफ हिरण बनायें। गादी (पीठ) के मध्य में तीर्थंकर प्रभु का चिन्ह बनायें।**

सिंहासन का प्रमाण निम्न अनुपात में रखें

लम्बाई में मूर्ति से डेढ़ा
चौड़ाई में मूर्ति से आधा
मोटाई में मूर्ति से चौथाई

परिकर का प्रमाण

सिंहासन की लम्बाई के ४ भाग करें।

प्रत्येक यक्ष- यक्षिणी -	१४ - १४ भाग
दो सिंह	१२- १२ भाग
दो हाथी	१०- १० भाग
दो चंवर धारी	३- ३ भाग
चक्रेश्वरी देवी	६ भाग

	कुल - ८४ भाग

---

*सिंहासनं च जैनानां गज सिंह विभूषितम्।
मध्ये च धर्मचक्रं च तत्पार्श्वे यक्ष यक्षिणी ।। शि.र. ४/१५६
**चक्कधरी गरुडंका तस्साहे धम्मचक्क-उभयदिसं।
हरिणजुअं रमणीयं गद्दियमज्झम्मि जिणचिण्हं ।। व.सा. २/२८

सिंहासन पीठ की ऊंचाई

कणपीठ	४ भाग
छज्जा	२ भाग
हाथी	१२ भाग
कणी	२ भाग
अक्षरपट्टी	८ भाग

कुल - २८ भाग

परिकर के पार्श्व भाग का आकार

प्रतिमा की गद्दी के बराबर ८ भाग ऊंचाई में चंवरधारी / कायोत्सर्ग मुनि /

चंवरधारी देव	३१ भाग
तोरण से सिर तक	१२ भाग

कुल - ५१ भाग

परिकर के पार्श्व भाग का प्रमाण

थंभली समेत रुप –

थंभली	२-२ भाग
रुप	१२ भाग
वरालिका	६ भाग

----

२२ भाग चौड़ाई
१६ भाग मोटाई

चौड़ाई में परिकर के ऊपर के छत्र भाग (डउला / छत्रवटा) का स्वरुप

एक एक तरफ मध्य सूत्र से

आर्ध छत्र का भाग	१० भाग
कमलनाल	१ भाग
माला धारण करने वाले	१३ भाग
थंभली	२ भाग
वंसी / वीणा धारक	८ भाग

बैठी प्रतिमा का भाग

तिलक के मध्य में घंटा

थंभली	२ भाग
मगरमुख	६ भाग

----

४२ भाग x २ दोनों तरफ = ८४ भाग

ऊंचाई में डउला (मूर्ति के ऊपर का परिकर) का विभाजन

छत्र त्रय	१२ भाग
इसके ऊपर शंख धारक	८ भाग
इसके ऊपर वंशपत्र एवं लता	६ भाग
	------
	२६ भाग

ये छब्बीस भाग २४ भाग के ऊपर बनायें। कुल ५० भाग डउला की ऊंचाई

प्रतिमा के मस्तक के ऊपर

छत्र त्रय की चौड़ाई	२० भाग
बाहर निकलता हुआ भाग	१० भाग
	------
	३० भाग

भामंडल की मोटाई	८ भाग
भामंडल की चौड़ाई	२२ भाग
दोनों तरफ माला धारक इन्द्र	१६-१६ भाग
उनके ऊपर एक एक हाथी	१८-१८ भाग

उनके ऊपर हाथी पर बैठे हिरण गमेषी देव उनके सामने दुंदुभिवादक तथा मध्य में छत्र के ऊपर शंखवादक बनायें।

छत्रत्रय समेत डउला की मोटाई-

छत्रत्रय समेत डउला की मोटाई-प्रतिमा से आधी करें। पार्श्व में चंवर धारक अथवा कायोत्सर्गस्थ ध्यानस्थ प्रतिमा की दृष्टि मूलनायक प्रतिमा के स्तनसूत्र के बराबर रखें।

जिन प्रतिमा के परिकर के स्वरुप में अंतरण

जहां दो चंवरधारक हैं वहां दो कायोत्सर्गध्यानस्थ प्रतिमा बनायें। डउला में जहां वंश एवं वीणा धारक हैं वहां पद्मासनस्थ दो प्रतिमा बनायें। इस प्रकार उपरोक्त दो एवं एक - एक मूलनायक इस प्रकार पंच तीर्थ प्रतिमा बन जायेगी। यदि परिकर में पंचतीर्थ प्रतिमा बनाना हो तो चंवरधारक, वंशीधारक, वीणाधारक के स्थान पर उसी प्रमाण से ध्यानस्थ प्रतिमा बनायें तो यह भी पंचतीर्थ प्रतिमा बन जायेगी।

जिनेन्द्र प्रतिमाओं के विशेष लक्षण

जिन धर्म में चौबीस तीर्थकरों की प्रतिमाओं की आराधना पूजा की जाती है। सर्वप्रथम तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी युग के प्रथम तीर्थंकर थे। वे आयु एवं काया में भी सबसे बड़े थे। अतएव कलाकार अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त करने के लिए उनकी प्रतिमाओं को केशललायुक्त अथवा जटायुक्त बनाते हैं। सर्वत्र आदिनाथ स्वामी की प्रतिमाए जटाजूट से युक्त प्राप्त होती है। इसमें किसी भी प्रकार की विपरीतता नहीं हैं। जिन प्राचीन जैन प्रतिमाओं में ऐसे जूट पाये जाते हैं उन्हें आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा माना जाता हैं।

पार्श्वनाथ स्वामी पर कमठ का उपसर्ग एवं धरणेन्द्र पद्मावती नाग देव-युगलों के द्वारा उस उपसर्ग का निवारण जैन परम्परा की अलौकिक घटना है। इसकी स्मृति के निमित्त ही पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा में मस्तक के ऊपर फणावली का निर्माण किया जाता हैं। इन फणों की संख्या सामान्यतः सात, नौ, ग्यारह होती हैं। अनेकों स्थलों पर पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमाएं १००८ अथवा १०८ फणावली युक्त भी बनाई जाती हैं। बीजापुर (कर्नाटक) के सहस्रफणी पार्श्वनाथ की प्रतिमा विश्वविख्यात है।

सुपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा भी फणावली युक्त बनाई जाती है। किन्तु सामान्यतः सुपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा पांच फणों से युक्त होती हैं।

बाहुबली स्वामी की प्रतिमा केवल खड्गासन ही बनाई जाती है तथा इनके पांवों में लताएं बनाई जाती हैं। नीचे ब्राह्मी एवं सुन्दरी उनकी लताएं हटाती हुई प्रदर्शित की जाती हैं। श्रवणबेलगोल स्थित बाहुबली स्वामी की अलौकिक, सुन्दर विश्वविख्यात प्रतिमा के दर्शन कर सभी का मन शान्ति का अनुभव करता हैं।

भरत जी की प्रतिमा के नीचे नवनिधि, चौदह रत्न पार्श्व में दर्शाए जाते हैं। भरत जी को चक्रवर्ती पद की विभूतियां त्यागकर महाव्रत ग्रहण करने के एक अन्तर्मुहुर्त में ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया था। अतएव तुरंत त्यागी हुई विभूतियों के आभास के लिए उन्हें उनकी प्रतिमा के नीचे ही दर्शाया जाता है।

इस प्रकार के लक्षणों से युक्त प्रतिमाएं सर्वत्र मिलती हैं तथा इन विशेष लक्षणों से उनकी वीतरागता में कोई अन्तर नहीं आता है। भक्तों के भाव पूजन में विशेष रुपेण लगते हैं अतएव ऐसे लक्षणों से युक्त प्रतिमाएं पूज्य ही हैं। इसमे किसी प्रकार सन्देह नहीं रखना चाहिये।
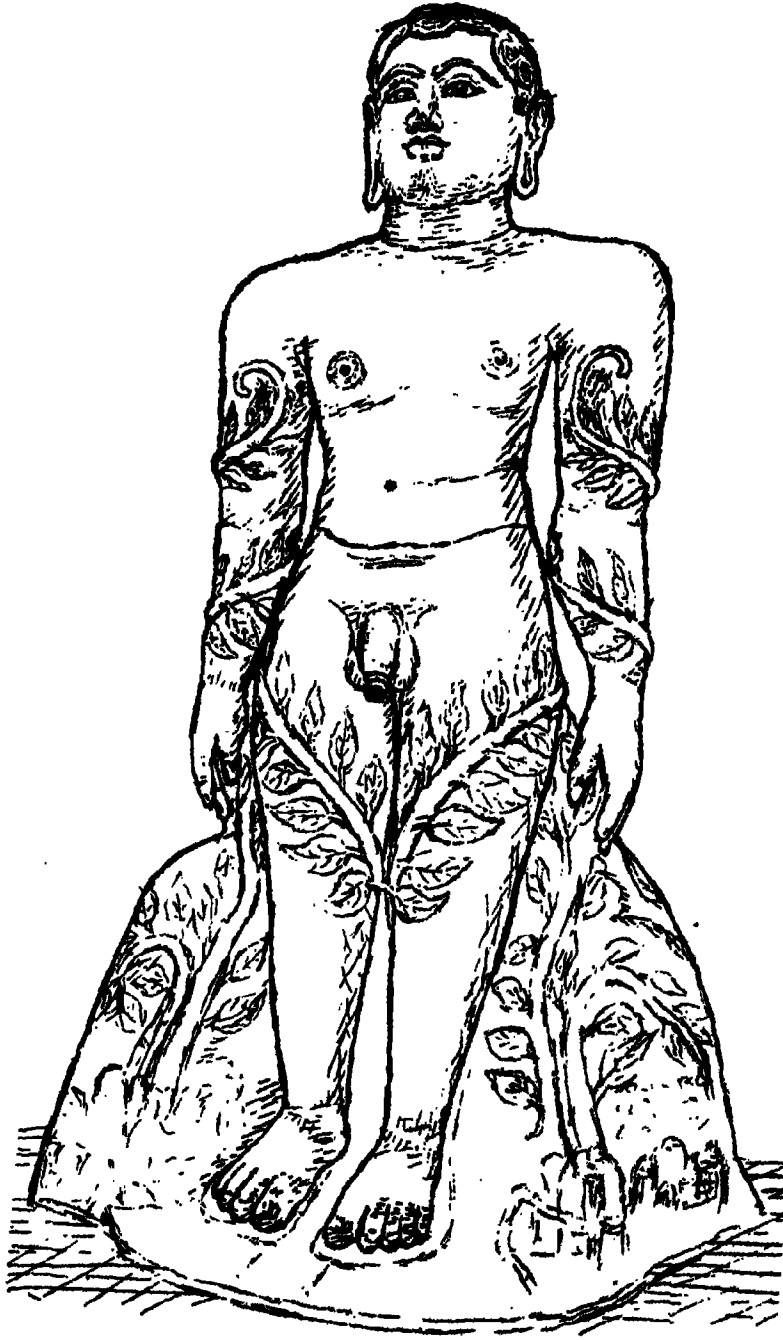
बाहुबली स्वामी की बेल लता से आवृत प्रतिमा

प्रातिहार्य

घातिया कर्मों का क्षय करने के उपरानत जब आत्मा में केवलज्ञान प्रकट होता है तब अतिशय पुण्य की महिमा से देवों द्वारा निर्मित अनेकानेक विशिष्ट महिमायें रची जाती है। समवशरण ऐसी ही विभूति है। भगवान के समीप आठ विशिष्ट मंगल रचनायें भगवान के वैभव में शोभा बढ़ाती हैं। इन्हें आठ प्रतिहार्य की संज्ञा दी जाती है। ये आठ प्रातिहार्य निम्नलिखित हैं* :-

१.	अशोक वृक्ष	२.	सिंहासन
३.	छत्र त्रय	४.	भामण्डल
५.	दिव्यध्वनि	६.	पुष्प वृक्ष
७.	चौंसठ चमर	८.	दुन्दुभि
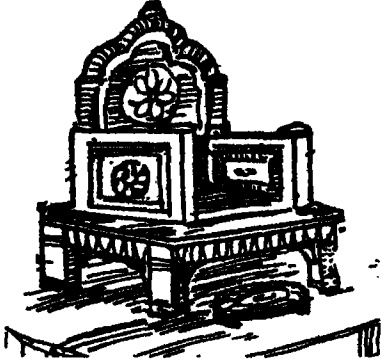
१- सिंहासन
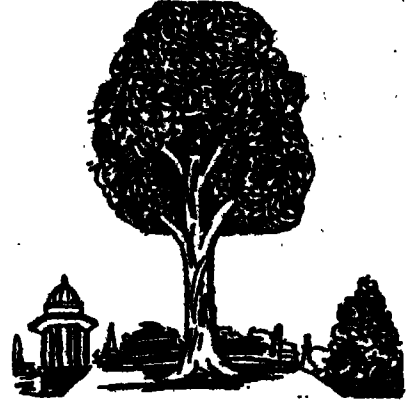
२- अशोक वृक्ष
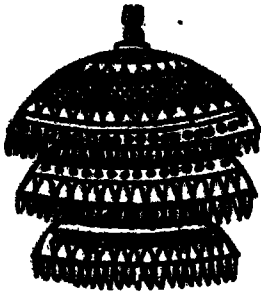
३- छत्र त्रय
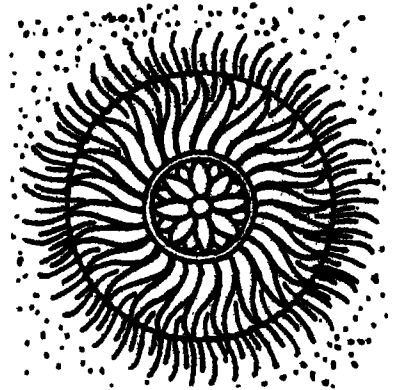
४- भामंडल

*जैन ज्ञान कोश मराठी ३/१०६

अन्यत्र इनका नामोल्लेख इस प्रकार भी है -

१. अशोक वृक्ष २. तीन छत्र ३. रत्न खचित सिंहासन ४. भक्तगणों से वेष्टित रहना ५.दुन्दुभि ६. पुष्पवृष्टि ७. प्रभामण्डल ८. चौंसठ चमर

ये सभी प्रतिहार्य तीर्थंकर प्रभु की धर्मसभा में रहते हैं। मन्दिर मूलतः तीर्थंकर की धर्मसभा का प्रतीक होता है अतः गर्भगृह में भी सिंहासन के साथ ही ये प्रातिहार्य निर्मित किये जाते हैं।*
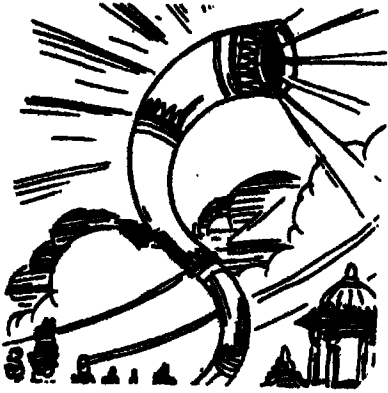
५- दिव्य ध्वनि

६- सुर पुष्प वृष्टि

७- चंवर

८- देव दुन्दुभि

*(ति.प./४/९१५-९२७) (ज.प./१३/१२२-१३०)

भामण्डल

जिन प्रतिमा के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल की उपस्थिति दर्शाने हेतु भामण्डल की स्थापना की जाती है।

भामण्डल की आकृति गोल ही रखना चाहिये। इसका आकार इस प्रकार रखें :-

प्रमाण - मस्तक के प्रमाण से दुगुना होना चाहिए।

मोटाई - पूरे सिंहासन के ८४ भाग करने पर उसके आठ भाग के तुल्य करें।

चौड़ाई - पूरे सिंहासन के ८४ भाग करने पर उसके बाइस भाग के तुल्य करें।

सभी प्रातिहार्य प्रतिमा के साथ ही बनाये जाते हैं। यदि प्रतिमा के पीछे पृथक से मूल्यवान धातु का रत्नजटित भामण्डल स्थापित करना हो तो भामण्डल का आकार पूर्ववत् ही रखें, मोटाई का प्रमाण कम किया जा सकता है।**

घण्टा अर्पण

अष्ट मंगल द्रव्यों को जिन मन्दिर में लगाना अत्यन्त आवश्यक है। घण्टा भी मंगल द्रव्य है। मन्दिर में मंगलध्वनि के लिये घण्टा एवं झालर लगाये जाते हैं। घण्टा एवं झालर का वादन एक विशिष्ट ध्वनि का उत्पादन करते हैं। इसकी ध्वनि जिनदर्शन को प्रेरित करती है। मन को प्रसन्न कर उपासक को पापों से दूर करती है। अन्य अमंगलकारी ध्वनियों का परिहार करती है।

जिन मन्दिर में घण्टे का उपयोग पूजा एवं अभिषेक के समय वादन के लिये किया जाता है। उपासक दर्शन करते समय भी इसका वादन करते हैं। शिखर से परावर्तित होकर आई हुई घण्टा ध्वनि की गूंज सारे वातावरण को आल्हादित एवं धर्ममय बनाती है। घण्टा अर्पण से व्यापक पुण्य फल की प्राप्ति के लिए आचार्यों ने निर्देश किया है।

घण्टा एवं झालर लोहे का न बनायें, पीतल का ही बनायें। झालर कांसे की भी बनाई जा सकती है। वरांग चरित्र में घण्टा दान करने से सुस्वर की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है। घण्टा लगाते समय ध्यान रखें कि इससे भगवान की दृष्टि अवरुद्ध न हो। साथ ही दर्शनार्थी को सिर में न टकराए।

घण्टा मुख्य प्रवेशद्वार के पास ही लगायें, ताकि दर्शनार्थी प्रवेश करते ही इसका वादन करें। मन्दिर में जो उपासक घण्टा लगवाते हैं वे सुर गति को प्राप्त कर आनन्द भोगते हैं। ऐसे श्रावक को स्वर दोष नहीं होता, सुस्वर की प्राप्ति होती है।*

---

*घंटाहिं घंटसद्दाउलेसु पवरच्छराणमज्झम्मि।
संकीउई सुरसंघाय सेविओ विभाणेसु।। वसुनन्दि श्रावकाचार ४८९।।
घण्टा तोरण दाम धूपघटकैः राजन्ति सन्मंगलैः
स्तोत्रैश्चित्तहरैर्महोत्सव शतैर्वादित्र संगीतकैः
पूजारम्भ महाभिषेक यजनैः पुण्योत्करैः सत्क्रियैः
श्री चैत्यायतनानि तानि कृतिनां कुर्वन्तु मंगलम्।९।। नवदेवतास्तोत्र

** छत्तत्तयवित्थारं वीसंगुल निग्गमेण दह-भायं। भामंडलवित्थारं बावीसं अट्ठ पइसारं।।व.सा. २/३५

अष्ट मंगलद्रव्य

तीर्थंकर प्रभु के बिम्ब के समीप अष्ट मंगल द्रव्यों को विराजमान किया जाता है। समवशरण में ये प्रत्येक १०८ की संख्या में होते हैं। वेदी पर मूलनायक प्रतिमा के समक्ष इनको स्थापित किया जाता है। तीर्थंकर प्रभु के समीपस्थ होने के कारण इन अष्टद्रव्यों को मंगल द्रव्य कहा जाता है। इनके नाम इस प्रकार है *:-

१.	झारी	२.	कलश	३.	दर्पण
४.	चंवर	५.	ध्वजा	६.	व्यजन
७.	छत्र	८.	सुप्रतिष्ठ		

इनके अतिरिक्त घण्टा शंख, धूपघट, दीप, कूर्च, पाटलिका, झांझ, मंजीरा आदि भी मंगल स्वरुप प्रतिमा के उपकरण की भाँति रखे जाते हैं।

१- मंगल कलश

२- भृंगार (झारी)
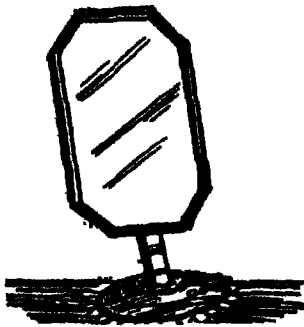
३- दर्पण
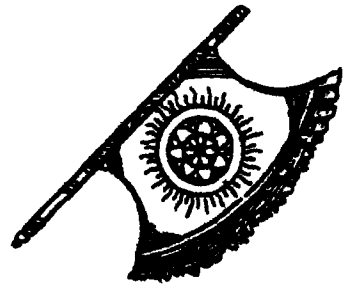
४- व्यजन (पंखा)

*ते सव्वे उवयरणा घंटापहुदीओ तह, व दिव्वाणिं।
मंगल दव्वाणि पुढं जिणिंद पासेसु रेहंति ॥ ति.प. ४/१८७९
भिंगार कलस दप्पण चामर धय वियण छत्त सुपयट्ठा।
अट्ठुत्तर सयसंखा पत्तेकं मंगला तेसुं ॥ ति.प.४/१८८०
अतिरिक्त संदर्भ, ज.प./१३/११२, त्रि.सा./९८९, द.पा./टी.३५/२९/५,ह.पु./५/३६४-३६५
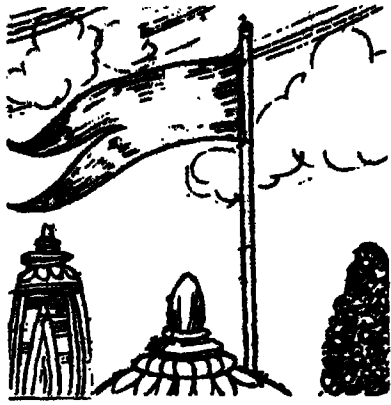
५ - ध्वजा

६ - चंवर
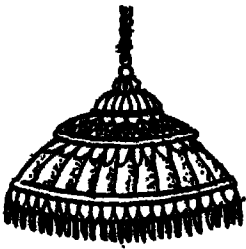
७ - छत्र
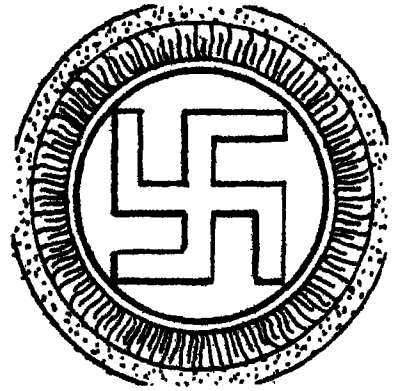
८ - स्वस्तिक

जैनाचार्यों ने अनेकों स्थलों पर मन्दिर में मंगल द्रव्य एवं उपकरणादि दान करने को असीम पुण्यार्जन का हेतु बताया है।

ध्वजा एवं छत्र जिनमन्दिर में अर्पित करना राज्यपद प्राप्ति का निमित्त बनता है। छत्र दान करने से मनुष्य एक छत्र राज्य का अधिकारी होता है। चंवरों के दान से मनुष्य वैभव को प्रापत करता है तथा सेवकों द्वारा चंवरादि से सेवित होता है। जिन मन्दिर में भामण्डल अर्पित करने से असीम सुख शान्ति की प्राप्ति होती है तथा प्रभाव में वृद्धि होती है। सावयधम्मदोहा/२००/आ.योगीन्दुदेव

छत्र अर्पण करते समय अधिकतर यह विकल्प उठता है कि ऊपर बड़ा छत्र लगायें या छोटा। सबसे ऊपर सबसे छोटा छत्र लगायें। मध्य में मध्यमाकार छत्र लगायें तथा सबसे नीचे सबसे बड़ा छत्र लगाना चाहिये।
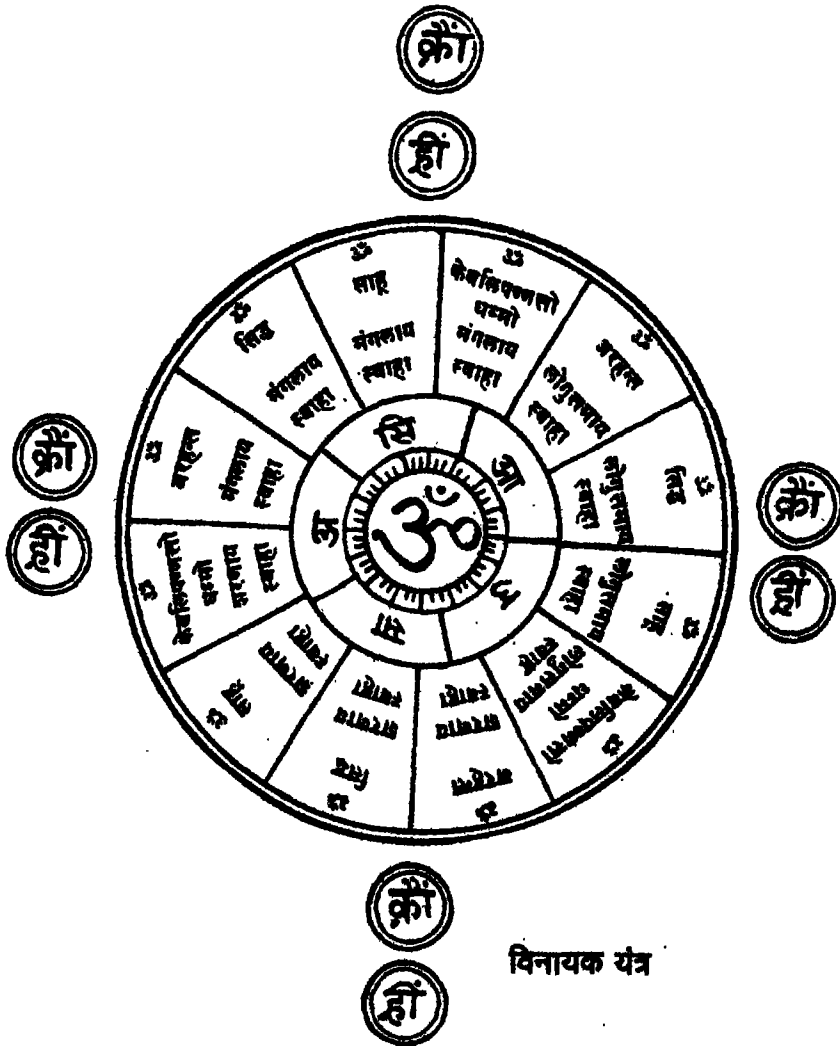
विनायक यंत्र

यंत्र

सभी भारतीय धर्म शास्त्रों में यंत्र मंत्र का विशेष महत्व बताया गया है। बीजाक्षरों का नियमित पाठ मंत्र कहलाता है। इसी प्रकार के बीजाक्षरों अथवा अंकों को एक निश्चित रीति से विशिष्ट आकृति अथवा कोष्ठक में भरा जाता है। ये यंत्र कहलाते हैं। मंत्रो से भी अधिक यंत्रों का प्रभाव होता है। मंत्रों को सिद्ध करके यंत्रों का निर्माण किया जाता है। इन यंत्रों में अलौकिक शक्ति मानी जाती है। जैन धर्म में भी इनका बड़ा महत्व है। गर्भगृह में भगवान की प्रतिमा के साथ विशिष्ट यंत्रों को रखा जाता है।

यंत्र का निर्माण धातु के पत्र पर किया जाता है। भोजपत्र पर भी यंत्र लिखे जाते हैं। मन्दिरों में धातु के यंत्रों का ही प्रयोग सामान्यतः किया जाता है। कुछ प्रमुख यंत्रों के नाम इस प्रकार हैं :-

रत्नत्रय, षोडशकारण, दशलक्षण, भक्तामर, विनायक, ऋषिमंडल, मातृका इत्यादि।

यन्त्र स्थापना के लिए निम्न लिखित सावधानियां अवश्य रखना चाहिये:-

१. मूर्ति के ठीक सामने यंत्र न रखें।
२. यंत्र इस प्रकार रखें कि मूर्ति का चिन्ह न ढके।
३. यंत्र का प्रयोग भामण्डल के स्थान पर न करें।
४. यंत्र उल्टा स्थापित न करें।
५. यंत्र विधिपूर्वक प्रतिष्ठित हों।
६. यंत्र का प्रतिमा की भांति ही पूजा अभिषेक नियमित रुपेण करें।
७. यंत्र विषम संख्या में ही रखें।
८. यंत्र को सिंहासन पर रखकर छत्र लगा सकते हैं।
९. यंत्र किसी सुयोग्य आचार्य या गुरु के निर्देशन में ही प्राप्त करें तथा स्थापित करें।
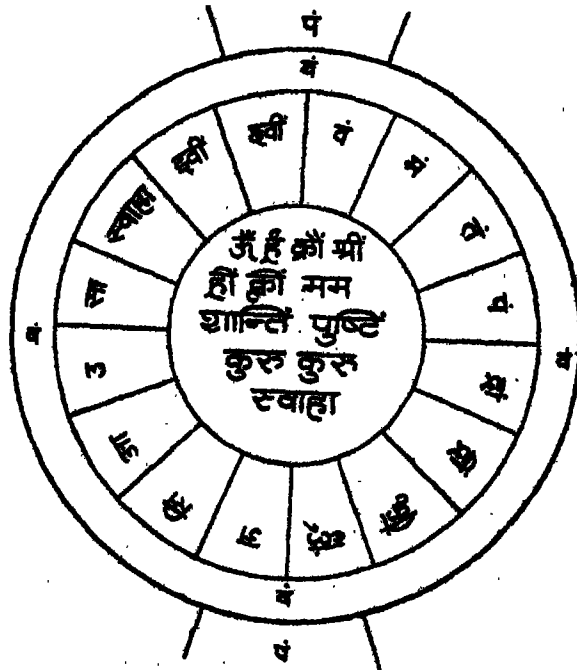
यंत्रेश यंत्र

मातृका यंत्र
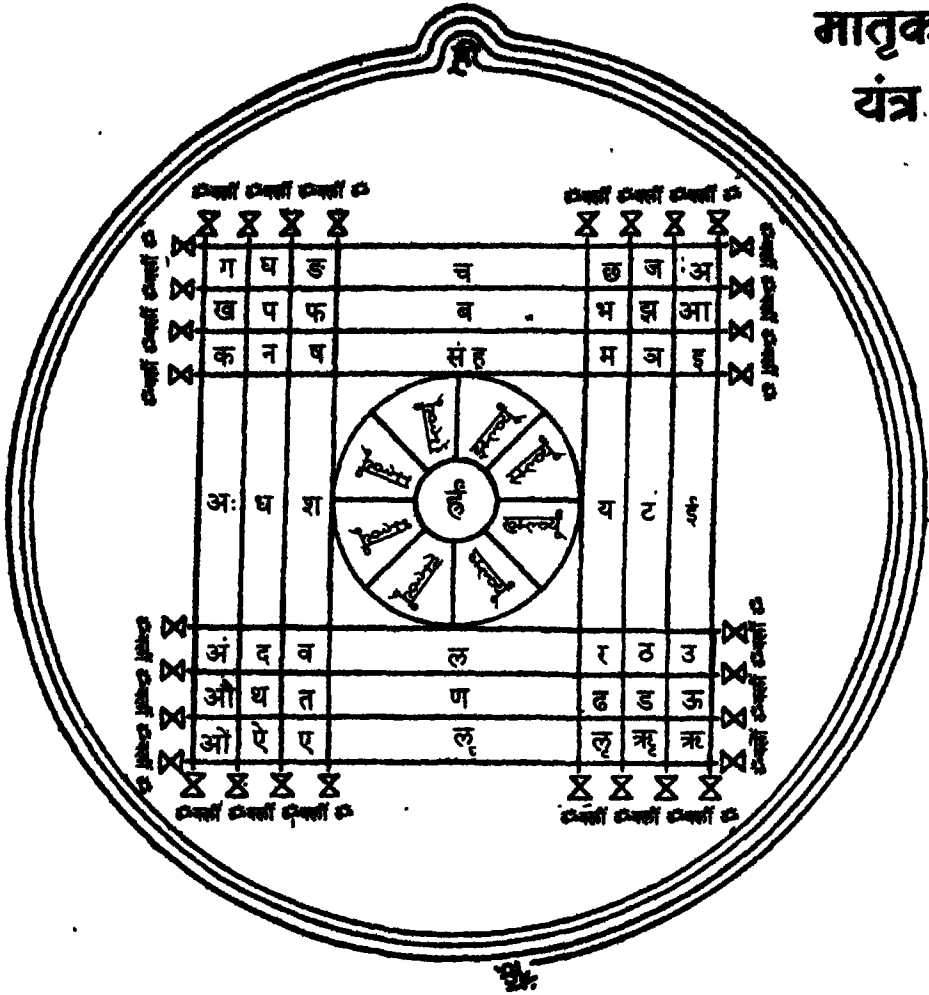
<table>
<tr><td>ॐ नमो</td><td colspan="3">क ख ग घ ङ</td><td>च छ ज झ ञ</td></tr>
<tr><td rowspan="3">श ष स ह</td><td>अं अः</td><td>अ आ</td><td>इ ई</td><td rowspan="3">ट ठ ड ढ ण</td></tr>
<tr><td>ओ औ</td><td>ह्रीं</td><td>उ ऊ</td></tr>
<tr><td>ए ऐ</td><td>लृ लॄ</td><td>ऋ ॠ</td></tr>
<tr><td>य र ल व</td><td colspan="3">प फ ब भ म</td><td>त थ द ध न</td></tr>
</table>

क्लीं ह्रीं क्रौं स्वाहा

शासन देव देवियां

चौबीस तीर्थंकरों के शासन देव-देवियों का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। ये व्यंतर जाति के यक्ष-यक्षिणी देव होते हैं। समवशरण में इनका स्थान होता है। इनका मुख्य कार्य जिन शासन की प्रभावना करना है। जिनधर्म के सद्गुणों का प्रभावों का अतिशय कर्म का प्रसार करना इनका कार्य है। इसी कारण धर्मानुयायी मनुष्य इनकी विशेष विनय करते हैं। इनकी प्रतिमाओं की स्थापना गर्भगृह में की जाती है। तीर्थंकर के वाम भाग में शासन देवी तथा दाहिने भाग में शासन देव की स्थापना की जाती है।

पुराणों में अनेकानेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है जिनमें शासन देव-देवियों ने जिनभक्तों की विभिन्न संकटों से रक्षा की। शासन देवी देवताओं को जिन धर्म का तीर्थंकर अथवा उनसे उत्कृष्ट मानना अथवा तीर्थंकर की अवहेलना करके इन्हीं की पूजा-अर्चना करना घोर मिथ्यात्व है। शासन देव-देवी तीर्थंकर के भक्तों के धर्ममार्ग में सहायक हैं। उन्हें स्वपूजा नहीं, तीर्थंकर पूजा में आनन्द मिलता है। तीर्थंकर पूजकों को स्वधर्मी मानकर वे उनकी सहायता करने में तत्पर होते हैं। तीर्थंकर पूजा करने से अर्जित पुण्य के प्रभाव से शासन देव-देवियां जिन धर्म उपासकों के संकटों को दूर करने के लिये तत्पर होते हैं।

शासन देव देवियों की प्रतिमाएं जैन स्थापत्य कला के अभिन्न अंग हैं। प्राचीनतम प्रतिमाओं में जैन शासन देव देवियों की प्रतिमाएं सारे देश में मिलती हैं। अनेकों स्थानों पर स्थित शासन देवियों के मन्दिर अपने चमत्कृत कर देने वाले अतिशय के कारण प्रसिद्ध हैं। इनमें हुम्मच पद्मावती, आरा एवं नरसिंह राजपुरा की ज्वालामालिनी देवी की प्रतिमाएं सारे भारत में विख्यात हैं। पुरातत्व दृष्टि से जैन शासन देव देवियों की प्रतिमाओं का अपना विशिष्ट स्थान है। विषयांतर के भय से यह विस्तार नहीं दिया जा रहा है। पाठक पुरातत्व ग्रन्थों का अवलोकन कर जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

विशेष - अनेक ग्रन्थों में शासन देव-देवियों के नामांतर मिलते हैं उनसे किसी भी प्रकार का अंतर नहीं है। इनके अनेक नाम होते हैं। तीर्थंकरों के नाम भी अनेक होते हैं जैसे- पुष्पदंत एवं सुविधिनाथ अथवा आदिनाथ एवं ऋषभनाथ अथवा वर्धमान एवं महावीर। इसका अर्थ यह नहीं कि वर्धमान पृथक हैं तथा महावीर पृथक। शासन देव-देवियों के नामांतर भी इसी प्रकार हैं। विभिन्न प्रतिष्ठा ग्रन्थों में नाम भेद मिल सकते हैं।

तीर्थंकरों के यक्ष यक्षिणी देवों के नाम *

	तीर्थंकर	यक्ष	यक्षिणी
१.	ऋषभनाथ	गोमुख(वृषभ)	चक्रेश्वरी
२.	अजितनाथ	महायक्ष	रोहिणी (अजिता)
३.	संभवनाथ	त्रिमुख	प्रज्ञप्ति (नम्रा)
४.	अभिनन्दन नाथ	यक्षेश्वर	वज्रश्रृंखला (दुरितारि)
५.	सुमतिनाथ	तुम्बुर (तुम्बरु)	पुरुषदत्ता(संसारी)
६.	पद्मप्रभ	कुसुम	मनोवेगा(मोहिनी)
७.	सुपार्श्वनाथ	वरनन्द(मातंग)	काली(मालिनी)
८.	चन्द्रप्रभ	विजय(श्याम)	ज्वालामालिनी
९.	सुविधिनाथ	अजित	महाकाली(भृकुटि)
१०.	शीतलनाथ	ब्रह्मेश्वर	मानवी(चामुन्डा)
११.	श्रेयांसनाथ	कुमार(ईश्वर)	गौरी(गोमेधकी)
१२.	वासुपूज्य	षण्मुख(कुमार)	गांधारी(विद्युत्माली)
१३.	विमलनाथ	पाताल(चतुर्मुख)	वैरोटी(विद्या)
१४.	अनन्तनाथ	किन्नर(पातालं)	अनन्तमति(विजृंभिणी)
१५.	धर्मनाथ	किंपुरुष(किन्नर)	मानसी(परिभृता)
१६.	शांतिनाथ	गरुड़	महामानसी (कन्दर्प)
१७.	कुंथुनाथ	गंधर्व	जय(गांधारिणी)
१८.	अरहनाथ	महेन्द्र(यक्षेन्द्र)	विजया(काली)
१९.	मल्लिनाथ	कुबेर	अपराजिता(अनजान)
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	वरुण	बहुरुपिणी (सुगंधिनी)
२१.	नमिनाथ	विद्युत्प्रभ(भृकुटी)	चामुन्डी (कुसुममालिनी)
२२.	नेमिनाथ	सर्वान्ह (गोमेद)	कूष्मांडी
२३.	पार्श्वनाथ	धरणेन्द्र	पद्मावती
२४.	वर्धमान	मातंग	सिद्धायनी

---

* त्रिकालवर्ती महापुरुष पृ. १४०-१४९ वृहत शान्ति धारा

तीर्थंकर ऋषभनाथ

गोमुख यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
कांति	सुवर्ण	सुवर्ण
मुख	गौ	गौ
वाहन	बैल	हाथी #
भुजाएं	चार	चार
दाहिने हाथ में	ऊपर के हाथ में फरसा,	वरदान
	बिजौरे का फल	माला
बायें हाथ में	माला	बिजौरा
	वरदान	पाश
मस्तक पर	धर्मचक्र	

गोमुख यक्ष

\# प्रकारान्तर (आचार दिनकर)- बैल

तीर्थंकर ऋषभनाथ

चक्रेश्वरी देवी (अप्रतिहत चक्रा)

श्वे.– अप्रतिचक्रा

विशे.	दिग.	श्वे.
कांति	सुवर्ण	सुवर्ण
आसन	कमल	कमल पर
वाहन	गरुड़	गरुड़ $
भुजा	बारह*	आठ
	दोनों तरफ के दो हाथ में वज्र, दोनों तरफ के चार-चार हाथों में चक्र, नीचे बायें हाथ में फल, नीये दायें हाथ में वरदान	दाहिनी भुजा में वरदान, बाण, पाश, चक्र बायीं भुजा में धनुष, वज्र, चक्र, अंकुश

चक्रेश्वरी देवी

---

*प्रकारान्तर भुजा चार; ऊपर के दोनों हाथों में चक्र, नीचे बायें हाथ में बिजौरे का फल, नीचे दायें हाथ में वरदान

$प्रकारान्तर (श्रीपाल रास) - वाहन सिंह

तीर्थंकर अजितनाथ

महायक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
कांति	सुवर्ण	कृष्ण
मुख	चार	चार
वाहन	हाथी	हाथी
भुजा	आठ	आठ
दाहिने हाथ में	तलवार, दण्ड, फरसा, वरदान,	वरदान, मुदगर, माला, पाश,
बायें हाथ में	चक्र, त्रिशूल, कमल, अंकुश	बिजौरा, अभय, अंकुश, शक्ति

अजिता देवी (रोहिणी देवी)

श्वे.- अजिता *(अजितबला)*

विशे.	दिग.	श्वे.
कांति	सुवर्ण	गौर
आसन	लोहासन	लोहासन
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	शंख, अभय,	वरदान, पाश,
बायें हाथ में	चक्र, वरदान	बिजौरा, अंकुश

महायक्ष - यक्ष

अजिता (रोहिणी) देवी

तीर्थंकर संभवनाथ
त्रिमुख यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	कृष्ण
मुख	तीन	तीन
नेत्र	तीन- तीन	तीन- तीन
वाहन	मोर	मोर
भुजा	छह	छह
दाहिने हाथ में	दण्ड, त्रिशूल, तीक्ष्ण कतरनी	नेवला, गदा, अभय
बायें हाथ में	चक्र, तलवार, अंकुश	बिजौरा, सांप, माला

प्रज्ञप्ति देवी (नम्रा देवी)
श्वे.- दुरितारि

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सफेद	गौर
वाहन	पक्षी	मेंढा
भुजा	छह	चार
दाहिने हाथ में	तलवार, इष्टी (तूम्बी), वरदान	वरदान माला
बायें हाथ में	अर्धचन्द्र, फरसा, फल	फल, अभय

त्रिमुख यक्ष

प्रज्ञप्ति (नम्रा) देवी

तीर्थंकर अभिनन्दन नाथ
यक्षेश्वर यक्ष
श्वे. – ईश्वर

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	कृष्ण
वाहन	हाथी	हाथी
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	बाण , तलवार	बिजौरा, माला
बायें हाथ में	धनुष, ढाल	नेवला, अंकुश

वज्रशृंखला देवी (दुरितारि देवी)
श्वे. – कालिका

विशे.	दिग.	श्वे.
कांति	सुवर्ण	कृष्ण
वाहन	हंस	-
आसन	-	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	माला, वरदान	वरदान, पाश
बायें हाथ में	नागपाश, बिजौरा फल	नाग, अंकुश

यक्षेश्वर - यक्ष

वज्रश्रृंखला (दुरितारि) देवी

तीर्थंकर सुमतिनाथ
तुम्बरु यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	सफेद
वाहन	गरुड़	गरुड़
यज्ञोपवीत	सर्प	-
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	ऊपर सर्प, नीचे वरदान	वरदान, शक्ति
बायें हाथ में	ऊपर सर्प, नीचे फल	नाग, पाश

पुरुषदत्ता देवी (खड्गवरा देवी)
श्वे.-महाकाली

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण
वाहन	हाथी	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	चक्र, वरदान	वरदान, पाश
बायें हाथ में	वज्र, फल	बिजौरा, अंकुश

तीर्थंकर पद्मप्रभ

तुम्बरु यक्ष

खड्गवरा (पुरुष दत्ता) देवी

पुष्प यक्ष
श्वे. - कुसुम

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	नील
वाहन	हिरण	हिरण
भुजा	चार*	चार
दाहिने हाथ में	माला वरदान	फल, अभय
बायें हाथ में	ढाल अभय	नेवला, माला

मनोवेगा देवी (मोहिनी)
श्वे. - अच्युता (श्यामा)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	कृष्ण
वाहन	घोड़ा	पुरुष
भुजा	चार	चार**
दाहिने हाथ में	तलवार, वरदान	वरदान, बाण
बायें हाथ में	ढाल, फल	धनुष, अभय

पुष्प यक्ष

मनोवेगा (मोहिनी) देवी

*(पाठांतर- वसुनंदि प्रतिष्ठा कल्प में दो भुजा)

**आचार दिनकर में - दाहिने हाथ में वरदान, पाश
बायें हाथ में बिजौरा, अंकुश

तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ
मातंग यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	नील
वाहन	सिंह	हाथी
मुख	टेढ़ा (कुटिल)	-
भुजा	दो	चार
दाहिने हाथ में	त्रिशूल	बेलफल, पाश
बायें हाथ में	दण्ड	नेवला*, अंकुश

काली (मानवी) देवी
श्वे. - शान्ता

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सफेद	सुवर्ण
वाहन	बैल	हाथी
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	त्रिशूल, वरदान	वरदान, माला
बायें हाथ में	घण्टा, फल	शूली, अभय

मातंग यक्ष

काली (मानवी) देवी

*पाठान्तर (आचार दिनकर में) - वज्र

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ

श्याम यक्ष

श्वे. – विजय

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	हरा
वाहन	कबूतर	हंस
नेत्र	तीन	तीन
भुजा	चार	दो
दाहिने हाथ में	माला, वरदान	चक्र
बायें हाथ में	फरसा, फल	मुद्गर

ज्वालामालिनी (ज्वालिनी) देवी

श्वे. – भृकुटि (ज्वाला)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सफेद	पीला
वाहन	भैंसा	वराह**
भुजा	आठ*	चार
दाहिने हाथ में	त्रिशूल, बाण, मछली, तलवार	तलवार, मुद्गर
बायें हाथ में	चक्र, धनुष, नागपाश, ढाल	ढाल, फरसा

श्याम यक्ष

ज्वाला मालिनी देवी

---

* (हेलाचार्य कृत ज्वालामालिनी कल्प में)
हाथों में त्रिशूल, पाश, मछली, धनुष, बाण, फल, वरदान, चक्र

** वरालक, ग्रास (आचार दिनकर में) ; हंस (चतु० जि० चरित्र में)

तीर्थंकर सुविधिनाथ (पुष्पदन्त)

अजित यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	श्वेत	श्वेत
वाहन	कछुआ	कछुआ
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	अक्षमाला, वरदान	माला, बिजौरा
बायें हाथ में	शक्ति, फल	नेवला, भाला

महाकाली देवी (भृकुटि देवी)

श्वे. - सुतारा

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	गौर
वाहन	कछुआ	बैल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	मुद्गर, वरदान	वरदान, माला
बायें हाथ में	वज्र, फल	कलश, अंकुश

अजित यक्ष

महाकाली (भृकुटि) देवी

तीर्थंकर शीतलनाथ

ब्रह्म यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सफेद	सुवर्ण
आसन	कमल	कमल
मुख	चार	चार
नेत्र	-	तीन-तीन
भुजा	आठ	आठ
दाहिने हाथ में	बाण, फरसा, तलवार, वरदान	बिजौरा, मुद्गर, पाश, अभय
बायीं भुजा में	धनुष, दण्ड, ढाल, वज्र	नेवला, गदा, अंकुश, माला

मानवी देवी (चामुण्डा देवी)

श्वे. – अशोका

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	हरा	मूंग
वाहन	काला शूकर	-
आसन	-	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	बिजौरा, वरदान	वरदान, पाश
बायीं भुजा में	मछली, माला	फल, अंकुश

ब्रह्म यक्ष

मानवी (चामुंडा) देवी

तीर्थंकर श्रेयांसनाथ

ईश्वर यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सफेद	सफेद
वाहन	बैल	बैल
नेत्र	तीन	तीन
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	माला, फल	बिजौरा, गदा
बायें हाथ में	त्रिशूल, दण्ड	नेवला, माला

गौरी देवी (गौमेधकी)

श्वे. – मानवी (श्रीवत्सा)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	गौर
वाहन	हरिण	सिंह
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	कलश, वरदान	वरदान, मुदगर
बायें हाथ में	मुद्गर, कमल	कलश, अंकुश

ईश्वर यक्ष

गौरी (गौमेधकी) देवी

तीर्थंकर वासुपूज्य

कुमार यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	श्वेत	श्वेत
वाहन	हंस	हंस
मुख	तीन	-
भुजा	छह	चार
दाहिने हाथ में	बाण, गदा, वरदान	बिजौरा, बाण
बायें हाथ में	धनुष, नेवला, फल	नेवला, धनुष

गांधारी देवी (विद्युन्मालिनी)

श्वे. – प्रचण्डा (प्रवरा)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	हरा	कृष्ण
वाहन	मगर	घोड़ा
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	कमल, वरदान	वरदान, शक्ति
बायें हाथ में	कमल, मूसल	पुष्प, गदा

कुमार यक्ष

गांधारी (विद्युन्मालिनी) देवी

तीर्थंकर विमलनाथ
चतुर्मुख यक्ष
श्वे. - षणमुख यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	हरा	सफेद
वाहन	मोर	मोर
मुख	चार*	-
भुजा	बारह	बारह
दाहिने हाथ में	फरसा, फरसा, फरसा, फरसा, तलवार, माला	फल, चक्र, बाण, खड्ग, पाश, माला
बायें हाथ में	फरसा, फरसा, फरसा, फरसा, ढाल, वरदान	नेवला, चक्र, धनुष, ढाल, अंकुश, अभय

वैरोटी देवी
विदिता (विजया)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	हरा	हरताल
वाहन	सर्प	-
आसन	-	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	सर्प, बाण	बाण, पाश
बायें हाथ में	सर्प, धनुष	धनुष, सर्प

चतुर्मुख यक्ष

वैरोटी देवी

*प्रतिष्ठा तिलक में छह

तीर्थंकर अनन्तनाथ

पाताल यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	लाल	लाल
वाहन	मगर	मगर
मुख	तीन	तीन
मस्तक पर	नाग के तीन फण	-
भुजा	छह	छह
दाहिने हाथ में	अंकुश, त्रिशूल, कमल	कमल, खड्ग, पाश
बायें हाथ में	चाबुक, हल, फल	नेवला, ढाल, माला

अनन्तमती देवी (विजृंभिणी)

श्वे.- अंकुशा

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	गौर
वाहन	हंस	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	बाण, वरदान	खड्ग, पाश
बायें हाथ में	धनुष, बिजौरा, फल	ढाल, अंकुश

पाताल यक्ष

अनन्तमति (विजृंभिणी) देवी

तीर्थंकर धर्मनाथ

किन्नर यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	मूंगा	लाल
वाहन	मछली	कछुआ
मुख	तीन	तीन
भुजा	छह	छह
दाहिने हाथ में	मुद्गर, माला, वरदान	बिजौरा, गदा, अभय
बायें हाथ में	चक्र, वज्र, अंकुश	नेवला, कमल, माला

मानसी देवी (परभृता)

श्वे. – कन्दर्पा (पन्नगा)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	मूंगा (लाल)	गौर
वाहन	व्याघ्र	मछली
भुजा	छह	चार
दाहिने हाथ में	कमल, बाण, अंकुश	कमल, अंकुश
बायें हाथ में	कमल, धनुष, वरदान	कमल, अभय

किन्नर यक्ष

मानसी (परभृता) देवी

तीर्थंकर शांतिनाथ

गरूड़ यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	कृष्ण
मुख	टेढ़ा (वराह मुख)	वराह मुख
वाहन	शूकर	शूकर
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	चक्र, कमल	बिजौरा, कमल
बायें हाथ में	वज्र, फल	नेवला, माला

महामानसी देवी (कन्दर्पा)

श्वे. – निर्वाणी

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	गौर *
वाहन	मयूर	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	ईढी, वरदान	पुस्तक, कमल
बायें हाथ में	चक्र, फल	कमंडल, कमल

गरूड़ यक्ष

महा मानसी (कंदर्पा) देवी

---

*पाठान्तर – आचार दिनकर में सुवर्ण वर्ण

तीर्थंकर कुन्थुनाथ
गंधर्व यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	कृष्ण
वाहन	पक्षी	हंस
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	नागपाश, बाण	पाश, वरदान
बायें हाथ में	नागपाश, धनुष	बिजौरा, अंकुश

जया देवी (गांधारी)
बला (अच्युता)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	गौर
वाहन	काला शूकर	मोर
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	तलवार, वरदान	बिजौरा, शूली
बायें हाथ में	चक्र, शंख	अरई*, कमल

गंधर्व यक्ष

जया (गांधारी) देवी

---

* लोहे की कील लगी गोल लकड़ी,

तीर्थंकर अरहनाथ
खेन्द्र यक्ष
श्वे.-यक्षेन्द्र

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	कृष्ण
वाहन	शंख	शंख
मुख	छह	छह
नेत्र	तीन-तीन	तीन-तीन
भुजा	बारह	बारह
दाहिने हाथ में	बाण, कमल, बिजौरा, माला, बड़ी अक्षमाला, अभय	बिजौरा, बाण, खड्ग, मुद्गर, पाश, अभय
बायें हाथ में	धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदान	नेवला, धनुष, ढाल, शूल, अंकुश, माला

तारावती देवी (काली)
श्वे.- धारिणी

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	कृष्ण
वाहन	हंस	-
आसन	-	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	वज्र, वरदान	बिजौरा, कमल
बायें हाथ में	सांप, हरिण,	पाश, माला

खेन्द्र यक्ष

तारावती (काली) देवी

तीर्थंकर मल्लिनाथ
कुबेर यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	इन्द्रधनुष	इन्द्रधनुष
वाहन	हाथी	हाथी
मुख	चार	गरुड़ मुख
भुजा	आठ	आठ
दाहिने हाथ में	तलवार, बाण, नागपाश, वरदान	वरदान, फरसा, शूल, अभय
बायें हाथ में	ढाल, धनुष, दण्ड, कमल	बिजौरा, शक्ति, मुद्गर, माला

अपराजिता देवी
श्वे. - वैरोट्या

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	हरा	कृष्ण
वाहन	अष्टापद	कमल
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	तलवार, वरदान	वरदान, माला
बायें हाथ में	ढाल, फल	बिजौरा, शक्ति

कुबेर यक्ष

अपराजिता देवी

तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ

वरुण यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सफेद	सफेद *
वाहन	बैल	बैल
मुकुट	जटा का	जटा का
मुख	आठ	चार
नेत्र	तीन-तीन	तीन-तीन
भुजा	चार	आठ
बायें हाथ में	ढाल, फल,	नेवला, कमल, धनुष, फरसा
दाहिने हाथ में	तलवार, वरदान	बिजौरा, गदाबाण, शक्ति

बहुरूपिणी देवी (सुगन्धिनी)

श्वे. - वरदत्ता

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	पीला	गौर**
वाहन	काला सर्प	भद्रासन
भुजा	चार	चार
बायें हाथ में	ढाल, फल	बिजौरा, शूल
दाहिने हाथ में	तलवार, वरदान	वरदान, माला

वरुण यक्ष

बहुरूपिणी (सुगंधिनी) देवी

---

* प्रवचन सारोद्धार में कृष्णवर्ण, **आचार दिनकर में सुवर्णवर्ण

तीर्थंकर नमिनाथ

भृकुटि यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	लाल	सुवर्ण
वाहन	नन्दी (बैल)	नन्दी (बैल)
मुख	चार	चार
नेत्र	तीन-तीन	तीन-तीन
भुजा	आठ	आठ
बायें हाथ में	चक्र, धनुष, बाण, ढाल	नेवला, फरसा, वज्र, माला
दाहिने हाथ में	कमल, तलवार, अंकुश, वरदान	बिजौरा, शक्ति, मुद्गर, अभय

चामुन्डा देवी (कुसुममालिनी)

श्वे. - गांधारी

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	हरा	सफेद
वाहन	मगर	हंस
भुजा	चार	चार
बायें हाथ में	दण्ड, ढाल	बिजौरा, कुंभकलश*
दाहिने हाथ में	माला, तलवार	वरदान, तलवार

भृकुटि यक्ष

चामुंडा (कुसुम मालिनी) देवी

* (पाठ भेद-माला)

तीर्थंकर नेमिनाथ

गोमेद यक्ष

श्वे. – गोमेध

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	कृष्ण	कृष्ण
मुख	तीन	तीन
आसन	पुष्प	-
वाहन	मनुष्य	मनुष्य
भुजा	छह	छह
दाहिने हाथ में	फल, वज्र, वरदान	बिजौरा, फरसा, चक्र
बायें हाथ में	मुद्‌गर, फरसा, दण्ड	नेवेला, शूल, शक्ति

आम्रा देवी (कूष्मांडिनी)

श्वे. – अम्बिका (कूष्मांडी)

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	हरा	सुवर्ण
वाहन	सिंह	सिंह
	आम्र की छाया में रहने वाली	-
भुजा	दो	चार
दाहिने हाथ में	शुभंकर पुत्र	बिजौरा*, पाश
बायें हाथ में	प्रियंकर पुत्र की प्रीति के लिये आम्र की लूम को (गोद में पुत्र)	पुत्र, अंकुश

गोमेद यक्ष

अंबिका (कूष्माण्डिनी) देवी

---

*पाठांतर आचार दिनकर में आम की लूम

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

धरण यक्ष

श्वे. - पार्श्व यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	आकाशी नीला	कृष्ण
मुख	-	हाथी, सिर पर नाग फणी
वाहन	कछुआ	कछुआ
मुकुट	सांप का चिन्ह	-
भुजा	चार	चार
दाहिने हाथ में	वासुकी नाग, वरदान	बिजौरा, सांप
बायें हाथ में	वासुकी नाग, नागपाश	नेवला, सांप

धरणेन्द्र यक्ष

पद्मावती देवी

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	लाल	सुवर्ण
आसन	कमल	-
वाहन	कुक्कुट सर्प $	मुर्गा #
मस्तक	तीन फणा सांप का चिन्ह	-
भुजा	चार*	चार
दाहिने हाथ में	कमल, वरदान	कमल, पाश
बायें हाथ में	अंकुश माला	फल, अंकुश

पद्मावती देवी

आचार दिनकर में कुक्कुट सर्प

*प्रकारान्तर

१	छह	पाश, तलवार, भाला, बालचन्द्र, गदा, मूसल
२	चौबीस	शंख, तलवार, चक्र, बालचन्द्र, श्वेत कमल, लाल कमल, धनुष, शक्ति, पाश, अंकुश, घंटा, बाण, मूसल, ढाल, त्रिशूल, फरसा, भाला, वज्र माला, फल, गदा, पान, नवीन पत्तों का गुच्छा, वरदान
३	चार	पाश, फल, वरदान, अंकुश (मल्लिषेण कृत पद्मावती कल्प)

***चौबीस भुजा युक्त पद्मावती देवी**

जयमाला पद्मावती दण्डक में वर्णित २४ भुजाओं के आयुध इस प्रकार हैं *:-
वज्र, अंकुश, कमल, चक्र, छत्र, डमरु, ढाल, खप्पर, खड्ग, धनुष, कोरा, बाण, मूसल, हाल, शत्रु का मस्तक, तलवार, अग्नि ज्वाला, मुंडमाला, वरदान हस्त, त्रिशूल, फरशी, नाग, मुदगर, दण्ड

---

*भारतीय शिल्प संहिता से उद्धृत

तीर्थंकर वर्धमान (महावीर)

मातंग यक्ष

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	मूंग जैसा हरा	सुवर्ण
वाहन	हाथी	हाथी
मस्तक	धर्म चक्र धारण	-
भुजा	दो	दो
बायें हाथ में	बिजौरा फल	बिजौरा
दाहिने हाथ में	वरदान	नेवला

सिद्धायिका देवी

विशे.	दिग.	श्वे.
वर्ण	सुवर्ण	हरा
आसन	भद्रासन	-
वाहन	सिंह	सिंह #
भुजा	दो	चार
बायें हाथ में	पुस्तक	बिजौरा, वीणा
दाहिने हाथ में	वरदान	पुस्तक, अभय

मातंग यक्ष

सिद्धायिका देवी

प्रकारान्तर - # हाथी

दिक्पाल देव

दश दिशाओं के प्रत्येक के स्वामी दिक्पाल देव होते हैं। ये देव व्यंतर जाति के हैं। इन्हें लोकपाल भी कहा जाता है। इन देवताओं के नाम इस प्रकार हैं-

दिशा का नाम		दिक्पाल का नाम
पूर्व	-	इन्द्र
आग्नेय	-	अग्नि
दक्षिण	-	यम
नैऋत्य	-	नैऋत
पश्चिम	-	वरुण
वायव्य	-	पवन
उत्तर	-	कुबेर
ईशान	-	ईशान
ऊर्ध्व	-	सोम
अधो	-	धरणेन्द्र

इन देवों की पूजा, स्थापना, आवाहन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय किया जाता है। सभी प्रकार की सामान्य एवं विशेष पूजा महोत्सवों के पूर्व दिक्पालों का आवाहन, अर्चन इस लक्ष्य को लेकर किया जाता है कि ये जिनेन्द्र प्रभु की अर्चना महोत्सव सभी दिशाओं से आने वाले अनिष्टों से मुक्त रखें।

दिक्पालकोंकास्वरूप

इन्द्र : पूर्व दिशा का स्वामी

वर्ण	-	तप्त सुवर्ण सदृश
वस्त्र	-	पीले
वाहन	-	ऐरावत हाथी
हाथ में	-	वज्र धारण

पूर्व दिशा
इन्द्र

आग्नेय दिशा
अग्नि

अग्नि : आग्नेय दिशा का स्वामी

वर्ण - कपिला (अग्नि जैसा)
वाहन - बकरा
वस्त्र - नीले
हाथ में - धनुषबाण धारण

दक्षिण दिशा
यम
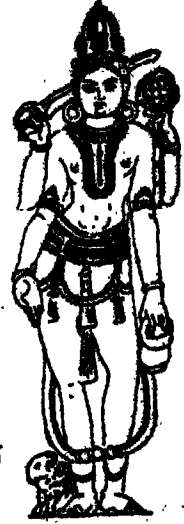
यम : दक्षिण दिशा का स्वामी

वर्ण - कृष्ण
वस्त्र - चर्म
हाथ में - दण्ड
वाहन - भैंसा

नैऋत : नैऋत्य दिशा का स्वामी

वर्ण - धूम्र
वस्त्र - व्याघ्र चर्म
वाहन - प्रेत
हाथ में - मुद्गर धारणं

नैऋत्य दिशा
नैऋत

वरुणः पश्चिम दिशा का स्वामी

वर्ण - मेघ जैसा
वस्त्र - पीला
वाहन - मछली
हाथ में - पाश
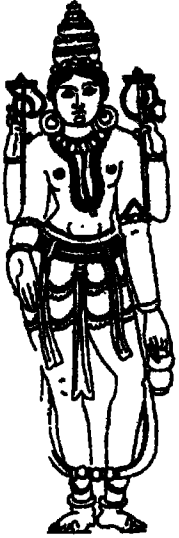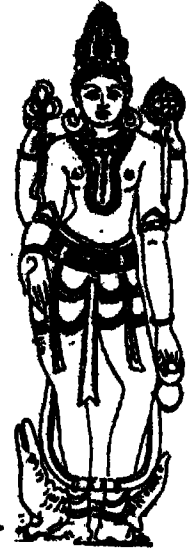
पश्चिम दिशा
वरुण

वायव्य दिशा- वायु

वायु (पवन) : वायव्य दिशा का स्वामी

वर्ण - धूसर (हल्का पीला)
वस्त्र - लाल
वाहन - हरिण
हाथ में - ध्वजा

कुबेर : उत्तर दिशा का स्वामी
इन्द्र का कोषपाल देव

वर्ण - सुवर्ण
वस्त्र - सफेद
वाहन - मनुष्य
हाथ में - रत्न

उत्तर दिशा
कुबेर

ईशान : ईशान दिशा के स्वामी

वर्ण - सफेद
वस्त्र - गजचर्म
वाहन - बैल
हाथ में - शिव धनुष एवं त्रिशूल

ईशान दिशा के स्वामी

नागदेव *: पाताल लोक के स्वामी

वर्ण - कृष्ण
वाहन - सर्प
आसन - कमल
हाथ में - सर्प, त्रिशूल, माला

नागदेव
पाताल लोक स्वामी

ब्रह्मदेव : ऊर्ध्व लोक स्वामी

वर्ण - सुवर्ण
मुख - चार
वस्त्र - सफेद
वाहन - हंस
आसन - कमल
हाथ में - पुस्तक तथा कमल

ब्रह्मदेव
ऊर्ध्व लोक स्वामी

---

*पाठभेद अनन्त, इनका स्वरुप नाभि के ऊपर मनुष्य का तथा नाभि के नीचे सर्प का होता है।

क्षेत्रपाल देव

क्षेत्रपाल की स्थापना प्रत्येक मन्दिर में आवश्यक रुप से रखी जाती है। इनकी स्थापना जिन मन्दिर के क्षेत्र के अधिपति क्षेत्ररक्षक देव के रुप में की जाती है। इनका स्वरुप यद्यपि उग्र रहता है किन्तु पूजा के लिये उग्र स्वरुप का आधार सामान्यतः ठीक नहीं होता है अतएव क्षेत्रपालजी की पूजा के निमित्त मूर्ति शांत रुप की रखी जाती है।

दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों जैन सम्प्रदायों में क्षेत्रपाल की पूजा अर्चना आरती समान रुप से की जाती है। ये देव तात्कालिक रुप से फलदायक माने जाते हैं। दोनों सम्प्रदायों में पूजा करने की पद्धतियों में परम्परानुसार किंचित अन्तर हो सकता है। तैल अर्चना तथा सिंदूर लेपन पूरी प्रतिमा पर किया जाता है।

क्षेत्रपाल देव का स्वरुप

(आधार दिनकर के अनुरुप)

वर्ण-	कृष्ण, गौर, सुवर्ण, पांडु, भूरे वर्ण
भुजा-	बीस
केश -	बर्बर तथा बड़ी जटाएं
यज्ञोपवीत -	वासुकी नाग
मेखला -	तक्षक नाग
हार-	शेष नाग
हाथों में-	अनेक भांति के शस्त्रों का धारण
धारण-	सिंह चर्म
आसन-	प्रेत
वाहन -	कुत्ता
नेत्र -	मस्तक पर तीन नेत्र

क्षेत्रपाल देव का स्वरुप

निर्वाण कलिका के अनुरुप

क्षेत्रपाल जी

नाम	-	अपने क्षेत्र के अनुरुप नाम
वर्ण	-	श्याम
केश	-	बर्बर
नेत्र	-	पीले
दांत	-	विरुप एवं बड़े
आसन	-	पादुका पर
रुप	-	नग्न
भुजा	-	छह
दाहिने हाथ में	-	मुद्गर, पाश, डमरु
बायें हाथ में	-	कुत्ता, अंकुश, लाठी

स्थापना का स्थान

जिन भगवान के दाहिनी ओर ईशान को लगकर दक्षिणाभिमुखी करें।

क्षेत्रपाल के पांच नाम

क्षेत्रपाल इन पांच नामों से जाने जाते हैं :-

१. विजयभद्र २. मणिभद्र ३. वीरभद्र ४. भैरव ५. अपराजित

यहां यह स्मरण रखना अत्यंत आवश्यक है कि क्षेत्रपाल आदि देवों की पूजा अर्चना जिनेश्वर प्रभु के समान नहीं की जाती है। त्रिलोकपति जिनेश्वर प्रभु की आराधना सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की उत्पत्ति का कारण है तथा परम्परा से मोक्ष का हेतु है। क्षेत्रपाल आदि देवताओं की विनय तात्कालिक तथा सामान्य उपचार विनय के रुप में की जाती है। तीर्थंकर प्रभु की पूजा एवं क्षेत्रपाल देव की विनय में किंचित् भी समानता नहीं है। अतएव उपासक का कर्त्तव्य है कि दोनों को एक समझने की भूल न करें।

मणिभद्र यक्ष का स्वरुप

मणिभद्र यक्ष का स्वरुप क्षेत्रपाल की ही भांति होता है, किन्तु मणिभद्र की गणना प्रमुख जैन शासन प्रभावक देव के रुप में की जाती है। इसी कारण उपासक इनकी वन्दना करते हैं। श्वेतांबर उपाश्रयों में मणिभद्र की स्थापना सिंदूर चर्चित काष्ठ के रुप में भी की जाती है। इनका विशेष रुप इस प्रकार है -

वर्ण - श्याम
वाहन - सप्त सूंड वाला ऐरावत हाथी
मुख - वराह
दंत पर- जिन चैत्य धारण
भुजा - छह
बायीं भुजा- अंकुश, तलवार, शक्ति
दायीं भुजा- ढाल, त्रिशूल, माला

मणिभद्र जी (मानभद्र जी)

सर्वान्ह यक्ष

सर्वान्ह यक्ष की प्रतिमायें जिन तीर्थंकर प्रतिमाओं के साथ ही बनाई जाती हैं। इनका अन्य नाम सर्वानुभूति यक्ष है। ये अकृत्रिम चैत्यालय में रहते हैं। यहाँ भी जिन मंदिरों में इनकी स्थापना की जाती है। तिलोय पण्णत्ति में भी इनका उल्लेख है।

इनका स्वरुप कुबेर की भांति होता है। सर्वान्ह यक्ष दिव्य हाथी पर आरुढ़ होकर विचरण करते हैं। सर्वान्ह यक्ष जिन पूजा यज्ञ महोत्सवों की रक्षा करते हैं।

सर्वान्ह यक्ष का स्वरुप

वर्ण - श्याम
वाहन - दिव्य गज
भुजा - चार
हाथों में - दो हाथों में धर्म चक्र मस्तक पर धारण करते हैं
दो हाथ अंजलि बद्ध मुद्रा

घंटाकर्ण यक्ष

घण्टाकर्ण यक्ष भी जैन शासन प्रभावक देव हैं। इनका स्वरुप विशिष्ट है। देवरुप में अठारह भुजायें होती हैं। भुजाओं में वज्र, तलवार, दण्ड, चक्र, मूसल, अंकुश, मुग्दर, बाण, तर्जनी मुद्रा ढाल, शक्ति, मस्तक, नागपाश, धनुष, घण्टा, कुठार, दो त्रिशूल होते हैं।

घण्टाकर्ण यक्ष की उपासना से भय एवं दुखों से रक्षा होती है। उपसर्ग भय के दुखों से रक्षा होती है। सभी प्राणी मात्र इनसे अभय पाते हैं, ऐसा माना जाता है।

वर्तमान में घण्टाकर्ण यक्ष का एक विशिष्ट रुप पूजा जाने लगा है। यक्ष धनुष बाण चढ़ाकर खड़े हैं। पीछे बाण का तरकश लगा है। कमर पर तलवार है। पाटली पर बीसा यंत्र लिखा है। कई जगह मूर्तियों में कान एवं हाथों में छोटी घंटियां बंधी हैं।

घण्टाकर्ण यक्ष की गणना बावन वीरों में की जाती है। श्वे. परम्परा में इनकी बहुत मान्यता है।
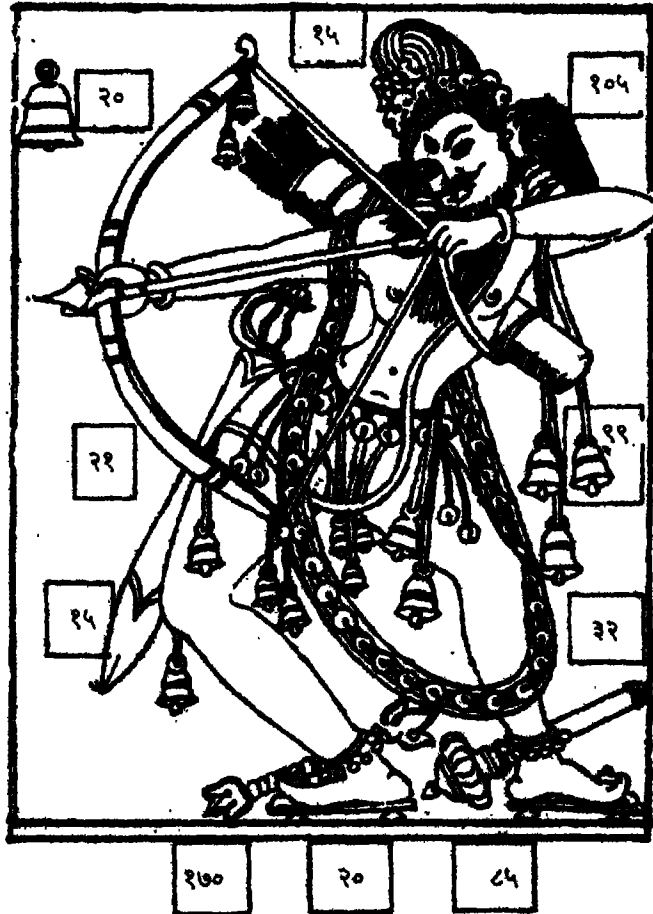
घंटाकर्ण यक्ष

यक्ष मन्दिर अथवा क्षेत्रपाल मन्दिर

यक्ष एवं क्षेत्रपाल जी का स्वतन्त्र मन्दिर भी बनाया जाता है किन्तु यह स्वतन्त्र मन्दिर भी तीर्थंकर (मूलनायक) मन्दिर के परिसर में ही होना चाहिए। इसका शिखर मूलनायक मन्दिर के शिखर से नीचा हो। मूलनायक मन्दिर के दाहिने तरफ यक्ष मन्दिर बना सकते है। गर्भगृह वर्गाकार बनायें। द्वार चौकोर तथा उदुम्बर आदि से युक्त हों। यक्ष प्रतिमा सौम्य रुप में बनाये।

श्रीफल में भी यक्ष/क्षेत्रपाल की अतदाकार स्थापना की जाती है। इसमें पूरे पिंड पर सिंदूर तैल अर्चन करें। पूजा के लिए नारियल फोड़ने के लिए पृथक स्थान नियत कर देवें।

आरती या अखण्ड दीप का स्थान आग्नेय कोण में रखें। प्रतिमा एवं मंदिर निर्माण के सामान्य नियमों का पालन अवश्य करें।

क्षेत्रपाल देव के विशिष्ट मंदिर

शिखरजी में भूमियाजी,राजस्थान में नाकोड़ा भैरव, सौंदा (कर्नाटक), स्तवनिधि (कर्नाटक), ललितपुर, बुरहानपुर आदि में प्रसिद्ध यक्ष मंदिर हैं।

क्षेत्रपाल के विशेष वैभव एवं अतिशय के अनुरुप अनेक स्थानों पर उनके भव्य मन्दिर हैं। ललितपुर के निकट क्षेत्रपाल, बुंरहानपुर का क्षेत्रपाल मंदिर तथा दक्षिण भारत का स्तवनिधि के क्षेत्रपाल सारे देश में प्रसिद्ध हैं।

विद्या देवियां

जिस प्रकार सरस्वती को जिनवाणी की प्रतीकात्मक देवी की संज्ञा है उसी प्रकार जिन शासन में वाणी की विभिन्न प्रकृतियों को मूर्तरुप में देवी स्वरुप माना जाता है। ये विद्यादेवियां कही जाती हैं। इनकी संख्या सोलह है। दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में इन्हें समान रुपेण मान्यता है।

सोलह विद्या देवियों की नामावली -

क्र.	**दिगम्बर परम्परा**	**श्वेताम्बर परम्परा**
१.	रोहिणी	रोहिणी
२.	प्रज्ञप्ति	प्रज्ञप्ति
३.	वज्रश्रृंखला	वज्रश्रृंखला
४.	वज्रांकुशा	वज्रांकुशा
५.	जांबुनदा	अप्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी)
६.	पुरुषदत्ता	पुरुषदत्ता
७.	काली	काली
८.	महाकाली	महापरा
९.	गौरी	गौरी
१०.	गांधारी	गांधारी
११.	ज्वालामालिनी	ज्वाला
१२.	मानवी	मानवी
१३.	वैरोटी	वैरोट्या
१४.	अच्युता	अच्छुप्ता
१५.	मानसी	मानसी
१६.	महामानसी	महामानसी

इन देवियों की प्रतिमाएं मन्दिर में भीतरी एवं बाह्य भाग में लगाई जाती है। खजुराहो एवं रणकपुर में जैन मन्दिरों में सोलह विद्यादेवियों की प्रतिमाएं अत्यंत मनोहारी हैं।

विद्या देवियों का स्वरूप

१. रोहिणी

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	पीत	धवल
आसन	कमल	गौ
भुजा	चार	चार
बायें हाथ में	कलश, कमल	शंख, धनुष
दायें हाथ में	शंख, बीजपुर	अक्षसूत्र, बाण

१- रोहिणी (दि.)

१- रोहिणी (श्वे.)

२. प्रज्ञप्ति

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	श्याम	धवल
वाहन	अश्व	मयूर
भुजा	चार	चार *
बायें हाथ में	चक्र, खड्ग	मातुलिंग, शक्ति
दायें हाथ में	कमल, फल	वरदान, शक्ति

२- प्रज्ञप्ति (दि.)

२- प्रज्ञप्ति (श्वे.)
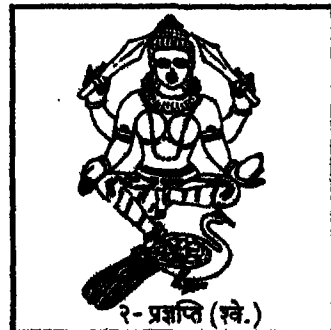
*आचार दिनकर में दो - शक्ति, कमल

३. वज्रश्रृंखला

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	स्वर्ण	स्वर्ण
वाहन	हाथी	कमल
भुजा	चार	चार *
दाएं हाथों में	वज्रश्रृंखला, कमल	श्रृंखला, वरद
बाएं हाथों में	शंख, बीजपुर	श्रृंखला, कमल

३- वज्रश्रृंखला (दि.)

३- वज्रश्रृंखला (श्वे.)

४. वज्रांकुशा

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	अंजन के समान श्याम	स्वर्ण
वाहन	पुष्पयान	गज
भुजा	चार	चार **
बाएं हाथों में	वीणा, कमल,	मातुलिंग, अंकुश
दाएं हाथों में	अंकुश, बीजपुर	वरदान, वज्र

४- वज्रांकुशा (दि.)

४- वज्रांकुशा (श्वे.)

---

* निर्वाण कलिका में चार - आचार दिनकर में दो - श्रृंखला, गदा

**आचार दिनकर में - खड्ग, वज्र, ढाल, माला

५. जाम्बुनदा (श्वे. अप्रतिचक्रा)

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	स्वर्ण पीत	स्वर्ण पीत
वाहन	मयूर	गरुड़
भुजा	चार	चार
बाएं हाथों में	बीजपुर, भाला	चक्र, चक्र
दाएं हाथों में	कमल, खड्ग	चक्र, चक्र

५- जांबुनदा (दि.)

५- अप्रतिचक्रा (श्वे.)

६. पुरुषदत्ता

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	श्वेत	पीत
वाहन	मोर	महिषी
भुजा	चार	चार *
बाएं हाथों में	वज्र, कमल	मातुलिंग, खेटक
दाएं हाथों में	शंख, फल	वरदान, खड्ग
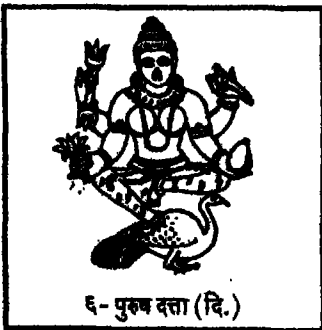
६- पुरुष दत्ता (दि.)

६- पुरुष दत्ता (श्वे.)

---

*आचार दिनकर में दो - खड्ग, ढाल

७. काली

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	पीत	कृष्ण
वाहन	हरिण	कमल
भुजा	चार	चार *
बाएं हाथों में	मूसल, फल	वज्र, अभय
दाएं हाथों में	कमल, खड्ग	अक्षसूत्र, गदा

७- काली (दि.)

७- काली (श्वे.)

८. महाकाली
(श्वे. महापरा, कालिका)

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	नील, श्याम	तमाल
वाहन	शरभ	नर
भुजा	चार	चार
बाएं हाथों में	धनुष, फल	घण्टा, अभय
दाएं हाथों में	खड्ग , बाण	अक्षसूत्र, वज्र

८- महाकाली (दि.)

८- महाकाली (श्वे.)

*आचार दिनकर में दो- गदा और वज्र

९. गौरी

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	गौर	पीत
वाहन	गोह	गोह
भुजा	चार	चार
बाएं हाथों में	कमल	अक्षमाला, कमल
दाएं हाथों में	कमल	वरदान, मूसल

९- गौरी (दि.)

९- गौरी (श्वे.)

१० गांधारी

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	अंजनवत् कृष्ण	नील *
वाहन	कच्छप	कमल
भुजा	दो	चार *
बाएं हाथ में	चक्र	अभय, वज्र
दाएं हाथ में	खड्ग	वरदान, मूसल

१०- गांधारी (दि.)

१०- गांधारी (श्वे.)

*आचार दिनकर में कृष्ण वर्ण; दो हाथ- मूसल, वज्र

११. ज्वालामालिनी
(श्वे. - ज्वाला)

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	श्वेत	श्वेत
वाहन	लुलाय	वराह
भुजा	आठ	असंख्य *
बाएं हाथों में	धनुष, खड्ग	शस्त्र
दाएं हाथों में	बाण, खेट	शस्त्र

११- ज्वाला मालिनी (दि.)

११- ज्वाला मालिनी (श्वे.)

१२ मानवी

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	नील	श्याम
वाहन	शूकर	नीलकमल
भुजा	चार	चार
बाएं हाथों में	त्रिशूल, कमल	अक्षसूत्र, वृक्ष
दाएं हाथों में	मत्स्य, खड्ग	पाश, वरदान

१२- मानवी (दि.)

१२- मानवी (श्वे.)

*आचार दिनकर में ज्वाला युक्त दो हाथ

१३. वैरोटी
(श्वे.- वैरोट्या)

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	स्वर्ण *	श्याम**
वाहन	सिंह	अजगर
भुजा	चार	चार**
बाएं हाथों में	सर्प	खेटक, सर्प
दाएं हाथों में	सर्प	खड्ग, सर्प

१३- वैरोटी (दि.)

१३- वैरोट्या (श्वे.)

१४. अच्युता (श्वे. - अच्छुप्ता)

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	स्वर्ण	विद्युतवत्
वाहन	अश्व	अश्व
भुजा	चार	चार #
बाएं हाथों में	नमस्कार मुद्रा, खड्ग	खेटक, सर्प
दाएं हाथों में	नमस्कार मुद्रा, वज्र	खड्ग, बाण

१४- अच्युता (दि.)

१४- अच्युता (श्वे.)

---

*नील - ग्रंथांतर में

**आचार दिनकर में - गौर वर्ण; हाथों में खड्ग, ढाल, सर्प, वरदान

#आचार दिनकर - बाएं हाथ में - धनुष, ढाल, दाएं हाथ में - खड्ग, बाण

१५. मानसी

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	लाल	धवल *
वाहन	सर्प	हंस
भुजा	दो	चार *
बाएं हाथों में	नमस्कार मुद्रा	अक्षवलय, अशनि,
दाएं हाथों में	नमस्कार मुद्रा	वरदान, वज्र

१५- मानसी (दि.)

१५- मानसी (श्वे.)

१६. महामानसी

	दिगम्बर परंपरा	श्वेताम्बर परंपरा
वर्ण	लाल	धवल
वाहन	हंस	सिंह **
भुजा	चार	चार **
बाएं हाथों में	अक्षमाला, वरदान	कुंडिका, ढाल
दाएं हाथों में	माला, अंकुश	वरदान, खड्ग

१६- महामानसी (दि.)

१६- महामानसी (श्वे.)

---
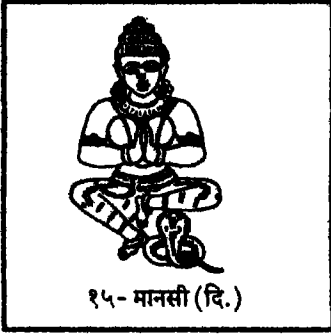
*आचार दिनकर में सुवर्ण वर्ण ; दो हाथ- वज्र, वरदान

**आचार दिनकर में मगर वाहन; दो हाथ- तलवार, वरदान

जैनेतर देवों के पंचायतन

सूर्य मन्दिर

सूर्य के मन्दिर के पंचायतन देवों का स्थापना क्रम इस प्रकार है। मध्य में सूर्य तथा उसके उपरांत प्रदक्षिणा क्रम से गणेश, विष्णु, शक्ति, महादेव को स्थापित करें। साथ ही नवग्रह तथा बारह गणों की मूर्तियों की भी स्थापना करें।*

गणेश मन्दिर

गणेश के मन्दिर में मध्य में गणेश की स्थापना करें तथा प्रदक्षिणा क्रम से शक्ति, महादेव, विष्णु एवं सूर्य को स्थापित करें। बारह गणों की मूर्तियां स्थापित करें।*

विष्णु मंदिर

विष्णु के मन्दिर में मध्य में विष्णु की स्थापना करें तथा प्रदक्षिणा क्रम से गणेश, सूर्य शक्ति तथा महादेव को स्थापित करें। गोपिकाओं तथा अवतारों की मूर्तियां स्थापित करें।*

शक्ति मंदिर**

शक्ति के मन्दिर में मध्य में शक्ति की स्थापना करें तथा प्रदक्षिणा क्रम से महादेव, गणेश, सूर्य, तथा विष्णु को स्थापित करें। मातृदेवी, चौंसठ योगिनी आदि देवियों तथा भैरव आदि देवों की भी मूर्तियां स्थापित करें।*

महादेव मंदिर

महादेव के मन्दिर में मध्य में महादेव की स्थापना करें तथा प्रदक्षिणा क्रम से सूर्य, गणेश, चण्डी तथा विष्णु को स्थापित करें।दृष्टिवेध का परिहार अवश्य करें। *

पंचदेवों के नाम

सूर्य, गणेश, विष्णु, शक्ति, महादेव पंचायतन के पंच देव हैं। इनमें से जिस देव का मन्दिर बनाना हो उन्हें मध्य में रखें। अन्य चार देवों की स्थापना का क्रम उपरोक्त निर्देशानुसार ही करें। *

त्रिदेव स्थापना

त्रिदेव मन्दिर में महादेव को मध्य में स्थापित करें। उनके बायीं ओर विष्णु की स्थापना करें। महादेव के दाहिनी ओर ब्रह्मा की स्थापना करें। #

---

*प्रा. मं. २/४१-४५ ; शि. र. ११/८५ ** शक्ति के अन्य नाम- अंबिका और चण्डी
#प्रा. मं. २/४६
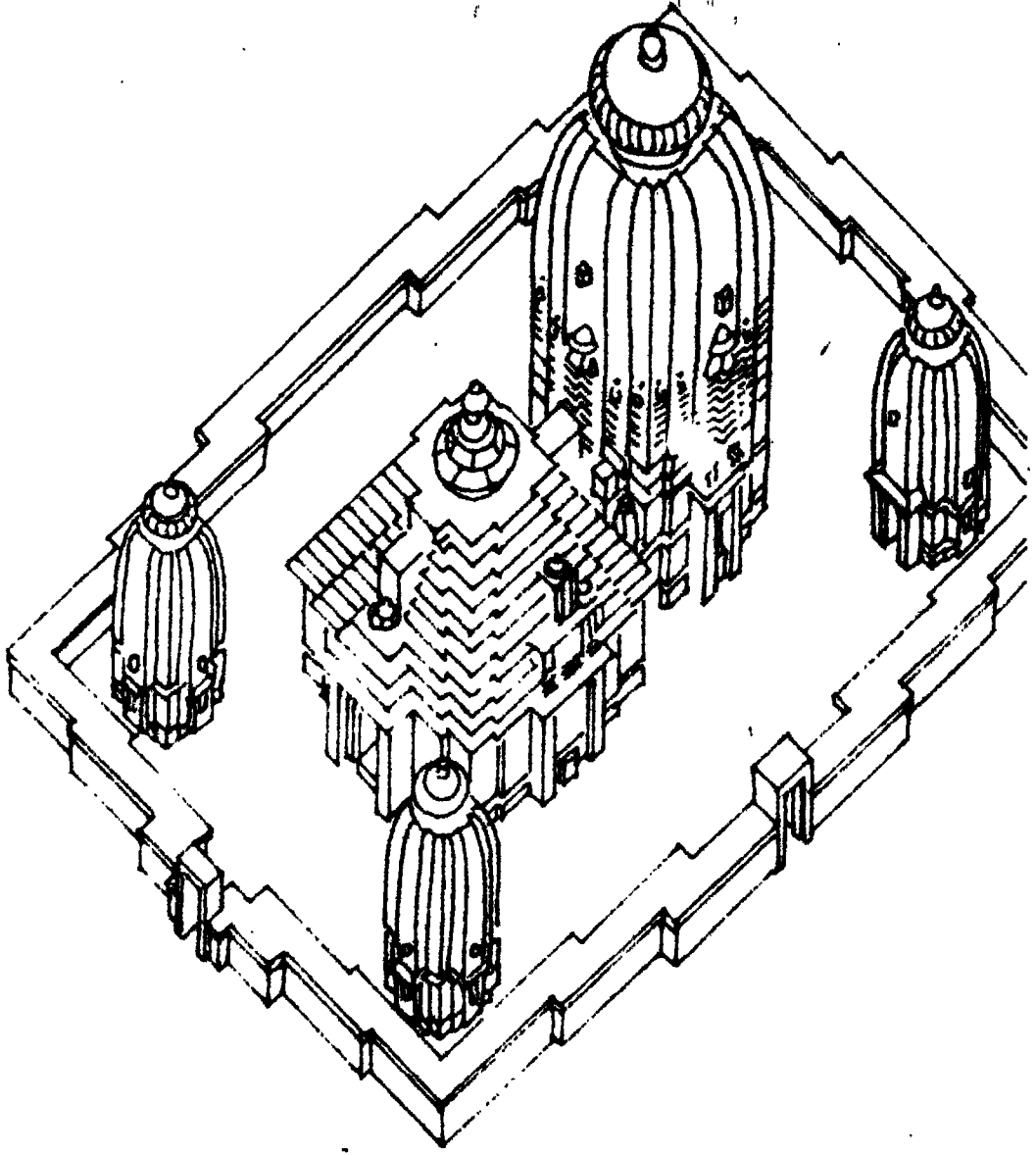
ब्रह्मेश्वर मन्दिर – भुवनेश्वर
पंचायतन मंदिर

गणेश मन्दिर

गणेश प्रतिमा का स्वरुप *

बायें अंग पर	-	गजकर्ण
दक्षिण	-	सिद्धी
दोनों कानों के पीछे	-	धूम्रक एवं बाल चन्द्रमा
उत्तर	-	गौरी
दक्षिण	-	सरस्वती
पश्चिम	-	कुबेर
पूर्व	-	बुद्धि

चतुर्मुख शिव मन्दिर

बायें भाग में	-	शांति गृह
दक्षिण भाग में	-	यशोद्वार
मध्य भाग में	-	महादेव
दक्षिण दिशा में	-	मातृ देवी
पीछे के भाग में	-	ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र
बायें भाग में	-	महालक्ष्मी, उमा तथा भैरव
कर्ण में	-	चन्द्र एवं सूर्य
अग्नि कोण में	-	स्कंद
ईशान कोण में	-	गणेश
नैऋत्य कोण में	-	धूम्र

---

*शि. र. ११/३ १०-३ ११

*शि. र. ११/ २८३-२८४-२८५

एक द्वार शिव मन्दिर*

बायें भाग में	गणेश
दाहिने भाग में	पार्वती
नैऋत्य कोण में	सूर्य
वायव्य कोण में	जनार्दन
दक्षिण दिशा में	मातृका
उत्तर दिशा में	शान्ति गृह
पश्चिम दिशा में	कुबेर

गौरी आयतन**

गौरी के वाम भाग में	सिद्धि
दाहिने भाग में	लक्ष्मी
पश्चिम भाग में	सावित्री
दोनों कानों के पीछे	भगवती एवं सरस्वती
ईशान कोण में	गणेश
आग्नेय कोण में	कुमार स्वामी
मध्य में	सर्व आभरणों से भूषित गौरी

सूर्य मन्दिर में नवग्रहों का स्थान#

मध्य में	-	सूर्य
आग्नेय में	-	मंगल
दक्षिण में	-	गुरु
नैऋत्य में	-	राहू
पश्चिम में	-	शुक्र
वायव्य में	-	केतु
उत्तर में	-	बुध
ईशान में	-	शनि
पूर्व में	-	चन्द्रमा

---

* शि. र. ११/२८१-२८२ ** शि. र. ११/३००-३०१ # शि. र. ११/८६-८८

दृष्टं श्रीमदिदं जिनेन्द्रसदनं स्याद्वादविद्यारस-
स्वादाह्लाद- सुधाम्बुधिप्लवलसद्भव्यौघक्लृप्तोत्सवम् ।
अत्रासाद्य सपद्यवद्यभिदुरां चित्तप्रसत्तिं परां,
संभक्तुं पशवोऽपि सद्दृशमलं मुक्तिश्रियः शंफलीम् ।।१।।

अर्थः- स्याद्वाद विद्यारुपी रस के स्वाद से उत्पन्न आनन्द रुपी अमृत के समुद्र में तैरने से सुशोभित भव्य जीवों के समूह के द्वारा उत्सव किसे जाते हैं ऐसा यह शोभा से युक्त जिनमन्दिर मैने देखा है। यहां शीघ्र ही पापों को नष्ट करने वाली परम चित्त की विशुद्धता को प्राप्त कर (मनुष्यों की कौन कहे) पशु भी मुक्तिरुपी लक्ष्मी की दूती स्वरुप सद् दृष्टि-सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिये समर्थ होते हैं।।१।।

गृह चैत्यालय

गृहस्थ जनों के निवास स्थानों में भी पूजा अर्चना का स्थान बनाया जाता है। इसका कारण यह है कि यदि किसी कारण से मंदिर जाना न हो सके तो गृह स्थित मन्दिर में भी पूजा अर्चना की जा सके। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक है कि जनसंख्या विस्तार के कारण बस्तियां फैलती जा रही हैं। सब जगह मन्दिर न तो हैं, न सब जगह बनना ही संभव है। अतएव निवास स्थान पर ही जिनेन्द्र प्रभु की अर्चना हो सके, इसके लिये घर पर ही जिन प्रतिमा की शास्त्र की अनुमति के अनुरुप स्थापना करना चाहिये। बढ़ती हुई व्यावसायिक व्यस्तता के कारण भी मन्दिर का घर पर होना लाभदायक होता है, ताकि काम पर निकलने के पूर्व उपासक घर पर ही पूजा अर्चना कर सके।

गृह चैत्यालय का अर्थ है घर पर जिन प्रतिमा का मंदिर। घर पर चैत्यालय में प्रतिमाएं रखने का अलग विधान है। साथ ही चैत्यालय बनाने का अलग विधान है। विभिन्न श्रावकाचारों में जैनाचार्यों ने इसका स्पष्ट निर्देश किया है।

गृह चैत्यालय की रचना

गृह चैत्यालय में दीवाल से स्पर्श मूर्ति स्थापित करना सर्वथा अशुभ है। ऐसा कभी न करें। गृह चैत्यालय में कभी भी पाषाण का मन्दिर नहीं बनायें। यदि चित्र दीवाल पर बने हैं तो शुभ हैं। आल्मारी या दीवाल में बने हुए आले में भी भगवान की प्रतिमा स्थापित न करें। *

गृह चैत्यालय के लिए पुष्पक विमान के समान आकृति वाला काष्ठ का चैत्यालय बनायें। इसमें ध्वजादण्ड नहीं लगायें। आमलसार कलश लगा सकते हैं।

गृह चैत्यालय के लिये काष्ठ का मन्दिर वर्गाकार आकृति का बनायें। इसमें पीठ, उप पीठ तथा उस पर वर्गाकार तल बनायें। चारों कोनों पर चार स्तंभ लगायें। चारों ओर तोरण युक्त द्वार, चारों ओर छज्जा, ऊपर कनेर के पुष्प की भांति (चार गुमट तथा मध्य में एक गुम्बज) बनायें।

अन्य मतानुसार एक या तीन द्वार का भी गृह मन्दिर बना सकते हैं तथा एक ही गुंबज का बना सकते हैं। गर्भगृह से ऊंचाई सवा गुनी रखना चाहिये तथा बाहर निकलता भाग (निर्गम) आधा रखना चाहिये।

---

*भित्ति संलग्न बिम्बश्च पुरुषः सर्वथाऽशुभः।
चित्रमयाश्च नागाद्या भित्तौ चैव शुभावहा :॥ शि.र. १२/२०४
न कदापि ध्वजादंडो स्थाप्यो वै गृहमंदिरे।
कलशमरसारौ च शुभदौ परिकीर्तितौ॥ शि.र. १२/२०८

गर्भगृह से छज्जा की चौड़ाई सवा गुनी करें। अथवा एक तिहाई या आधा भाग भी बढ़ा सकते हैं। दीवार व छज्जा युक्त मंदिर शुभ आय में बनायें। कोना, प्रतिरथ, भद्र आदि अंगवाला तथा तिलक तवंगादि भूषणवाला शिखर बद्ध काष्ठ मन्दिर घर में न रखें। ऐसा काष्ठ मन्दिर घर में रखना उचित नहीं हैं किन्तु यदि तीर्थया ंघ में रखें तो कोई दोष नहीं है। तीर्थमार्ग में जिन दर्शन हेतु काष्ठ मन्दिर ले जाया जा सकता है। यात्रा से आने के बाद उसे घर मन्दिर में न रखें बल्कि रथशाला या जिनमंदिर में रखें। **

गृह मन्दिर में मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं महावीर स्वामी की प्रतिमा अतिवैराग्यकर होने के कारण नहीं रखना चाहिये। शेष २१ तीर्थंकरों की प्रतिमा ही रखें। #

सावधानी :- गृह मंदिर में शिखर पर ध्वजादण्ड नहीं रखना चाहिये। सिर्फ आमलसार कलश ही रखना चाहिये।##

विभिन्न दिशाओं में गृह चैत्यालय बनाने का फल

दिशा	फल
पूर्व	शुभ, ऐश्वर्य लाभ, प्रतिष्ठा, यश की प्राप्ति.
आग्नेय	अशुभ, पूजा आराधना निष्फल
दक्षिण	अशुभ, शत्रुवृद्धि
नैऋत्य	भूत पिशाच बाधा में वृद्धि, अशुभ
पश्चिम	अशुभ, ऐश्वर्य हानि, धननाश
वायव्य	अशुभ, रोगोत्पत्ति
उत्तर	शुभ धन लाभ ऐश्वर्य प्राप्ति
ईशान	शुभ सुख समाधान शांति सर्वकार्य सिद्धि

गृह मन्दिर बनाते समय यह आवश्यक है कि लम्बाई चौड़ाई बराबर हो तथा ध्वज आय एवं देवगण ही आये। ऐसा नक्षत्र आये जिसका देवगण हो। उदाहरण के ४१ अंगुल लं. चौ. बनाने पर ये दोनों आयेंगे।

**कर्ण प्रतिरथ भद्रोरुश्रृंगतिलकान्वितः।
काष्ठाप्रासादः शिखरी प्रोक्तो तीर्थ शुभावहः ॥ उ.श्रा. २०९

नेमिश्च मल्लिनाथश्च वीरो वैराग्यकारकः
त्रयो वै मंदिरे स्थाप्याः शुभदा न गृहे मताः। शि.र.१२/१०५
#मल्ली नेमी वीरो गिहभवणे सावए ण पूइज्जइ।
इगवीसं तित्थयरा संतगरा पूइया वन्दे ॥ प्रतिष्ठा कल्प, उपाध्याय सकलचन्द्र

##व.सा.३/६८

गृह चैत्यालय में प्रतिमा स्थापन के लिए निर्देश

१- जिस तीर्थंकर की मूर्ति गृह मन्दिर में रखना इष्ट है, उनकी तथा गृह स्वामी की राशि गुण का मिलान करके ही मूर्ति रखें। जिस तीर्थंकर की राशि गृह स्वामी की राशि के अनुकूल हो उसे ही रखें।

२- गृह मन्दिर में पाषाण, लेप, चित्र जो लौह रंग से बने हों , हाथी दांत तथा काष्ठ की प्रतिमा कदापि न रखें। केवल धातु या रत्न प्रतिमा गृह मन्दिर में रख सकते हैं।

३- गृह मन्दिर में केवल पद्मासन प्रतिमा ही रखना चाहिये।

४- घर में बिना परिकर वाली प्रतिमा अर्थात् सिद्ध प्रतिमा नहीं रखना चाहिये।

५- गृह चैत्यालय इस प्रकार स्थापित करना चाहिये कि भगवान की पीठ मुख्य वास्तु या घर की तरफ न आये। अन्यथा गृह स्वामी को तन, मन, धन एवं जन की हानि की संभावना रहती है।

६- गृह चैत्यालय इस प्रकार स्थापित करें कि वह घर के उत्तरी, पूर्वी अथवा ईशान भाग में आये। अन्य दिशाओं में स्थापना करना अशुभ फलदायक होता है। गृह चैत्यालय में स्थापित प्रतिमा का बायां भाग की तरफ घर / वास्तु का होना अशुभ है।

गृह चैत्यालय में रखने योग्य प्रतिमा का आकार

गृह चैत्यालय में कोई भी प्रतिमा का आकार एक से ग्यारह अंगुल के मध्य होना चाहिये। यह भी सिर्फ विषम अंगुलों में होना अति आवश्यक है।

सम अंगुलों की प्रतिमा विपरीत फल देती है।* &

विषम अंगुलों के आकार की प्रतिमा के पूजन का फल

प्रतिमा का आकार अंगुल में	फल
एक	श्रेष्ठ
तीन	धन धान्य वृद्धि
पांच	उत्तम बुद्धि ज्ञान वृद्धि
सात	गोधन वृद्धि, धन धान्य, परिवार की उन्नति
नौ	पुत्र वृद्धि
ग्यारह	सर्वमनोरथ पूरक

---

*एकांगुला भवेत श्रेष्ठा द्व्यंगुला धननाशिका।
त्र्यंगुला वृद्धिदा ज्ञेया वर्जयेत् चतुरंगुलाम्॥ शि.र. १२/१४९
पंचागुला भवेद् वृद्धिरुद्वेगंच षडंगुला।
सप्तांगुला नवा वृद्धिर्हीना चाष्टांगुला सदा॥ शि.र. १२/१५०
नवांगुला सुतं दद्याद् द्रव्यहानिर्दशांगुला।
एकादशांगुलं बिम्बं सद्यः कामार्थ सिद्धिदम्॥ शि.र. १२/१५१ &उ.श्रा. १०१ से १०३

सम अंगुलों के आकार की प्रतिमा के पूजन का फल

प्रतिमा का आकार अंगुल में	फल
दो	धननाशकारक
चार	पीड़ादायक, रोगोत्पत्ति
छह	उद्वेग
आठ	हानि, बुद्धि क्षीण
दस	धन नाश
बारह	अशुभ

गृह चैत्यालय में शुचिता प्रकरण

निवास स्थान में पूजा पाठ के लिए मन्दिर की आवश्यकता होती है। मन्दिर का स्थान गृह के ईशान भाग में बनाना चाहिये। ईशान के अतिरिक्त पूर्व अथवा उत्तर में भी गृह चैत्यालय बनाये जा सकते हैं। गृह में चैत्यालय बनाने के साथ ही उसकी पवित्रता शुचिता का ध्यान रखना परम आवश्यक है। ऐसा न करने पर भीषण विपरीत परिणामों का आगमन संभावित होता है।

गृह चैत्यालय की शुचिता के लिए निर्देश

१. इसके भीतर बगैर स्नान किए तथा अशुद्ध वस्त्र पहने नहीं जाये।
२. मासिक धर्म वाली महिलाएं एवं युवतियां किसी भी स्थिति में इसमें प्रवेश न करें। न ही इसके दरवाजे पर खड़े या बैठे रहें।
३. मासिक धर्म वाली स्थिति में नारियों अपनी छाया किसी भी भगवान के मन्दिर, प्रतिमा अथवा चित्र पर नहीं पड़ने देवें।
४. गृह चैत्यालय अथवा लघु देव स्थान ऐसे स्थान पर न बनाये, जिसके ठीक लगकर शौचालय, मूत्रालय, कचराघर अथवा जूते-चप्पल रखने का स्थान हो।
५. जहाँ पर देव स्थान अथवा चैत्यालय हो उसके ऊपर कोई वजन न रखें।
६. चैत्यालय सीढ़ी के नीचे कदापि न बनायें।
७. ऐसे स्थान, जहाँ से बहुत से लोगों का आना-जाना होता है, वहाँ यदि शुचिता संभव न हो तो चैत्यालय नहीं बनाये।
८. चैत्यालय जिस काष्ठ से बनाया गया है वह पुरानी उपयोग की हुई लकड़ी न हो। केवल अच्छी लकड़ी का ही बनायें।
९. सेप्टिक टैंक के ऊपर गृह चैत्यालय नहीं बनायें।
१०. चैत्यालय में स्थित प्रतिमाओं का अभिषेक जल (गन्धोदक) तथा पूजा में चढ़ाये गये द्रव्य (निर्माल्य) का उल्लघंन न करें तथा इसे ऐसे स्थान पर रखावें जहां पर इसका अविनय न हो।
११. प्रतिमाओं की स्वच्छता रखना गृहस्थ का कर्तव्य है अतएव चैत्यालय में इस प्रकार व्यवस्था रखें कि धूल, गंदगी, प्रदूषण वहाँ प्रवेश न करें।
१२. यह सावधानी रखें कि किसी भी स्थिति में चैत्यालय में मकड़ी के जाले न लगें।

पूजा करने की दिशा

उपासक को पूजन करते समय अपने मुख की दिशा का ध्यान रखना आवश्यक है। जैनाचार्यों ने पूजा प्रकरणों में इसका उल्लेख किया है। आचार्य उमास्वामी कृत श्रावकाचार में इसका स्पष्ट निर्देश है -

पूजा पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके ही करना चाहिए। यदि प्रतिमा उत्तर मुखी हो तो पूजक को पूर्व की ओर मुख करके पूजा करना चाहिए। यदि प्रतिमा पूर्व मुखी हो पूजक को उत्तर मुख होकर पूजा करना चाहिए।* अन्य दिशाओं की तरफ मुख करके पूजा करने का फल नहीं मिलता न ही पूजा में पूजक का मन लगता है।**

पूजन करते समय बैठने का आसन

पूजन करते समय पद्मासन से बैठकर, पर्यंकासन या सुखासन से बैठकर पूजन करना चाहिए। भगवान जिनेन्द्र देव की पूजन करते समय अपना मुख पूर्व या उत्तर में ही रखें।# पूजा करते समय नासाग्रदृष्टि रखें, मौनपूर्वक मुख ढक कर पूजा करना चाहिए।&

विभिन्न दिशाओं में मुख करके पूजन का फल $

पूजा करने की दिशा का नाम	फल
पश्चिम	संतति का अभाव
दक्षिण	संतति का नाश
आग्नेय	निरंतर धनहानि
वायव्य	संतति का अभाव
नैऋत्य	कुल क्षय
ईशान	सौभाग्य नाश
उत्तर	धन वृद्धि
पूर्व	सर्वलाभ, श्रेष्ठ, शांति

---

*स्नानं पूर्वमुखीभूय प्रतीच्यां दन्तधावनम्। उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि पूजा पूर्वोत्तरमुखी॥ उ.श्रा. ९७॥

**उदग्मुख स्वयं तिष्ठेत प्राग्मुखं स्थापयेज्जिनम्। उ. श्रा. पृ. ४६.

#पद्मासन समासीनः पल्यंकस्थोऽथवा स्थितः। पूर्वोत्तर मुखं कृत्वा पूजां कुर्याज्जिनेशिनाम्॥ उ. श्रा. पृ. ४७

&पद्मासन समासीनो नासाग्रन्यस्तलोचनः। मौनी वस्त्रावृतास्तोयं पूजां कुर्याज्जिनेशिनः॥ उ.श्रा. /१२४

$तथार्चकः पूर्वदिश चोत्तरस्यां न सम्मुखः। दक्षिणस्यां दिशायां च विदिशायां च वर्जयेत्॥ उ.श्रा.११६

पश्चिमाभिमुखः कुर्यात् पूजां चेच्छ्रीजिनेशिनाम्। तदास्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसंतति :॥ उ.श्रा.११७

आग्नेयां च कृता पूजा धनहानिर्दिनेदिने। वायव्यां संततिर्नैव नैऋत्यां तु कुलक्षयः॥ उ.श्रा.११८

ईशान्यां नैव कर्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी॥ उ.श्रा.११९

जिन मंदिरों से निकलने की विधि

जिन देव के समक्ष स्तोत्र, मंत्र , पाठ, पूजा आदि करें। जिस समय मंदिर से निकले उस समय जिन देव को बाहर निकलते समय पीठ न दिखावें। सम्मुख ही पिछले पैर चलकर द्वार का उल्लंघन करें। *

मंदिर में प्रदक्षिणा विधि का फल

जन्म जन्मांतर में किये गये पाप भी मन्दिर में प्रदक्षिणा देने से नष्ट हो जाते हैं। पाषाण निर्मित मेरु प्रासाद की प्रदक्षिणा का फल अत्यंत महान है। स्वर्ण के सुमेरु पर्वत की तीन प्रदक्षिणा करने का फल तथा मेरु प्रासाद की तीन प्रदक्षिणा का फल समान होता है। ** मन्दिर की प्रदक्षिणा देने का फल सौ वर्ष के उपवास के फल के समान होता है।#

प्रदक्षिणा विधि

विभिन्न देवों निम्न संख्या में प्रदक्षिणा देना चाहिए :-

जिन देव को	तीन
चण्डी देवी को	एक
सूर्य को	सात
गणेश को	तीन
विष्णु को	चार
महादेव को	आधी प्रदक्षिणा ##

मानस्तंभ की वन्दना

समवशरण के बाहर मानस्तंभ स्थित होते हैं। समवशरण के प्रतीक स्वरुप मन्दिर के समक्ष भी मानस्तंभ की रचना की जाती है। मानस्तंभ में चारों दिशाओं को मुख करके भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमाएं स्थापित की जाती हैं। अतएव मानस्तंभ की वन्दना भी जिनेन्द्र प्रभु की वन्दना की भांति ही की जाती है।

मान स्तंभ की वन्दना करते समय मानस्तंभ की प्रदक्षिणा देना चाहिये। पश्चात् मानस्तंभ में स्थित जिनेन्द्र प्रतिमाओं को नमस्कार करना चाहिये। & प्रदक्षिणा पूर्वक मानस्तंभ की वंदना करके उत्तम जिनेश्वर की भक्ति करने वाले उत्तम कुलीन धार्मिक जन समवशरण के भीतर प्रवेश करते हैं।

---

*अग्रतो जिनदेवस्य स्तोत्रमन्त्रार्चनादिकम्। कुर्यान्न दर्शयेत् पृष्ठं सम्मुखं द्वार लंघनम्॥ प्रा. मं. २/३४

**यानि कानि च पापानि जन्मांतर कृतानि च। तानि तानि विनश्यंति प्रदक्षिणा पदे पदे॥ शि. र. १३/३० प्रतिष्ठा विधि लक्षणाधिकार

प्रदक्षिणात्रयं कार्यं मेरु प्रदक्षिणायातम्। फलं स्याच्छैलराज्यस्य मेरोः प्रदक्षिणाकृते॥ प्रा. मं. ५/३५

फलं प्रदक्षिणी कृत्य भुक्ते वर्ष शतस्य तु। प. पु. ३१/१८१

एकां चण्ड्या सप्ततिस्रो दद्याद् विनायके। चतस्रो वासुदेवस्य शिवस्यार्धा प्रदक्षिणा॥ प्रा. मं. २/२३

&प्रादक्षिण्येन वंदित्वा मानस्तंभ मतादिकः। उत्तमा प्रविशन्त्यन्त उत्तमाहित भक्त्यः॥ हरि.पु. ५७/१७२

जैनेतर गृह मंदिर में निषेध *

घर में स्थापित मंदिर में सामान्यतः आस्था के अनुरुप एक से अधिक प्रतिमाएं रखी जाती हैं। कभी कभी अनुरागवश एक ही देव की अधिक प्रतिमाएं रख ली जाती हैं। गृहस्थ को चाहिये कि एक ही देव की अधिक प्रतिमाएं न रखे।

निम्नलिखित मूर्तियाँ गृह मंदिर में न रखें :-

१. दो शिवलिंग
२. तीन गणेश
३. तीन शक्ति
४. मत्स्य आदि दशावतार से चिन्हित प्रतिमा
५. तुलसी के साथ चंडी, सूर्य गणेश, दीप
६. दो द्वारिका चक्र
७. दो शालिग्राम
८. दो शंख

शास्त्रोक्त रीति से विपरीत गृह मंदिर में अधिक प्रतिमाएं रखने से गृहस्थ को उद्वेग व परेशानी होती है। अतएव अधिक प्रतिमाएं कदापि न रखें।

---

* गृहे लिंगद्वयं नार्च्यं गणेशत्रयमेव च।
शक्तित्रयं तथा शंखं मच्छादि (मत्स्यादि) दशकांकितम्॥ रुप मंडन २/२
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु शालिग्रामद्वयं तथा।
द्वौ शंखौ नार्चयेत् तद्वत् सूर्ययुग्मं तथैव च॥ रुप मंडन २/३
तेषां तु पूजनान्नूनमुद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही।
तुलस्यां नार्चयेच्चण्डीं दीपं (नैव) सूर्य गणेश्वरम्॥ रुप मंडन २/४

वसतिका एवं निषीधिका प्रकरण

वसतिका

गृह त्याग करके संयम मार्ग पर चलने वाले साधुगणों के लिये ठहरने के स्थान वसतिका नाम से जाने जाते हैं। ये स्थान तिर्यंच पशुओं- पक्षियों के आवागमन से मुक्त होवें तथा मौसम की विपरीत स्थितियों से सुरक्षित होना चाहिये। ये स्थान साधुगणों की चर्या, ध्यान, अध्ययन एवं तपस्या के लिये अनुकूल होना आवश्यक है।

साधुगण सामान्यतः मन्दिर के समीप ही स्थित साधु निवास अथवा धर्मशाला भवनों में ठहरते हैं। सामान्यतः साधुगण एक स्थान पर लम्बे समय तक नहीं ठहरते हैं। सिर्फ चातुर्मास अवधि में चार माह ठहरते हैं। ऐसी स्थिति में साधुगणों की चर्या ध्यान आदि क्रियाएं निर्विघ्न रुपेण चलती रहें, ऐसी व्यवस्था रखना पड़ती है। ऐसे भवन जिनमें साधुओं के ठहरने की व्यवस्था रखी जाती है, वसतिका कहलाते हैं। इन्हें त्यागी भवन या मुनि निवास भी कहते हैं।

तीर्थक्षेत्रों में मन्दिर परिसर में ही ऐसे भवनों का निर्माण किया जाता है। शहरों अथवा ग्रामों में प्राचीन काल से ही ऐसे मन्दिरों का निर्माण किया जाता है जो नगर के बाहरी भाग में स्थित होते थे इनमें मन्दिर परिसर में ही उपवन तथा साधु एवं धर्मात्माजनों के ठहरने के लिये धर्मशाला शैली के भवन बनाये जाते हैं। इन भवनों वाले परिसर को नसियां कहा जाता है। उत्तर-पश्चिम भारत में ये नसियां सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं।

वसतिका का सामान्य स्वरुप

वसतिका में प्रवेश एवं निर्गम सुखपूर्वक निराबाध हो सके। मजबूत दीवार एवं द्वारयुक्त होना आवश्यक है। ग्राम के बाहर होना इसकी प्रमुख आवश्यकता है। मुनि, आर्यिका श्रावक, श्राविका अर्थात् चतुर्विध संघ तथा बाल, वृद्ध सभी वहां आ जा सकें। भूमि समतल होना श्रेष्ठ है। ग्राम के अन्त में अथवा बाह्यभाग में वसतिका का निर्माण किया जाता है।*

वसतिका की मूलभूत आवश्यकतायें

१. वसतिका का स्थान खुली एवं संसक्त स्थानों से पर्याप्त दूर होना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे स्थान जो गन्धर्व नृत्य, गायन अथवा अश्व शालाओं के समीप हैं अथवा जहां कलहप्रिय अशिष्ट जन रहते हैं, वसतिका के लिये अनुपयुक्त हैं। राजमार्ग तथा जनोपयोगी वाटिका अथवा जलाशय के समीप भी वसतिका का निर्माण अनुपयोगी है। मूल भावना यह है कि वसतिका का स्थान ध्यान में बाधक न हो। **

---

*(भ.आ./मू./६३६-६३८)

**(भ. आ./मू./६३३-६३४ रा.वा./ ९/६/१५/५९७ बो.पा./टी./५७/१२०/२०)

वसतिका निर्माण के लिये दिशा निर्देश

मुनियों के ठहरने का स्थान मन्दिर परिसर में ही बनाया जाना हो तो इसे मन्दिर के उत्तर, दक्षिण, आग्नेय अथवा पश्चिम भाग में बनाया जाना चाहिये। इस स्थान में वायव्य कोण में धान्यगृह की स्थापना कर सकते हैं आग्नेय कोण में मुनियों के लिये चौके लगाने के कमरे बनाने चाहिये। ईशान कोण में पुष्प वाटिका बनायें ताकि संघस्थ त्यागीगण पूजा-अर्चना के लिये पुष्प संचय कर सकें।

वसतिका के नैऋत्य भाग में भारी सामान का कक्ष बनायें। अग्रभाग में अर्थात् पूर्व में यज्ञशाला बनाना चाहिये। पश्चिमी भाग में जल स्थान बनायें। आगे के भाग में शिक्षण के लिये पाठशाला तथा व्याख्यान भवन का निर्माण किया जा सकता है।

वसतिका अथवा त्यागी भवन के दक्षिणी भाग में साधुओं के ठहरने के कक्ष बनाना चाहिये। नैऋत्य भाग के कक्ष में संघ नायक आचार्य श्री के लिये कक्ष बनायें। *

दो एवं तीन मंजिल की वास्तु का निर्माण मठ अथवा त्यागी भवन के लिये किया जा सकता है। सामने के भाग में सुशोभित बरामदा बनायें तथा उसके आगे कटहरा बनायें। ऊपर की छत्त खुली रखें।**

वसतिका का प्रवेश पूर्व अथवा उत्तर अथवा ईशान में होना चाहिये। धरातल का ढलान भी इन्हीं दिशाओं में करें। दक्षिणी दीवालों में खिड़की, दरवाजे अत्यंत आवश्यक हों तभी बनाएं। वसतिका के कक्षों को निर्माण इस प्रकार करना चाहियें कि किसी भी कक्ष में ऊपरी बीम बैठने के अथवा शयन के स्थान पर न आये। द्वार एवं बाहरी परिसर के निर्माण में वेध दोष का परिहार अवश्य करें। वास्तु निर्माण के सभी नियम वसतिका के निर्माण के लिये भी पालन करें।

वसतिका निर्माण में सादगी होना अत्यंत आवश्यक है। भवन की निर्माण शैली मन्दिर अथवा धर्मशालानुमा होना चाहिये न कि होटल अथवा आरामगाहनुमा। यह स्मरण रखना अत्यंत आवश्यक है कि वसतिका त्यागी व्रती संयमी साधुओं के ठहरने के लिये है न कि गृहस्थों के विश्राम के लिये। अतएव इसमें किसी भी प्रकार से विलासिता श्रृंगार अथवा कामुकता की झलकमात्र भी नहीं आना चाहिये अन्यथा वसतिका निर्माण का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा।

वसतिका की रंगयोजना में केवल सफेद रंग ही करना चाहियें। फीके रंगों का भी प्रयोग किया जा सकता है। गाढ़े रंगों का प्रयोग वसतिका में न करें। वसतिका में सजावट के लिये ऐसी कोई भी चित्रकारी आदि न करें जो ध्यान में विपरीत वातावरण निर्माण करती हो।

प्राचीनकाल में वसतिका का निर्माण घास-फूस अथवा मिट्टी से भी किया जाता था। मूल भावना सादगी की थी। वर्तमान युग में ऐसा करना अनुपयुक्त एवं अव्यवहारिक प्रतीत होता है। गुफा, कंदरा आदि में ध्यान करना तथा भीषण वनों के मध्य रहना विभिन्न कारणों से संभव नहीं हो पाता। अतएव मुनिगणों के लिये वसतिका का निर्माण करना उपयोगी है।

---

*प्रासादस्योत्तरे याम्ये तथाग्नौ पश्चिमेऽपि वा। यतीनामाश्रमं कुर्यान्मठं तद्द्वित्रिभूमिकम्॥ प्रा. मं. ८/३३
कोष्ठागारं च वायव्ये वन्हिकोणे महानसम्। पुष्पगेहं तथेशाने नैर्ऋत्ये पात्रमायुधम्॥ प्रा. मं. ८/३५
तिथिरिक्तां कुजं धिष्णयं क्रूरविद्धं विधुं तथा। दग्धातिथिं च गण्डान्तं चरमोपग्रहं त्यजेत्॥ प्रा. मं. ८/३९
**द्विशालमध्ये षड्दारुः पट्टशालाग्रे शोभिता। मत्तवारणमग्रे च तदूर्ध्वं पट्टभूमिका॥ प्रा.मं. ८/३४

निषीधिका

अर्हन्तादि अथवा मुनियों की समाधि के स्थल को निषीधिका कहा जाता है। दूसरे शब्दों में इसे निषिद्धिका भी कहते हैं जिसका अर्थ है निषिद्ध स्थल। सामान्यजनों का यहां साधारणतयां सुगम आवागमन नहीं होता।

भगवती आराधनाकार आचार्य शिवार्य जी का उल्लेख है कि निषीधिका ऐसे प्रदेश में हो जो कि एकान्त स्थल हो, अन्य जनों को साधारणतः दृष्टि में न आये। यह प्रकाश सहित होना चाहिये। यह नगर से कुछ दूर हो तथा विस्तीर्ण, प्रासुक एवं दृढ़ होना चाहिये। यह स्थान चींटी आदि कीटों से मुक्त हो, छिद्र रहित तथा घिसा हुआ न हो। यह स्थल विध्वस्त, टूटी वास्तु न हो तथा नमी रहित हो। निषीधिका समतल भूमि पर होना आवश्यक है। स्थल जन्तु रहित होना चाहिये।

मुनिगण ऐसे स्थल का चयन करने के उपरान्त उसका प्रतिलेखन करते हैं अर्थात् पीछी से उस स्थल को साफ करते हैं। चातुर्मास योग के प्रारंभ काल में तथा ऋतु प्रारंभ के समय सभी साधुओं को यह क्रिया अवश्यमेव करना चाहिये।

निषीधिका निर्माण की दिशा

आचार्यों ने निषीधिका का स्थान क्षपक की वसतिका (मुनियों का विश्राम स्थल) से नैऋत्य, दक्षिण अथवा पश्चिम दिशा में होना शुभ एवं कल्याणकारक बताया है।

विभिन्न दिशाओं में निर्मित निषीधिका का फल निम्नलिखित रुप से दर्शाया गया है :-

दक्षिण दिशा में	-	संघ को सुलभता से आहार प्राप्ति
पश्चिम दिशा में	-	संघ का सुगम विहार, पुस्तक एवं उपकरणादि की समयानुकूल प्राप्ति
नैऋत्य दिशा में	-	संघ के लिए हितवर्धक, बोधि एवं समाधि का कारण
आग्नेय दिशा में	-	संघ में वातावरण दूषित, साधुओं में अभिमान की स्पर्धा
वायव्य दिशा में	-	संघ में कलह एवं फूट का वातावरण निर्माण की संभावना
ईशान दिशा में	-	व्याधि एवं आपसी खींचातानी का वातावरण निर्माण
उत्तर दिशा में	-	मुनि मरण

अतएव निषीधिका का निर्माण वसतिका के दक्षिण, नैऋत्य अथवा पश्चिम ही करना शुभ है। अन्यत्र निषीधिका कदापि न बनायें। *

---

*भगवती आराधना/मू./१९६७-१९७०/१७३५.म.आ./वि./१४३/३२६-१

निषीधिका की पूज्यता

निर्वाण भूमि को निषीधिका कहा जाता है। निर्वाण भूमि से जो आत्मायें सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं वे उस भूमि को भी पूज्य बना देते हैं। प्राचीनतम ग्रन्थों में भी निषीधिका को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए उसे पूज्य कहा गया है।

अंतिम तीर्थंकर वर्धमान स्वामी के प्रथम गणधर गौतमस्वामी कृत प्रतिक्रमण ग्रंथों में उन्होंने स्पष्ट कहा है - सिद्ध अर्थात् निषीधिका को नमस्कार है, अरहंतों को नमस्कार है सिद्धों को नमस्कार है। *

आचार्य प्रभाचन्द्र ने संस्कृत टीका में निषीधिका के सत्रह अर्थों में इसका अर्थ सिद्ध जीव, निर्वाण क्षेत्र तथा उनके आश्रित आकाश प्रदेश किया है।**

गाथा का अर्थ इस प्रकार है:-

अर्थात् सिद्ध, सिद्ध भूमि, सिद्ध के द्वारा आश्रित आकाश के प्रदेश आदि निषीधिकाओं की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

महान आचार्य कुन्दकुन्द कृत षटप्राभृत की टीका में श्रुतसागर सूरि # का कथन दृष्टव्य है:-

जो लोग देव, शास्त्र, गुरु की प्रतिमा एवं निषीधिका की पुष्प आदि से पूजन करने के प्रति द्वेष करते हैं, वे पाप करते हैं तथा उस पाप के प्रभाव से वे नरकादि दुर्गतियों में पतित होते हैं।

आचार्य नेमिचन्द्र ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रतिष्ठा तिलक शास्त्र में निषीधिका की यथोक्त प्रतिष्ठा करके उसकी पूजन करने का स्पष्ट निर्देश दिया है।

निषीधिका स्थल भी जिनालय की भांति ही पूज्य स्थल है अतएव इसकी पूज्यता में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।

वर्तमान काल में निषीधिका

दक्षिण भारत में कोल्हापुर, कुम्भोज, नांदणी, शेडवाल, रायबाग, तेरदाल, अक्किवाट, में निषीधिकायें हैं। कर्नाटक में श्रवणबेलगोला में चन्द्रगिरि पर्वत पर आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी की निषीधिका है।

---

*णमोत्थुदे णिसीधिए णमोत्थु दे अरहंत

**सिद्धाय सिद्ध भूमी सिद्धाण समाहिओ णहो देसों।
एयाओ अण्णाओ णिसीहीयाओ सया वन्दे॥

#देवहं सत्थहं मुणिवरहं जो विद्वेसु करेइ।
नियमिं पाउ हवेइ तसु जें संसारु भमेइ॥

श्रुत सागर सूरि कृत भावार्थ - देव शास्त्र गुरुणां प्रतिमासु निषीधिकासु च पुष्पादिभिः पूजादिषु लोकाः द्वेषं कुर्वन्ति तेषां पापं भवन्ति, तेन पापेन ते नरकादौ पतन्ति इति ज्ञातव्यम्। (त्रि. म. पु. पृ.१२१)

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मंडप

मन्दिर में स्थापित की जाने वाली प्रतिमाओं के लिये एक विशेष महापूजा का आयोजन किया जाता है जिसे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का नाम दिया जाता है । इसमें यज्ञ क्रिया भी होती है। इन सबके लिये शास्त्रों में पृथक-पृथक निर्देश दिये गये हैं।

मन्दिर के आगे अर्थात् पूर्व तथा ईशान अथवा उत्तर दिशा में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूजा महोत्सव का मंडप बनाना चाहिये।

मन्दिर से इस मण्डप की दूरी ३,५,७,९,११ या १३ हाथ होना चाहिये। इस मण्डप की आकृति वर्गाकार होना चाहिये। आकार का प्रमाण ८,१०,१२ या १६ हाथ के मान का होना चाहिये। यदि विशाल कुण्ड बनाये जायें तो बड़ा मंडप भी बनाया जा सकता है। मंडप १६ स्तंभों का बनाना चाहिये। इसे तोरणों से शोभायुक्त करना चाहिये। मंडप के मध्य में वेदिका बनायें। यज्ञ के लिये ५,८ या ९ कुण्ड बनाना चाहिये। *

वर्तमानकाल में पंचकल्याणक महोत्सवों का स्वरुप अत्यंत विशाल हो गया है। इनमें अत्यधिक व्यय भी हो रहा है। पंचकल्याणक पूजा उत्सव पूरी गंभीरता के साथ विधि विधान पूर्वक ही करवाना चाहिये। इसमें किसी भी प्रकार की असावधानी आयोजनकर्ताओं को असीम संकट में डाल सकती है।

पंचकल्याणक पूजा में यज्ञकुण्ड

दिशाओं के अनुरुप यज्ञकुण्डों का आकार पृथक -पृथक रखा जाता है **-

पूर्व	वर्गाकार
आग्नेय	योन्याकार
दक्षिण	अर्धचन्द्राकार
नैऋत्य	त्रिकोण
पश्चिम	गोल
वायव्य	षट्कोण
उत्तर	अष्टदल पद्माकार
ईशान	अष्टकोण

ये कुण्ड अष्ट दिशाओं के दिक्पालों के लिये निर्मित किये जाते हैं। पूर्व एवं ईशान दिशा के मध्य भाग में (पूर्वी ईशान में) आचार्य कुण्ड बनायें। इसका आकार गोल या वर्गाकार रखें।

ये कुण्ड अष्ट दिशाओं के दिक्पालों के लिये निर्मित किये जाते हैं। पूर्व एवं ईशान दिशा के मध्य भाग में (पूर्वी ईशान में) आचार्य कुण्ड बनायें। इसका आकार गोल या वर्गाकार रखें।

---

*प्रा.मं. ८/४१, ४२,४३, **मंडप कुंड सिद्धि / ३२ (प्रा.म. ८)

कुण्डों का आकार एवं विस्तार

आहुतियों की संख्या के अनुरुप ही कुण्ड का विस्तार रखा जाता है -

आहुतियों की संख्या	**यज्ञ कुण्ड का मान**
१० हजार आहुतियों के लिए	१ हाथ (२ फुट) का कुण्ड
५० हजार आहुतियों के लिए	२ हाथ (४ फुट) का कुण्ड
१ लाख आहुतियों के लिए	३ हाथ (६ फुट) का कुण्ड
१० लाख आहुतियों के लिए	४ हाथ (८ फुट) का कुण्ड
३० लाख आहुतियों के लिए	५ हाथ (१० फुट) का कुण्ड
५० लाख आहुतियों के लिए	६ हाथ (१२ फुट) का कुण्ड
८० लाख आहुतियों के लिए	७ हाथ (१४ फुट) का कुण्ड
१ करोड़ आहुतियों के लिए	८ हाथ (१६ फुट) का कुण्ड

•कुण्ड की तीन मेखलायें ४,३,२ अंगुल/इंच की रखना चाहिये । प्रा. मं. ८/४५,४६,४७

पूर्व

ईशान आग्नेय

उत्तर वेदी दक्षिण

वायव्य नैऋत्य

पश्चिम
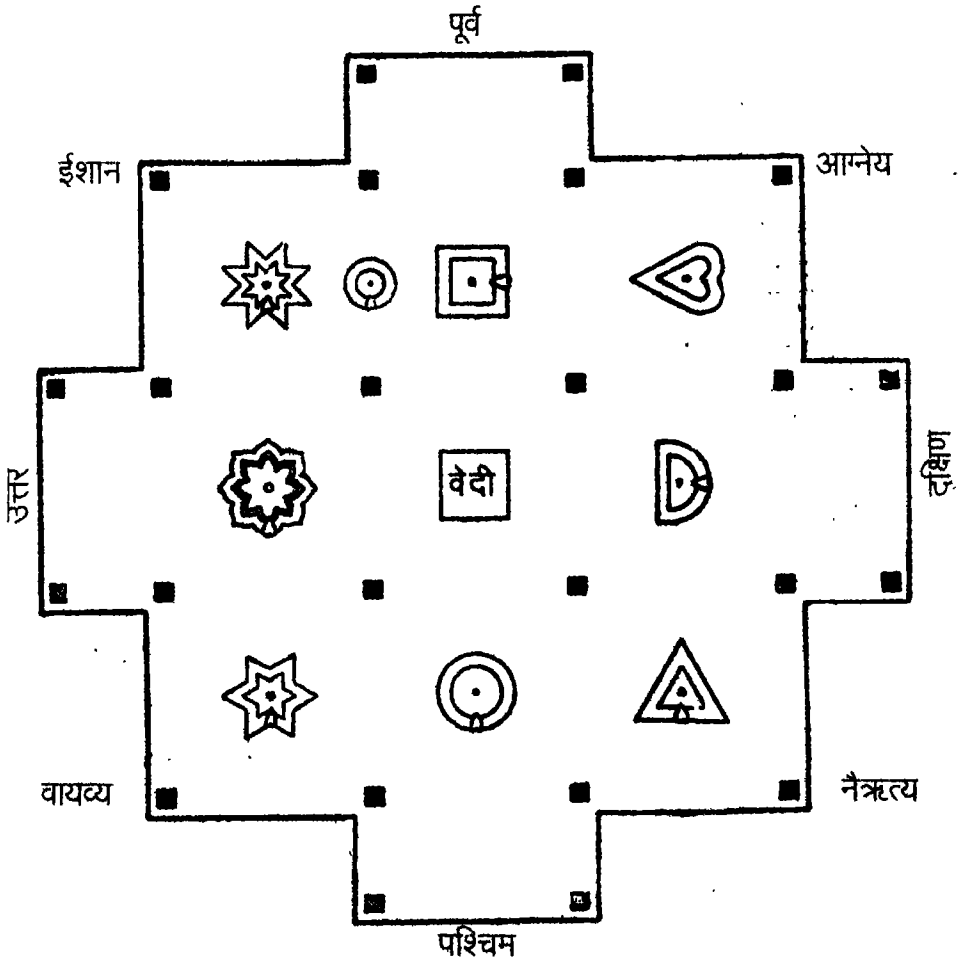
प्रतिष्ठा मण्डप

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा मण्डप का आकार १५० हाथ लम्बा तथा १०० हाथ चौड़ा रखें। उसमें वेदी का चबूतरा २४ हाथ लम्बा एवं इतना ही चौड़ा वर्गाकार बनायें। वेदी की ऊंचाई २ से ४ हाथ रखें। इसमें ही मध्य में एक वर्गाकार वेदी ८ हाथ लम्बी तथा इतनी ही चौड़ी बनायें। इसे यागमण्डल वेदी कहते हैं। इसकी ऊंचाई १/६ हाथ रखें। इसी के सामने ४ हाथ लम्बा-चौडा समवशरण मण्डल बनायें। इसके पीछे १ हाथ के अन्तर से तीन कटनी बनवायें जो २-२ हाथ चौड़ी तथा १-१ हाथ ऊंची हो। पीछे की दीवाल की ऊंचाई ३,१/२ हाथ रखें।

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा मंडप
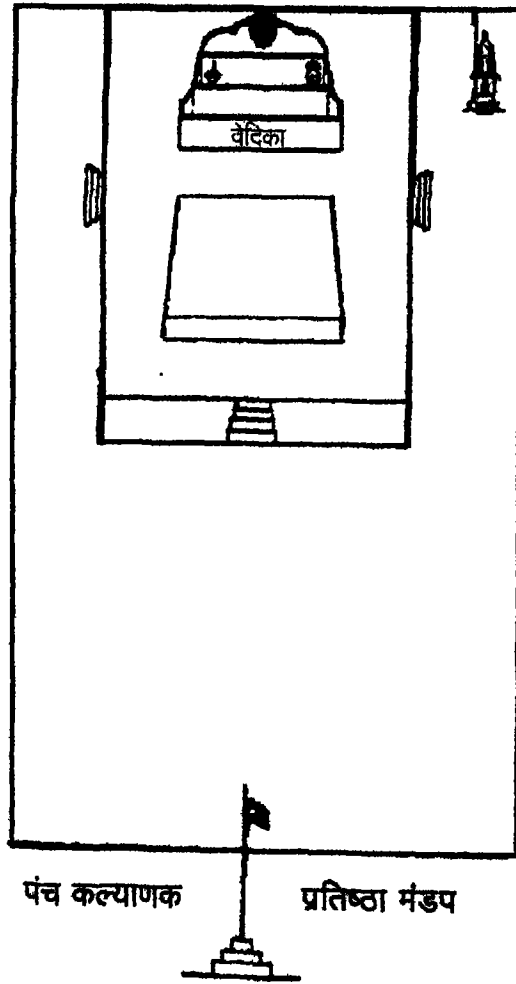
पांडुक शिला

प्रतिष्ठा मण्डप से उत्तर दिशा में पांडुक शिला की रचना की जाती है। सर्वप्रथम चार हाथ (आठ फुट) ऊंची आठ हाथ (१६ फुट) व्यास की प्रथम कटनी बनायें। इसके ऊपर ३,१/२ हाथ (७ फुट) ऊँची, चार हाथ (आठ फुट) व्यास की दूसरी कटनी बनायें। इसके ऊपर २,१/२ हाथ (५ फुट) ऊँची १ हाथ (२ फुट) व्यास की तीसरी कटनी बनायें। तीनों कटनी पूर्ण वृत्ताकार होना चाहिए। अभिषेक जल निकालने के लिए टकी हुई नलिका लगायें। ऊपर चढ़ने के लिए पूर्व से चढ़ती हुई सीढ़ियां बनायें। सुविधा के लिए पश्चिम में भी सीढ़ी बना सकते हैं। पांडुक शिला ऐसे खुले स्थान में बनायें जहां गजराज (ऐरावत हाथी)शिला की परिक्रमा कर सके।

पांडुक शिला सुमेरु पर्वत के ऊपरी भाग में होती है जिसके ऊपरी अर्धचन्द्राकृति शिला पर नवजात भगवान को इन्द्र ले जाकर अभिषेक करता है। उसी परम्परा का निर्वहन कर पंचकल्याणक उत्सव में पाण्डुक शिला बनाकर उस पर विधिनायक प्रतिमा को रखकर अभिषेक किया जाता है।
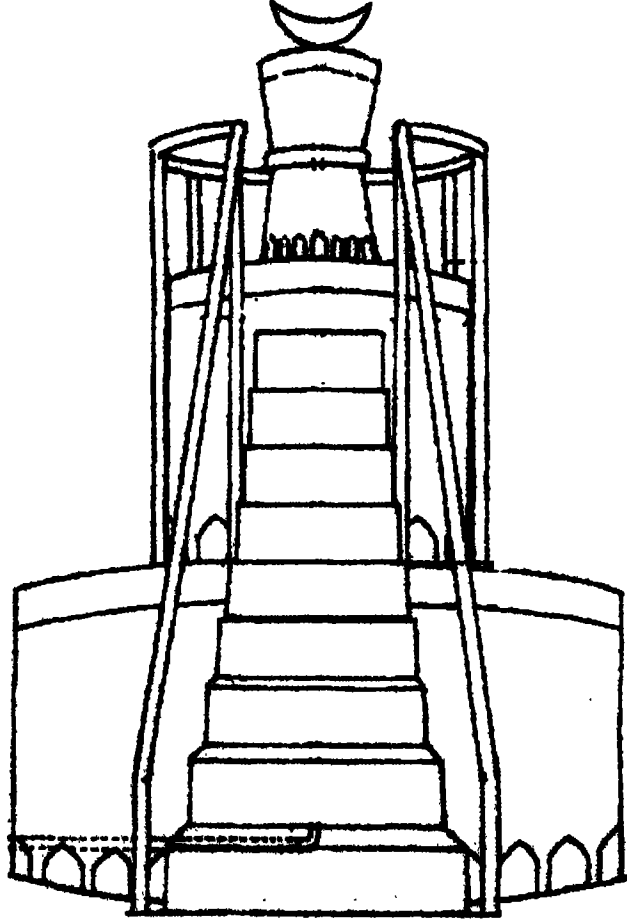
प्रतिष्ठा हेतु पांडुक शिला

स्तूप

स्तूप एक पवित्र स्मारक रचना है। सिद्ध पुरुषों के मोक्ष गमन स्थल पर सामान्यतः इनका निर्माण किया जाता है। स्मारक के रुप में एक ऊँची स्थायी ठोस संरचना निर्माण की जाती है। जैन तथा बौद्ध धर्मों के स्तूप निर्माण की प्राचीन परम्परा है।

स्तूप शब्द का प्राकृत रुप थूप है। इसका अर्थ है ढेर लगाना। यह एक पुण्य स्थान है, जिसमें भस्म को प्रतिष्ठापित किया जाता है। स्तूप के स्थान में पवित्रता की भावना तथा अशुद्धि से रक्षा करने की भावना निहित है। भस्म को एक पात्र में रखा जाता है। भस्म पात्र का निचला भाग धातु गर्भ कहलाता है। इसके ऊपर ही स्तूप संरचना का निर्माण किया जाता है।

जैन परम्परा में स्तूप में अरिहनत सिद्ध की प्रतिमाओं से चित्र विचित्र सुसज्जित किया जाता है। समवशरण में भवन भूमि की भवन पंक्तियों में स्तूप की रचना होती है।

भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभदेव के अग्नि संस्कार स्थल पर तीन बड़े स्तूप बनवाये तथा अनेक छोटे स्तूप बनाये साथ ही सिंह निषद्या नामक एक योजन विस्तार का चतुर्मुख जिनालय बनवाया।

बौद्ध स्थापत्य में स्तूप उल्टे टोकरे के आकार के बनाये जाते हैं। बौद्ध स्तूपों का निर्माण सम्राट अशोक (२६२-२३२ ई. पू.) के समय से अधिक किया गया। गुप्तकाल में जैन एवं बौद्ध दोनों स्तूपों का निर्माण किया गया।

जैन स्तूप बौद्ध स्तूपों से अधिक प्राचीन मिलते हैं। मथुरा में स्थित जैन स्तूप ईसा पूर्व का था। खंडरों से ज्ञात होता है कि उसका तल भाग गोलाकार था जिसका व्यास ४७ फुट था। उसमें केन्द्र से परिधि की ओर बढ़ते हुए व्यासार्ध वाली ८ दीवालें ईटों से चुनी गई थी, ईटें छोटी बड़ी है, स्तूप के बाह्य भाग में जिन प्रतिमाएं थी। ऐसा लगता है कि आसपास तोरण द्वार एवं प्रदक्षिणा पथ रहा होगा।

बौद्ध स्तूप को चैत्य भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है चिता की भस्म को चुनकर एक पात्र में रखकर उस पर निर्मित स्मारक। चैत्य शब्द का जैन परम्परा में अर्थ जिन प्रतिमा तथा चैत्यालय का अर्थ जिन मन्दिर माना जाता है।
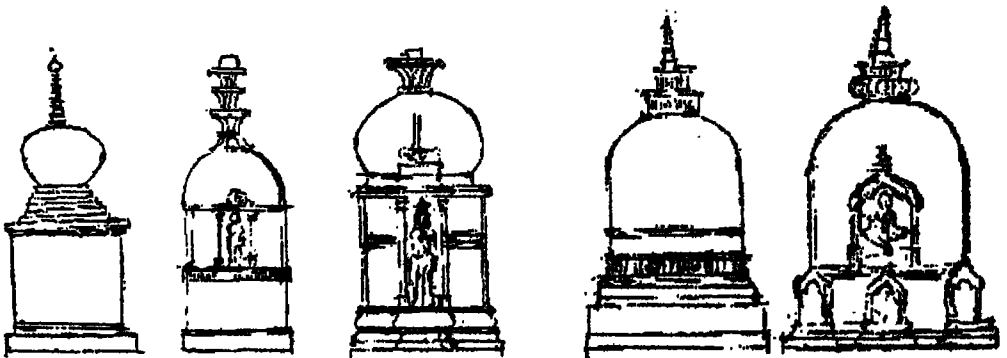
जैन और बौद्ध स्तूप

खण्डित प्रतिमा प्रकरण

खंडित प्रतिमाओं के विषय में सामान्य उपासक के मन में अनेकों भ्रमात्मक जानकारी होती है। प्रतिमा पूजन करते करते समय के साथ घिस जाती है तथा उसके अंगउपांग घिस कर लुप्त हो जाते हैं। लापरवाही अथवा दुर्घटनावश भी प्रतिमा खंडित हो सकती है। ऐसी स्थिति में प्रतिमा की पूज्यता के विषय में संदेह हो जाता है। आगम ग्रन्थों के मतानुसार ही निर्णय लेना श्रेयस्कर है।

अपूज्य खंडित प्रतिमा

जिस प्रतिमा के नाक, मुख, नेत्र, हृदय, नाभि आदि अंगोपांग खंडित हो गये हो, उनकी पूजा नहीं करना चाहिये।

खण्डित, जली हुई, तिड़की हुई, फटी हुई, टूटी हुई प्रतिमा पर मन्त्र संस्कार नहीं रहते। वह पूज्यनीय नहीं रहती है। मस्तक आदि से खंडित प्रतिमा सर्वथा अपूज्य रहती है।

अतिशय सम्पन्न प्रतिमाओं के संबंध में खंडित प्रतिमा होने पर वे प्रतिमा अपूज्य नहीं मानी जाती। यदि प्रतिमा का स्वरुप ही भंग हो गया हो तो प्रतिमा पूज्य नहीं रहती। यदि सौ से अधिक वर्षों से किसी प्रतिमा की पूजा की जा रही हो तो वह प्रतिमा दोष युक्त रहने पर भी पूज्य होती है। यदि प्रतिमा महापुरुषों के द्वारा स्थापित हो तो उसके विकलांग होने अथवा किंचित खंडित होने पर भी प्रतिमा पूज्य है, उसका पूजन सार्थक होता है।

प्रतिमा खंडित हो जाने पर कर्तव्य

यदि किसी व्यक्ति के हाथ से प्रतिमा खंडित हो जाये अथवा किसी दुर्घटना से प्रतिमा खंडित हो जाये तो इस विधि का अनुकरण करें -

सर्वप्रथम शांति मन्त्र अथवा णमोकार मन्त्र की १५० माला फेरकर जाप करें। तदनन्तर पूजन विधान करें। शांति विधान, पंच परमेष्ठी विधान अथवा चौबीस तीर्थंकर विधान में से किसी एक विधान का पूजन कर सकते हैं।

जिन तीर्थंकर की प्रतिमा खंडित हुई हो उसी तीर्थंकर की प्रतिमा रखें तथा १००८ कलशों से जल एवं पंचामृत अभिषेक विनय पूर्वक करना चाहिये। विधान समाप्त होने के उपरांत णमोकार मन्त्र पढ़कर १०८ होम आहुति देवें। इसके उपरांत प्रतिमा (खंडित) को कपड़े में बांधकर विनयपूर्वक अगाध जल में विसर्जित कर देवें।

प्राकृतिक आपदा आने पर कर्त्तव्य

यदि मन्दिर वास्तु अथवा परिसर में कोई प्राकृतिक आपदा आती है जैसे बाढ़, भूकम्प, बिजली गिरना, दुर्घटना इत्यादि तो प्रथम मन्दिर की सफाई करें तथा पश्चात् भगवान का पूजन करें। इसके उपरान्त वृहद शांति यज्ञ तथा पुण्याह वाचन करना चाहिये। इसके पश्चात् जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ करें।

खंडित प्रतिमाओं का संरक्षण

प्राचीन काल से ही प्रतिमाओं के भंग हो जाने पर उनके विसर्जन कर देने की परम्परा है। किन्तु वर्तमान काल में इसमें एक नई शैली विकसित हुई है। इन प्रतिमाओं को पुरातत्व की दृष्टि से अमूल्य निधि माना जाता है। इन प्रतिमाओं को देखकर प्राचीन इतिहास, वास्तु शिल्प, मूर्तिकला इत्यादि के विषय में विस्तृत जानकारी मिल जाती है। धर्म के गौरवशाली इतिहास से अन्य लोग परिचित भी होते हैं। अतएव यदि प्रतिमाओं एवं मन्दिरों के खण्डों का संरक्षण पुरातत्व की दृष्टि से किया जाये तो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

जिस भवन में प्राचीन प्रतिमाओं का संरक्षण किया जाना है, उसमें पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था हो तथा सीड़, दीमक आदि से सुरक्षित हो। वायु, धूल, आदि का प्रभाव सीधे न पड़ता हो, सीधे धूप न आती हो, प्रतिमाओं के सुरक्षित रखरखाव की पूरी व्यवस्था हो, ऐसा भवन ही संरक्षण के लिये उपयुक्त है। भवन का मुख उत्तर में हो तथा द्वार ईशान भाग में हो। प्रतिमाओं को दक्षिणी दीवाल तथा पश्चिमी दीवाल के समीप रखा जाये। ईशान भाग खाली रखें। वहां पर कार्यरत व्यक्ति उत्तर मुख बैठकर कार्य करे।

प्रतिमा खंडित होने पर प्रायश्चित्त

जिस व्यक्ति के हाथ से प्रतिमा खंडित हुई हो उसे उस दिन उपवास करना चाहिये तथा निग्रंथ आचार्य परमेष्ठी के पास जाकर विनयपूर्वक घटना का निवेदन कर प्रायश्चित की प्रार्थना करना चाहिये। साथ ही जिन तीर्थंकर की प्रतिमा भग्न हुई है, उन्हीं तीर्थंकर की प्रतिमा उसी आकार की स्थापित करवाना चाहिये। गुरु की आज्ञा अनुसार पूजन, विधान, दान आदि करवाना चाहिये। संकल्प पूरा होने तक रस त्याग आदि संकल्प लेना चाहिये।

प्रतिमा के अंग भंग होवे के फल

भग्न अंग		फल
नख भंग -		शत्रु भय
अंगुली भंग	-	देश विनाश
नासिका भंग	-	कुल नाश
बाहुभंग -		बंधन
पैर भंग -		धन हानि
पादपीठ भंग	-	कुल नाश
चिन्ह भंग	-	वाहन नाश
परिकर भंग	-	सेवकों का नाश
छत्र भंग -		लक्ष्मी नाश
श्रीवत्स भंग	-	सुख नाश
आसन भंग	-	ऋद्धि नाश

उपासक को चाहिए कि अत्यंत सावधानीपूर्वक ही देव प्रतिमा का पूजन-अभिषेक करें। प्रतिमा उठाने अथवा रखनें में अत्यधिक सावधानी रखें। प्रतिमा आड़ी टेढ़ी न करें, प्रतिमा उठाते रखते समय उलटी न करें। किसी भी स्थिति में प्रतिमा भग्न न हो।

जीर्णोद्धार प्रकरण

मन्दिर निर्माण करने के उपरांत निरन्तर उपासकगण वहाँ आराधना आदि धर्म कार्य करते हैं। पर्याप्त समय के उपरान्त प्राकृतिक परिवर्तनों तथा काल यापन से वास्तु में जीर्णता आने लगती है। भित्ति, स्तंभ, छत आदि शिथिल होने लगते हैं तथा उनके पुनर्निर्माण की आवश्यकता का आभास होने लगता है। पूजनादि क्रियाओं के परिणामस्वरुप पर्याप्त काल के पश्चात् प्रतिमाओं में क्षरण होने लगता है। अंगोपांग घिसने से प्रतिमा का स्वरुप बदल जाता है तथा उनकी पूज्यता समाप्त हो जाती है। ऐसे परिस्थिति उत्पन्न होने पर दो ही विकल्प होते हैं -

प्रथम - नवीन मन्दिर का निर्माण तथा

द्वितीय - प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार कर पुनर्जीवन।

वास्तु शास्त्र के दृष्टिकोण से नवीन मन्दिर से भी अधिक महत्व जीर्णोद्धार करने का है। ऐसा करने से प्राचीन वास्तु के साथ ही पुरातत्व स्थापत्य की सुरक्षा होती है। वास्तु के जीर्ण होने से मन्दिर अंगहीन होकर सदोष हो जाता है। प्रतिमा भी खण्डित होने पर पूज्य नहीं रहती अतएव इनका समयोचित जीर्णोद्धार करा देने से वास्तु की आयु में वृद्धि हो जाती है।

जीर्णोद्धार के लिए निर्देश

१. जीर्णोद्धार कराते समय आवश्यक है कि मन्दिर वास्तु यदि अल्प द्रव्य से निर्मित हो, उससे अधिक द्रव्य की वास्तु का निर्माण करें। यदि वास्तु मिट्टी की है तो काष्ठ की बनाएं। यदि काष्ठ की हो तो पाषाण की बनाये। पाषाण की हो तो धातु की बनायें। धातु की हो तो रत्न की बनाये। मूल भावना यही है कि श्रेष्ठतर द्रव्य का उपयोग किया जाये। *

२. मंदिर निर्माण अथवा जीर्णोद्धार के लिए किसी अन्य वास्तु का गिरा हुआ ईंट, चूना, गारा, पाषाण, काष्ठ आदि प्रयोग नहीं करें। आचार्यों ने इसका स्पष्ट निषेध किया है। ऐसा करने से देवालय सूने पड़े रहते हैं उनमें पूजा नहीं होती। गृह वास्तु में ऐसा किये जाने पर गृहस्वामी उसमें नहीं रह पाता।**

३. यह आवश्यक है कि जीर्णोद्धार की जाने वाली वास्तु जिस आकार अथवा मान की हो नवीन वास्तु उसी आकार एवं मान की रखना चाहिये। यदि पूर्व मान से कम किया जायेगा तो क्षय होता है। यदि मान अधिक किया जायेगा तो स्वजन हानि होने की संभावना रहेगी। अतएव मान परिवर्तन नहीं करें। #

४. जीर्णोद्धार का कार्य प्रभु के समक्ष निश्चित समयावधि का संकल्प लेकर करें।

५. प्रतिमा का उत्थापन विधि विधान पूर्वक करें। अनावश्यक ऐसा न करें अन्यथा भीषण संकटों का आगमन होगा। जीर्णोद्धार के लिए वेदी से प्रतिमाओं के उठाने का कार्य शुभ लग्न, मुहुर्त में पूर्ण विधि से करें। ऐसा करने से कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होता है।

---

*प्रा. मं. ८/८ शि. र. ५/१०८, **शि. र. ५/११९ प्रा. म. ८/४, #प्रा. मं. ८/७ शि. र. ५/१०६

जीर्णोद्धार कार्य निर्णय

जीर्णोद्धार के लिये मूर्ति अथवा प्रतिमा या देवालय को जब उठाया जाता है तब उसमें अत्यधिक सावधानी रखना आवश्यक है। बिना विधि के मात्र भावावेश में यह कार्य करना सर्व दुःखों का कारण बनता है।

यदि वास्तु/देवालय को अच्छी स्थिति में रहने के बाद भी उसे जीर्णोद्धार अथवा नवीनीकरण के नाम पर गिराया अथवा विस्थापित किया जायेगा तो उसके भीषण दुष्परिणाम होंगे। देवालय विस्थापन करने वाला तथा विस्थापन करवाने वाला दोनों ही चिरकाल तक नरक का दुःख भोगते हैं।*

देव प्रतिमा स्थापित किया हुआ देवालय का विस्थापन कदापि न करें। अचल प्रतिमा को यदि चलित किया जायेगा तो राष्ट्र में विभ्रम या विप्लव होने की संभावना रहेगी। ऐसा विस्थापन करने से अल्पकाल में ही देश का उच्छेद हो जाता है।**

अचल देव प्रतिमा को चलायमान करने से प्रतिमा उत्थानकर्ता का कुल निश्चय ही नष्ट हो जाता है तथा स्त्री एवं पुत्र का मरण भी होता है, ऐसा पूजक छह मास में नष्ट हो जाता है।#

जीर्ण देवालय गिराकर नया बनाने की मर्यादा

मिट्टी का देवालय यदि आकार रहित होकर गिर गया हो तो उसे गिराकर नया बना लेवें। पाषाण का देवालय यदि तीन हाथ आकार का हो अथवा डेढ़ हाथ का काष्ठ का देवालय हो तो उसे जीर्ण होने की स्थिति में गिराकर नया करा सकते हैं। इससे अधिक ऊंचा देवालय गिराने का निषेध है।$

जीर्णोद्धार करने का निर्णय लेने से पूर्व सुविज्ञ आचार्य एवं शिल्प शास्त्रज्ञ से परामर्श करने के उपरांत ही शास्त्रोक्त विधि से कार्यारम्भ करना चाहिये।$$

प्रतिमा उत्थान एवं संकल्प विधि

जब यह निश्चय कर लिया जाये कि मन्दिर का जीर्णोद्धार किया जाना है तो सर्वप्रथम परम पूज्य आचार्य परमेष्ठी जन एवं विद्वानों से परामर्श कर पूरी योजना बनाना चाहिये। तदनन्तर शुभ मुहूर्त का निर्णय कराना चाहिये। इसके उपरांत एक वर्गाकार चबूतरा बनवाये, जिस पर ले जाकर मूर्तियों को स्थपित करना है। यह चबूतरा ठोस होना चाहिये। इस पर चंदोवा, छत्र आदि लगायें तथा प्रतिमा विराजमान करने के पूर्व इसकी शुद्धि करवा लेवें। यहाँ शान्ति मन्त्र का ग्यारह हजार जाप देवें। इसके उपरांत मंदिर के व्यवस्थापकों को पूज्य गुरु आदिकों की उपस्थिति में मन्दिरों में पूजा विधान करना

---

*शि.र.५/११३, **शि.र. ५/१२०, ##शि.र. ५/१२२, $शि.र. ५/१३३, $$शि.र. ५/११४

चाहिये। इसके पश्चात् जीर्णोद्धार कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करने वाले उपासकों को जिनेन्द्र प्रभु की वेदी के समक्ष श्रीफल अर्पण कर यह संकल्प करना चाहिये -

हम देवाधिदेव श्री ------------------ (मूलनायक) सहित समस्त जिनेन्द्र देवों को यहाँ से उत्थापन कर नये स्थान ------------ में (जहाँ भगवान को स्थानांतरित करना है) स्थापित करना चाहते हैं। सदैव की भांति हम वहां भी भक्तिपूर्वक श्रीजी का पूजन अभिषेक नियमित रुप से करते रहेंगे। जीर्णोद्धार कार्य समाप्त हो जाने पर हम सभी प्रतिमाओं को विधि पूर्वक मूल स्थान में स्थानांतरित कर देवेंगे। जीर्णोद्धार कार्य हम ------------- ----- समय मर्यादा में पूरा करने का संकल्प लेते हैं, इस अवधि में हम -------------- – रस त्याग, एकाशन आदि संयम का पालन करेंगे।

हम यहाँ स्थित जिन शासन प्रभावक देवी– देवताओं से भी विनय करते हैं कि वे हमें इस धर्म कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान करें तथा यह कार्य निर्विघ्न तथा समय सीमा में पूरा हो सके इस हेतु समुचित सहकार एवं मार्गदर्शन देवें।

जिनेन्द्र प्रभु के समक्ष श्रीफल अर्पण कर संकल्प करें। शासन देवों, वास्तु देवों तथा दिग्पाल देवों के समक्ष भी आदर पूर्वक यथायोग्य वन्दना एवं श्रीफल अर्पण कर याचना करें कि यदि कोई जाने – अनजाने में भूल हो जाये तो उसे आप अनुग्रह पूर्वक क्षमा करें तथा समुचित संकेतों से हमें मार्गदर्शन दें। *

इसके उपरांत मंगलध्वनि के साथ प्रतिमाओं को नई वेदी पर स्थापित करें। प्रतिमा स्थापना पर्याप्त सावधानी से करें इसमें प्रमाद या उतावली न करें। बिना पूजा विधान एवं हवन किये प्रतिमाओं को कदापि प्रस्थापित न करें।

जीर्णवास्तु पातन विधि

जीर्णोद्धार करने के लिए स्वर्ण अथवा रजत का हाथी या बैल बनाँयें। इसके दांत अथवा सींग से प्रथम शुभ मुहूर्त में जीर्ण वास्तु गिराना प्रारंभ करें। इसके पश्चात् विज्ञ शिल्पी सारी वास्तु को गिरा देवें। **

जीर्णोद्धार प्रारम्भ समय चयन

शुभ दिवस, शुभ नक्षत्र, शुभ लग्न, उत्तम बलवान चन्द्रमा तथा चन्द्र तारा का बल संयुक्त शुभ मुहूर्त में तथा अमृतसिद्धि योग में जीर्णोद्धार कार्यारम्भ करना चाहिए।#

जीर्णोद्धार के लिए वास्तु चालन

यदि अव्यक्त जीर्ण प्रासाद मिट्टी का हो तो उसे पूरी तरह गिरा दें तथा पुनः निर्माण करें। यदि तीन हाथ प्रमाण का काष्ठ निर्मित आधा पुरुष ऊँचा प्रासाद हो तो इसे चलायमान करें। इससे ज्यादा ऊँचा हो तो चलायमान नहीं करें। ##

---

*शि. र. ५/११६, **प्रा. मं. ८/१५ शि. र. ५/११८, #शि. र. ५/११५, ##प्रा. मं. ८/११ शि. र. ५/११२

जीर्णोद्धार हेतु वास्तु पातन की दिशा

जीर्णोद्धार हेतु वास्तु गिराने का कार्य ईशान दिशा से प्रारंभ करना चाहिये तथा ईशान से वाव्य एवं आग्नेय की ओर यह कार्य करते हुए नैऋत्य दिशा का भाग सबसे अंत में गिराना चाहिये। गिराये हुए मलबे को उत्तर, ईशान तथा पूर्व दिशा में एकत्रित नहीं करें। इस मलबे को दक्षिण, नैऋत्य अथवा पश्चिम में रखें।

जीर्णोद्धार का महान पुण्य

सभी शास्त्रकारों ने मन्दिर निर्माण में असीम पुण्य अर्जन कहा है। किन्तु यदि प्राचीन जीर्ण मन्दिर का उद्धार कर उसे नवनिर्मित किया जाये अथवा जीर्णोद्धार किया जाये तो आठ गुना अधिक पुण्य का अर्जन होता है अतएव नव मंदिर निर्माण करने के स्थान पर प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार करने में विशेष अनुराग रखना चाहिये। प्रा. मं. ८/६

मन्दिर के अतिरिक्त बावड़ी, कुआं, तालाब तथा भवन का जीर्णोद्धार करने से भी आठ गुना पुण्य प्राप्त होना है।

प्रतिमा का मंजन

पर्यूषण पर्वराज के पूर्व प्रायः सभी मन्दिरों में मूर्तियों का मंजन किया जाता है। इसी भांति किसी विशेष अवसर यथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा उत्सव आदि के पूर्व भी मन्दिर की प्रतिमाओं का मंजन किया जाता है। जानकारी के अभाव में अथवा असावधानी के कारण प्रतिमाओं को अविनय पूर्वक परात में एकत्र कर लेते हैं। ऐसा करना अत्यंत अनिष्ट कारक कर्म है।

प्रतिमाओं को स्थान से उत्थापित करने की विधि ठीक वैसी ही है जैसी जीर्णोद्धार के समय प्रतिमा उत्थापन के समय की जाती है। विधिपूर्वक संकल्प करके ही प्रतिमा का उत्थापन करना चाहिये। मूलनायक प्रतिमा तथा वृहदाकार प्रतिमाओं को उत्थापित न करें, वरन् वहीं मंजन कर लेवें।

प्रतिमा का मंजन करने के लिए पिसी हुई लौंग, रीठे के पानी का तथा उत्तम द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये। धातु की प्रतिमा पर नीबू, इमली आदि नहीं लगाएं। साबुन, डिटरजेन्ट, लिक्विड, केमिकल आदि प्रतिमा पर न लगायें। किसी भी प्रकार का अशुद्ध द्रव्य प्रतिमा पर कदापि न लगायें।

मंजन कार्य समाप्त होने के उपरांत पूर्ण विनय एवं विधि के साथ प्रतिमा को यथास्थान स्थापित करना चाहिये।

मन्दिर में अशुद्ध द्रव्य का प्रवेश

यदि किसी असावधानी अथवा अचानक ही कोई ऐसी घटना हो जाये जिससे मन्दिर की शुचिता भंग हो तो तुरंत ही अशुद्ध पदार्थों को वहां से हटवाना चाहिये। यदि मन्दिर में हड्डी, मांस, चरबी, शूकर या गिद्ध, कौआ, कुत्ता आदि मांसभक्षी प्राणी मंदिर में प्रवेश कर जायें तो मन्दिर की शुचिता भंग होती है।

मन्दिर में चाण्डाल आदि का प्रवेश अथवा बच्चे द्वारा मल, मूत्र त्याग, वमन अथवा किसी महिला के असमय रजस्वला हो जाने से भी मन्दिर की शुचिता भंग होती है।

ऐसा अवसर आने पर अशुद्ध पदार्थ को तुरन्त हटवायें। धुलाई करवायें, चूना पुतवायें। इसके पश्चात् जिनेन्द्र प्रभु का अभिषेक, शान्तिधारा, पूजा, कोई विशिष्ट विधान, जप, हवन तथा ध्वजारोहण करना चाहिये।

वज्रलेप

प्रतिमाओं एवं देवालयों को क्षरण से बचाना आवश्यक होता है। यदि प्रतिमा भंग हो जाए अथवा उसके अंग उपांग घिस जायें तो प्रतिमा की पूज्यता समाप्त हो जाती है। क्षरण से बचाकर प्रतिमा की स्थायित्व के निमित्त उसमें वज्रलेप करना आवश्यक है। ऐसा करने से हमारी सांस्कृतिक धरोहर स्थायी रह सकती है। प्रतिमा का वज्रलेप करने के उपरांत उसका पुनः संस्कार करा लेना चाहिये।

यहां यह स्मरण रखें कि खण्डित प्रतिमा के अंगोपांग मसाले या अन्य द्रव्य से बनाकर उसे पूरा करके उस पर वज्रलेप नहीं चढायें। ऐसा कदापि न करें। वज्रलेप सिर्फ अखण्डित प्रतिमा पर ही चढायें। खण्डित प्रतिमा न पूजा के योग्य है न ही पुनः संस्कार के ।

कच्चा तेंदूफल, कच्चा कैंथ फल, सेमल के फूल, शाल वृक्ष के बीज, धामनवृक्ष की छाल तथा वच इनको बराबर-बराबर वजन कर १०२४ तोला पानी में डालकर काढ़ा बनायें। जब पानी आठवां हिस्सा रह जाये तब उसे उतारकर उसमें श्रीवसक (सरो) वृक्ष का गोंद, हीराबोल, गुगल, भिलवा, देवदार, कुंदरु, राल, अलसी तथा बिल्व (बेलफेल) को महीन कर बराबर-बराबर लेकर मिला देवें तथा खूब हिलायें तो वज्रलेप तैयार हो जायेगा।*

यह लेप प्रतिमा, देवालय आदि के जीर्ण होने पर गरम गरम लगायें। ऐसा करने से लेप की हुई प्रतिमा अथवा देवालय की स्थिति काफी अधिक यहां तक कि हजार वर्ष बढ़ जाती है।

वज्रलेप तैयार करते समय अनुभवी व्यक्ति से परामर्श अवश्य ले लेवें।

---

*आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः।
बीजानि शल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति॥ शि.र. १२ / २१०
एतैः सलिलद्रोणः क्वाथयितव्योऽष्टभागशेषश्च।
अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः॥ शि . र. १२/ २११
श्रीवासकरस गुग्गुलु भल्लातक कुन्दुरुकसर्जरसैः।
अतसी बिल्वैश्च युतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः॥ शि. र. १२/२१२
प्रासादहर्म्यवलभीलिंगप्रतिमासु कुड्यकूपेषु।
सन्तप्तो दातव्यो वर्षसहस्राय तस्यायुः॥ शि. र. १२/२१३

वास्तु शांति विधान

जब भी किसी वास्तु का निर्माण अथवा पुनर्निर्माण किया जाता है, उसके भीतर प्रवेश के पूर्व ही उसकी शांति के निमित्त वास्तु शांति विधान पूजा करना चाहिये। जैन एवं जैनेतर दोनों में वास्तु शांति पूजा का प्रचलन है किन्तु इसके लिए समुचित जानकारी सामान्य जनों को नहीं होती। कुछ गृहस्थ शांति विधान अथवा अन्य सामान्य पूजा पाठ करके अपने कर्त्तव्य को इतिश्री समझ लेते हैं। जैनेतर सम्प्रदायों में अनेकों स्थानों पर पूजा के स्थान पर विभिन्न हिंसा जन्य क्रियाएं तथा बलि का आयोजन करने की पद्धति देखी जाती है। गृह प्रवेश एक अत्यंत मंगलमय शुभ कर्म हैं तथा इस अवसर पर किसी भी प्राणी का वध करना तथा उसकी बलि से वास्तु शांति मानना केवल भ्रम है। यह पापमूलक क्रिया है तथा गृह प्रवेश के निमित्त की जाने वाली पशु बलि से कभी भी गृह उपयोगकर्ता सुखी नहीं रह सकता।

प्राचीन काल से प्रचलित शास्त्रों के अनुरुप आशाधरजी विरचित वास्तु शांति विधान को आधार करके शांति पूजा करना चाहिये। श्री जिनेन्द्र प्रभु की पूजा समाहित वास्तु शांति विधान करके वास्तु भूमि पर स्थित वास्तु देवों को अर्घ्य देकर गृह प्रवेश करना इष्ट है।

वास्तु शांति पूजा

जिस भांति गृह निर्मित होने के उपरांत वास्तु शांति पूजा की जाती है, उसी भांति देवालय का निर्माण करने के उपरान्त भी वास्तु शांति पूजा अवश्यमेव करना चाहिये। ऐसा करने से वास्तु निर्माण के समय की गई क्रियाओं में शुद्धता आती है। मन्दिर निर्माण के उपरांत सर्वप्रथम मन्दिर प्रतिष्ठा की जाती है। इस पूजा के उपरांत ही भगवान की प्रतिमा मन्दिर में स्थापित की जाती है। तभी मन्दिर एवं भगवान की प्रतिमा दोनों पूज्यता को प्राप्त होते हैं।

प्राचीन शास्त्रों में विधान है कि मन्दिर निर्माण के दौरान विभिन्न चरणों में भी वास्तु शांति पूजना करना चाहिये। कम से कम सात कार्यों के करते समय वास्तु पूजन अवश्य करना चाहिये *:-

१	कूर्म स्थापना	२	द्वार स्थापना
३	पद्मशिला की स्थापना	४	प्रासाद पुरुष की स्थापना
५	कलशारोहण	६	ध्वजारोहण
७	देव प्रतिष्ठा		

उपरोक्त सात कार्यों के करते समय वास्तु पूजन **पुण्याह सप्तक** कहलाता है।

---

*कूर्मसंस्थापने द्वारे पद्माख्यायां च पौरुषे।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठाया-मेवं पुण्याहसप्तकम्॥ प्रा.म. १/३६

मंदिर निर्माण कार्य के मध्य में सर्वशांति के लिए विभिन्न चरणों में शांतिपूजा अवश्य ही करना चाहिये :- **

१.	भूमि का आरम्भ	२.	कूर्म न्यास
३.	शिलान्यास	४.	सूत्रपात (तल निर्माण)
५.	खुर शिला स्थापन	६.	द्वार स्थापन
७.	स्तम्भ स्थापन	८.	पाट चढ़ाते समय
९.	पद्म शिला स्थापन	१०.	शुकनास स्थापन
११.	प्रासाद पुरुष स्थापन	१२.	आमलसार चढ़ाना
१३.	कलशारोहण	१४.	ध्वजारोहण

यदि अपरिहार्य कारणों से चौदह शांतिपूजा न हो सकें तो कम से कम पुण्याह सप्तक की सात पूजा अवश्य ही करें।

**भूम्यारम्भे तथा कूर्मे शिलायां सूत्रपातने।
खुरे द्वारोच्छ्रये स्तम्भे पट्टे पद्मशिलासु च॥ प्रा.म. १/३७
शुकनासे च पुरुषे घण्टायां कलशे तथा।
ध्वजोच्छ्रये च कुर्वीत शान्तिकानि चतुर्दश॥ प्रा.म. १/३८

वास्तु पुरुष प्रकरण

किसी भी वास्तु संरचना का निर्माण करने से पूर्व उसका मानचित्र बनाकर एक संकल्पना तैयार की जाती है। किस स्थान पर स्तंभ बनायें अथवा न बनायें इसका निर्णय करने के लिए प्राचीन शास्त्रकारों ने हमें वास्तु पुरुष मंडल की संयोजना दी। इसके लिये भूमि की आकृति का चित्र बनाकर उसमें वास्तु पुरुष की आकृति बनाई जाती है।

जैनेतर पुराणों में वास्तु पुरुष की उत्पत्ति महादेव के पसीने की बूंद से बताई जाती है तथा उसकी शांति के लिये उसकी पूजा एवं उस पर स्थित देवताओं को विधिपूर्वक पूजा बलि देने का विधान है।

वास्तु पुरुष की आकृति इस प्रकार बनायें कि एक औंधा गिरा हुआ पुरुष जिसकी दोनों जानु एवं हाथ की कोहनियां वायु कोण तथा अग्नि कोण में आयें। चरण नैऋत्य कोण में तथा मस्तक ईशान कोण में आये।

इस आकृति के मर्म स्थानों अर्थात् मुख, हृदय, नाभि, मस्तक, स्तन एवं लिंग के स्थान पर दीवार, स्तम्भ या द्वार नहीं बनाना चाहिये।
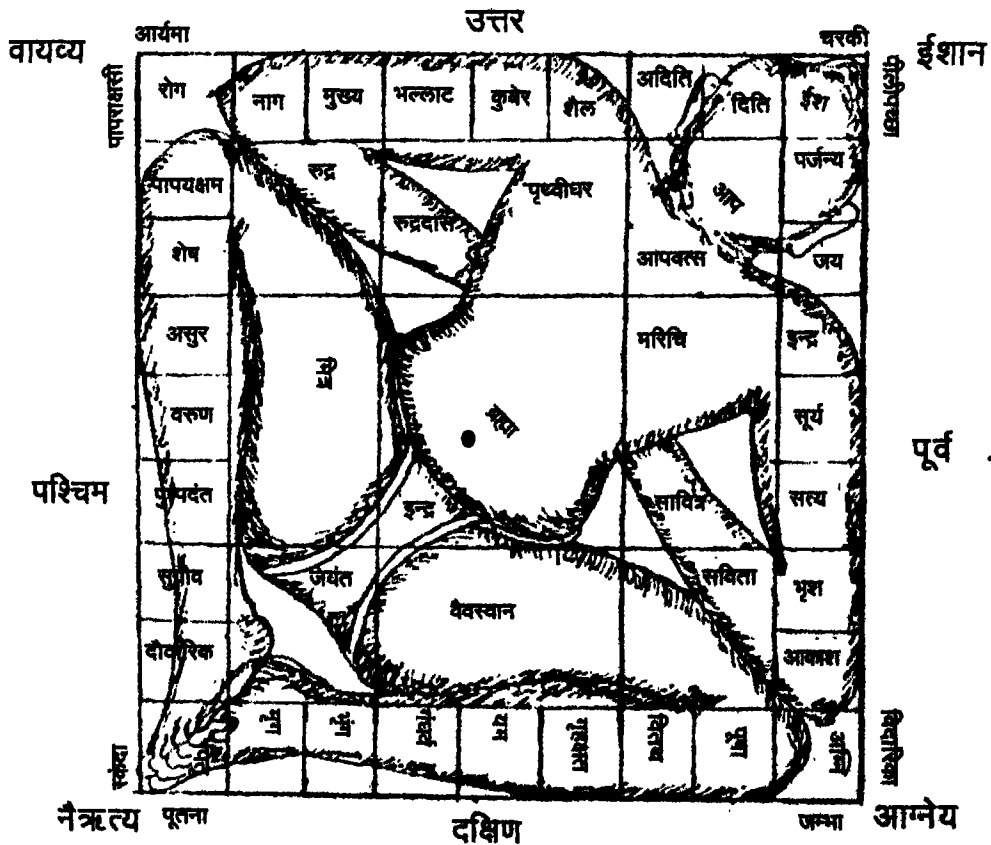
वास्तु पुरुष मंडल के ४५ देवों के नाम तथा स्थान इस प्रकार हैं *-

वास्तु पुरुष मंडल में स्थिति	**देव का नाम**
ईशान कोण	ईश
दोनों कान	पर्जन्य, दिति
गला	आप
दोनों कंधे	दिति तथा अदिति
दोनों स्तन	आर्यमा तथा पृथ्वीधर
हृदय	आपवत्स
दाहिनी भुजा	इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश तथा आकाश
बायीं भुजा	नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल
दाहिना हाथ	सावित्र तथा सविता
बायां हाथ	रुद्र तथा रुद्रदास
जंघा	मृत्यु तथा मैत्रदेव
नाभि का पृष्ठ भाग	ब्रह्मा
गुह्येन्द्रिय स्थान	इन्द्र एवं जय
दोनों घुटने	अग्नि एवं रोगदेव
दाहिने पग की नली	पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गंधर्व, भृंग, मृग
बायें पग की नली	नंदी, सुग्रीव, पुष्पदत, वरुण, असुर, शेष, पापयक्ष्मा
पांव	पितृदेव

मंडल में इनके अतिरिक्त दिशाओं के आठ कोणों पर आठ देवियां भी स्थित करें -

मंडल में दिशा का नाम		**देवी का नाम**
ईशान	उत्तरी	चरक
ईशान	पूर्वी	पीलीपीच्छा
अग्नि	पूर्वी	विदारिका
अग्नि	दक्षिण	जम्भा
नैऋत्य	दक्षिण	पूतना
नैऋत्य	पश्चिम	स्कन्दा
वायव्य	पश्चिम	पापरक्षिसिका
वायव्य	उत्तर	अर्यमा

इस प्रकार निर्मित वास्तु पुरुष मंडल पर वास्तु शांति पूजन करना चाहिये

---

*प्रा. मं. ८/१०३ - १११ अ.सू. ११३/११५

जिस भूखण्ड पर मन्दिर वास्तु का निर्माण करना है उसकी आकृति पर वास्तु पुरुष की कल्पना करना चाहिये। जिन स्थानों पर वास्तु पुरुष के मर्म स्थान आते हैं वहाँ स्तम्भ आदि नहीं आना चाहिये। वास्तु पुरुष में स्थित देवताओं को यथा योग्य नैवेद्य अर्पण कर उन्हें अनुकूल रखना चाहिये। वास्तु शान्ति की पूजा निर्दिष्ट समयों पर अवश्य करा लेना चाहिये। देवालय की वास्तु शान्ति के लिये ८१ पद का मण्डल बनाकर पूजा करना चाहिये। इस विषय में परमपूज्य आचार्य परमेष्ठी एवं विज्ञ शिल्प शास्त्रियों से परामर्श अवश्य लेना चाहिये।

वास्तु ज्योतिष प्रकरण

कार्य प्रारंभ मुहूर्त का चयन

मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ करने के लिये यह परम आवश्यक है कि यह कार्य ऐसे मुहूर्त में सम्पन्न किया जाये कि कार्य द्रुत गति से निर्विघ्न सम्पन्न होवे। इसके लिये विद्वान आचार्य परमेष्ठी एवं विज्ञ प्रतिष्ठाचार्य से परामर्श करके ही शुभ मुहूर्त निकालना चाहिये तथा सभी विधि विधानों के साथ चतुर्विध संघ की पावन उपस्थिति में निर्माण कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। विभिन्न शास्त्रों में ज्योतिष की दृष्टि से पृथक पृथक मुहूर्त निकालने के सूत्र दिये हैं। उनका अवलोकन करके सर्वोत्तम मुहूर्त चयन करके कार्यारम्भ करें।

सामान्यतः चातुर्मास अवधि में कार्यारम्भ न करें। शुक्ल पक्ष की तिथि में प्रारंभ किया गया कार्य सुफलदाता होता है जबकि कृष्ण पक्ष मे प्रारंभ कार्य चौर्य भय का कारण है।

मन्दिर आरम्भ के समय राशि सूर्य फल

मन्दिर निर्माण आरंभ करते समय किस राशि पर सूर्य है यह निर्णय करने के बाद ही मुहूर्त निकालना चाहिये। राशियों पर सूर्य का फल इस प्रकार है :-

१. मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशियों पर सूर्य हो तब मन्दिर का आरम्भ नहीं करें। *

२. मेष, बृषभ, तुला और वृश्चिक इन चार राशियों पर सूर्य हो तब पूर्व पश्चिम द्वार वाले मन्दिर को आरम्भ न करे। दक्षिण उत्तर द्वार वाला मन्दिर बना सकते हैं।

३. कर्क, सिंह, मकर, कुम्भ इन चार राशियों पर सूर्य हो तब उत्तर दक्षिण द्वार वाले मन्दिर का प्रारम्भ न करें। किन्तु पूर्व पश्चिम दिशा वाले मन्दिर का निर्माण करें। #

---

* धनमीणमिहुणकण्णा संकंतीए न कीरए गेहं।
तुलविच्छियमेसविसे पुव्वावर सेस-सेस विसे॥ व.सा.१/२१

कर्किनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के, पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते, दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात॥
अन्यथा यदि करोति दुर्मति-र्व्याधिशोकधननाशमश्नुते।
मीनचापमिथुनाङ्गनागते, कारयेत्तु गृहमेव भास्करे॥१२/१५ मुहुर्त चिंतामणि टीका

मन्दिर आरम्भ के समय सूर्य फल

जिस दिन कार्य आरंभ करना हो उस दिन मुख्य रुप से जिन भगवान की प्रतिमा (मूल नायक प्रतिमा) मंदिर में स्थापित करना है उनकी नाम राशि पर सूर्य होने पर तथा उनके राशि से क्रमानुसार अलग-अलग राशियों के सूर्य का प्रभाव देखकर ही मुहूर्त चयन करना चाहिये।

मंदिर कार्य आरम्भ के दिन मूलनायक की राशि पर सूर्य होने का प्रभाव

मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ करने का समय चयन करते समय विशेषज्ञ (ज्योतिष विद्) विद्वान का परामर्श लेना उपयुक्त है। जिस दिन मन्दिर का कार्य प्रारम्भ किया जाता है, उस समय मूलनायक की कौन - सी राशि पर सूर्य की स्थिति है, यह निर्णय करना आवश्यक है। सूर्य जब बलवान स्थिति में हो तभी मन्दिर का कार्य आरम्भ करना चाहिये।

निम्नलिखित सारणी का अवलोकन करने से पाठक सूर्य की स्थिति के प्रभाव से अवगत होंगे -

नाम राशि पर सूर्य	परिणाम
नाम राशि से प्रथम राशि पर सूर्य होने पर	उदर पीड़ा
नाम राशि से दूसरी राशि पर सूर्य होने पर	धन नाश
नाम राशि से तीसरी राशि पर सूर्य होने पर	धन लाभ
नाम राशि से चौथी राशि पर सूर्य होने पर	समाज में भय
नाम राशि से पांचवीं राशि पर सूर्य होने पर	पुत्र नाश
नाम राशि से छठवीं राशि पर सूर्य होने पर	शत्रु विजय
नाम राशि से सातवींराशि पर सूर्य होने पर	स्त्री कष्ट
नाम राशि से आठवीं राशि पर सूर्य होने पर	प्रमुख व्यक्ति का अवसान
नाम राशि से नवमी राशि पर सूर्य होने पर	धर्म में अरुचि
नाम राशि से दसवीं राशि पर सूर्य होने पर	कार्य सिद्धि
नाम राशि से ग्यारहवीं राशि पर सूर्य होने पर	लक्ष्मी लाभ
नाम राशि से बारहवीं राशि पर सूर्य होने पर	धन नाश

विशेष रुप से पुनरपि यह स्मरण रखें कि सूर्य बलवान होने पर ही मन्दिर बनवाना चाहिये।

मन्दिर आरम्भ में सुयोग

१. कन्या, मीन, मिथुन में धन लाभ होता है

२. कुम्भ, सिंह, वृषभ में सर्व सिद्धि प्राप्त होती है

मन्दिर कार्य आरम्भ के समय निर्बल ग्रह

जिस समय मन्दिर निर्माण कार्यारम्भ किया जाना है, उस समय की ग्रह स्थिति मूलनायक की राशि में देखी जाती है। इस समय जो ग्रह निर्बल स्थिति में रहने पर विभिन्न फल देते हैं। ग्रह की निर्बल स्थिति का प्रभाव इस सारणी में दृष्टव्य है। कुल मिलाकर सर्वश्रेष्ठ समय का चयन करें।

यह ध्यान रखें कि निम्नलिखित स्थिति में ग्रह निर्बल समझे जाते हैं -

१. जो ग्रह अस्त हों
२. नीच राशि में स्थित हों
३. शत्रु से पराजित हों
४. शत्रु द्वारा देखे जा रहे हों
५. बाल या वृद्ध हों
६. वक्र हों
७. अतिचारी हों
८. उल्कापात के कारण दूषित हों

निर्बल ग्रह मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय शुभ फल नहीं देते। मन्दिर निर्माण आरंभ के समय निर्बल ग्रहों के फल का विचार करके ही मुहूर्त चयन करना चाहिये।

मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय निर्बल ग्रह	**परिणाम**
सूर्य	प्रमुख व्यक्ति को पीड़ा
चन्द्र	प्रमुख व्यक्ति को स्त्री दुख
मंगल	समाज को पीड़ा
बुध	पुत्रों को पीड़ा
गुरु	सुख सम्पत्ति की हानि
शुक्र	धन हानि
शनि	सेवकों को पीड़ा

मन्दिर निर्माणआरम्भ के लिये लग्न शुद्धि

जन्म राशि से १/६/१० तथा ११ वीं लग्न तथा जन्म लग्न से आठवें लग्न को छोड़कर शेष लग्नों में कार्यारम्भ करें। लग्न से ३, ६, ११ वें स्थान में पाप ग्रह हों तथा केन्द्र (१,४,७,१०) तथा त्रिकोण (५,८) में तब मन्दिर कार्यारम्भ करें।

ध्यान रखें कि मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय यदि पाप ग्रह हों तो वे प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनेंगे।

लग्न से सम्बन्धित मन्दिर की आयु विचार

शुक्र लग्न में, बुध दशम स्थान में, सूर्य ग्यारहवें स्थान में और बृहस्पति केन्द्र (१-४,-७-१० स्थान) में होवे, ऐसे लग्न में यदि नवीन वास्तु का खात करें तो उस वास्तु की आयु सौ वर्ष होती है। *

दसवें और चौथे स्थान में बृहस्पति और चन्द्रमा होवे, तथा ग्यारहवें स्थान में शनि और मंगल होवे, ऐसे लग्न में वास्तु का निर्माण आरंभ करें तो उस वास्तु में लक्ष्मी अस्सी (८०) वर्ष स्थिर रहती है। बृहस्पति लग्न में (प्रथम स्थान में), शनि तीसरे, शुक्र चौथे, रवि छटवें और बुध सातवें स्थान में होवे, ऐसे लग्न में आरंभ किये हुए वास्तु में सौ वर्ष तक लक्ष्मी स्थिर रहती है ।**

शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे, मंगल छटवें और गुरु पांचवें स्थान में होवे, ऐसे लग्न में वास्तु का निर्माण आरंभ किया जाये तो दो सौ वर्ष तक यह वास्तु समृद्धियों से पूर्ण रहता है। $

स्वगृही चंद्रमा लग्न में होवे अर्थात् कर्क राशि का चंदमा लग्न में होवे और बृहस्पति केन्द्र (१-४-७-१० स्थान) में बलवान होकर रहा हो, ऐसे लग्न के समय वास्तु का आरंभ करें तो उस वास्तु की निरंतर प्रगति होती है। गृहारंभ के समय लग्न से आठवें स्थान में क्रूर ग्रह होवे तो बहुत अशुभ कारक है और सौम्यग्रह रहा हो तो मध्यम है ।#

यदि कोई भी एक ग्रह नीच स्थान का, शत्रु स्थान का अथवा शत्रु के नवांशक का होकर सातवें स्थान में अथवा बारहवें स्थान में रहा होवे तथा गृहपति के वर्ण का स्वामी निर्बल होवे, ऐसे समय में प्रारंभ किया हुआ वास्तु दूसरे विपक्षियों के स्वामित्व में चला जाता है ।##

लग्न में उच्च का सूर्य अथवा ४ थे भाव, उच्च का गुरु और ११ वें भाव में उच्च का शनि हो तो मन्दिर की आयु १००० वर्ष होती है।

मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय उच्च राशि के शुभ ग्रह यदि लग्न अथवा केन्द्र में हों तो मन्दिर की आयु २०० वर्ष की होती है।

---

*भिगु लग्गे बुहु दसमे दिणयरु लाहे बिहप्फई किंदे।
जइ गिहनीमारंभे ता वरिससयाउयं हवइ ।। व. सा. १/२८

**दसमचउत्थे गुरुससि सणिकुजलाहे अ लच्छि वरिस असी।
इग ति चउ छ मुणि कमसो गुरुसणिभिगुरविबुहम्मि सयं ।। व. सा. १/२९

$सुक्कुदए रवितइए मंगलि छट्ठे अ पंचमे जीवे।
इअ लग्गकए गेहे दो वरिससयाउयं रिद्धी ।। व. सा. १/३०

#सगिहत्थो ससि लग्गे गुरुकिंदे बलजुओ सुविद्धिकरो।
कूरट्ठम-अइअसुहा सोमा मज्झिम गिहारंभे ।। व. सा. १/३१

##इक्केवि गहे णिच्छइ परगेहि परेसि सत्त-बारसमे।
गिहसामिवण्णनाहे अबले परहत्थि होइ गिहं ।। व. सा. १/३२

लग्न से संबंधित मंदिर का फलाफल विचार

१. मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय यदि कर्क में चन्द्रमा हो, केन्द्र में गुरु हो और अपने मित्र की राशि या उच्च की राशि में अन्य ग्रह हो तो उस मन्दिर में चिर काल तक लक्ष्मी निवास करती है।

२. अश्विनी, विशाखा, चित्रा, शतभिषा, आर्द्रा, पुनर्वसु और घनिष्ठा इन नक्षत्रों में से किसी में शुक्र हो तथा उसी नक्षत्र में शुक्रवार को मन्दिर निर्माण आरम्भ हो तो वह सम्पन्न बना रहता है।

३. रोहिणी, हस्ता, उत्तरा फाल्गुनी, चित्रा, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्रों में से किसी में बुध हो और उसी नक्षत्र में बुधवार को मन्दिर निर्माण आरम्भ हो तो धन एवं पुत्र सुख मिलता है।

४. पुष्य, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेष, पूर्वाषाढ़ा इन नक्षत्रों में से किसी पर गुरु हो और उसी दिन गुरुवार हो तो इस दिन निर्माण प्रारंभ किया गया मन्दिर पुत्र एवं राज्य सुख देता है।

मन्दिर आरम्भ के समय कुयोग और उसका फल

१. एक भी ग्रह शत्रु के नवांश में होकर सप्तम में या दशम में हो तथा लग्न का स्वामी निर्बल हो और उस समय मन्दिर आरंभ हो तो मन्दिर अल्प समय में ही विपक्षियों के हाथों में चला जाता है।

२. पाप ग्रहों के मध्य में लग्न हो और शुभ ग्रह से युत या दृष्ट न हो तथा आठवें भाव में शनि हो तो मन्दिर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

३. मन्दिर आरम्भ के समय यदि दशा का स्वामी और लग्न का स्वामी निर्बल हो तथा सूर्य अनिष्ट में हो तो मन्दिर शीघ्र नष्ट हो जाता है।

४. मन्दिर आरम्भ के समय लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा अष्टम मंगल हो तो मन्दिर की आयु अत्यल्प रहती है।

५. मूला, रेवती, कृत्तिका, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा फाल्गुनी, हस्त और मघा इन सात नक्षत्रों पर मंगल हो और मंगल मन्दिर निर्माण आरम्भ के समय सूर्य और चन्द्र दोनों कृतिका नक्षत्र पर हों तो वह शीघ्र ही जल जाता है।

६. लग्न में उच्च का सूर्य अथवा चौथे भाव, उच्च का गुरु और ग्यारहवें भाव में उच्च का शनि हो तो मन्दिर की आयु १००० वर्ष होती है।

७. ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी, स्वाति, पूर्वाषाढ़ा और घनिष्ठा इन नक्षत्रों में शनि हो तथा मन्दिर निर्माण आरंभ शनिवार को हो तो पुत्र हानि होती है।

८. मकर, वृश्चिक और कर्क लग्न में मन्दिर आरंभ करने से नाश होता है।

९. मेष, तुला, धनु में कार्यारंभ करने से मन्दिर कार्य दीर्घ समय में पूर्ण होता है।

१०. मध्याह्न और मध्य रात्रि में कार्यारंभ करने से मन्दिर के प्रमुख कार्यकर्ता का धन नाश होता है।

११. दोनों सन्ध्याओं में भी मन्दिर निर्माण आरंभ न करें।

राहू चक्र निर्देश *

मास	राहू का दिशा में वास
मार्गशीर्ष, पौष, माघ	पूर्व दिशा
फाल्गुन, चैत्र वैशाख	दक्षिण दिशा
ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण	पश्चिम दिशा
भाद्र पद, आश्विन, कार्तिक	उत्तर दिशा

वार वशीन राहू वास

वार	राहू का दिशा में मुख
रविवार	नैऋत्य दिशा
सोमवार	उत्तर दिशा
मंगलवार	आग्नेय दिशा
बुधवार	पश्चिम दिशा
गुरुवार	ईशान दिशा
शुक्रवार	दक्षिण दिशा
शनिवार	वायव्य दिशा

राहू दिशा कार्य फल $

राहू की दिशा में स्तम्भ स्थापित करने से वंश नाश, द्वार स्थापित करने से अग्नि भय, यात्रा करने से कार्य हानि तथा मन्दिर निर्माण आरंभ करने से कुल नाश होता है।

---

*त्रिषु त्रिषु च मासेषु मार्गशीर्षादिषु क्रमात्।

पूर्व दक्षिणे तोयेश पौलस्त्याशाक्रमादमुः ॥८

रक्ष कुबेराग्नि जलेश यम्य वायव्य काष्ठासु च सूर्य वारात्।

वसेदगुश्चाष्टसु दिग्भ्रचक्रे मुखे विवर्ज्यो गमनं गृहंच ॥ १०

$ स्तम्भे वंश विनाशः स्याद् द्वारे वन्हि भयं भवेत्।

गमने कार्यहानिः स्याद् गृहारम्भे कुल क्षयः ॥९ विश्वकर्मा प्रकाश/गेहारम्भ प्रकरण

मन्दिर आरंभ के समय १२ भावों में नवग्रहों का शुभाशुभ कथन

लग्न में भाव से	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
१ लग्न से	वज्रपात	द्रव्य हानि	मृत्यु	आयुपर्यंत कुशलता
२ लग्न से	हानि	शत्रु नाश	बन्धन	बहु सम्पत्ति
३ लग्न से	विलंब से सिद्धि	अपेक्षित सिद्धि	विलंब से सिद्धि	अभीष्ट सिद्धि
४ लग्न से	मित्रों से हानि	बुद्धि नाश	मन्त्रणा भेद	धन लाभ
५ लग्न से	सन्तान नाश	कलह	कार्य अवरोध	रत्न लाभ
६ लग्न से	रोग नाश	पुष्टि	लाभ	ज्ञान, धन लाभ
७ लग्न से	कीर्ति नाश	क्लेश, भ्रम	विपत्ति	अश्व प्राप्ति
८ लग्न से	शत्रु भय	हानि	रोग भय	प्रतिष्ठा वृद्धि
९ लग्न से	धर्म हानि	धातु क्षय , रोग	धन नाश	अनेक भोग
१० लग्न से	मित्रता वृद्धि	शोक	रत्न लाभ	विजय, स्त्रीधन लाभ
११ लग्न से	लाभ	लाभ	लाभ	लाभ
१२ लग्न से	व्यय	व्यय	व्यय	व्यय

लग्न में भाव से	गुरू	शुक्र	शनि
१ लग्न से	धर्म, अर्थ लाभ	पुत्र लाभ	दरिद्रता
२ लग्न से	धर्म सिद्धि	यथेष्ट पूर्ति	विघ्नोत्पत्ति
३ लग्न से	अभीष्ट सिद्धि	अभीष्ट सिद्धि	विलम्ब से सिद्धि
४ लग्न से	राज सम्मान	भूमि लाभ	सर्वस्व नाश
५ लग्न से	मित्र, धन लाभ	पुत्र सुख	बंधु नाश
६ लग्न से	यंत्रणा	विद्या लाभ	शत्रु नाश
७ लग्न से	गज प्राप्ति	धन लाभ	अंगहीनता का भय
८ लग्न से	विजय	आपसी कलह	रोग भय
९ लग्न से	विद्या लाभ, आनंद	विजय	धर्म दोष
१० लग्न से	महत सुख	शय्यासन लाभ	कीर्ति नाश
११ लग्न से	लाभ	लाभ	लाभ
१२ लग्न से	व्यय	व्यय	व्यय

वेध प्रकरण

मन्दिर का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि किसी प्रकार का वेध दोष न आये। वेध दोष विभिन्न प्रकार के होते हैं तथा उनका फल प्रत्यक्ष ही देखने में आता है। धर्मशाला, त्यागी भवन आदि के निर्माण में भी इन दोषों का परिहार करना चाहिये।

वेध के प्रकार

१. **तल वेध** - जिस भूमि पर निर्माण किया जाना है वह भूमि समतल हो। उबड़-खाबड़ अर्थात् विषम या गड्ढे वाली भूमि होने पर तलवेध कहा जाता है। इस पर निर्माण अशुभ होता है।

२. **कोण वेध** -यदि वास्तु में कोने समकोण ९०° के न होकर न्यून अथवा अधिक हों तो इसे कोण वेध कहते हैं। इस वेध के प्रभाव से सम्बन्धित निवासी परिवारों में निरन्तर अशुभ घटनाएं, परेशानियां, वाहन दुर्घटना इत्यादि की संभावना होती है। व.सा १/११७ *

३. **तालू वेध** -मन्दिर की दीवारों के पीढ़े अथवा खूंटी ऊंची नीची होने पर तालू वेध होता है। इससे अनायास चोरी का भय निर्मित होता है। समाज में भी ऐसी घटनाएं संभावित होती हैं।

४. **शिर वेध**- मन्दिर के किसी द्वार के ऊपर मध्य भाग में खूंटी आदि लगाने से शिर वेध होता है। इससे समाज में दरिद्रता तथा शारीरिक, मानसिक संताप बना रहता है। व.सा १/११८**

५. **हृदय वेध**-मन्दिर के ठीक मध्य में स्तम्भ होने पर हृदय वेध होता है। ठीक मध्य में जल अथवा अग्नि का स्थान बनाने पर भी मन्दिर में हृदय शल्य या वेध माना जाता है। इससे समाज में कुल क्षय, वंश नाश इत्यादि परेशानियां बनी रहती है। व. सा. १/११९#

६. **तुला वेध**-मन्दिर में विषम संख्या में खूंटी अथवी पीढ़े हों तो इसे तुला वेध कहते हैं। इसके प्रभाव से समाज में अशुभ घटनाएं घटने की संभावना बनी रहती है। व.सा. १/१२० ##

७. **द्वार वेध**- मन्दिर के द्वार के ठीक सामने अथवा मध्य में यदि स्तम्भ अथवा वृक्ष हो तो इसे द्वार वेध कहते हैं। किसी अन्य गृह अथवा मन्दिर का कोना मन्दिर के दरवाजे के सामने पड़ता है तो भी द्वार वेध होता है। किसी अन्य का गाय भैंस आदि पशु बांधने का खूंटा द्वार के सामने पड़े तो भी यही दोष होता है। व.सा. १/१२१ $

---

*समविसमभूमि कुंभि अ जलपुरं परगिहस्स तलवेहो।
कूणसमं जइ कूणं न हवइ ता कूणवेहो अ॥ व.सा. १/११७

**इक्कखणे नीचुच्चं पीढं तं मुणह तालुयावेहं।
बारस्सुवरिमपट्टे गब्भे पीढं च सिरवेहं॥ व.सा. १/११८

#गेहस्स मज्झि भाए थंभेगं तं मुणेह उरसल्लं।
अह अनलो विनलाइं हविज्ज जा थंभवेहो सो॥ व.सा. १/११९

##हिट्ठिम उवरि खणाणं हीणाहियपीढ तं तुलावेहं।
पीढा समसंखाओ हवंति जइ तत्थ नहु दोसो॥ व.सा. १/१२०

$दुम-कूव-थंभ कोणय-किलाविद्धे दुवारवेहो य।
गेहुच्चबिउणभूमी तं न विरुद्धं बुहा बिंति॥ व.सा.१/१२१

८. मन्दिर के सामने कीचड़ होना अथवा मलिन पशु जैसे शूकर आदि बैठे रहना भी महादोष है। इससे शोक उत्पन्न होता है।

९. किसी के घर का रास्ता मन्दिर से होकर जाना अथवा किसी के घर के गन्दे पानी के निकास की नालीं मन्दिर या उसके द्वार के ठीक सामने से जाने से भी अत्यंत अशुभ होता है तथा समाज के लिए क्षतिकारक होता है।

१०. मंदिर के मुख्य द्वार से अन्य वास्तु का रास्ता जाना भी विपरीत प्रभावकारी एवं हानिकारक होता है।

संख्याओं के अनुसार वेधों का फल*

- यदि मन्दिर एक वेध से दूषित हो तो आपसी कलह का कारण बनता है।
- यदि दो वेध से दूषित होने से अति हानि होगी।
- यदि तीन वेध हों तो मन्दिर में सूनापन रहेगा तथा भूत-प्रेत निवास करते हैं।
- यदि चार वेध से दूषित हो तो मन्दिर की सम्पत्ति नष्ट होती है।
- यदि पांच वेध होवें तो वह ग्राम ही उजड़ जाता है तथा महामारी आदि महान उत्पात होने की संभावना रहती है।

वेध परिहार

मन्दिर और वेध के बीच यदि राजमार्ग, कोट, किला आदि हो तो वेधजनित दोष नहीं होता है। यदि मध्य में दीवाल हो तो स्तंभों के पद का भी दोष नहीं रहता है।**

मकान की ऊंचाई की दूनी जमीन को छोड़कर (दूनी दूरी से अधिक दूरी होने पर) वेध दोष नहीं होता है। गृह एवं वेधवस्तु के मध्य राजमार्ग हो तो भी वेध नहीं होता।#

प्रासाद अथवा गृह के पीछे या बगल में ये सब वस्तु हों तो वेध नहीं होता। सिर्फ सम्मुख रहने पर ही वेध होता है। ##

---

*इगवेहेण य कलहो कमेण हाणिं च जत्थ दो हुंति।
तिहु भूआण निवासो चउहिं खओ पंचहिं मारी॥ व.सा.१/१२४

**उच्छ्रायाद् द्विगुणां विहाय पृथिवीं वेधो न भित्यन्तरे
प्राकारान्तर राजमार्ग परता वेधो न कोण द्वये। (वास्तु राजवल्लभ ५/२७) (वास्तु रत्नाकर ८/५४)

#पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि न वेधं चिन्तयेद् बुधः।
प्रासादे वा गृहे वापि वेधमग्रे विनिर्दिशेत्॥ वास्तु रत्नाकर ८/५५

##उच्छ्रायभूमिं द्विगुणां त्यक्त्वा चैत्ये चतुर्गुणाम्
वेधादि दोषो नैवं स्याद् एवं स्वष्टगतं यथा। -आचार दिनकर

गृहवास्तु की ऊंचाई से दूनी तथा मन्दिर की ऊंचाई से चौगुनी भूमि को छोड़कर कोई वेध हों तो उनका दोष नहीं माना जाता।

यदि किसी कारण दक्षिण अथवा पश्चिमाभिमुखी मंदिर बनाये गये हों तो इसका समाज एवं मंदिर निर्माता दोनों पर विपरीत प्रभाव होता है। इस अनिष्ट का परिहार करना अत्यन्त आवश्यक है।

दक्षिणाभिमुखी मंदिर के ठीक सामने उसी देव का उत्तराभिमुखी मंदिर बनायें तो दोष का परिहार हो जाता है। इसी भांति पश्चिमाभिमुखी मंदिर के समक्ष यदि उसी देव का पूर्वाभिमुखी मंदिर बनाया जाये तो वेध दोष परिहार हो जाता है।

इन दोनों मंदिरों का एक परिसर में होना आवश्यक है यदि मध्य में राजमार्ग होगा तो परिहार नहीं होगा।

द्वार वेध विचार

मुख्य द्वार के समक्ष जो स्थिति अथवा संरचना वास्तु के लिए अकल्याणकारी होती है उसे द्वार वेध कहते हैं। वेधों को निर्णय करने के उपरान्त उनका निराकरण करना अत्यंत आवश्यक है।

१. यदि मुख्य द्वार के नीचे पानी के निकलने का मार्ग है तो यह वेध निरन्तर धन के अपव्यय का निमित्त होता है।
२. द्वार के सामने यदि निरन्तर कीचड़ जमा रहता है तो इससे समाज में शोक पूर्ण घटनाक्रम होते हैं।
३. यदि द्वार के समक्ष वृक्ष आ जाता है तो यह वेध बच्चों एवं संतति के लिए कष्टकारक होता है।
४. यदि द्वार के समक्ष कुआं, नलकूप आदि जलाशय होवें तो यह रोग कारक एवं अशुभ होता है।
५. यदि द्वार के ठीक सामने से मार्ग आरंभ होता है तो यह यजमान एवं मन्दिर निर्माता के लिए अति अशुभ एवं विनाशकारी हो सकता है।
६. द्वार में छिद्र धनहानि का सूचक है।

वेध विचार करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इनका परिहार अवश्य ही करना चाहिये। वास्तु निर्माण के पूर्व ही इनका विचारकर उसके अनुरुप ही निर्माण की योजना बनायें।

यहाँ यह विशेष स्मरणीय है कि यदि मुख्य द्वार की ऊंचाई से दुगुनी दूरी छोड़कर कोई वेध है तो वह प्रभावकारी नहीं होता।

इसी भांति द्वार एवं वेध के मध्य प्रमुख मार्ग हो जिस पर आवागमन निरन्तर होता हो तो भी वेध का दुष्प्रभाव नहीं रहता है।

जिस भांति गृह वास्तु का निर्माण करते समय वेध विचार एवं परिहार किया जाता है उसी भांति प्रासाद के निर्माण के समय भी वेध परिहार करना अत्यंत आवश्यक है।

अपशकुन एवं अशुभ लक्षण

ज्योतिष शास्त्र में शकुन विचार का अपना महत्व है, इनके विपरीत असर देखने में आते हैं। अतः मंदिर परिसर में निम्नलिखित लक्षण उपस्थित होने पर उनका परिहार करना चाहिये -

१. मन्दिर में मधुमक्खी का छत्ता लगने पर, कुकुरमुत्ता होने पर तथा खरगोश के प्रवेश करने पर अर्धवर्ष अर्थात् छह माह का दोष रहता है। गिद्ध पक्षी, कौआ, उल्लू, चमगादड़ मन्दिर में प्रवेश करें तो पंद्रह दिन तक दोष रहता है। मन्दिर में गोह प्रवेश करने पर तीन माह तक दोष रहता है।
इन दोषों के होने पर मन्दिर में पुनः शान्ति (शान्तिविधान एवं हवन) करवाना उपयुक्त है।

२. प्रासाद की छत पर, झरोखों में, दरवाजे पर अथवा दीवारों पर यदि एकाएक टिड्डियां अथवा मधुमक्खियां आकर गिर जाती हैं तो भय, शोक, कलह, जनहानि इत्यादि कष्ट हो सकते हैं।

३. यदि मन्दिर में उल्लू या बाज पक्षी घोंसले बनाकर रहने लगते हैं तो इससे समाज में दरिद्रता आती है।

४. यदि मन्दिर में बिल्ली अथवा कुतिया प्रसव कर देवे तो समाज के वरिष्ठ सदस्य की मृत्यु की सम्भावना होती है।

५. यदि अग्नि के बिना ही मन्दिर में धुएं जैसा वातावरण प्रतीत हो तो इससे समाज में कलह एवं अशांन्ति का वातावरण बनता है।

६. यदि कौआ हड्डी-मांस मन्दिर में गिराता है तो समाज में अमंगल, विवाद होने की आशंका तथा मन्दिर में चोरी की सम्भावना होती है।

७. मन्दिर का कलश अथवा ध्वज यदि अचानक टूटकर गिर जाये तो मन्दिर एवं समाज में अनेकों उपद्रव होने की संभावना रहती है।

८. यदि मन्दिर का मुख्य द्वार अचानक गिर जाये तो यह महान अनिष्ट कारक है तथा समाज के प्रमुख या वरिष्ठ व्यक्ति के मरण का संकेत समझना चाहिये।

९. यदि मूर्ति एवं मन्दिर में से अकस्मात् जलधारा बहती हुई दिखाई दे तो यह राष्ट्र विप्लव की ओर संकेत करता है।

१०. यदि ऐसा आभास हो कि देवप्रतिमा नाच रही है, रो रही है, हंस रही है अथवा नेत्रों को खोल बन्द कर रही है तो समझना चाहिये कि महा भय है। यह अत्यंत अशुभ संकेत है। *

अशुभ लक्षण आने की स्थिति में अविलम्ब उसका परिहार करने का यत्न करें। आचार्य परमेष्ठी अथवा साधुगण अथवा उपयुक्त विद्वान से परामर्श कर धर्म क्रिया कर इसका परिहार करना चाहिये।

---

*नर्तनं रोदनं हास्यमुन्मीलननिमीलने।
देवा यत्र प्रकुर्वन्ति तत्र विद्यान्महाभयम् ॥ रु.मं. १/१९

मन्दिर में महादोष

निम्नलिखित सात दोषों को मन्दिर वास्तु के सात महादोष कहा जाता है। इनका यथा विधि निराकरण कर शुचिता कराना आवश्यक है। *

१. मन्दिर में दीवालों से चूना उतर जाना
२. मकड़ी के जाले लगना
३. कीलें लगी हों
४. पोलापन हो गया हो
५. छेद पड़ गए हों
६. सांध एवं दरारें दिखती हों
७. मन्दिर को कारागृह में परिवर्तित कर दिया गया हो।

मन्दिर निर्माण में वास्तु दोष

भवनों की भांति ही प्रासादों एवं मन्दिरों का निर्माण करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि निर्माण में वास्तु दोष न आयें तथा आने की संभावना हो तो निर्माण चलते समय ही विद्वानों एवं शिल्प शास्त्रों से परामर्श कर तत्काल ही उनका निराकरण कर लिया जाये। ऐसा न किये जाने पर अनपेक्षित विपरीत घटनायें घटती हैं तथा न केवल मन्दिर निर्माता वरन् निर्माण शिल्पी तथा समाज भी दीर्घ काल तक इनसे कष्ट पाते हैं।

शिल्पी कृत महादोष

शिल्पियों की अज्ञानता, असावधानी से कुछ दोषों का होना संभव है। इनमें सर्व प्रमुख हैं **:-

① दिग्मूढ़ -
② नष्टछन्द -
③ आयहीन -
④ प्रमाणहीन -

दिग्मूढ़ या दिशा मूढ़ दोष से तात्पर्य है कि मूल दिशाओं से हटकर वास्तु का निर्माण हो जाये अर्थात् दिशाओं के कोण टेढ़े हो जायें।

ईशान कोण की तरफ अथवा नैऋत्य कोण की तरफ मन्दिर वास्तु यदि टेढ़ी हो इसे दिशा मूढ़ दोष नहीं माना जाता। जिस प्रकार कि तीर्थस्थलों में मन्दिरों में दिशा मूढ़ दोष को महत्व नहीं दिया जाता।

---

*मंडलं जालकं चैव कीलं सुषिरं तथा।
छिद्रं सन्धिश्च काराश्च महादोषा इति स्मृता ।। प्रा.मं. ८/१६,शि.र. ५/१३२

**पूर्वोत्तर दिशामूढं मूढं पश्चिम दक्षिणे।
तत्र मूढममूढं वा यत्र तीर्थ समाहितम् ।। प्रासाद मण्डन ८/९

दिशा मूढ़ के अन्य प्रकरण

यदि पूर्व पश्चिम की दिशा में लम्बाई युक्त मन्दिर का प्रमुख प्रवेश द्वार अथवा जिनेन्द्र प्रतिमा का मुख यदि आग्नेय अथवा वायव्य की ओर हो जाये तो यह महा अनर्थकारी है। ऐसा होने पर मन्दिर निर्माता अथवा प्रतिष्ठाकारक, यज्ञनायक अथवा समाज के प्रमुख सदस्य को स्त्री मरण का कष्ट होता है।

उत्तर दक्षिण लम्बाई वाले जिनालयों में यदि यह दोष अर्थात् मन्दिर का प्रवेश द्वार या जिन बिम्ब का मुख आग्नेय अथवा वायव्य की तरफ हो तो मन्दिर निर्माता, प्रतिष्ठाकारक, यजमान, यज्ञनायक समाज के प्रमुख सदस्यों को महाअनिष्टकारी एवं सर्व विनाश का कारण होता है। अतएव मन्दिर निर्माता इस दोष का पूर्ण निराकरण अवश्य ही करें।

सिद्ध क्षेत्र, पंच कल्याणक भूमि, सरिता संगम स्थान, में निर्मित जिन मन्दिरों में दिशा मूढ़ दोष नहीं माना जाता। स्वयंभू एवं बाण लिंगों के मन्दिरों में भी यही बात लागू होती है। फिर भी नवनिर्माण करते समय दिग्मूढ़ दोष का निरसन करके ही मंदिर वास्तु का निर्माण करना शुभ एवं श्रेयस्कर है। *

मन्दिर, महल तथा नगर यदि दिग्मूढ़ दोष से सहित होवें तो इनसे निर्माता का महान अनिष्ट होता है उसका द्रव्य क्षय, कुल क्षय तथा आयु क्षय होती है। इससे मुक्ति (निर्वाण) भी प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव दिशा- विदिशाओं में वास्तु का वेध का शोधन करना सदैव कल्याणकारी है। सर्वप्रथम पूर्व पश्चिम में सूत्रपात करना चाहिये। इसके उपरान्त वर्गाकार क्षेत्र करने में दिग्मूढ़ दोष का परित्याग करना चाहिये। **

छाया भेद दोष

प्रासाद की ऊंचाई एवं चौड़ाई के अनुसार बायीं और दाहिनी ओर जगती शास्त्र के मान के अनुरुप होना चाहिये। ऐसा न होने पर छाया भेद दोष होता है। $

---

*सिद्धायतन तीर्थेषु नदीनां संगमेषु च।
स्वयंभु बाणलिंगेषु तत्रदोषो न विद्यते ।। प्रा. मं. ८/१०

**दिङ्मूढेन कृते वास्तौ पुर प्रासाद मन्दिरे।
अर्थनाशः क्षयोमृत्युर्निर्वाण नैव गच्छति ।। शि.र. १२८
दिशोश्च विदिशोश्चैव वास्तु वेध विशोधनम् ।
जीर्णेन वर्ततें वास्तौ वेध दोषो न विद्यते ।। १२९ शि. र.
सूत्रपातस्तु कर्तव्या सानुप्राच्योरनन्तरम्।
चतुरस्रं समं कृत्वा दिङ्मूढ परिवर्जयेत् ।। शि. र. १२६

$प्रासादोच्छ्राय विस्तारांज्जगती वाम दक्षिणे।
छायाभेदा न कर्तव्या यथा लिंगस्य पीठिका। प्रा. मं. ८/२८

वास्तु दोषों के अन्य भेद

① भिन्न दोष - ये ४ प्रकार के हैं।
② मिश्र दोष - ये ८ प्रकार के हैं।
③ महामर्म दोष - ये दो प्रकार के हैं, - जाति भेद एवं छन्द भेद

जाति भेद

प्रासाद की अनेकों जातियों में से पीठ एक जाति की बनायें तथा शिखर आदि अन्य जाति के बनायें तो इसे जाति भेद कहते हैं। इसे महामर्म दोष की संज्ञा दी गयी है।

छन्द भेद

प्रासाद, मठ एवं मन्दिर में छन्द भेद नहीं करना चाहिये। जैसे छन्दों में गुरु लघु यथा स्थान न होने पर छन्द दूषित होता है उसी प्रकार प्रासाद की अंग विभक्ति शास्त्र नियमानुसार न करने पर प्रासाद दूषित होता है। ऐसा दोष रहने पर स्त्री मृत्यु , शोक, संताप होता है तथा पुत्र, पति एवं धन का क्षय होता है। *

मन्दिर वास्तु का निर्माण करते समय यदि पद लोप, दिशा लोप अथवा गर्भलोप होवे तो मन्दिर निर्माता तथा निर्माणकर्ता (बनाने वाला तथा बनवाने वाला) दोनों ही अधोगति को प्राप्त होते हैं।

जिनालय में स्तम्भों के पाषाणों का थर भंग होने पर मन्दिर के शासन देव कुपित होते हैं तथा शिल्पी का क्षय होता है। मन्दिर बनवाने वाला भी मृत्यु को प्राप्त होता है। अतएव शास्त्र विधि से रहित देवालय कदापि न बनवायें अन्यथा वे कल्याणकारी नहीं होंगे।

प्रमाण दोष

यदि मन्दिर का निर्माण शास्त्रोक्त विधि से सही प्रमाणों में किया जाता है तो वह मन्दिर निर्माता तथा समाज के सभी के लिये सुफल दायक एवं पुण्यवर्धक होता है। किन्तु यदि यही निर्माण प्रमाण से विरुद्ध कम ज्यादा किया है तो नाना प्रकार के संकटों का कारण बनता है। प्रमाण से युक्त मन्दिर आयु, सौभाग्य एवं पुत्र पौत्रादि संतति दायक होता है। यदि यह मन्दिर प्रमाण से हीन हो तो महान भयोत्पादक होता है। **

---

*छन्द भेदो न कर्तव्यः प्रासाद मठ मन्दिरे।
स्त्री मृत्यु शोक संतापः पुत्र पति धन क्षयः ।। शि. र.५/ १४७
छन्द भेदो न कर्तव्यो जातिर्भेदोऽपि वा पुनः।
उत्पद्यते महामर्म जाति भेद कृते सति ।। प्रा. मं. ८/२१
पद लोपं, दिशा लोपं, गर्भ लोपं तथैव च।
उभयौ तौ नरकं यांता स्थापक स्थपक सदा ।। शि.र. ५/१५२
**मान प्रमाण संयुक्ता शास्त्र दृष्टिश्च कारयेत।
आयुः पूर्णश्च सौभाग्यं लभते पुत्र पौत्रकम् ।। शि.र. ५/१४४
दीर्घे मानाधिके ह्रस्वे वक्रेचापि सुरालये।
छन्द भेदे जाति भेदे हीन माने महद्भयम् ।। प्रा.मंजरी /१६०
अशास्त्रं मन्दिरं कृत्वा प्रजा राजगृहं तथा।
तद्गेहमशुभं गेहं श्रेयस् तत्र न विद्यते ।।

प्रमाण दोषों के परिणाम*

१. जिन प्रासाद अगर प्रमाणों से हीन होता है तो अनपेक्षित परेशानियों का आगमन होता है।

२. यदि प्रासाद की पीठ प्रमाण से हीन हो तो मन्दिर निर्माता को वाहन हानि एवं दुर्घटना की आशंका होती है।

३. यदि मन्दिर के रथ उपरथ आदि अंग प्रमाण से हीन हों तो प्रजा/ समाज को पीड़ादायक होता है।

४. यदि प्रासाद की जंघा प्रमाण से हीन हो तो मन्दिर निर्माता एवं समाज को हानिकारक होता है।

५. यदि मन्दिर का शिखर प्रमाण से हीन अर्थात् कम ऊंचा हो तो पुत्र - पौत्र धन की हानि तथा रोगों की उत्पत्ति होती है जबकि प्रमाण से अधिक बनाया गया शिखर निर्माता के लिए कुलहानि कारक होता है।

६. यदि मन्दिर में द्वार मान से हीन होवें तो धन क्षय होता है। **

७. यदि स्तम्भ अपद में हो तो रोगोत्पत्ति होती है।

८. यदि स्तम्भ का मान चौड़ाई अथवा ऊंचाई में हीन हो तो मन्दिर निर्माता का विनाश होता है।

---

*रथोपरथहीने तु प्रजापीड़ा विनिर्दिशेत्।
कर्णहीने सुरागारे फलं क्वापि न लभ्यते ।। प्रा. मं. ८/२४
जंघाहीने हरेद् बन्धून् कर्तृकारापरादिकान्।
शिखरे हीनमाने तु पुत्रपौत्र धनक्षयः ।। प्रा. मं. ८/२५
अतिदीर्घे कुलच्छेदो ह्रस्वे व्याधिर्विनिर्दिशेत्।
तस्माच्छास्त्रोक्तमानेन सुखदं सर्वकामदं ।। प्रा. मं. ८/२६
द्वार हीने हरेच्चक्षुः नालीहीने धनक्षयः।
अपदे स्थापिते स्तम्भे महारोगं विनिर्दिशेत् ।। प्रा. मं. ८/२२
स्तम्भ व्यासोदये हीने कर्ता तत्र विनश्यति।
प्रासादे पीठ हीने तु नश्यन्ति गजवाजिनः ।। प्रा. मं. ८/२३
**अन्यथा च न कर्तव्यं मानहीनं न कारयेत।
क्रियते बहुदोषाः स्यु सिद्धिरत्र न जायते ।। शि.र. १२/१४७
निर्दोषा जायमाना स्यात शिल्पिदोषे महद्भयम्।
शास्त्रहीनं न कर्तव्यं स्वामिश्चर्वधनक्षयः ।। शि.र. १२/१४८

तीर्थंकर प्रतिमा निर्णय

जब यह निर्णय लिया जाता है कि जिनेन्द्र प्रभु का मंदिर निर्माण करना है तब यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि मंदिर के मूल नायक कौन से तीर्थंकर होंगे। मूल नायक के नाम से ही मंदिर का नाम प्रचलित होता है। प्रतिष्ठा ग्रन्थों में इस विषय में स्पष्ट निर्देश उपलब्ध होते हैं। तीर्थंकर प्रभु की राशि का मिलान प्रतिमा स्थापनकर्ता की राशि से किया जाता है। साथ ही तीर्थंकर प्रभु की राशि का मिलान नगर या ग्राम के नाम की राशि से भी किया जाता है। इसके साथ ही यह राशि मिलान तीर्थंकर की नवांश राशि से भी किया जाता है। इस विषय में विद्वान प्रतिष्ठाचार्य के साथ ही परमपूज्य आचार्य परमेष्ठी अथवा साधु परमेष्ठी से विनय पूर्वक निवेदन करके समुचित मार्ग-दर्शन लेना चाहिए, तभी किन तीर्थंकर को मूल नायक बनाना है यह निर्णय करना चाहिए।

सामान्य रुप से देखने में आता है कि समाज अथवा मंदिर निर्माणकर्ता इस तथ्य का विचार किये बिना ही मूल नायक का निर्णय कर लेते हैं। ऐसा करने से समाज को अपेक्षित पुण्य लाभ नहीं मिल पाता एवं धर्म का अतिशय भी प्रकट नहीं होता। जिनेन्द्र प्रभु का मंदिर न सिर्फ उपासक के लिए वरन सारे नगर के लिए पुण्य वर्धक होता है। अतएव नगर, मंदिर निर्माणकर्ता तथा मूल नायक प्रभु तीनों का राशि मिलान अवश्य ही करना चाहिए।

यदि प्रतिमा स्थापनकर्ता धर्मानुरागवश किसी विशिष्ट तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित करना चाहता है तथा राशि मिलान नहीं हो रही है तो ऐसी स्थिति में उन तीर्थंकर की प्रतिमा को मूल नायक नहीं बनाना चाहिए, अन्य वेदी में उन तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित करना चाहिए।

जिन मंदिरों में मूल नायक का पद तीर्थंकर को ही देना चाहिए तथा उन्हीं के यक्ष-यक्षिणी की स्थापना श्रेयस्कर है। भरत, बाहुबली, राम, हनुमान, गुरुदत्त इत्यादि मोक्षगामी महापुरुषों के स्वतंत्र मंदिर बनाने के बजाय तीर्थंकर मूल नायक के साथ इन्हें स्थापित करना चाहिए।

राशि मिलान एवं नवांश राशि मिलान का चक्र अग्रलिखित है। किसी भी संशय की स्थिति में पूज्य गुरुजनों से मार्गदर्शन लेकर निर्णय करना चाहिए।

तीर्थंकर एवं प्रतिमा स्थापनकर्ता की राशि का मिलान चक्र

क्र.	तीर्थंकर	नक्षत्र	राशि	योनि	गण	नाड़ी	अशुभ राशि	वर्ण	तारा	हंस
१.	ऋषभनाथ	उ.षा.	धन	नकुल	मनुष्य	अंत्य	वृषभ, मकर	क्षत्रिय	३	अग्नि
२.	अजितनाथ	रोहिणी	वृषभ	सर्प	मनुष्य	अंत्य	मेष, धनु	वैश्य.	४	भूमि
३.	संभवनाथ	मृगशिर	मिथुन	सर्प	देव	मध्य	कर्क, वृश्चिक, कुंभ	शूद्र.	५	वायु
४.	अभिनंदननाथ	पुनर्वसु	मिथुन	विडाल	देव	आद्य	कर्क, वृश्चिक, कुंभ	शूद्र.	७	वायु
५.	सुमतिनाथ	मघा	सिंह	मूषक	राक्षस	अंत्य	मकर	क्षत्रिय	१	अग्नि
६.	पद्मप्रभ	चित्रा	कन्या	व्याघ्र	राक्षस	मध्य	मेष,मकर	वैश्य.	५	भूमि
७.	सुपार्श्वनाथ	विशाखा	तुला	व्याघ्र	राक्षस	अंत्य	वृश्चिक, मीन	शूद्र.	७	वायु
८.	चन्द्रप्रभ	अनुराधा	वृश्चिक	हरिण	देव	मध्य	मिथुन, कर्क, तुला	विप्र.	८	जल
९.	पुष्पदंत	मूल	धनु	श्वान	राक्षस	आद्य.	वृष, मकर	क्षत्रिय	१	अग्नि
१०	शीतलनाथ	पूर्वाषाढ़ा	धनु	वानर	मनुष्य	मध्य	वृष, मकर	क्षत्रिय	२	अग्नि
११	श्रेयांसनाथ	श्रवण	मकर	वानर	देव	अंत्य	सिंह, कन्या,धनु	वैश्य.	४	भूमि
१२	वासुपूज्य	शतभिषा	कुंभ	अश्व	राक्षस	आद्य.	मिथुन, कर्क, मीन	शूद्र.	६	वायु
१३	विमलनाथ	उ. भा.	मीन	गौ	मनुष्य	मध्य	कर्क, तुला, कुंभ	विप्र.	८	जल
१४	अनंतनाथ	रेवती	मीन	हस्ति	देव	अंत्य	कर्क, तुला, कुंभ	विप्र.	९	जल
१५	धर्मनाथ	पुष्य	कर्क	अज	देव	मध्य	मिथुन, वृश्चिक, कुंभ, मीन	विप्र.	८	जल
१६	शांतिनाथ	अश्विनी	मेष	अश्व	देव	आद्य.	वृष, कन्या	क्षत्रिय	१	अग्नि
१७	कुंथुनाथ	कृतिका	वृषभ	अज	राक्षस	अंत्य	मेष, धनु	वैश्य.	३	भूमि
१८	अरहनाथ	रेवती	मीन	हस्ति	देव	अंत्य	कर्क, तुला, कुंभ	विप्र.	९	जल
१९	मल्लिनाथ	अश्विनी	मेष	अश्व	देव	आद्य.	वृष, कन्या	क्षत्रिय	१	अग्नि
२०	मुनिसुव्रत	श्रवण	मकर	वानर	देव	अंत्य	सिंह, कन्या, धनु	वैश्य.	४	भूमि
२१	नमिनाथ	अश्विनी	मेष	अश्व	देव	आद्य.	वृष, कन्या	क्षत्रिय	१	अग्नि
२२	नेमिनाथ	चित्रा	कन्या	व्याघ्र	राक्षस	मध्य	मेष, मकर	वैश्य.	५	भूमि
२३	पार्श्वनाथ	विशाखा	तुला	व्याघ्र	राक्षस	अंत्य	वृश्चिक, मीन	शूद्र.	७	वायु
२४	वर्धमान	उ. फा.	कन्या	गौ	मनुष्य	आद्य.	मेष, मकर	वैश्य.	३	भूमि

प्रतिमा स्थापनकर्ता एवं तीर्थंकर की नवांश राशि का मिलान

मेष

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१	चु	पुष्पदंत	सुमतिनाथ शीतलनाथ	आदिनाथ, अजितनाथ श्रेयांसनाथ, कुन्थुनाथ मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य
२.	चे	-	पद्मप्रभ, नेमिनाथ महावीर, मुनिसुव्रतनाथ	विमलनाथ वासुपूज्य
३.	चो	पार्श्वनाथ	धर्मनाथ, सुपार्श्वनाथ	मल्लिनाथ, नमिनाथ शांतिनाथ, अरहनाथ अनंतनाथ, वासुपूज्य विमलनाथ
४.	ला	शांतिनाथ मल्लिनाथ, नमिनाथ, सुमतिनाथ, विमलनाथ	चन्द्रप्रभु अनंतनाथ अरहनाथ	अजितनाथ, कुन्थुनाथ
५.	ली	शांतिनाथ शीतलनाथ	मल्लिनाथ, नमिनाथ आदिनाथ पुष्पदंत	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ संभवनाथ, अभिनंदन अजितनाथ, कुंथुनाथ
६.	लू	सुपार्श्वनाथ श्रेयासनाथ संभवनाथ	पार्श्वनाथ मुनिसुव्रतनाथ, अजितनाश कुंथुनाथ, अभिनंदननाथ	धर्मनाथ
७.	ले	वासुपूज्य संभवनाथ	अभिनंदननाथ	सुमतिनाथ, धर्मनाथ चन्द्रप्रभ
८.	लो	शीतलनाथ विमलनाथ सुमतिनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत अनंतनाथ, अरहनाथ धर्मनाथ	पद्मप्रभ महावीर नेमिनाथ
९.	अ	शांतिनाथ मल्लिनाथ	सुमतिनाथ नेमिनाथ	श्रेयांसनाथ, नमिनाथ मुनिसुव्रत, पद्मप्रभ, महावीर, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ

वृषभ

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	इ	वासुपूज्य अजितनाथ, कुंथुनाथ	महावीर, पद्मप्रभ सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	चंद्रप्रभ नेमिनाथ
२.	उ	अभिनंदननाथ सुपार्श्वनाथ पार्श्वनाथ	संभवनाथ, चंद्रप्रभ अरहनाथ, आदिनाथ पुष्पदंत, शीतलनाथ,	विमलनाथ, अनंतनाथ
३.	ए	पुष्पदंत, शीतलनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	चन्द्रप्रभ, आदिनाथ,	श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रतनाथ धर्मनाथ
४.	ओ	कुंथुनाथ	अजितनाथ, सुमतिनाथ मुनिसुव्रतनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ	वासुपूज्य, श्रेयांसनाथ,
५.	वा	संभवनाथ श्रेयांसनाथ वासुपूज्य	अभिनंदननाथ, पद्मप्रभु नेमिनाथ, महावीर मुनिसुव्रतनाथ	विमलनाथ अनंतनाथ अरहनाथ
६.	वी	सुपार्श्वनाथ वासुपूज्य	पार्श्वनाथ अरहनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	विमलनाथ, शांतिनाथ, धर्मनाथ, अनंतनाथ,
७.	वू	-	विमलनाथ, शांतिनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	सुमतिनाथ चन्द्रप्रभ अजितनाथ, कुंथुनाथ
८.	वे	-	शांतिनाथ, पद्मप्रभ महावीर, नेमिनाथ शीतलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, मल्लिनाथ, नमिनाथ, संभवनाथ, अजितनाथ, कुंथुनाथ, अभिनंदननाथ
९.	वो	सुपार्श्वनाथ, कुंथुनाथ श्रेयांसनाथ, संभवनाथ पार्श्वनाथ, अजितनाथ	मुनिसुव्रतनाथ अभिनंदननाथ	धर्मनाथ

मिथुन

क्र.	नक्षत्र चरण अक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	का	वासुपूज्य, संभवनाथ-अभिनंदननाथ	सुमतिनाथ, चन्द्रप्रभ	धर्मनाथ
२.	की	-	महावीर, नेमिनाथ	विमलनाथ, धर्मनाथ, शीतलनाथ, आदिनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, सुमतिनाथ, पुष्पदंत, पद्मप्रभ,
३.	कु	-	मुनिसुव्रतनाथ, महावीर नेमिनाथ, सुमतिनाथ श्रेयांसनाथ	सुपार्श्वनाथ, शांतिनाथ, नमिनाथ, मल्लिनाथ, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, विमलनाथ
४.	घ	कुंथुनाथ, महावीर नेमिनाथ, अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ, वासुपूज्य	पद्मप्रभ सुपार्श्वनाथ	चंद्रप्रभ
५.	ङ	-	संभवनाथ, अभिनंदननाथ सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, शीतलनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत, चंद्रप्रभ
६.	छ	-	मुनिसुव्रतनाथ श्रेयांसनाथ	मल्लिनाथ, नमिनाथ, धर्मनाथ, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शांतिनाथ आदिनाथ, शीतलनाथ
७.	के	-	सुमतिनाथ, कुंथुनाथ	अजितनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य, आदिनाथ, श्रेयांसनाथ, शीतलनाथ, पुष्पदंत
८.	को	नेमिनाथ, महावीर मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य	संभवनाथ अभिनंदननाथ	श्रेयांसनाथ, पद्मप्रभ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ
९.	हा	सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ वासुपूज्य	धर्मनाथ, शांतिनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ

कर्क

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१	ही	सुमतिनाथ चंद्रप्रभ शांतिनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ अरहनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ	कुंथुनाथ, अजितनाथ
२.	हू	शीतलनाथ शांतिनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत मल्लिनाथ, नेमिनाथ	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ कुंथुनाथ, संभवनाथ अजितनाथ, अभिनंदननाथ
३.	हे	सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ धर्मनाथ	श्रेयांसनाथ, कुंथुनाथ संभवनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, अजितनाथ, अभिनंदननाथ
४.	हो	-	चंद्रप्रभ धर्मनाथ	सुमतिनाथ, संभवनाथ, वासुपूज्य, अभिनंदननाथ
५.	डा	धर्मनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, आदिनाथ पुष्पदंत	विमलनाथ	सुमतिनाथ, शीतलनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ
६.	डी	मल्लिनाथ, नमिनाथ	मुनिसुव्रतनाथ	सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, श्रेयांसनाथ शांतिनाथ, सुपार्श्वनाथ
७.	डू	-	अजितनाथ, कुंथुनाथ महावीर, पद्मप्रभ पार्श्वनाथ, नेमिनाथ	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ
८.	डे	-	अनंतनाथ, अरहनाथ, पुष्पदंत, आदिनाथ, पार्श्वनाथ, विमलनाथ, अभिनंदननाथ	शीतलनाथ, सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ
९.	डो	धर्मनाथ, आदिनाथ पुष्पदंत, मल्लिनाथ	नमिनाथ चंद्रप्रभ	मुनिसुव्रतनाथ, शांतिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ

सिंह

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	मी	सुमतिनाथ आदिनाथ, पुष्पदंत शीतलनाथ		अजितनाथ, श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रत, वासुपूज्य, कुंथुनाथ
२.	मा	संभवनाथ, महावीर अभिनंदननाथ, पद्मप्रभ, नेमिनाथ,	विमलनाथ अनंतनाथ अरहनाथ	श्रेयांसनाथ मुनिसुव्रतनाथ वासुपूज्य,
३.	मू	-	धर्मनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, वासुपूज्य
४.	मे	सुमतिनाथ, विमलनाथ अनंतनाथ, अरहनाथ शांतिनाथ, मल्लिनाथ नमिनाथ	चन्द्रप्रभ	अजितनाथ, कुंथुनाथ
५.	मो	आदिनाथ, पुष्पदंत शीतलनाथ, शांतिनाथ मल्लिनाथ, नमिनाथ	पद्मप्रभ महावीर नेमिनाथ	संभवनाथ, अभिनंदनाथ, अजितनाथ, कुंथुनाथ
६.	टा	-	अभिनंदननाथ धर्मनाथ	पार्श्वनाथ, मुनिव्रतनाथ, अजितनाथ, कुंथनाथ, संभव, सुपार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ
७.	टी	अभिनंदननाथ	धर्मनाथ	चंद्रप्रभ, वासुपूज्य, सुमतिनाथ, संभवनाथ
८.	टू	आदिनाथ, पुष्पदंत अनंतनाथ, अरहनाथ, धर्मनाथ	विमलनाथ	शीतलनाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ
९.	टे	मल्लिनाथ, नमिनाथ	-	मुनिसुव्रतनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, पार्श्वनाथ सुमतिनाथ, श्रेयांसनाथ, सुपार्श्वनाथ

कन्या

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१	टो	अजितनाथ, कुंथुनाथ महावीर, पद्मप्रभ पार्श्वनाथ, नेमिनाथ	वासुपूज्य	चन्द्रप्रभ सुपार्श्वनाथ
२.	पा	संभवनाथ अभिनंदननाथ सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	अनंतनाथ, अरहनाथ पुष्पदंत, शीतलनाथ आदिनाथ	विमलनाथ चन्द्रप्रभ
३.	पी	श्रेयांसनाथ मुनिसुव्रतनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत शीतलनाथ, शांतिनाथ मल्लिनाथ, नमिनाथ	धर्मनाथ चंद्रप्रभ
४.	पू	सुमतिनाथ	अजितनाथ, आदिनाथ पुष्पदंत, शीतलनाथ	श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रतनाथ वासुपूज्य, कुंथुनाथ
५	ष	संभवनाथ, अभिनंदन पद्मप्रभ, नेमिनाथ महावीर, श्रेयांसनाथ मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य	-	विमलनाथ, अनंतनाथ अरहनाथ
६.	ण	पार्श्वनाथ	वासुपूज्य	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ नमिनाथ, शांतिनाथ
७	ठ	-	चंद्रप्रभ, विमलनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, अनंतनाथ, नमिनाथ अजितनाथ, कुंथुनाथ	सुमतिनाथ, शांतिनाथ
८.	पे	पद्मप्रभ, महावीर नमिनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ	अजितनाथ, कुंथुनाथ
९.	पो	सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ अजितनाथ, संभवनाथ अभिनंदनाथ, श्रेयांसनाथ मुनिसुव्रतनाथ	-	कुंथुनाथ धर्मनाथ

तुला

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	रा	वासुपूज्य, संभवनाथ,	अभिनंदन नाथ	सुमतिनाथ, धर्मनाथ, चन्द्रप्रभु
२.	री	-	शीतलनाथ, विमलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, अनंतनाथ अरहनाथ, धर्मनाथ , सुमतिनाथ पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ
3.	रू	-	श्रेयांसनाथ , शांतिनाथ, सुमतिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ	मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभ, महावीर, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ
४.	रे	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ	अजितनाथ, कुन्थुनाथ, महावीर, पद्मप्रभ पार्श्वनाथ, नमिनाथ	चन्द्रप्रभु
५.	रो	संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ	अभिनंदननाथ, पार्श्वनाथ	विमलनाथ, शीतलनाथ, अनंतनाथ , अरहनाथ, पुष्पदंत, आदिनाथ, चन्द्रप्रभ
६.	ता	-	श्रेयांसनाथ, शांतिनाथ, नमिनाथ	मुनिसुव्रत, मल्लिनाथ, धर्मनाथ, शीतलनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदंत, आदिनाथ
७.	ती	-	कुन्थुनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य	सुमतिनाथ, शीतलनाथ
८.	तू	नेमिनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य	पद्मप्रभ, महावीर, मुनिसुव्रतनाथ, संभवनाथ अभिनंदननाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ
९	ते	सुपार्श्वनाथ, वासुपूज्य	पार्श्वनाथ, धर्मनाथ	शांतिनाथ, नमिनाथ,विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ

वृश्चिक

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	लो	सुमतिनाथ, विमलनाथ, शांतिनाथ , नमिनाथ	चंद्रप्रभ, मल्लिनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ	कुंथुनाथ, अजितनाथ
२.	ना	शीतलनाथ,	पुष्पदंत, नेमिनाथ, आदिनाथ, शांतिनाथ नमिनाथ	मल्लिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर संभवनाथ, कुंथुनाथ, अजितनाथ, अभिनंदननाथ
३.	नी	-	सुपार्श्वनाथ, धर्मनाथ, पार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ कुंथुनाथ, संभवनाथ	मुनिसुव्रतनाथ, अजितनाथ, अभिनंदननाथ,
4	नू	-	सुमतिनाथ, धर्मनाथ, वासुपूज्य, संभवनाथ	चन्द्रप्रभ, अभिनंदननाथ
5.	ने	शीतलनाथ, विमलनाथ, धर्मनाथ, सुमतिनाथ	पुष्पदंत, अनंतनाथ, आदिनाथ, अरहनाथ	नेमिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर
6.	नो	सुमतिनाथ	शांतिनाथ, नमिनाथ, श्रेयांसनाथ	मुनिसुव्रत, मल्लिनाथ, सुपार्श्वनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर
7.	या	-	सुपार्श्वनाथ, वासुपूज्य	अजितनाथ, कुंथुनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर पद्मप्रभ, नेमिनाथ, चंद्रप्रभ
8.	यी	-	विमलनाथ, शीतलनाथ, सुपार्श्वनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, आदिनाथ, पुष्पदंत	पार्श्वनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ,चंद्रप्रभ
9.	यू	शीतलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, शांतिनाथ, धर्मनाथ चन्द्रप्रभ	श्रेयांसनाथ, मल्लिनाथ नमिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ

धनु

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	ये	सुमतिनाथ, शीतलनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत	श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य मुनिसुव्रत, अजितनाथ कुंथुनाथ
२.	यो	-	श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ,	अनंतनाथ, अरहनाथ, मुनिसुव्रत, संभवनाथ, अभिनंदन, पद्मप्रभ, नेमिनाथ महावीर
३.	भा	-	वासुपूज्य, धर्मनाथ सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, शांतिनाथ मल्लिनाथ, नमिनाथ
४.	भी	सुमतिनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ शांतिनाथ, मल्लिनाथ नमिनाथ	चन्द्रप्रभ	अजितनाथ, कुंथुनाथ
५.	भू	आदिनाथ, पुष्पदंत शीतलनाथ, शांतिनाथ मल्लिनाथ, नमिनाथ	-	पद्मप्रभ, महावीर, नेमिनाथ सम्भवनाथ, अभिनंदननाथ, अजिलनाथ, कुंथुनाथ
६.	धा	-	श्रेयांसनाथ, धर्मनाथ सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ	मुनिसुव्रतनाथ, पार्श्वनाथ, अजितनाथ, कुंथुनाथ. अभिनंदननाथ
७.	फा	-	वासुपूज्य, संभवनाथ, अभिनंदननाथ	सुमतिनाथ, धर्मनाथ, चन्द्रप्रभ
८.	ढा	अदिनाथ, पुष्पदंत अनंतनाथ, अरहनाथ धर्मनाथ	विमलनाथ, शीतलनाथ सुमतिनाथ	पद्मप्रभ, महावीर नेमिनाथ
९.	भे	शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, सुमतिनाथ	श्रेयांसनाथ, नेमिनाथ	पद्मप्रभ, महावीर, सुपार्श्वनाथ पार्श्वनाथ, नेमिनाथ

मकर

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	भो	वासुपूज्य, अजितनाथ सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ	महावीर, पद्मप्रभ नेमिनाथ	कुंथुनाथ, चन्द्रप्रभ
२.	जा	पार्श्वनाथ	सुपार्श्वनाथ संभवनाथ, अभिनंदननाथ पुष्पदंत	विमलनाथ, अनंतनाथ अरहनाथ, शीतलनाथ आदिनाथ, चन्द्रप्रभ
३.	जी	-	मुनिसुव्रतनाथ पुष्पदंत, मल्लिनाथ, नमिनाथ, धर्मनाथ, चंद्रप्रभ	शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, शांतिनाथ, आदिनाथ
४.	खी	-	आदिनाथ, शीतलनाथ मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य कुंथुनाथ	श्रेयांसनाथ, अजितनाथ सुमतिनाथ, पुष्पदंत
५.	खू	मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य, नेमिनाथ महावीर	श्रेयांसनाथ, संभवनाथ अभिनंदननाथ, पद्मप्रभ	विमलनाथ, अनंतनाथ अनंतनाथ अरहनाथ
६.	खे	वासुपूज्य	सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, धर्मनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ अरहनाथ, शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ
७.	खो	-	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ	चन्द्रप्रभ, मल्लिनाथ, नमिनाथ नमिनाथ, सुमतिनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अजितनाथ
८.	गा	-	महावीर, नमिनाथ आदिनाथ, शीतलनाथ	शांतिनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ पुष्पदंत, पद्मप्रभ, कुंथुनाथ अजितनाथ, संभवनाथ अभिनंदननाथ
९.	गी	मुनिसुव्रतनाथ सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ अभिनंदननाथ	श्रेयांसनाथ, अजितनाथ	धर्मनाथ, पार्श्वनाथ

कुंभ

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	गू	वासुपूज्य	धर्मनाथ, संभवनाथ अभिनंदननाथ	सुमतिनाथ, चंद्रप्रभ
२.	गे	-	विमलनाथ, धर्मनाथ	आदिनाथ, शीतलनाथ, अनंतनाथ अरहनाथ, सुमतिनाथ, महावीर, नेमिनाथ, पुष्पदंत, पद्मप्रभ
३.	गो	-	मुनिसुव्रतनाथ मल्लिनाथ, नमिनाथ श्रेयांसनाथ	शांतिनाथ, सुमतिनाथ, महावीर, नेमिनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभ पार्श्वनाथ
४.	सा	कुंथुनाथ, सुपार्श्वनाथ	वासुपूज्य, महावीर महावीर, पद्मप्रभ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ	चन्द्रप्रभ
५.	सी	संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ	अभिनंदननाथ, पार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, शीतलनाथ	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ, पुष्पदंत, आदिनाथ, चन्द्रप्रभ
६.	सू	श्रेयांसनाथ	आदिनाथ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, मुनिसुव्रत	शांतिनाथ, चन्द्रप्रभ मल्लिनाथ, नमिनाथ, धर्मनाथ
७.	से	-	शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य कुंथुनाथ	आदिनाथ, पुष्दंत, सुमतिनाथ अजितनाथ
८.	सो	श्रेयांसनाथ, संभवनाथ नेमिनाथ	अभिनंदननाथ पद्मप्रभु, महावीर मुनिसुव्रतनाथ, वासुपूज्य	विमलनाथ, अनंतनाथ अरहनाथ
९.	क्ष	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथ	धर्मनाथ, विमलनाथ, शांतिनाथ, नमिनाथ, मल्लिनाथ, अनंतनाथ, अरहनाथ

मीन

क्र.	नक्षत्र चरणाक्षर	सर्वोत्तम	उत्तम	मध्यम
१.	दी	विमलनाथ सुमतिनाथ, शांतिनाथ कुंथुनाथ, अजितनाथ	चन्द्रप्रभ मल्लिनाथ नमिनाथ	अनंतनाथ, अरहनाथ, कुंथुनाथ,
२.	दू	शीतलनाथ, शांतिनाथ नमिनाथ	पुष्पदंत, मल्लिनाथ, अदिनाथ अभिनंदननाथ	नेमिनाथ, संभवनाथ, पद्मप्रभ महावीर, कुंथुनाथ, अजितनाथ,
३.	थ	-	सुपार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ, धर्मनाथ	संभवनाथ, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, कुंथुनाथ, अजितनाथ, अभिनंदननाथ
४.	झ	-	चन्द्रप्रभ, धर्मनाथ	संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, वासुपूज्य
५.	त्र	पुष्पदंत, धर्मनाथ	आदिनाथ, शीतलनाथ अनंतनाथ, अरहनाथ सुमतिनाथ	विमलनाथ, पद्मप्रभ महावीर, नेमिनाथ
६.	दे	शांतिनाथ, नमिनाथ सुमतिनाथ	श्रेयांसनाथ, मल्लिनाथ	मुनिसुव्रतनाथ, सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, पद्मप्रभ, महावीर
७.	दो	-	वासुपूज्य, सुपार्श्वनाथ नेमिनाथ	कुंथुनाथ, महावीर, पद्मप्रभ पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, अजितनाथ
८.	चा	पुष्पदंत	विमलनाथ, अनंतनाथ, अरनाथ, शीतलनाथ, आदिनाथ	पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ, चन्दप्रभ
९.	ची	पुष्पदंत, मल्लिनाथ नमिनाथ, धर्मनाथ चन्द्रप्रभ, आदिनाथ	शांतिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ शीतलनाथ	श्रेयांसनाथ

तीर्थंकर की राशि तथा प्रतिमा स्थापनकर्ता की राशि का मिलान करके मूल नायक भगवान का निश्चय किया जाता है। पूर्वोक्त सारणियों का अवलोकन करके विद्वान प्रतिष्ठाचार्य तथा मर्मज्ञ आचार्य परमेष्ठी से इस विषय का निर्णय कराना चाहिये। नगर की राशि का भी इसी प्रकार मिलान करना चाहिये।

प्रतिमा किस द्रव्य की बनानी है इसका निर्णय प्रारंभ में ही कर लेना चाहिये। शिला परीक्षण के लिये शुभ मुहूर्त का चयन करके ही प्रस्थान करना चाहिये। उतावली में कभी भी प्रतिमा नहीं लेनी चाहिये। प्रतिमा की स्थापना भी मुहूर्त का चयन करने के बाद ही करना चाहिये।

प्रासादों के भेद

प्राचीन शास्त्रों में प्रासादों के अनेकानेक भेद बनाये गये हैं। जिन देवों ने जिस प्रकार की पूजा की उनके अनुरुप प्रासादों का उद्भव हुआ। ये चौदह प्रकार के भेदों से जाना जाता है -

देवों के पूजन से	नागर जाति के प्रासाद
दानवों के पूजन से	द्राविड़ जाति के प्रासाद
गन्धर्वों के पूजन से	लतिन जाति के प्रासाद
यक्षों के पूजन से	विमान जाति के प्रासाद
विद्याधरों के पूजन से	मिश्र जाति के प्रासाद
वसु देवों के पूजन से	वराटक जाति के प्रासाद
नाग देवों के पूजन से	सान्धार जाति के प्रासाद
नरेन्द्रों के पूजन से	भूमिज जाति के प्रासाद
सूर्य के पूजन से	विमान नागर जाति के प्रासाद
चन्द्र के पूजन से	विमान पुष्पक जाति के प्रासाद
पार्वती के पूजन से	वलभी जाति के प्रासाद
हरसिद्धि देवियों के पूजन से	सिंहावलोकन जाति के प्रासाद
व्यन्तर देवों के पूजन से	फांसी जाति के प्रासाद
इन्द्र लोक के पूजन से	रथारुह (दारुजादि) जाति के प्रासाद

जिनेन्द्र प्रासादों के लिए उत्तम जाति के प्रासादों का निर्माण करना निर्माता एवं समाज दोनों के लिए अतीव हितकारी हैं। प्रासादों की मुख्य जातियों में से निम्न जतियों के प्रासाद उत्तम कहे गये हैं* :-

१. नागर २. द्राविड़ ३. भूमिज ४. लतिन ५. सांधार
६. विमान नागर ७. विमान पुष्पक ८. मिश्र (श्रृंग व तिलक युक्त)

नागर जाति के प्रासाद

इन प्रासादों की तलाकृति को रुप, गवाक्षयुक्त भद्र से बनाया जाता है। इनमें शिखर अनेकों प्रकार के होते हैं। अनेकों प्रकार के वितान तथा श्रृंगयुक्त फालना से इन प्रासादों को शोभायमान किया जाता है।

द्राविड़ जाति के प्रासाद

इस प्रकार के प्रासादों में तीन अथवा पांच पीठ बनाये जाते हैं। पीठ पर वेदी का निर्माण किया जाता है। उनकी रेखा (कोना) का निर्माण लता एवं श्रृंगों से युक्त किया जाता है।

---

* ज्ञानप्रकाश दीपार्णव का वास्तु विद्या जिन प्रासाद अधिकार

ललित जाति के प्रासाद

ये प्रासाद एक श्रृंग वाले होते हैं।

श्रीवत्स प्रासाद

ये प्रासाद वारि मार्ग से युक्त होते हैं।

सांधार प्रासाद

परिक्रमा युक्त नागर प्रासाद को सांधार कहते हैं। इनका आकार दस हाथ से बड़ा रहता है तथा ये अव्यक्त प्रासाद (भिन्न दोष रहित) होते है। इनमें सूर्य किरण का सीधा प्रवेश नहीं होता है।

विमान नागर प्रासाद

प्रासाद के कोने के ऊपर केसरी आदि अनेक श्रृंग बनायें तथा भद्र के ऊपर उरुश्रृंग बनायें, शिखर पांच मंजिला हो, ऐसा प्रासाद विमान नागर जाति का कहा जाता है। इनके ऊपर अनेक श्रृंग तथा उरुश्रृंग होते हैं।

मेरु प्रासाद

मेरु प्रासाद पांच हाथ से छोटा नहीं बनाया जाता है। पांच हाथ के विस्तार वाले मेरु प्रासाद के शिखर के ऊपर १०१ श्रृंग चढ़ाये जाते हैं। पांच हाथ से एक-एक हाथ पचास हाथ तक बढ़ाने में इनके एक-एक भेद हैं। प्रत्येक अगले भेद के लिए २०-२० अधिक श्रृंग चढ़ाये जाते हैं। इस प्रकार पचास हाथ के मेरु प्रासाद पर १००१ श्रृंग हो जाते है। मेरु प्रासादों के नौ भेद भी वर्णित हैं :-

१.	मेरु प्रासाद	-	१०१ श्रृंग
२.	हेम शीर्ष मेरु	-	१५० श्रृंग
३.	सुरवल्लभ मेरु	-	२५० श्रृंग
४.	भुवन मंडन मेरु	-	३७५ श्रृंग
५.	रत्नशीर्ष मेरु	-	५०१ श्रृंग
६.	किरणोद्भव मेरु	-	६२५ श्रृंग
७.	कमल हंस मेरु	-	७५० श्रृंग
८.	स्वर्णकेतु मेरु	-	८७५ श्रृंग
९.	वृषभ ध्वज मेरु	-	१००१ श्रृंग

ये मेरु प्रासाद परिक्रमायुक्त अथवा बिना परिक्रमा के दोनों बनाये जाते हैं। यदि दो परिक्रमा बनायें तो उसके भद्र में प्रकाश के लिये गवाक्ष बनाना चाहिए। मेरु प्रासाद सिर्फ राजाओं को ही बनाना चाहिए। अकेले धनिक इन्हें न बनायें, यदि धनिक बनाना भी चाहे तो राजा के साथ बनायें अन्यथा महा अनिष्ट की संभावना है ।*

---

* प्रा.मं. ६/३५-४६
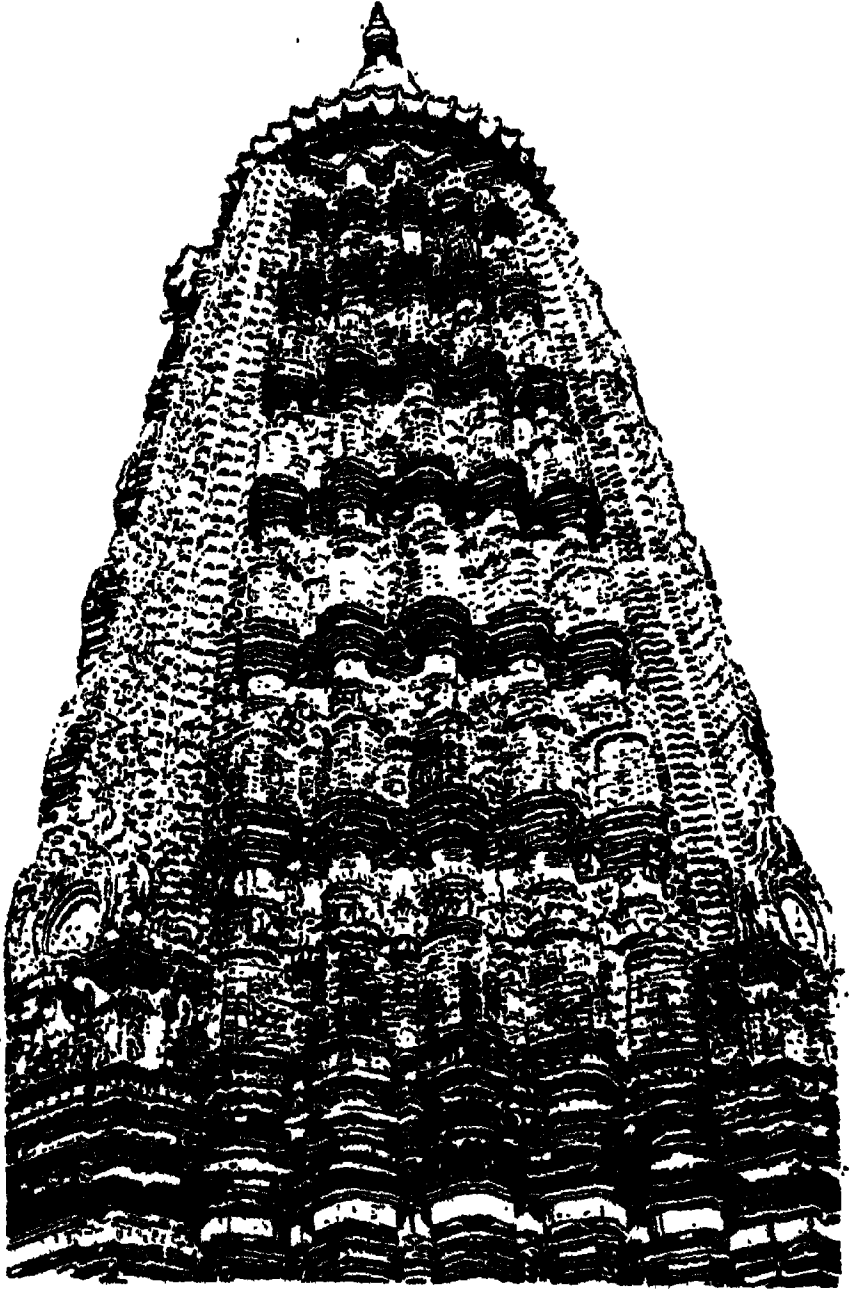
भूमिज जाति के प्रासाद का शिखर
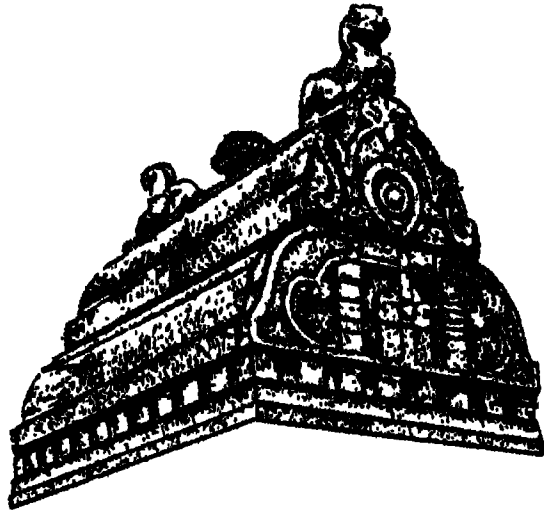
वल्लभी जाति का प्रासाद
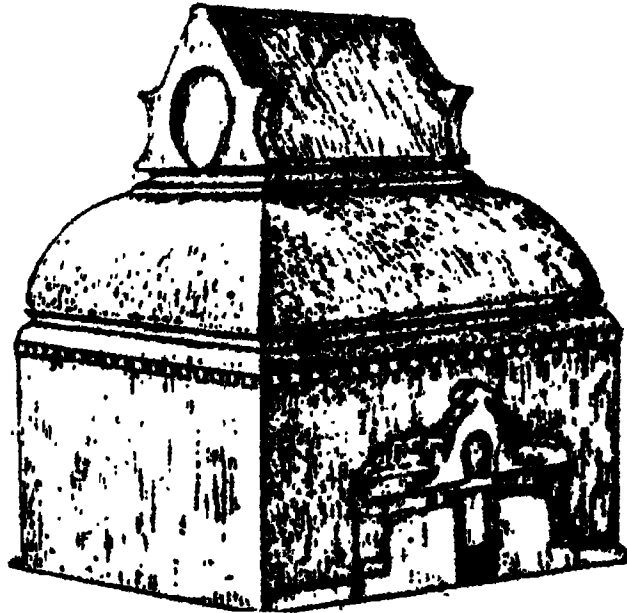
वल्लभी जाति का प्रासाद
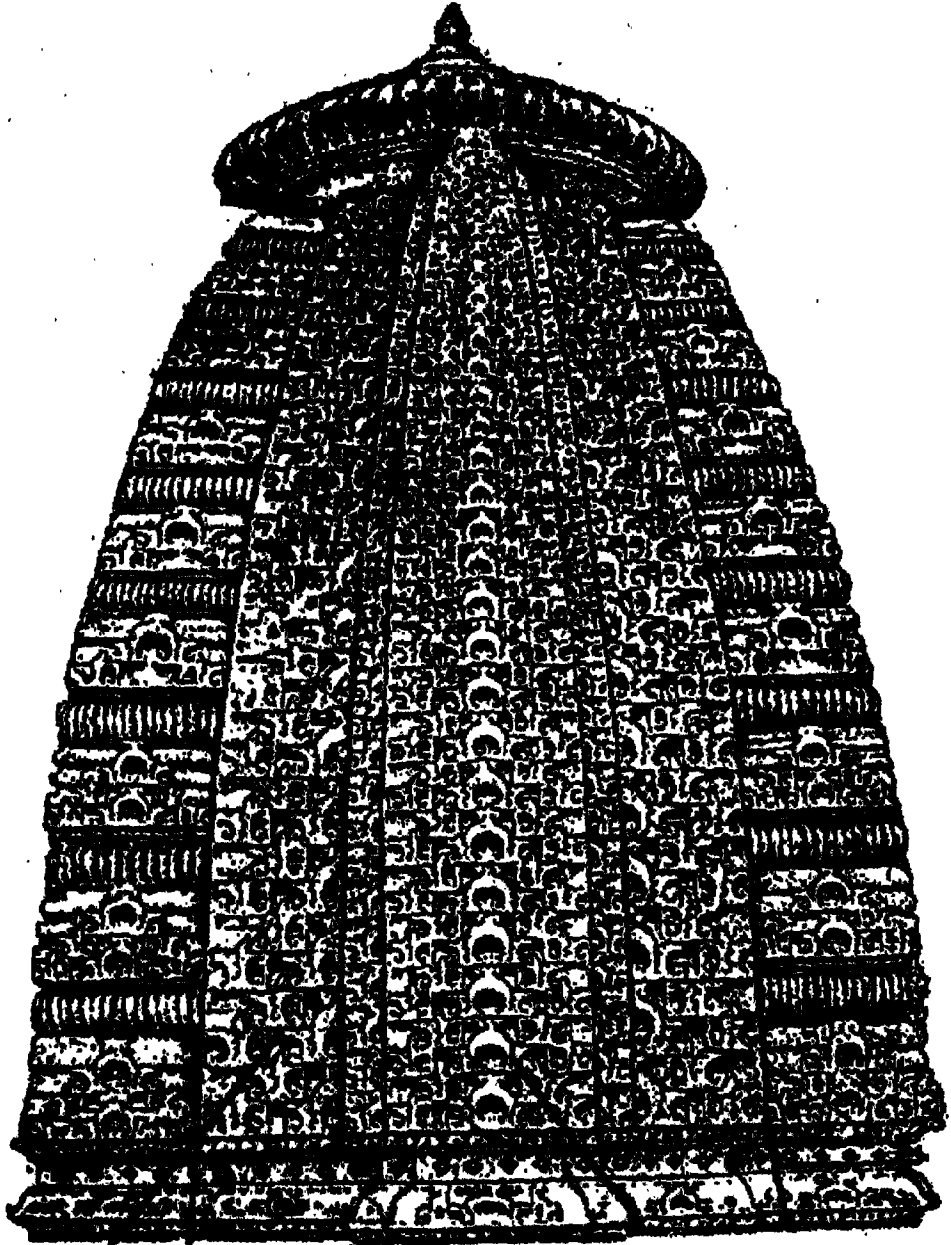
एकांडी ललित प्रासाद
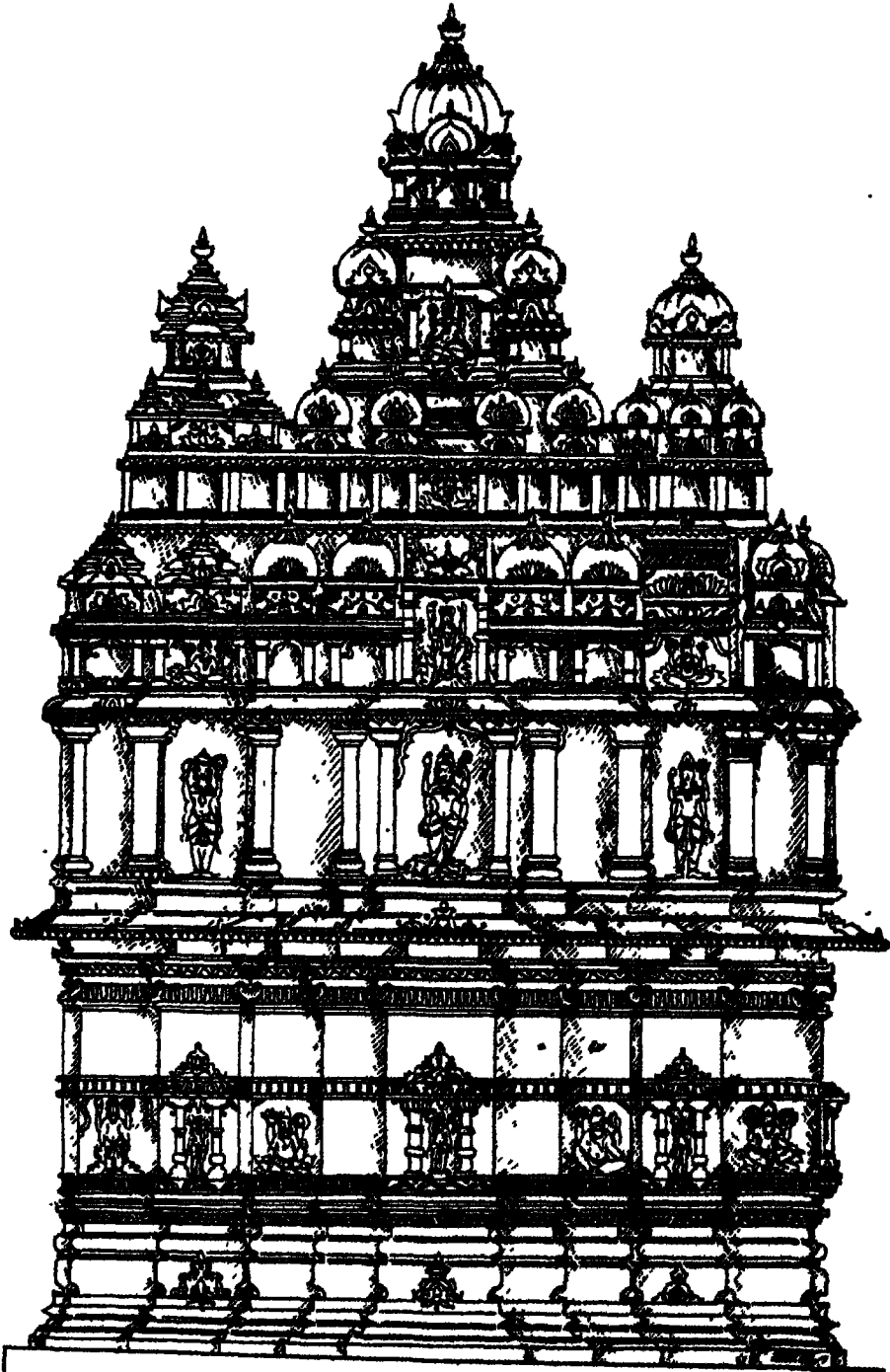
द्रविड़ जाति का चतुरस्र प्रासाद

केसरी आदि पच्चीस प्रासादों के नाम

नागर जाति के प्रासादों में केसरी आदि पच्चीस प्रासाद प्रमुख माने जाते है। ये प्रदक्षिणा युक्त अथवा बिना प्रदक्षिणा के भी बनाये जाते है। केसरी आदि पच्चीस प्रासादों के नाम एवं विवरण इस प्रकार है *:-

१- केसरी	२- सर्वतोभद्र	३- नन्दन
४- नन्दशालिक	५- नन्दीश	६- मन्दर
७- श्रीवृक्ष	८- अमृतोद्भव	९- हिमवान
१०- हेमकूट	११- कैलाश	१२- पृथ्वीजय
१३- इन्द्रनील	१४- महानील	१५- भूधर
१६- रत्नकूटक	१७- वैडूर्य	१८- पद्मराग
१९- वज्रक	२०- मुकुटोज्जवल	२१- ऐरावत
२२- राजहंस	२३- गरुड़	२४- वृषभध्वज
२५- मेरु		

इन प्रासादों में मेरु प्रासाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सूर्य के लिये बनाना चाहिए। अन्य के लिए नहीं।**

जिनेन्द्र देव के लिए भी केसरी आदि प्रासाद बनायें जाते हैं उनका विवरण पृथक दिया गया हैं।

---

*केशरी सर्वतोभद्रो नंदनो नंदशालिकः।
नंदीशो मंदिरश्चैव श्रीवत्स्चामृतोभ्दवः ।। शि.र. ६/५
हिमवान् हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः।
इन्द्रनीलो महानीलो भूधरो रत्नकूटकः ।। शि.र. ६/६
वैडूर्यः पद्मरागश्च वज्रको मुकुटोज्वलः।
ऐरावतो राजहंसो गरुडो वृषभध्वजः ।। शि.र. ६/७
मेरुः प्रासादराजश्च देवानामालयं हि सः।
केशराद्याः समाख्याता नामतः पञ्चविंशतिः ।। शि.र. ६/८
**हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा।
एते देवाः स्थिता मेरौ नान्येषां स कदाचन ।। प्रा.म.प. १/६७

विभिन्न देवताओं के लिये उपयुक्त प्रासाद

मंदिर का नाम		उपयुक्त देव
केसरी	-	पार्वती देवी
नन्दन	-	सर्वदेव स्वामी का आनंद, पापहारी
श्रीवृक्ष	-	विष्णु
अमृतोद्भव	-	सर्वदेव
हिमवान	-	देव, नागकुमार
कैलास	-	ईश्वर (शिव)
इन्द्रनील	-	इन्द्र, सर्वदेव, शिव
भूधर	-	सर्वदेव
रत्नकूट	-	शिवलिंग, सर्वदेव
पद्मराग	-	सर्वदेव
वज्रक	-	इन्द्र
ऐरावत	-	इन्द्र
पक्षीराज	-	विष्णु
वृषभ	-	ईश्वर
मेरु	-	ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य

मंदिर निर्माता को चाहिए कि वह देवों के अनुरुप ही मंदिर का निर्माण करें। यदि कम अर्थशक्ति हो तो लघुआकार में निर्माण करें किन्तु यद्वा-तद्वा निर्माण न करें। शास्त्र के अनुरुप निर्माण करने से मंदिर निर्माणकर्ता एवं उपासक दोनों को शुभकारक होता है।

१. केसरी प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार प्रासाद के आठ भाग करें। दो भाग का कोना तथा दो भाग का भद्रार्ध बनायें। इन अंगों का निर्गम एक भाग रखें। एक भाग की परिक्रमा, एक एक भाग की दो दीवार तथा दो भाग का गर्भगृह बनायें। यदि बिना परिक्रमा का प्रासाद बनाना इष्ट हो तो प्रासाद की चौड़ाई के चौथे भाग के बराबर एक एक दीवार तथा आधे भाग के बराबर गर्भगृह बनायें। गर्भगृह वर्गाकार रखें।

प्रासाद की भूमि के माप का आधा भद्र की चौड़ाई रखें, इससे आधा कोण (कर्ण) का विस्तार रखें। कोण से आधा भद्र का निर्गम रखें।

शिखर की सज्जा

भद्र के ऊपर रथिका तथा उद्गम बनायें। प्रासाद के चारों कोण के ऊपर एक- एक श्रीवत्स श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या –

कोण	४
शिखर	१
कुल	५
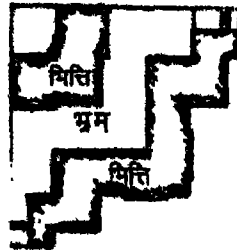
केसरी प्रासाद
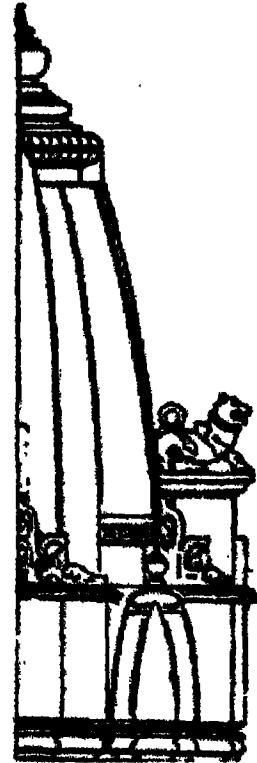
९. सर्वतोभद्र प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के दस- दस भाग अर्थात् २० भाग करें। उसमें मध्य में सोलह भाग का गर्भगृह बनायें। दो भाग का कोना, १, १/२ भाग प्रतिरथ, भद्रार्ध १, १/२ भाग करें।

एक भाग की दीवार, एक भाग की परिक्रमा, एक भाग की दूसरी बाहर की दीवार करें।

दो- दो भाग का कोण तथा छह भाग की भद्र की चौड़ाई रखें। भद्र का निर्गम एक भाग रखें। भद्र के दोनों तरफ एक एक भाग की एक एक कोणी बनाएं। भद्र के दोनों तरफ आधे- आधे भाग की एक एक कर्णिका बनायें। कर्णिका तथा कोणी का निर्गम आधा- आधा भाग रखें। इस प्रकार कुल एक भाग निर्गम रखें।

छह भाग चौड़े भद्र में से दो कोणी तथा दो कर्णिका का कुल तीन भाग छोड़कर शेष तीन भाग जितना मुखभद्र की चौड़ाई रखें। भद्र के ऊपर पांच- पांच उद्गम करें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर दो -दो इस प्रकार कुल आठ श्रृंग चढ़ावें। आमलसार तथा कलशयुक्त श्रीवत्स शिखर बनायें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
शिखर	१
कुल	९
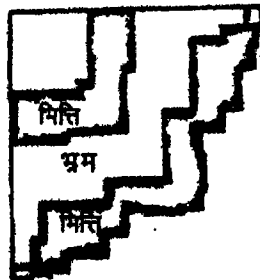
सर्वतोभद्र प्रासाद
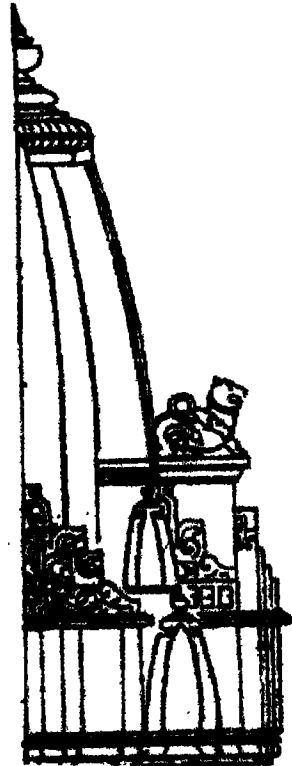
३. नन्दन प्रासाद

इसका निर्माण सर्वतोभद्र प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है किन्तु भद्र के गवाक्ष एवं उद्गम के ऊपर एक एक उरुश्रृंग और चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
भद्र	४
शिखर	१
कुल	१३

४. नन्दि शाल प्रासाद

इसका निर्माण नन्दन प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है किन्तु भद्र के ऊपर एक एक उरुश्रृंग और चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
भद्र	८
शिखर	१
कुल	१७

५. नन्दीश प्रासाद

इसका निर्माण सर्वतोभद्र प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है किन्तु भद्र के स्थान पर तीन भाग का भद्र तथा डेढ़- डेढ़ भाग का प्रतिरथ बनायें।

शिखर की संख्या

कोण पर २-२ श्रृंग
भद्र पर १-१ श्रृंग
प्रतिरथ पर १-१ श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
प्ररथ	८
भद्र	४
शिखर	१
कुल	२१

६. मन्दर प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के बारह भाग करें। कोना २ भाग, प्रतिकर्ण २ भाग, भद्रार्ध २ भाग करें। छह भाग का गर्भगृह बनायें। एक एक भाग की दोनों दीवार तथा एक एक भाग की परिक्रमा बनायें। गर्भगृह के बाहर कोणा, प्रस्थ, भद्रार्ध ये सभी दो दो भाग का रखें। उसका निर्गम समदल रखें। भद्र की निर्गम एक भाग का रखें।

मंदर प्रसाद

शिखर की सज्जा
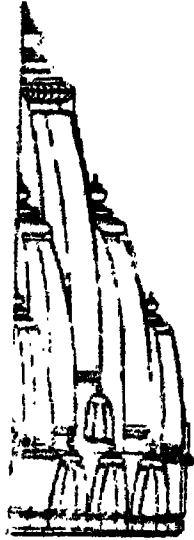
कोणी के ऊपर दो दो श्रृंग चढ़ावें
भद्र के ऊपर दो दो उरुश्रृंग चढावें,
प्रतिरथ के ऊपर एक एक श्रृंग चढ़ावें
आमलसार, कलश, रेखा, गवाक्ष, उद्‌गम सभी
शोभायुक्त बनाना चाहिये।
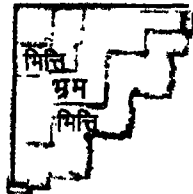
श्रृंग संख्या	
कोण	८
प्ररथ	८
भद्र	८
शिखर	१
कुल	२५

७. श्रीवृक्ष प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के चौदह भाग करें। कर्ण २ भाग, प्रतिकर्ण २ भाग, भद्रार्ध २ भाग तथा भद्र के दोनों तरफ एक एक भाग की नंदिका (कोणी) करें। इसका भीतरी मान इस प्रकार लें -

श्री वृक्ष प्रासाद

आठ भाग का गर्भगृह,
एक भाग की दीवार,
एक भाग की परिक्रमा,
एक भाग बाहरी दीवार,
बाहरी मान मंदर प्रासाद के अनुसार ही करना चाहिए ,
दो भाग का कोना,
दो भाग का प्रतिरथ,
एक भाग का नन्दी,
दो भाग का भद्रार्ध रखें।

शिखर की सज्जा

शिखर की चौड़ाई	आठ भाग करें।
कोण के ऊपर	दो श्रृंग चढ़ावें।
प्रतिरथ के ऊपर	एक श्रृंग और एक तिलक चढ़ावें।
नन्दी के ऊपर	एक तिलक रखें।
भद्र के ऊपर	तीन तीन ऊरुश्रृंग चढ़ावें।
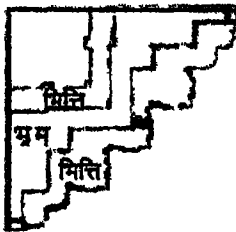
श्रृंग संख्या	
कोण	८
प्रतिरथ	८
भद्र	१२
शिखर	१
कुल	२९

तिलक संख्या	
प्रतिरथ	८
नन्दी	८
कुल	१६

८.अमृतोद्भव प्रासाद

इसका निर्माण श्रीवृक्ष प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें कोण पर तीन श्रृंग चढ़ावें। शेष पूर्ववत् रखें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	१२	प्रतिरथ	८
प्रतिरथ	८	नन्दी	८
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	३३	कुल	१६

९. हिमवान प्रासाद

इसका निर्माण अमृतोद्भव प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें अमृतोद्भव प्रासाद में प्रतिरथ के ऊपर तिलक के बदले श्रृंग अर्थात् दो श्रृंग चढ़ावें। भद्र के ऊपर तीन के स्थान पर दो ऊरुश्रृंग रखें।

श्रृंग संख्या-		तिलक संख्या-	
कोण	१२	नन्दी	८
प्रतिरथ	१६		
भद्र	८		
शिखर	१		
कुल	३७	कुल	८

१०. हेमकूट प्रासाद

इसका निर्माण हिमवान प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें भद्र के ऊपर तीसरा उरुश्रृंग चढ़ावें। नन्दी के ऊपर दूसरा तिलक चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	१२	नन्दी	१६
प्रतिरथ	१६		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	४१	कुल	१६

११. कैलास प्रासाद

इसका निर्माण हेमकूट प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें नन्दी पर दो तिलक के स्थान पर एक तिलक तथा एक श्रृंग चढ़ावें।

कोण पर तीन श्रृंग के स्थान पर दो श्रृंग तथा एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कोण	८
प्रतिरथ	१६	नन्दी	८
नन्दी	८		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	४५	कुल	१६

१२. पृथिवीजय प्रासाद

इसका निर्माण कैलास प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें कोण के तिलक के स्थान पर श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक	
कोण	१२	नन्दी	८
प्रतिरथ	१६		
नन्दी	८		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	४९	कुल	८

१३. इन्द्रनील प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १६ भाग करें। उनमें
दो भाग का कोण,
एक भाग का नन्दी,
दो भाग का प्रतिरथ,
एक भाग की दूसरी नन्दी तथा
दो भाग का भद्रार्ध बनायें।

इन सब अंगों का निर्गम समदल तथा भद्र का निर्गम एक भाग रखें। सोलह भाग में गर्भगृह के चौड़ाई के आठ भाग (वर्गाकार के चौसठ भाग) करें। गर्भगृह की दीवार एक भाग, परिक्रमा दो भाग तथा बाहर की दीवार एक भाग रखें।

इन्द्रनील प्रासाद

शिखर की सज्जा

शिखर की चौड़ाई बारह भाग रखें,
कोण पर दो श्रृंग चढ़ावें,
कर्ण नन्दी के ऊपर एक तिलक चढ़ायें,
दो भाग का प्रत्यंग चढ़ायें,
प्रतिरथ के ऊपर दो श्रृंग चढ़ायें,
पहला उरुश्रृंग छह भाग चौड़ा रखें,
भद्र नन्दी के ऊपर एक श्रृंग चढ़ायें,
दूसरा उरुश्रृंग चार भाग,
तीसरा उरुश्रृंग दो भाग चौड़ा रखें।
इन उरुश्रृंगों का निर्गम चौड़ाई से आधा रखें।
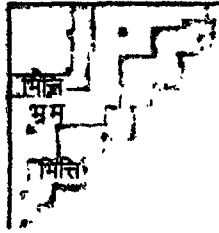
श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कर्ण नन्दी	८
प्रतिरथ	१६		
भद्र- नन्दी	८		
भद्र	१२		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	५३		

१४. महानील प्रासाद

इसका निर्माण इन्द्रनील प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें कर्ण नन्दी के तिलक के स्थान पर श्रृंग चढ़ायें तथा कोने के ऊपर से एक श्रृंग हटाकर एक तिलक रखें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	४	कोण	४
कर्णनन्दी	८		
प्रत्यंग	८		
प्रतिरथ	१६		
भद्र नन्दी	८		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	५७	कुल	४

१५ भूधर प्रासाद

इसका निर्माण महानील प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें कोण के ऊपर एक श्रृंग अधिक चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	८	कोण	४
नन्दी	८		
प्रत्यंग	८		
प्रतिरथ	१६		
नन्दी	८		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	६१	कुल	४

१६. रत्नकूट प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार प्रासाद के तलमान में १८ भाग करें। कर्ण, प्रतिरथ, भद्रार्ध २-२ भाग, कोणी, नन्दी, दूसरी नन्दी १-१ भाग करे। भद्र के दोनों तरफ एक एक भाग की दूसरी नन्दी बनायें। बाहर की दीवार दो भाग की रखें।
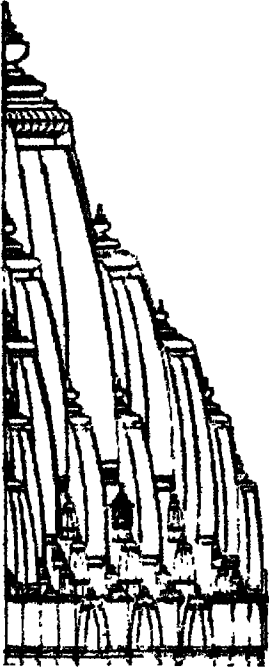
शिखर की सज्जा

शिखर की चौड़ाई १२ भाग रखें।
कोण के ऊपर दो श्रृंग तथा एक तिलक चढ़ायें।
कर्ण नन्दी पर दो भाग का प्रत्यंग तथा २ तिलक चढ़ायें।
प्रतिरथ के ऊपर तीन श्रृंग तथा नंदी पर एक तिलक चढ़ायें।
भद्र नन्दी पर एक श्रृंग तथा एक तिलक चढ़ायें।
भद्र पर चार उरुश्रृंग चढ़ायें।
पहला उरुश्रृंग छह भाग, दूसरा चार भाग, तीसरा तीन भाग तथा चौथा दो भाग रखें।
उरुश्रृंगों का निर्गम चौड़ाई से आधा रखें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कोण	४
प्रत्यंग	८	कोणी	१६
प्रतिरथ	२४	प्ररथ नंदी	१६
भद्रनन्दी	८	भद्रनन्दी	८
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	६५	कुल	४४
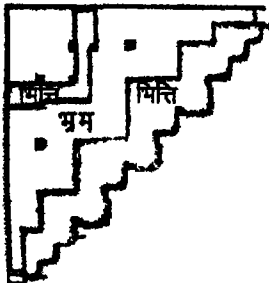
रत्नकूट प्रासाद

१७. वैडूर्य प्रासाद

इसका निर्माण रत्नकूट प्रासाद के अनुसार ही किया जाता है इसमें कोण के ऊपर से तिलक के स्थान पर उसके एवज में एक तीसरा उरुश्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोना	१२	कर्णनन्दी	१६
प्रत्यंग	८	प्रतिरथ नन्दी	१६
प्रतिरथ	२४	भद्रनन्दी	८
भद्रनन्दी	८		
भद्र	१		
शिखर	१		
कुल	६९	कुल	४०

१८. पद्मराग प्रासाद

वैडूर्य प्रासाद में कोण के ऊपर के तीसरे श्रृंग के स्थान पर तिलक चढ़ायें। भद्र नन्दी के ऊपर एक तिलक एक श्रृंग के एवज में दो श्रृंग करें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कोण	४
प्रत्यंग	८	कर्णनन्दी	१६
प्रतिरथ	२४	प्रतिरथ नन्दी	१६
भद्रनन्दी	१६		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	७३	कुल	३६

१९. वज्रक प्रासाद

इसकी रचना पद्मराग प्रासाद की तरह करें किन्तु इसमें कोण के तिलक के बदले श्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोन	१२	कर्णनन्दी	१६
प्रत्यंग	८	प्रतिरथ नन्दी	१६
प्रतिरथ	२४		
भद्रनन्दी	१६		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	७७	कुल	३२

२०. मुकुटोज्ज्वल प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार भूमि के बीस भाग करें।

दो भाग का कोण, डेढ़ भाग की नन्दी, दो भाग का प्रस्थ, डेढ़ भाग का नन्दी, एक भाग की भद्र नन्दी, चार भाग भद्र की चौड़ाई रखें। भद्र का निर्गम एक भाग रखें।

दो भाग बाहर की दीवार, दो भाग की परिक्रमा, दो भाग गर्भगृह की दीवार, तथा आठ भाग का गर्भगृह रखें।

मुकुटोज्ज्वल प्रासाद

शिखर की सज्जा

रेखा का विस्तार चौदह भाग रखें।

कोने के ऊपर दो श्रृंग एक तिलक रखें,
कर्ण नन्दी पर एक श्रृंग एक तिलक रखें,
प्रत्यंग के ऊपर तीन श्रृंग रखें,
प्रस्थ के ऊपर तीन श्रृंग रखें,
नन्दी के ऊपर एक श्रृंग तथा एक तिलक रखें,
भद्र नन्दी के ऊपर एक श्रृंग चढ़ायें,
भद्र के ऊपर चार श्रृंग चढ़ायें।

पहला उरुश्रृंग सात भाग का, दूसरा उरुश्रृंग छह भाग का तथा तीसरा उरुश्रृंग पांच भाग का तथा चौथा उरुश्रृंग दो भाग का रखें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	८	कोण	४
प्रत्यंग	८	कर्ण नन्दी	८
कर्णनन्दी	८	प्रस्थ नन्दी	८
प्रस्थ	२४		
नन्दी	८		
भद्रनन्दी	८		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	८१	कुल	२०

२१. ऐरावत प्रासाद

मुकुटोज्ज्वल प्रासाद में कोण के ऊपर के तिलक के स्थान पर श्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	१२	कर्ण नन्दी	८
प्रत्यंग	८	प्ररथ नन्दी	८
नन्दी	८		
प्ररथ	२४		
नन्दी	८		
भद्रनन्दी	८		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	८५	कुल	१६

२२. राजहंस प्रासाद

ऐरावत प्रासाद में कोण के ऊपर के तीसरे श्रृंग के स्थान पर तिलक चढायें , भद्रनंदी पर एक श्रृंग बढायें।
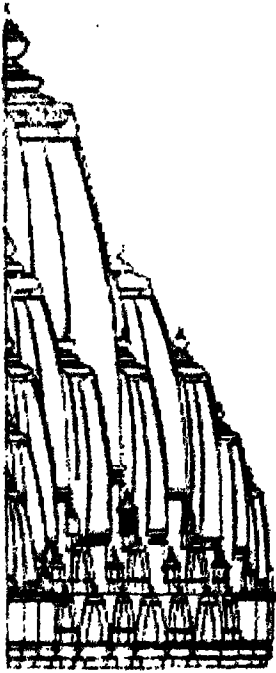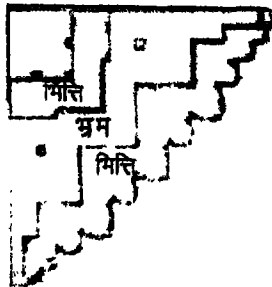
श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कोण	४
प्रत्यंग	८	कर्ण नन्दी	८
कर्णनन्दी	८	प्ररथ नन्दी	८
प्ररथ	२४		
प्ररथनन्दी	८		
भद्रनन्दी	१६		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	८९	कुल	२०

२३. पक्षिराज (गरुड़) प्रासाद

इसकी रचना राजहंस प्रसाद की तरह करें। इसमें कोण के ऊपर का तिलक के स्थान पर श्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	१२	कर्ण नन्दी	८
प्रत्यंग	८	प्रस्थ नन्दी	८
कर्णनन्दी	८		
प्ररथ	२४		
प्ररथनन्दी	८		
भद्रनन्दी	१६		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	९३	कुल	१६

२४. वृषभ प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार भूमि के २२ भाग करें। दो भाग की बाहर की दीवार, दो भाग की परिक्रमा, दो भाग की गर्भगृह की दीवार तथा दस भाग का गर्भगृह करें।

भद्र के दोनों तरफ नन्दी १-१ भाग, प्रतिरथ (रथ, उपरथ, प्रतिरथ) कर्ण, भद्रार्ध २-२ भाग करें। बाहर के अंगों में कोण, प्रतिरथ, रथ तथा उपरथ प्रत्येक दो- दो भाग की चौड़ाई रखें। भद्र नन्दी एक भाग तथा पूरा भद्र चार भाग का रखें। भद्र का निर्गम एक भाग का रखें। शेष सभी अग समदल बनाएं।

शिखर की सज्जा

शिखर की चौड़ाई के सोलह भाग करें।
कोणों के ऊपर दो श्रृंग तथा एक तिलक चढ़ायें।
प्ररथ के ऊपर दो श्रृंग उसके ऊपर तीन तीन भाग का प्रत्यंग चढ़ायें।
रथ के उपर तीन श्रृंग, उपरथ के ऊपर दो - दो श्रृंग चढ़ायें।
भद्र नन्दी के ऊपर एक श्रृंग चढ़ायें। भद्र के ऊपर चार उरुश्रृंग चढ़ायें।

पहला उरुश्रृंग आठ भाग का, दूसरा छह भाग का, तीसरा चार भाग का तथा चौथा दो भाग का रखें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कोण	४
प्रत्यंग	८		
प्ररथ	१६		
रथ	२४		
उपरथ	१६		
भद्रनन्दी	८		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	९७	कुल	४

२५. मेरु प्रासाद

वृषभ प्रासाद के कोणों के ऊपर के तिलक हटाकर उसकी जगह श्रृंग चढ़ावें।
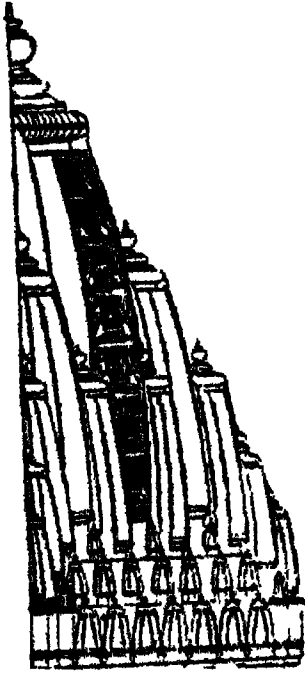
श्रृंग	संख्या
कोण	१२
प्रत्यंग	८
प्ररथ	१६
रथ	२४
उपरथ	१६
भद्रनन्दी	८
भद्र	१६
शिखर	१
कुल	१०१

मेरु प्रासाद
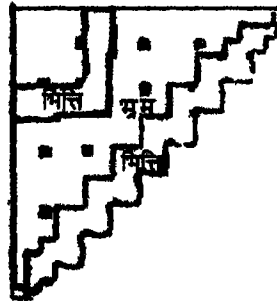
वैराज्यादि प्रासाद

वैराज्यादि प्रासाद पचीस प्रकार के हैं। शिखर एवं भद्रादि की अपेक्षा से ये भेद किये जाते हैं। ये प्रासाद नागर जाति के हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. वैराज्य	२. नन्दन	३. सिंह	४. श्रीनन्दन	५. मन्दर
६. मलय	७. विमान	८. सुविशाल	९. त्रैलोक्य भूषण	१०. माहेन्द्र
११. रत्नशीर्ष	१२. शतश्रृंग	१३. भूधर	१४. भुवनमंडल	१५.त्रैलोक्य विजय
६. पृथ्वी वल्लभ	१७. महीधर	१८. कैलाश	१९. नवमंगल	२०. गंधमादन
२१. सर्वांगसुंदर	२२. विजयानन्द	२३. सर्वांगतिलक	२४. महाभोग	२५. मेरु

निम्नलिखित सारणी में विभिन्न देव देवियों के अनुकूल मंदिरों के नाम तथा उनके निर्माण का फल दर्शाया गया है। यशाशक्ति मूलनायक मंदिर इसी के अनुरुप बनाना चाहिए।

देवताओं के अनुकूल मंदिर एवं उनका फल

मंदिर का नाम	*देव*	*फल*
वैराज्य	सर्व देव	ब्रह्मा कथित, विश्वकर्मा निर्मित
सिंह	देव- देवियां, पार्वती	सौभाग्य, धन, पुत्र लाभ
माहेन्द्र .	सर्व देव	राज्य लाभ
सितसंग	ईश्वर	शुभ
कैलाश	शंकर	शुभ
महाभोग	सर्वदेव	सर्व कार्य फलदाता (सिद्धि)
महादेव	सर्वदेव,	मेरु

मंदिर निर्माता के लिये आवश्यक है कि वह देवों के अनुरुप ही मंदिर का निर्माण करें। यदि अल्प अर्थशक्ति हो तो लघुआकार में निर्माण करें किन्तु यद्वा-तद्वा निर्माण न करें। शास्त्र के अनुरुप निर्माण करने से मंदिर निर्माणकर्ता एवं पूजक दोनों को कल्याणकारक होता है।

१ वैराज्य प्रासाद

तल का विभाग

वैराज्य प्रासाद वर्गाकार तथा चार द्वार वाला होता है। इसमें प्रत्येक द्वार पर चौकी मंडप बनाया जाता है। इसकी वर्गाकार भूमि के सोलह भाग करें। मध्य के चार भागों में गर्भगृह बनायें। शेष में २ भाग दीवार तथा २ भाग की भ्रमणी अर्थात् परिक्रमा बनायें।

शिखर की सज्जा

शिखर की ऊंचाई का मान प्रासाद की चौड़ाई से सवा गुना करें। इस पर आमलसार तथा कलश चढ़ाना चाहिये। चारों दिशाओं में शुकनास तथा सिंह कर्ण लगायें। चार द्वार लगाने की स्थिति में चारों दिशाओं में द्वार लगाना आवश्यक है। यह कल्याणकारक है।

वैराज्य प्रासाद सिर्फ एक अंग - एक कोण वाला है।
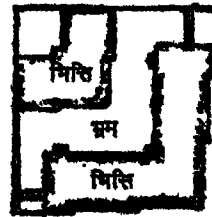
वैराज्य प्रासाद

२. नन्दन प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद के तल के चार भाग करें। उनमें एक एक भाग का कोण बनायें तथा दो भाग का भद्र करें। भद्र में मुख भद्र भी बनायें।

नन्दन प्रासाद

शिखर की सज्जा
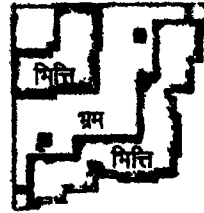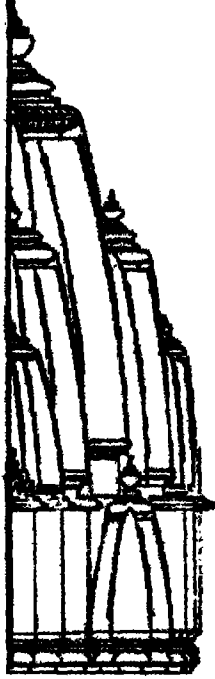
कोने के ऊपर एक एक श्रृंग रखें।
भद्र के ऊपर दो दो उरुश्रृंग भी रखें।

श्रृंग संख्या

कोण	४
भद्र	८
शिखर	१
कुल	१३

नन्दन प्रासाद सिर्फ तीन अंग वाला है :- दो कोण तथा भद्र।

३. सिंह प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद का तल विभाजन नन्दन प्रासाद के समान रखें। मुख भद्र में प्रतिभद्र बनायें। भद्र के गवाक्ष के ऊपर उद्‌गम बनायें।

शिखर की सज्जा

कोण के श्रृंगों के ऊपर सिंह रखें। भद्र की रथिका के ऊपर सिंह कर्ण रखें। श्रृंगों के ऊपर भी सिंह कर्ण रखें।

श्रृंग संख्या

कोण	४
भद्र	८
शिखर	१
कुल	१३

सिंह प्रासाद सिर्फ तीन अंग वाला है :- दो कोण तथा भद्र।

४. श्री नन्दन प्रासाद

इसकी रचना नन्दन प्रासाद की भांति है इसमें कोण के ऊपर पांच अंडक वाला केसरी श्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या

कोण (केसरी क्रम)	२०
भद्र	८
शिखर	१
कुल	२९

श्रीनन्दन प्रासाद सिर्फ तीन अंग वाला है :- दो कोण तथा भद्र।

५. मन्दिर प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार तल के छह भाग करें। इनमें कर्ण एक एक भाग का रखें।
प्रतिकर्ण एक एक भाग का रखें।
भद्रार्ध एक एक भाग का रखें।
कर्ण और प्रतिकर्ण का निर्गम समदल रखें।
भद्र का निर्गम आधा रखें।

मंदिर प्रासाद

शिखर की सज्जा
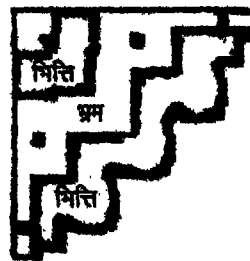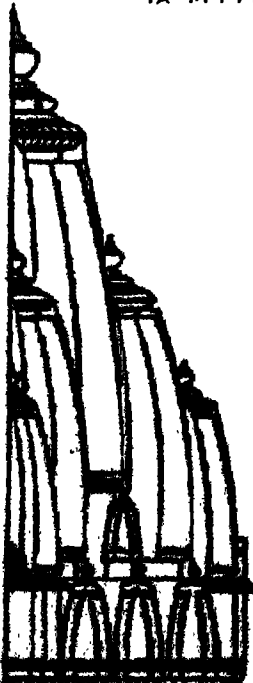
कर्ण के ऊपर दो- दो श्रृंग चढ़ायें।
भद्र के ऊपर दो- दो श्रृंग चढ़ायें।
प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक श्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
भद्र	८
प्ररथ	८
शिखर	१
कुल	२५

मन्दिर प्रासाद पांच अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ तथा भद्र।

६. मलय प्रासाद

इसका निर्माण मन्दिर प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर एक तीसरा उरुश्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
भद्र	८
प्ररथ	८
शिखर	१
कुल	२५

मलय प्रासाद पांच अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ तथा भद्र।

७. विमान प्रासाद

इसका निर्माण मलय प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर से एक उरुश्रृंग हटायें। कर्ण के दोनों तरफ एक एक प्रत्यंग चढ़ायें। प्रतिरथ के ऊपर एक- एक तिलक चढायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	प्ररथ	८
प्ररथ	८		
भद्र	८		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	३३	कुल	८

विमान प्रासाद पांच अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ तथा भद्र।

८. विशाल प्रासाद

इसका निर्माण विशाल प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर एक एक उरूश्रृंग अधिक चढायें। **विशाल प्रासाद पांच अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ तथा भद्र।**

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
भद्र	१२	प्ररथ	८
कोण	८		
प्ररथ	८		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	३७	कुल	८

९. त्रैलोक्य भूषण प्रासाद

इसका निर्माण विमानप्रासाद की भांति करें तथा उसमें प्रतिरथ के ऊपर एक एक उरुश्रृंग अधिक चढ़ाएं।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	प्ररथ	८
प्रतिरथ	८		
भद्र	८		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	४१	कुल	८

त्रैलोक्य भूषण प्रासाद पांच अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ तथा भद्र।

१०. माहेन्द्र प्रासाद

माहेन्द्र प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार तल के ८ भाग करें। इनमें कर्ण, प्रतिरथ, उपरथ तथा भद्रार्ध का एक एक भाग रखें।भद्र का निर्गम १/२ भाग रखें।

ये सब अंग वारिमार्ग से युक्त करें।

कर्ण, प्रतिरथ तथा उपरथ का निर्गम एक- एक भाग करें।

शिखर की सज्जा

मूल शिखर की चौड़ाई पांच भाग रखें।

कर्ण के ऊपर दो- दो श्रृंग तथा एक- एक तिलक चढ़ायें।

प्रतिरथ के ऊपर दो- दो श्रृंग चढ़ायें।

उपरथ के ऊपर एक- एक श्रृंग चढ़ायें।

भद्र के ऊपर तीन- तीन उरुश्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कोण	४
प्ररथ	१६		
उपरथ	८		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	४५	कुल	४

माहेन्द्र प्रासाद सात अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ तथा भद्र।
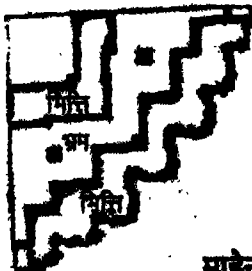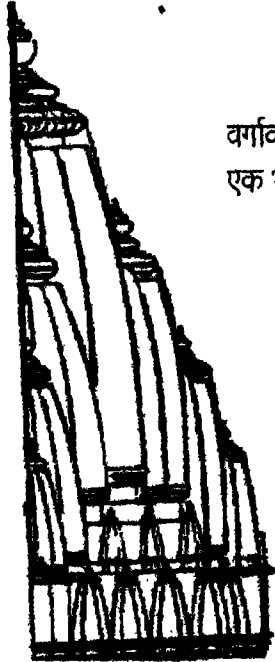
११. रत्नशीर्ष प्रासाद

इसका निर्माण माहेन्द्र प्रासाद की भांति करें तथा उसमें कर्ण के ऊपर तीन श्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या

कोण	१२
प्ररथ	१६
उपरथ	८
भद्र	१२
शिखर	१

कुल	४९

रत्नशीर्ष प्रासाद सात अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ तथा भद्र।

१२. सितश्रृंग प्रासाद

इसका निर्माण रत्नशीर्ष प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर दो उरुश्रृंग करें तथा एक मत्तावलम्ब (गवाक्ष) बनायें तथा उसके छाद्य के ऊपर दो श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	१२
प्ररथ	१६
उपरथ	८
भद्र	१६
शिखर	१

कुल	५३

सितश्रृंग प्रासाद सात अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ तथा भद्र।

१३. भूधर प्रासाद

इसका निर्माण सितश्रृंग प्रासाद की भांति करें तथा उसमें उपरथ के ऊपर एक- एक तिलक चढ़ायें।

भूधर प्रासाद सात अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ तथा भद्र।

१४. भुवनमंडन प्रासाद

इसका निर्माण भूधर प्रासाद की भांति करें तथा उसमें प्रासाद के छाद्य के दोनों श्रृंगों के ऊपर एक- एक तिलक चढ़ायें।

भुवनमंडन प्रासाद सात अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ तथा भद्र।

१५. त्रैलोक्य विजय प्रासाद

इसका निर्माण भुवन मंडन प्रासाद की भांति करें तथा उसमें उपरथ के ऊपर दो श्रृंग और एक तिलक करें।

त्रैलोक्य प्रासाद सात अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ तथा भद्र।

१६. क्षितिवल्लभ प्रासाद

इसका निर्माण त्रैलोक्य विजय प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर एक श्रृंग अधिक चढायें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	१२	उपरथ	८
प्ररथ	१६		
उपरथ	१६		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	५७	कुल	८

क्षितिवल्लभ प्रासाद सात अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ तथा भद्र।

१७. महीधर प्रासाद

महीधर प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार प्रासाद तल के दस भाग करें।

भद्रार्ध, कर्ण, प्रतिकर्ण, रथ तथा उपरथ प्रत्येक एक- एक भाग का बनायें।

इनका निर्गम भी एक- एक भाग का रखें। भद्र का निर्गम आधे भाग का रखें।

शिखर संख्या

कोना, प्रतिरथ तथा भद्र के ऊपर दो- दो श्रृंग चढ़ायें तथा रथ और प्रतिरथ के ऊपर एक- एक तिलक चढ़ायें।

रथ के ऊपर प्रत्यंग चढ़ायें। भद्र मत्तावलम्ब (गवाक्ष) वाला बनायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	रथ	८
प्ररथ	१६	उपरथ	८
भद्र	८		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	४१	कुल	१६

महीधर प्रासाद नौ अंग वाला है :-

दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।
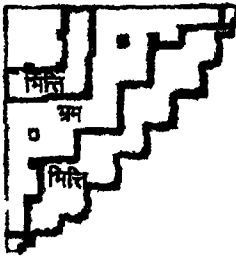
१८. कैलास प्रासाद

इसका निर्माण महीधर प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर एक और तीसरा श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	रथ	८
प्ररथ	१६	उपरथ	८
भद्र	१२		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	४५	कुल	१६

कैलास प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

१९. नवमंगल प्रासाद

इसका निर्माण कैलास प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर से एक उरुश्रृंग कम करें। रथ के ऊपर एक एक श्रृंग चढ़ावें।

नवमंगल प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

२०. गंधमादन प्रासाद

इसका निर्माण नवमंगल प्रासाद की भांति करें तथा उसमें भद्र के ऊपर एक उरुश्रृंग अधिक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	८	उपरथ	८
प्ररथ	१६		
भद्र	८		
रथ	८		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	४९	कुल	८

गंधमादन प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

२१. सर्वांगसुंदर प्रासाद

इसका निर्माण गंधमादन प्रासाद की भांति करें।
उसमें भद्र के ऊपर से एक उरुश्रृंग कम करें।
उपरथ के ऊपर एक- एक उरुश्रृंग बढ़ावें।

सर्वांगसुन्दर प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

२२. विजयानन्द प्रासाद

इसका निर्माण सर्वांगसुन्दर प्रासाद की भांति करें तथा भद्र के ऊपर एक उरुश्रृंग पुनः चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
प्ररथ	१६
रथ	८
भद्र	८
उपरथ	८
प्रत्यंग	८
शिखर	१
कुल	५७

विजयानन्द प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

२३. सर्वांग तिलक प्रासाद

इसका निर्माण विजयानन्द प्रासाद की भांति करें तथा भद्र के ऊपर से एक- एक उरुश्रृंग करें तथा मत्तावलम्ब बनाएं। इस मत्तावलम्ब के छाद्य के ऊपर दो श्रृंग रखें।

श्रृंग संख्या

कोण	८
प्ररथ	१६
रथ	८
उपरथ	८
प्रत्यंग	८
भद्र के गवाक्ष	१६
शिखर	१
कुल	६५

सर्वांग तिलक प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

२४. महाभोग प्रासाद

इसका निर्माण सर्वांग तिलक प्रासाद की भांति करें तथा गवाक्ष वाले भद्र के ऊपर एक - एक उरुश्रृंग अधिक चढ़ायें।

महाभोग प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

२५. मेरु प्रासाद

इसका निर्माण महाभोग प्रासाद की भांति करें तथा प्रासाद के कर्ण, रथ, प्रतिरथ इन सबके ऊपर एक एक श्रृंग अधिक चढ़ावें।

मेरु प्रासाद नौ अंग वाला है :- दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दो रथ, दो उपरथ तथा भद्र।

मेरु आदि बीस प्रासाद

मेरु जाति के प्रासाद भी लोक आनन्दकारी प्रासाद हैं। इनके बीस भेद हैं। शिखर एवं तल के विभागों में किंचित् अंतर करके ये विभाग किये गये हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं -

१.	ज्येष्ठ मेरु	२.	मध्यम मेरु	३.	कनिष्ठ मेरु	४.	मन्दिर
५.	लक्ष्मी कोटर	६.	कैलास	७.	पंचवक्त्र	८.	विमान
९.	गंधमादन	१०.	मुक्तकोण	११.	गिरि	१२.	तिलक
१३.	चंद्रशेखर	१४.	मन्दिर तिलक	१५.	सौभाग्य	१६.	सुन्दर
१७.	श्री तिलक	१८.	विशाल	१९.	श्री पर्वतकूट	२०.	नन्दिवर्धन

इनके शिखरों की रचना अंडक तथा तिलक पर आधारित हैं। संक्षेप में यहाँ इनके तल का विभाग एवं शिखर के अंडकों की संख्या दे रहे हैं। विशेष विवरण अन्य ग्रन्थों में दृष्टव्य हैं।

१. ज्येष्ठ मेरु
अण्डक १००१
तल भाग ७२

२. मध्यम मेरु
अण्डक ५०५
तल भाग ६४

३. कनिष्ठ मेरु
अण्डक २९३
तल भाग ५४

४. मन्दिर प्रासाद
अण्डक १८५
तिलक ८
तल भाग ३८

५. लक्ष्मी कोटर प्रासाद
अण्डक १४९
तिलक ६४
तल भाग ३८

६. कैलास प्रासाद
अण्डक १२९
तिलक २४
तल भाग ३६

७. पंचवक्त्र प्रासाद
अण्डक १६१
तिलक ७२
तल भाग १८

८. विमान प्रासाद
अण्डक ७७
तिलक २४
तल भाग २६

९. गंधमादन प्रासाद
अण्डक २०९
तिलक १६४
तल भाग ३६

१०. मुक्तकोण प्रासाद

अण्डक १२५
तिलक २०
तल भाग २६

११. गिरि प्रासाद

अण्डक १४५
तिलक १३६

१२. तिलक प्रासाद

अण्डक २१
तिलक ८४
तल भाग १८

१३. चंद्रशेखर प्रासाद

अण्डक १०९
तिलक ९२
तल भाग ३४

१४. मन्दिर तिलक प्रासाद

अण्डक ७३
तिलक ५६
तल भाग २८

१५. सौभाग्य प्रासाद

अण्डक ३३
तिलक १६
तल भाग २२

१६. सुन्दर प्रासाद

अण्डक ४९
तिलक ४८
तल भाग २२

१७. श्रीतिलक प्रासाद

अण्डक १४९
तिलक ३९
तल भाग २०

१८. विशाल प्रासाद

अण्डक १५७
तिलक ४०
तल भाग २८

१९. श्रीपर्वतकूट प्रासाद

अण्डक १
तिलक ४४
तल भाग १२

२०. नन्दिवर्धन प्रासाद

अण्डक ४७
तिलक ४०
तल भाग २२

तिलक सागर आदि २५ प्रासाद

शिल्प शास्त्रों में तिलक सागर आदि पच्चीस मंदिर का वर्णन मिलता है। इन मंदिरों में कोने एवं फालना (खांचों) के आधार पर तल के विभाग किये जाते हैं शिखर में पृथक - पृथक संरचनाओं के आधार पर भेद प्रभेद किये जाते है। उन्हीं के आधार पर इन मंदिरों के नाम तथा उनके तल का विभाग एवं शिखर की सजावट का बोध होता है। इनका विस्तृत विवरण शिल्प रत्नाकर में देखा जा सकता है।

तिलक सागर आदि २५ प्रासादों की नामावली $

१- तिलक सागर
२- गौरी तिलक
३- इन्द्र तिलक
४- श्री तिलक
५- हरि तिलक
६- लक्ष्मी तिलक
७- भू तिलक
८- रंभा तिलक
९- इन्द्र तिलक
१०- मन्दिर तिलक
११- हेमवान तिलक
१२- कैलास तिलक
१३- पृथ्वी तिलक
१४- त्रिभुवन तिलक
१५- इन्द्रनील तिलक
१६- सर्वांग तिलक
१७- सुरवल्लभ तिलक
१८- सिंह तिलक
१९- मकरध्वज तिलक
२०- मंगल तिलक
२१- तिलकाक्ष
२२- पद्म तिलक
२३- सोम तिलक
२४- विजय तिलक
२५- त्रैलोक्य तिलक
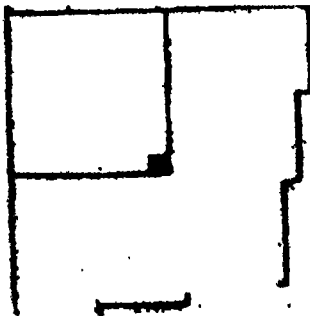
तिलक सागर प्रासाद
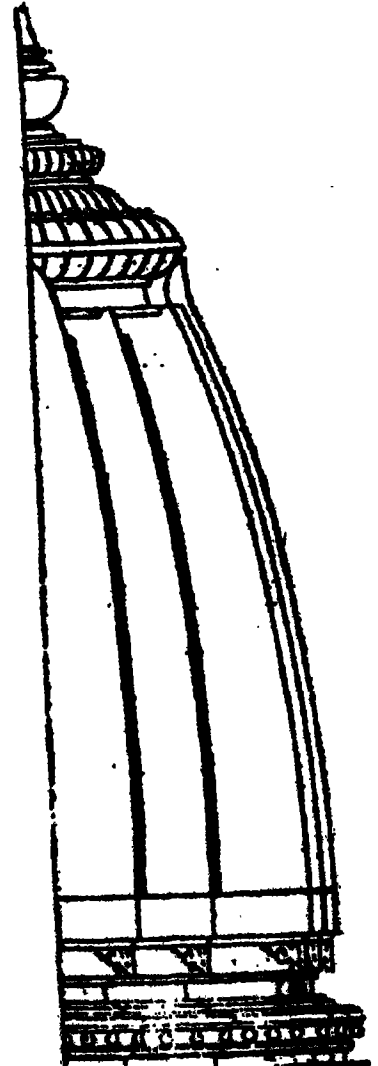
तिलक सागर आदि प्रासाद सभी देवों के लिये उपयुक्त हैं तथा पूजक एवं निर्माणकर्ता दोनों को कल्याणकारक हैं। इतना अवश्य है कि जिस भी प्रासाद को बनायें, शास्त्र सम्मत ही बनायें, अन्यथा वह अल्पबुद्धि शिल्पकार तथा मन्दिर स्थापनकर्ता, दोनों ही वंशनाश को प्राप्त होते हैं। *

---

*अन्यथा कुरुते वस्तु शिल्पी चैवाल्पबुद्धिमान्।
शिल्पिनो निष्कुलं यान्ति कर्तृकारापकावुभौ ॥ शि.र. ७/१०६
अतः सर्वप्रयत्नेन शास्त्रदृष्टेन कारयेत्।
आयुरारोग्यसौभाग्यं कर्तृकारापकस्य च ॥ शि.र. ७/१०७

$शि. र. ७/७-११

जिनेन्द्र प्रासाद

शिखर एवं तल विभाग की संरचना में विधिता करने से प्रासादों के प्रकारों की संख्या असंख्य तक हो सकती है। नौ हजार छह सौ सत्तर प्रकार के शिखर होते हैं ऐसा वर्णन अन्य शास्त्रों में मिलता है किंतु नाम एवं सविस्तार वर्णन अनुपलब्ध है।#

जितनी अधिक विविधता की जायेगी, उतने अधिक प्रकार बनते जायेंगे। आचार्यों ने शैलियों के अनुरुप कुछ प्रकार के प्रासादों को उत्तम कोटि में रखा है।

निम्नलिखित प्रकार के प्रासाद जिनप्रभु के लिए बनाये जायें तो अत्यंत मंगलकारी है - श्रीविजय, महापद्म, नंद्यावर्त, लक्ष्मी तिलक, नरवेद, कमलहंस तथा कुंजर।*

जिनेन्द्र प्रासादों के लिये उपयुक्त श्रेष्ठ प्रासाद

निम्नलिखित जातियों के प्रासाद उत्तम माने जाते हैं। इन्हीं के आधार पर चौबीस तीर्थंकरों के लिये श्रेष्ठ प्रासादों को निर्मित किया जाता है :- **

१. मेरु प्रासाद
२. नागर जाति के भद्र प्रासाद
३. अंतक प्रासाद
४. द्राविड़ प्रासाद
५. महीधर प्रासाद
६. लतिन जाति के प्रासाद

दीपार्णव में जिनेन्द्र प्रासाद के लिए पृथक-पृथक तीर्थंकरों के लिए पृथक-पृथक भेद का वर्णन किया गया है। यदि मूलनायक तीर्थंकर के नाम के अनुरुप उसी भेद का मन्दिर बनाया जाये तो यह सर्वसुखकारके होगा तथा निर्माता एवं समाज दोनों के लिए शुभ एवं मंगलमय होगा।

उत्तर भारतीय नागर जाति की शैली के प्रासादों को प्रत्येक तीर्थंकर के लिए पृथक निर्देश दिया गया है। शास्त्रकार उन्हें उन तीर्थकरों के प्रिय मन्दिर कहते हैं। वास्तव में तीर्थंकर प्रभु मोक्ष गमन कर चुके हैं तथा संसार, इच्छा, प्रिय अप्रिय भावों से रहित हैं फिर भी वास्तुशास्त्र में वल्लभ प्रासाद शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह उनके प्रासादों के भेद बताने की अपेक्षा मात्र से है।

दिगम्बर एवं श्वेतांबर दोनों ही परम्पराओं में पहचान के लिए प्रतिमा के नीचे सिंहासन पीठ में चिन्ह बनाया जाता है। ##

---

*व.सा.३/५, ** प्रा. मं. प./२/४, #व.सा. ३/११
##चिन्हों का विवरण प्रतिमा प्रकरण में दृष्टव्य हैं।

जिन मंदिरों में मंडपक्रम

सभी प्रकार के मन्दिरों में मण्डप क्रम का ध्यान अवश्य रखें -

जिनेन्द्र प्रभु के आलय में गर्भगृह के आगे गूढ़मंडप का निर्माण करें। फिर नौ चौकी मण्डप बनायें। इसके आगे रंगमण्डप (नृत्य मण्डप) बनायें। इनके आगे बलाणक (दरवाजे के ऊपर का मण्डप) बनायें।*

वत्थु सार में छह चौकी बनाने के लिए निर्देश है।**

अतः मण्डपों का क्रम यही रखें। गर्भगृह के बायें और दाहिने भाग में शोभामण्डप तथा झरोखेदार शाला बनायें जिसमें नृत्य करते हुए गंधर्व हों। #

चौबीस तीर्थंकरों के लिए मन्दिर की रचना

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के बत्तीस अथवा निर्दिष्ट कोण, प्रतिरथ, उपरथ, भद्रार्ध बनायें। इनका प्रमाण प्रत्येक तीर्थंकर के साथ अलग-अलग निर्देशित है शिखर में श्रृंग समूह क्रम चढ़ाएं।

जिन मंदिरों में तीर्थंकर प्रतिमा के साथ पूरा परिकर बनाना चाहिए। इसका विवरण प्रतिमा प्रकरण में पठनीय है। बिना परिकर के तीर्थंकर प्रतिमा कदापि ना बनायें। परम्परानुसार यक्ष-यक्षिणी एवं क्षेत्रपाल, सरस्वती देवी की भी प्रतिमाएं जिन मंदिर में लगाना चाहिए। इनका विवरण इसी ग्रंथ में प्रकरणानुसार दृष्टव्य है।

---

*गूढत्रिकस्तथा नृत्यः क्रमेण मण्डपास्त्रयः।
जिनस्याग्रे प्रकर्त्तव्यः सर्वेषां तु बलाणकम् ॥ प्रा.म.७/३

**पासायकमलअग्गे गूढक्खयमंडवं तओ छक्कं।
पुण रंगमंडवं तह तोरणासबलाणमंडवयं ॥ व. सा. ३/४९

#दाहिणवामदिसेहिं सोहमंडपगउक्खजुअसाला।
गीयं नट्टविणोयं गंधव्वा जत्थ पकुणंति ॥व. सा. ३/५०

तीर्थंकर ऋषभनाथ

ऋषभ जिन वल्लभ प्रासाद

कमल भूषण प्रासाद
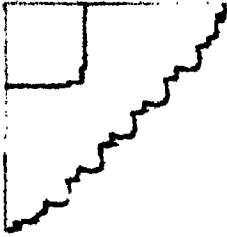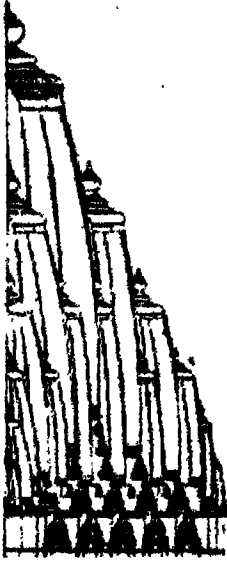
तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के ३२ भाग करें। उसमें

कोण	३ भाग
प्रतिकर्ण	३ भाग
उपरथ	३ भाग
भद्रार्ध	४ भाग करें तथा

नन्दिका तथा कोणिका १-१ भाग करें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	४ क्रम चढ़ावें
प्रतिकर्ण के ऊपर	३ क्रम चढ़ावें
उपरथ के ऊपर	२ क्रम चढ़ावें
नन्दियों के ऊपर	२ क्रम चढ़ावें

चारों दिशाओं के भद्र के ऊपर कुल २० उरुश्रृंग चढ़ावें।

कोण के ऊपर, नीचे से पहला	नन्दीश क्रम चढ़ावें ;
कोण के ऊपर, नीचे से दूसरा	नन्दशालिक क्रम चढ़ावें ;
कोण के ऊपर, नीचे से तीसरा	नन्दन क्रम चढ़ावें ;
कोण के ऊपर, नीचे से चौथा	केसरी क्रम चढ़ावें ;

उसके ऊपर एक तिलक चढ़ावें ।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	२२४	कोण	४
प्रतिकर्ण	२८०		
उपरथ	१४४		
नन्दी	४३२		
भद्र	२०		
प्रत्यंग	१६		
शिखर	१		
कुल	११९७	कुल	४

तीर्थंकर अजितनाथ

अजित जिन वल्लभ प्रासाद

कामदायक प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १२ भाग करें। उनमें से

कोण	२ भाग
प्रतिकर्ण	२ भाग
भद्रार्थ	२ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोने के ऊपर	३ क्रम (केसरी, सर्वतोभद्र, नन्दन);
प्रतिकर्ण के ऊपर	२ क्रम ;
उरूश्रृंग	८ क्रम ;
प्रत्यंग	८ क्रम कोने पर चढ़ायें।

श्रृंग संख्या

कोण	१०८
प्रतिकर्ण	११२
भद्र	८
प्रत्यंग	८
शिखर	१
कुल	२३७
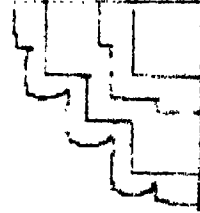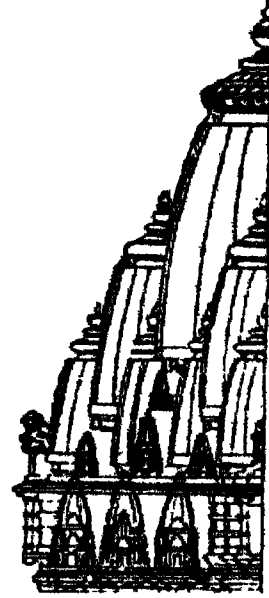
अजित जिन वल्लभ प्रासाद - कामदायक प्रासाद

तीर्थंकर संभव नाथ

स्वयंभू प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १८ भाग करें।

कर्ण	२ भाग
कर्णिका	१ भाग
प्रतिरथ	२ भाग
नंदिका	१ भाग
भद्रार्ध	३ भाग

इसी प्रकार चारों पार्श्वों में रचना करें।

शिखर की सज्जा

कर्ण	२	क्रम केशरी एवं श्रीवत्स चढ़ाएं
प्रतिकर्ण	१	क्रम केशरी एवं श्रीवत्स चढ़ाएं
कर्णिका		श्रृंग चढ़ावें
नंदिका		श्रृंग चढ़ाएं
भद्र	४	उरु श्रृंग चढ़ावें

कुल अण्डक ११३

स्वयंभू प्रासाद

अमृतोद्भव प्रासाद

इस प्रासाद का निर्माण करते समय तल और स्वरुप रत्न कोटि प्रासाद की तरह ही करें।

कोण एवं प्रतिरथ के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें

श्रृंग संख्या	तिलक संख्या	
२०९ पूर्ववत्	कोण पर	४
	प्रतिकर्ण पर	८
कुल २०९	कुल	१२
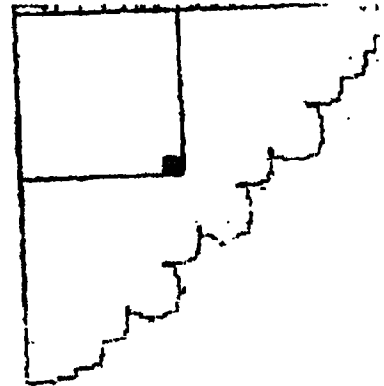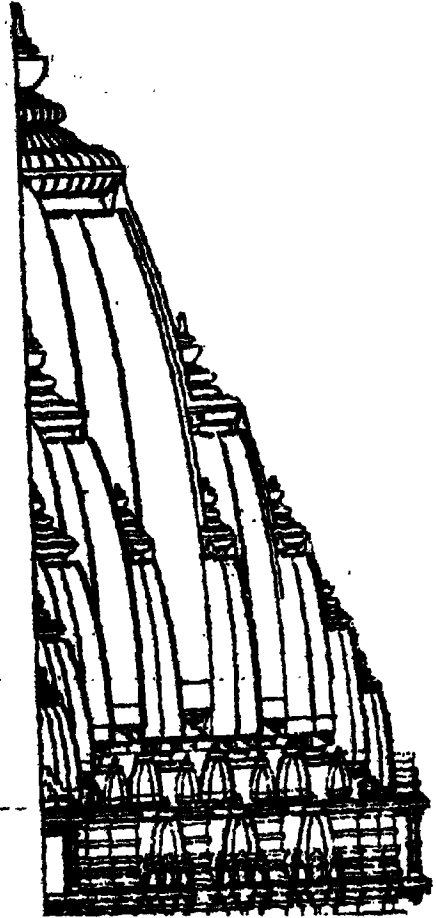
तीर्थंकर संभव नाथ
संभव जिन वल्लभ प्रासाद
रत्न कोटि प्रासाद

संभव जिन वल्लभ प्रासाद - रत्न कोटि प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के	९ भाग करें।
भद्रार्थ	१,१/२ भाग
प्रतिरथ	१ भाग
कणी	१/४ भाग
नन्दिका	१/४ भाग
कोण	१,१/२ भाग

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	२ क्रम चढ़ावें (केसरी तथा सर्वतोभद्र)
प्रतिकर्ण के ऊपर	२ क्रम चढ़ावें (केसरी तथा सर्वतोभद्र)
कणी के ऊपर	१ श्रृंग चढ़ावें।
नन्दिका के ऊपर	१ श्रृंग चढ़ावें।
चारों दिशा के भद्र के ऊपर	१६ उरुश्रृंग चढ़ावें।
कोने पर	८ प्रत्यंग चढ़ावें

श्रृंग संख्या

कोण	५६
प्रतिकर्ण	११२
कणी पर	८
नन्दी पर	८
उरुश्रृंग	१६
प्रत्यंग	८
शिखर	१
कुल	२०९ श्रृंग
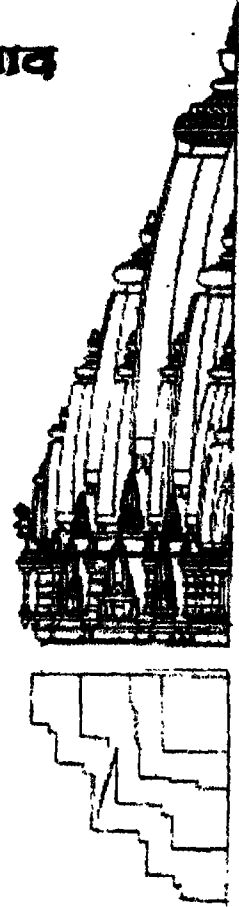
तीर्थंकर अभिनन्दन नाथ
अभिनन्दन जिन वल्लभ प्रासाद
क्षितिभूषण प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १६ भाग करें,, जिसमें -

कोण	२ भाग
प्रतिरथ	२ भाग
उपरथ	२ भाग
भद्रार्ध	२ भाग करें

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	४ क्रम चढ़ावें
प्रतिरथ के ऊपर	३ क्रम चढ़ावें
उपरथ	२ क्रम तथा एक तिलक चढ़ावें
चारों तरफ के भद्र के ऊपर	१२ उरुश्रृंग तथा १६ प्रत्यंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण पर	१७६	उपरथ	८
प्रतिरथ	२१६		
उपरथ	११२		
भद्र	१२		
प्रत्यंग	१६		
शिखर	१		
कुल	५३३	कुल	८
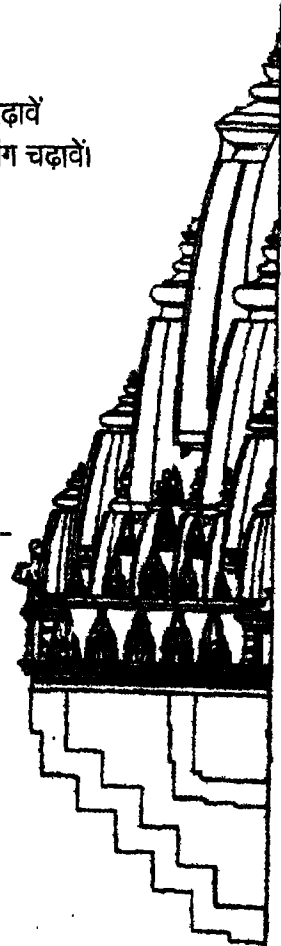
अभिनन्दन जिन वल्लभ प्रासाद - क्षितिभूषण प्रासाद

तीर्थंकर अभिनन्दन नाथ

अभिनन्दन जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १८ भाग करें , जिसमें -

कर्ण	३ भाग
प्रतिकर्ण	३ भाग
भद्रार्ध	३ भाग करें। निर्गम हस्तांगुल प्रमाण रखें।

शिखर की सज्जा

कर्ण के ऊपर	२ क्रम केशरी एवं सर्वतोभद्र चढ़ावें
प्रतिकर्ण के ऊपर	२ क्रम केशरी एवं सर्वतोभद्र चढ़ावें तथा एक तिलक चढ़ावें
भद्र के ऊपर	२ उरु श्रृंग चढ़ावें तथा एक तिलक चढ़ावें

कुल श्रृंग संख्या १७७ तिलक संख्या १२
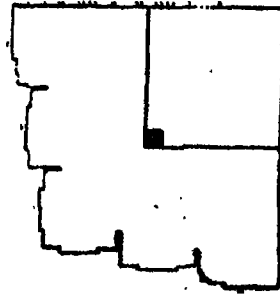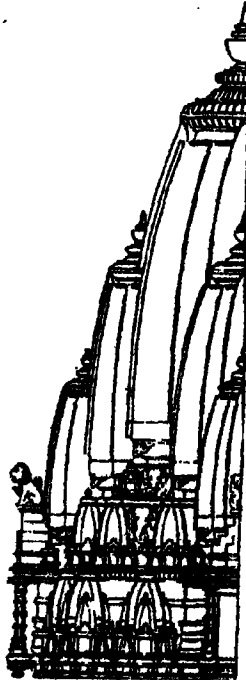
अभिनंदन जिन प्रासाद

तीर्थंकर सुमतिनाथ

सुमति जिन वल्लभ प्रासाद

सुमतिजिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार भूमि के १४ भाग करें। उसमें

कोना	२ भाग
प्रतिरथ	२ भाग
नन्दी	१ भाग
भद्रार्ध	२ भाग बनायें

कोना तथा प्रतिरथ का निर्गम समदल रखें।

शिखर की सज्जा

कोने के ऊपर	२ क्रम चढ़ायें ;
प्रतिरथ के ऊपर	२ क्रम चढ़ायें ;
प्रत्येक भद्र के ऊपर	४ उरूश्रृंग चढ़ायें ;
प्रत्येक भद्र के ऊपर	८ प्रत्यंग चढ़ायें ;
नन्दी के ऊपर	१ श्रीवत्स श्रृंग तथा १ कूट चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		कूट संख्या	
कोण	५६	नन्दी	८
प्रतिरथ	११२		
भद्र	१६		
प्रत्यंग	८		
नन्दी	८		
शिखर	१		
कुल	२०१	कुल	८

तीर्थंकर पद्मप्रभ

पद्मप्रभ जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २० भाग करें। उसमें से

कोना	२ भाग
प्रतिरथ	२ भाग
कर्णिका	१ भाग
नन्दी	१ भाग
भद्रार्ध	४ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोना के ऊपर	दो क्रम चढ़ाएं (केसरी तथा सर्वतोभद्र) ;
प्रतिरथ के ऊपर	दो क्रम चढ़ाएं (केसरी तथा सर्वतोभद्र) ;
कर्णिका के ऊपर	एक श्रृंग एक कूट चढ़ाएं ;
नन्दी के ऊपर	एक श्रृंग एक कूट चढाएं।
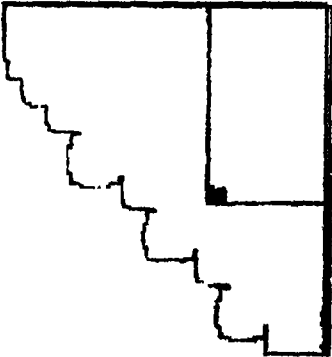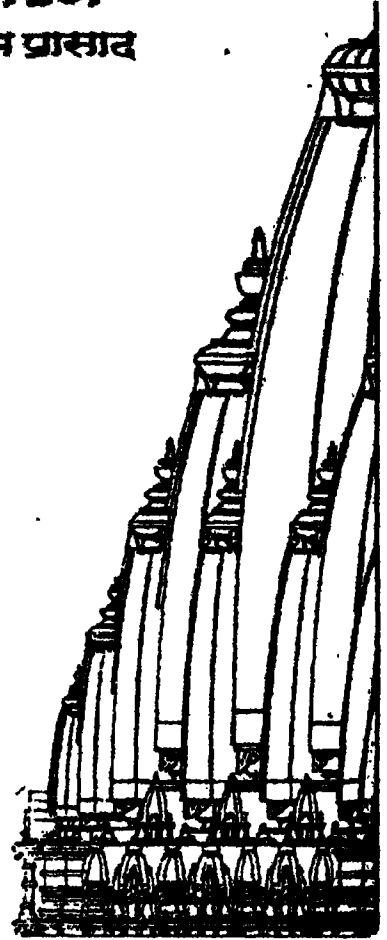
श्रृंग	संख्या	कूट	संख्या
कोण	५६	कर्णिका	४
प्रतिरथ	११२	नन्दी	४
कर्णिका	८		
नन्दी	८		
प्रत्यंग	८		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	२०९	कुल	८

पद्मराग जिन प्रासाद

इसका निर्माण पद्मप्रभु जिन वल्लभ प्रासाद के उपरोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ के ऊपर भी एक एक तिलक चढ़ावें।

कुल श्रृंग संख्या - २०९ तिलक - ४

पुष्टिवर्धन प्रासाद

इसका निर्माण पद्म राग जिन प्रासाद के उपरोक्त मान से करें तथा उसमें कोण के ऊपर भी एक एक तिलक चढ़ावें।

कुल श्रृंग संख्या - २०९ तिलक - १२

तीर्थंकर सुपार्श्व नाथ
सुपार्श्व जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १० भाग करें। उसमें

कोण २ भाग

प्रतिकर्ण १,१/२ भाग करें तथा ये दोनों अंग वर्गाकार निकलते हुये हों।

भद्रार्ध १,१/२ भाग करें तथा उसके दोनों पार्श्व में भद्र के मान की दो कपिला बनायें।

भद्र का निकलता भाग एक भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोणों के ऊपर २ क्रम चढ़ावें ;

प्रतिकर्ण के ऊपर उद्‌गम बनायें ;

भद्र के ऊपर उद्‌गम बनायें ।

श्रृंग संख्या

कोण ५६

शिखर १

कुल ५७

श्री वल्लभ प्रासाद

इसका निर्माण सुपार्श्व जिन प्रासाद के उपरोक्त मान से करें तथा उसमें

प्रतिकर्ण के ऊपर १-१ श्रृंग तथा

भद्र के ऊपर १-१ उरुश्रृंग चढ़ायें

श्रृंग संख्या

कोण ५६

प्रतिकर्ण ८

भद्र ४

शिखर १

कुल ६९

सुपार्श्व जिन वल्लभ प्रासाद

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ

चन्द्रप्रभ वल्लभ प्रासाद

शीतल प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि का ३२ भाग करें। उसमें से -

कोण	५ भाग
प्रतिकर्ण	५ भाग
भद्रार्ध	५ भाग
कोणी	१ भाग
नन्दिका	१ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	३ श्रृंग चढ़ावें (श्रीवत्स, केसरी, सर्वतोभद्र);
उपरथ के ऊपर	३ श्रृंग चढ़ावें (श्रीवत्स, केसरी, सर्वतोभद्र) ;
कोणी के ऊपर	२ वत्सश्रृंग चढ़ावें ;
नन्दिका के ऊपर	२ वत्सश्रृंग चढ़ावें ;
भद्र के ऊपर	४ उरुश्रृंग चढ़ावें ;
प्रत्यंग	२४ चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	६०
प्रतिकर्ण	१२०
कोणी	६०
नन्दी	१६
भद्र	१६
प्रत्यंग	२४
शिखर	१
कुल	२५३

श्रीचन्द्र प्रासाद

इसका निर्माण शीतल प्रासाद के उपरोक्त मान से करें तथा उसमें प्रतिकर्ण के ऊपर भी एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
पूर्ववत्	२५३	प्रतिकर्ण	८
कुल	२५३	कुल	८

चन्द्रप्रभ वल्लभ प्रासाद - शीतल प्रासाद

तीर्थंकर सुविधि नाथ प्रासाद

सुविधि जिन वल्लभ प्रासाद

हितुराज प्रासाद

इसका निर्माण श्रीचन्द्र प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें कोणी तथा नन्दी के ऊपर भी एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रियांश प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २४ भाग करें

कोण	३ भाग
प्रतिरथ	३ भाग
उपरथ	३ भाग
भद्रार्ध	३ भाग

निर्गम में ये सब समदल रखें।

शिखर की सज्जा

भद्र के ऊपर	२ उरुश्रृंग चढ़ाएं
कोना के ऊपर	२ श्रृंग तथा १ तिलक चढावें
प्रतिरथ के ऊपर	२ श्रृंग तथा १ तिलक चढावें
उपरथ के ऊपर	२ श्रृंग चढ़ावें

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	८	कोण	४
प्रतिकर्ण	१६	प्रतिकर्ण	८
उपरथ	१६		
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	४९	कुल	१२

श्रियांश प्रासाद

तीर्थंकर शीतलनाथ

शीतल जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २४ भाग करें। उनमें से

कोण	४ भाग
प्रतिरथ	३ भाग
भद्रार्ध	५ भाग बनायें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	१ श्रृंग	तथा	२ तिलक
प्रतिकर्ण के ऊपर	१ श्रृंग	तथा	२ तिलक
चारों भद्र के ऊपर	१२ उरूश्रृंग	तथा	
	८ प्रत्यंग चढावें।		

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	४	कोण	८
प्रतिकर्ण	८	प्रतिकर्ण	१६
भद्र	१२		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	३३	कुल	२४
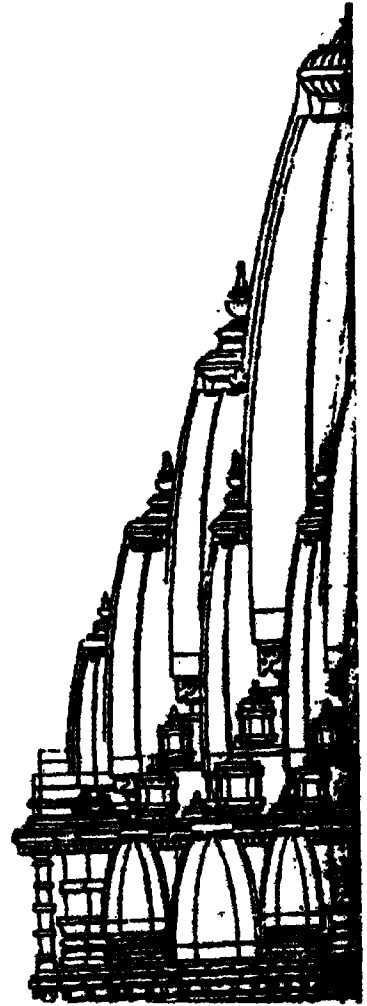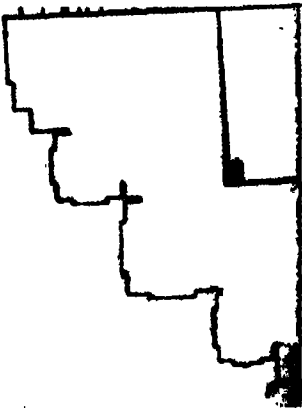
शीतल जिन वल्लभ प्रासाद

कीर्तिदायक प्रासाद

इसका निर्माण शीतल जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें एक तिलक करें तथा इसके स्थान पर एक श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण पर	८	कोण	४
प्रतिकण	८	प्रतिकर्ण	१६
भद्र	१२		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	३७	कुल	२०

मनोहर प्रासाद

इसका निर्माण कीर्तिदायक प्रासाद की तरह करें तथा इसमें कोण के ऊपर एक केसरी कम तथा दो श्रीवत्स श्रृंग चढ़ावें। प्रतिकर्ण के ऊपर एक केसरी क्रम चढ़ायें।

श्रृंग संख्या	
कोण	२८
प्रतिकर्ण	४०
भद्र	१२
प्रत्यंग	८
शिखर	१
कुल	८९ श्रृंग

तीर्थंकर श्रेयांस नाथ

श्रेयांस जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि का १६ भाग करें। उसमें

कोण	३ भाग
प्रतिकर्ण	३ भाग
भद्रार्ध	२ भाग बनायें

इसके अंगों का निर्गम प्रासाद जितने हाथ का हो उतने अंगुल रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	१ श्रृंग चढ़ायें तथा	१ तिलक चढ़ायें ;
प्रतिकर्ण के ऊपर	१ श्रृंग चढ़ायें तथा	१ तिलक चढ़ायें ;
भद्र के ऊपर	उद्गम बनायें।	

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	४	कोण	४
प्रतिकर्ण	८	प्रतिकर्ण	८
शिखर	१		
कुल	१३	कुल	१२

कुलनन्दन प्रासाद

इसका निर्माण श्रेयांस जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें भद्र के ऊपर ८ उरुश्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	४	कोण	४
रथ	८	प्रतिकर्ण	८
भद्र	८		
शिखर	१		
कुल	२१	कुल	१२

तीर्थंकर श्रेयांस नाथ
सुकुल प्रासाद

प्रासाद की वर्गाकार भूमि का १६ भाग करें। उसमें
कोण ३ भाग
प्रतिकर्ण ३ भाग
भद्रार्ध २ भाग बनायें

इसके अंगों का निर्गम प्रासाद जितने हाथ का हो उतने अंगुल रखें।

सुकुल प्रासाद

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर १ श्रृंग चढ़ायें तथा १ तिलक चढ़ायें ;
प्रतिकर्ण के ऊपर १ श्रृंग चढायें तथा १ तिलक चढ़ायें ;
भद्र के ऊपर १ श्रृंग चढ़ायें तथा उद्गम बनायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	४	कोण	४
प्रतिकर्ण	८	प्रतिकर्ण	८
भद्र	४		
शिखर	१		
कुल	१७	कुल	१२
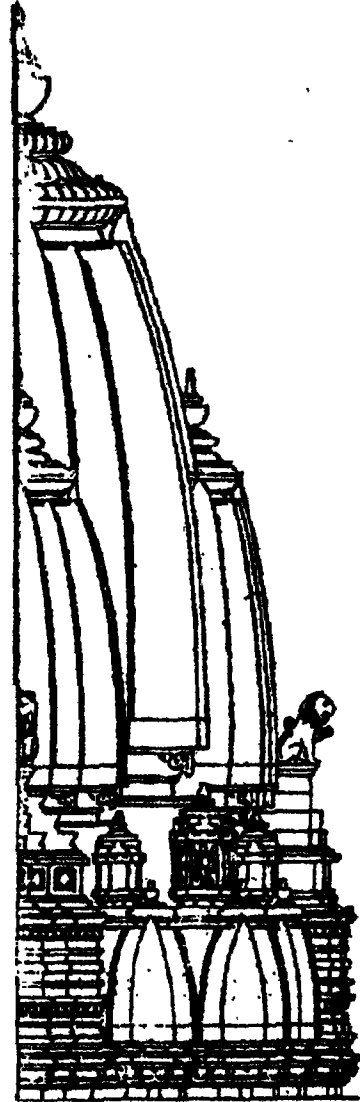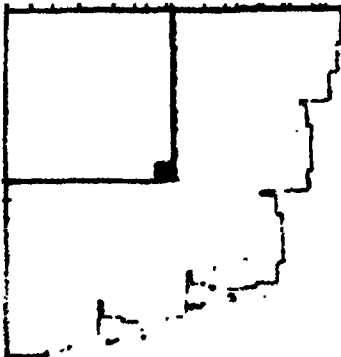
तीर्थंकर वासुपूज्य

वासुपूज्य जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

वर्गाकार भूमि के २२ भाग करें। उसमें

कोण	४ भाग
कर्णनन्दी	१ भाग
प्रतिरथ	३ भाग
भद्र नन्दी	१ भाग
भद्रार्ध	२ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	३ क्रम चढ़ावें ;
प्रतिकर्ण के ऊपर	२ क्रम चढ़ावें ;
कोणी के ऊपर	त्रिकूट श्रृंग और उसके ऊपर तिलक चढ़ावें ;
नन्दी के ऊपर	त्रिकूट श्रृंग और उसके ऊपर तिलक चढ़ावें ;
भद्र के ऊपर	३ उरुश्रृंग चढ़ावें ;
प्रत्यंग	८ चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	१०८	दोनों नन्दी पर १६	
प्रतिरथ	११२		
कर्णनन्दी	८		
भद्र नन्दी	८		
भद्र	१२		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	२५७	कुल	१६
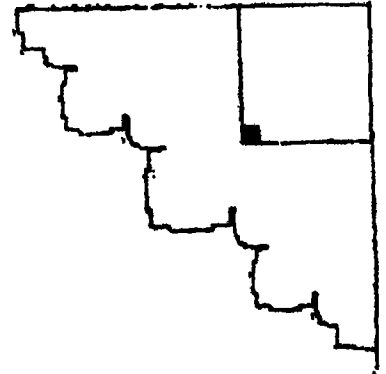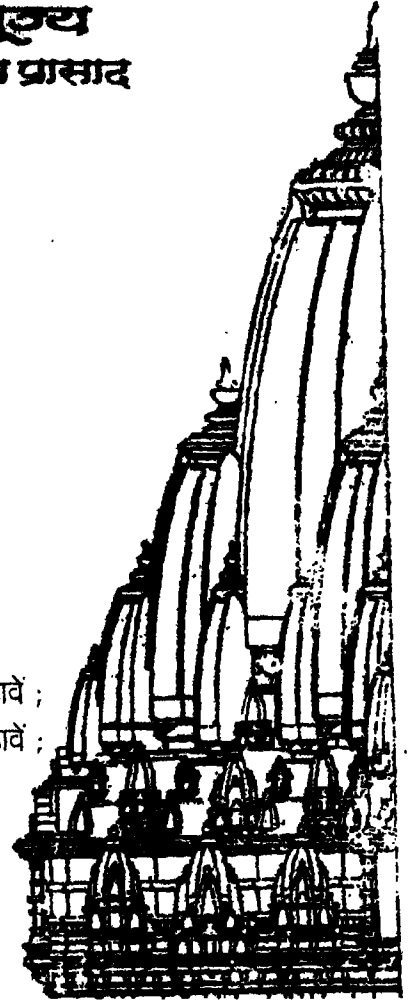
वासुपूज्य प्रासाद

तीर्थंकर वासुपूज्य

रत्न संजय प्रासाद

इसका निर्माण वासुपूज्य जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें कोण के क्रम के ऊपर १ तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
पूर्ववत्	२५७	कोण पर	४
		दोनों नन्दी पर	१६
कुल	२५७	कुल	२०

धर्मद प्रासाद

इसका निर्माण रत्न संजय प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें भद्र के ऊपर चौथा एक अधिक उरूश्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	१०८	कोण पर	४
प्रतिरथ	११२	दोनों नन्दी पर	१६
कोणी	८		
नन्दी	८		
भद्र	१६		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	२६१	कुल	२०

तीर्थंकर विमलनाथ
विमल जिन वल्लभ प्रासाद

वर्गाकार भूमि के २४ भाग करें। उनमें से

कोण	३ भाग
प्रतिकर्ण	३ भाग
कोणिका	१ भाग
नन्दिका	१ भाग
भद्रार्ध	४ भाग बनायें।

भद्र का निर्गम एक भाग रखें। रथ तथा कर्ण का निर्गम समदल रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	३ श्रृंग चढ़ायें ;
प्रतिकर्ण के ऊपर	२ श्रृंग चढ़ायें ;
नंदिका के ऊपर	१ श्रृंग १ कूट चढ़ायें ;
कोणिका के ऊपर	१ श्रृंग १ कूट चढ़ायें ;
भद्र के ऊपर	४ उरुश्रृंग चढ़ायें तथा
प्रत्यंग	८ चढ़ायें ।
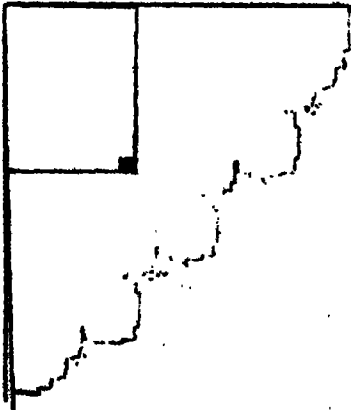
विमल जिन वल्लभ प्रासाद

श्रृंग संख्या		कूट संख्या	
कोण	१२	नंदी	८
प्रतिरथ	१६	कोणिका	८
कोणी	८		
नंदी पर	८		
भद्र	१६		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	६९	कुल	१६

मुक्तिद प्रासाद

इसका निर्माण विमल जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्रतिरथ के ऊपर एक एक तिलक चढाए चढ़ावें तथा दोनों नंदियों के ऊपर कूट के बदले श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	१२	प्रतिरथ	८
प्रतिरथ	१६		
कोणी	१६		
नन्दी	१६		
भद्र	१६		
प्रतिरथ	८		
शिखर	१		
कुल	८५	कुल	८

तीर्थंकर अनन्त नाथ

अनन्त जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २० भाग करें। उसमें

कोण	३ भाग,
उपरथ	३ भाग,
भद्रार्ध	३ भाग,
भद्रनंदी	१ भाग,
इन अंगों का निर्गम	१ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	३ क्रम चढ़ायें ;
(प्रति)रथ के ऊपर	३ क्रम चढ़ायें ;
भद्र के ऊपर	४ उरुश्रृंग चढ़ायें ;
भद्र नन्दी के ऊपर	२ क्रम चढ़ायें।

श्रृंग संख्या

कोण	१०८
प्ररथ	२१६
नन्दी	११२
भद्र	१६
शिखर	१

कुल	४५३
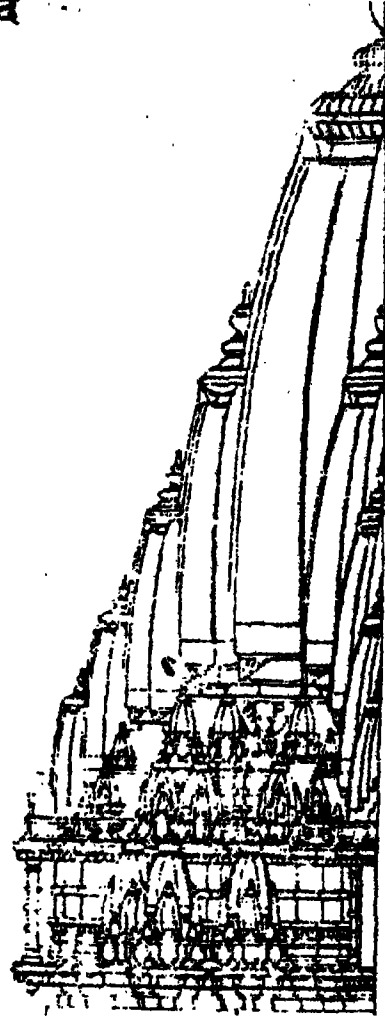
सुरेन्द्र प्रासाद

इसका निर्माण अनन्त जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ के ऊपर एक-एक तिलक चढ़ाए चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

पूर्ववत् ४५३

तिलक संख्या

प्ररथ ८
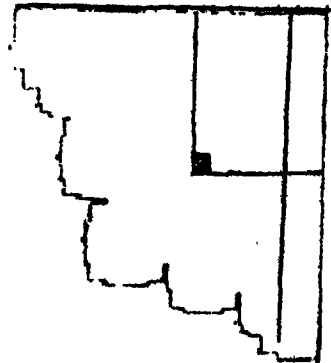
अनन्त जिन वल्लभ प्रासाद

तीर्थंकर धर्मनाथ

धर्मनाथ जिन वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २८ भाग करें। उसमें से

कोण	४ भाग,
प्रथ	४ भाग,
भद्रार्ध	४ भाग,
कोणी	१ भाग तथा
भद्रनन्दी	१ भाग बनायें

ये सभी अंग समदल में रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	२ क्रम चढ़ाएं (केसरी, सर्वतोभद्र)
उसके ऊपर	१ तिलक चढ़ाएं ;
प्रथ के ऊपर	२ क्रम चढ़ाएं ;
उसके ऊपर	१ तिलक चढ़ाएं ;
कोणी के ऊपर	२ श्रृंग चढ़ाएं ;
नन्दी के ऊपर	२ श्रृंग चढ़ाएं ;
भद्र के ऊपर	४ उरुश्रृंग चढ़ाएं ;
प्रत्यंग	८ चढ़ाएं।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	५६	कोण	४
प्रथ	११२	प्रथ	८
कोणी	१६		
नंदी	१६		
भद्र	१६		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	२२५	कुल	१२

धर्म जिन वल्लभ प्रासाद - धर्मद प्रासाद

धर्मवृक्ष प्रासाद

इसका निर्माण धर्मनाथ जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्रथ के ऊपर तिलक के स्थान पर एक एक श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या- प्रथ पर १२०, शेष पूर्ववत् ; कुल- २३३

तिलक संख्या- कोण पर ४ कुल- ४
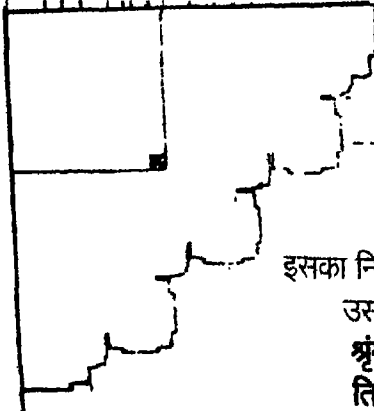
तीर्थंकर शांतिनाथ
शांति जिन वल्लभ प्रासाद
श्रीलिंग प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १२ भाग करें। उसमें

कोण	२ भाग
प्रतिकर्ण	२ भाग
भद्रार्ध	१,१/२ भाग
भद्रनन्दी	१/२ भाग करें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	२ क्रम चढ़ायें
प्रतिकर्ण के ऊपर	२ क्रम चढ़ायें
भद्रनन्दी के ऊपर	१ श्रृंग तथा १ कूट चढ़ायें
चारों भद्रों के ऊपर	१२ उरूश्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		**कूट संख्या**	
कोण	५६	नन्दी	८
प्ररथ	११२		
भद्रनन्दी	८		
भद्र	१२		
शिखर	१		
-------------		-------------	
कुल	१८९	कुल	८

कामदायक प्रासाद

इसका निर्माण शांति जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें भद्र के ऊपर एक उरु श्रृंग अधिक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	५६
प्ररथ	११२
भद्रनन्दी	८
भद्र	१६
शिखर	१

कुल	१९३

शांति जिन वल्लभ प्रासाद - शांत प्रासाद
(श्री लिंग प्रासाद)

तीर्थंकर कुन्थुनाथ

कुन्थु जिन वल्लभ प्रासाद

कुमुद प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के ८ भाग करें। उसमें

कोण	१ भाग
प्रतिकर्ण	१ भाग
भद्रार्ध	१,१/२ भाग
भद्र नन्दी	१/२ भाग करें

भद्र का निर्गम १ भाग करें।

ऐसा चारों दिशाओं में करें ।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	१ श्रृंग (केसरी) तथा १ तिलक चढ़ाएं ;
प्रतिकर्ण के ऊपर	१ श्रृंग (केसरी) तथा १ तिलक चढ़ाएं ;
भद्र नन्दी के ऊपर	१ तिलक चढ़ाएं ;
भद्र के ऊपर	१ उरुश्रृंग चढ़ाएं।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	२०	कोण	४
प्ररथ	४०	प्ररथ	८
भद्र	४	नन्दी	८
शिखर	१		
कुल	६५	कुल	२०

कुन्थु जिन वल्लभ प्रासाद

शक्तिद प्रासाद

इसका निर्माण कुमुद जिन वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ के ऊपर एक एक तिलक अधिक चढ़ावें।

कुल श्रृंग संख्या - ६५

कुल तिलक संख्या - २८
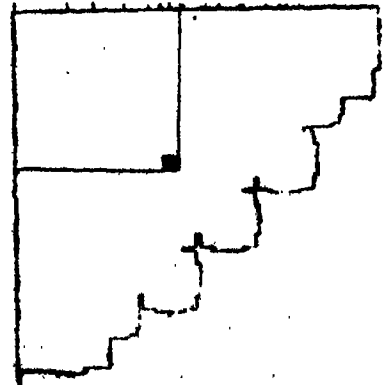
तीर्थंकर अरहनाथ

अरहनाथ जिन वल्लभ प्रासाद

कमल कन्द प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के ८ भाग करें। उसमें
कोण २ भाग
भद्रार्ध २ भाग बनायें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर एक एक श्रृंग (केसरी) चढ़ाएं।
भद्र के ऊपर उद्गम बनायें।

श्रृंग संख्या

कोण २०
शिखर १

कुल २१

अरहनाथ जिन वल्लभ प्रासाद
कमल कंद प्रासाद

श्री शैल प्रासाद

इसका निर्माण कमल कन्द प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें कोण के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	२०	कोण	४
शिखर	१		
कुल	२१	कुल	४

अरिनाशन प्रासाद

इसका निर्माण श्री शैल प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें भद्र के ऊपर एक एक उरुश्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	२०	कोण	४
भद्र	४		
शिखर	१		
कुल	२५	कुल	४

तीर्थंकर मल्लिनाथ
मल्लि जिन वल्लभ प्रासाद
महेन्द्र प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १२ भाग करें। उसमें

कोण	२ भाग
प्रतिरथ	१,१/२ भाग
भद्रार्ध	१,१/२ भाग
कर्ण नन्दी	१/२ भाग
भद्र नन्दी	१/२ भाग

शिखर की सज्जा

प्रतिरथ के ऊपर २ क्रम चढ़ाएं (केसरी व सर्वतोभद्र)
कोण के ऊपर २ क्रम चढ़ाएं (केसरी व सर्वतोभद्र)
भद्र के ऊपर १२ उरुश्रृंग चढ़ाएं

श्रृंग संख्या

कोण	५६
प्ररथ	११२
भद्र	१२
शिखर	१
कुल	१८१

मानवेन्द्र प्रासाद

इसका निर्माण महेन्द्र प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्रतिरथ के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
पूर्ववत्	१८१	प्रतिरथ	८
कुल	१८१	कुल	८

पाप नाशन प्रासाद

निर्माण मानवेन्द्र प्रासाद के पूर्वोक्त मान से था उसमें कोण के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
पूर्ववत्	१८१	कोण	४
		प्रतिरथ	८

मल्लि नाथ जिन वल्लभ प्रासाद
महेन्द्र प्रासाद

तीर्थंकर मुनिसुव्रत नाथ

मुनिसुव्रत जिन वल्लभ प्रासाद

मानस तुष्टि प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १४ भाग करें। उसमें

कोण	२ भाग
प्ररथ	२ भाग
भद्रार्ध	३ भाग करें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	२	क्रम चढ़ाएं (केसरी व सर्वतोभद्र)
प्ररथ के ऊपर	२	क्रम चढ़ाएं (केसरी व सर्वतोभद्र)
भद्र के ऊपर	१२	उरुश्रृंग चढ़ाएं

श्रृंग संख्या

कोण	२४
प्ररथ	४८
भद्र	१२
शिखर	१
कुल	८५

मनोल्याचन्द्र प्रासाद

इसका निर्माण मानसतुष्टि प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
पूर्ववत्	८५	प्ररथ	८
कुल	८५	कुल	८

श्रीभव प्रासाद

इसका निर्माण मनोल्या चन्द्र प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें। उसमें कोण के ऊपर श्रृंगों के बदले में दो केसरी श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कर्ण	४०	प्ररथ	८
प्ररथ	४८		
भद्र	१२		
शिखर	१		
कुल	**१०१**	**कुल**	**८**
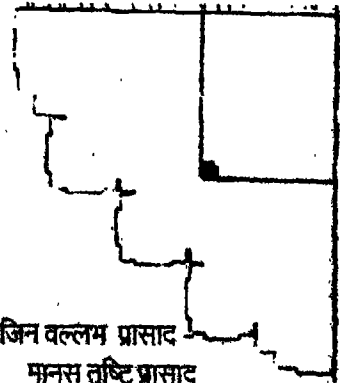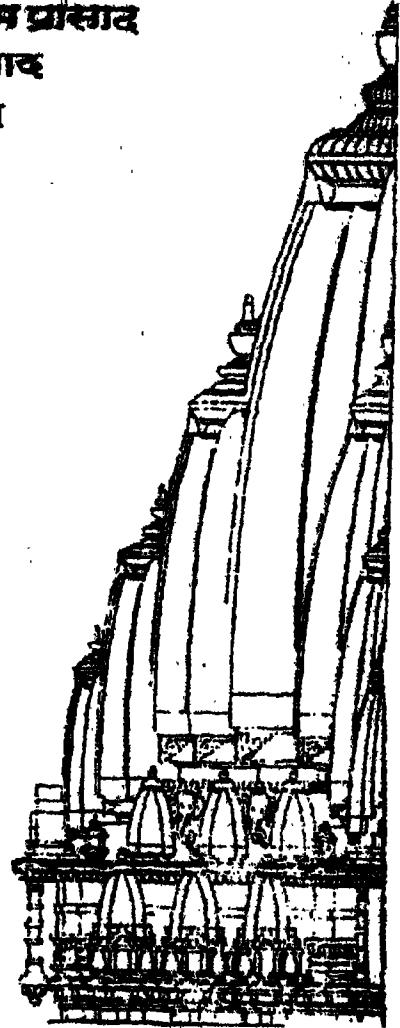
मुनिसुव्रत जिन वल्लभ प्रासाद

मानस तुष्टि प्रासाद

तीर्थंकर नमिनाथ
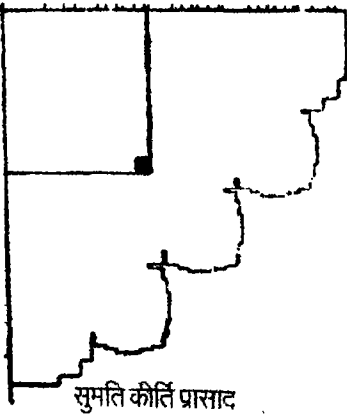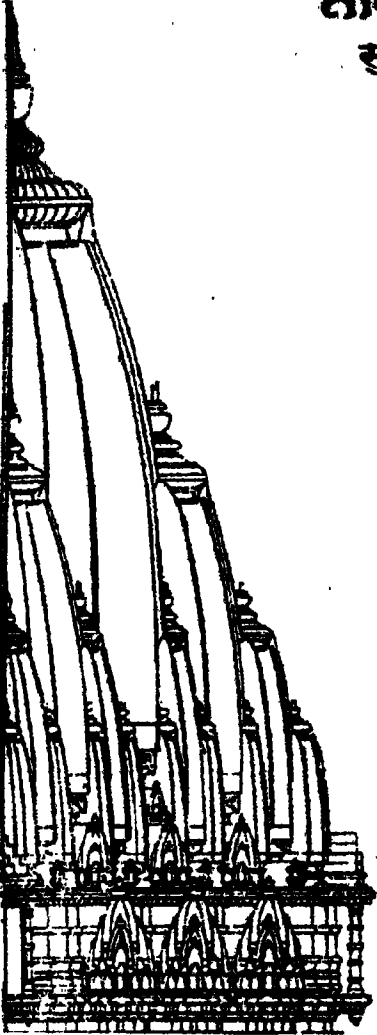
सुमति कीर्ति प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २६ भाग करें। उसमें

कोण	४ भाग
प्रस्थ	४ भाग
भद्र	१० भाग का करें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	३ क्रम चढ़ाएं
प्रस्थ के ऊपर	२ क्रम चढाएं
भद्र के ऊपर	१२ उरुश्रृंग चढ़ाएं
प्रत्यंग	३२ चढ़ाएं

श्रृंग संख्या

कोण	१५६
प्रस्थ	११२
भद्र	१२
प्रत्यंग	३२
शिखर	१
कुल	३१३

सुमति कीर्ति प्रासाद में ही प्रस्थ के ऊपर २ क्रम मन्दिर एवं सर्वतोभद्र रखने पर

श्रृंग संख्या

कोण	१५६
प्रस्थ	२७२
भद्र	१२
प्रत्यंग	३२
शिखर	१
कुल	४७३

सुमति कीर्ति प्रासाद

तीर्थंकर नमिनाथ

नमिनाथ जिन वल्लभ प्रासाद

नमि श्रृंग प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के १६ भाग करें। उसमें

कोण	३ भाग
प्रतिरथ	२ भाग
भद्रार्ध	३ भाग का करें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	२	क्रम चढ़ाएं
प्ररथ के ऊपर	२	क्रम चढ़ाएं
चारों दिशाओं में भद्र के ऊपर	४	उरूश्रृंग चढ़ाएं।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	५६	कोण	४
प्ररथ	११२	प्ररथ	८
भद्र	१६		
शिखर	१		
कुल	१८५	कुल	१२

सुरेन्द्र प्रासाद

इसका निर्माण सुमति कीर्ति प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ के ऊपर एक श्रृंग अधिक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	१५६
प्ररथ	२८०
भद्र	१२
प्रत्यंग	३२
शिखर	१
कुल	४८१

राजेन्द्र प्रासाद

इसका निर्माण सुरेन्द्र प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें भद्र के ऊपर १२ के बदले १६ उरुश्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या

कोण	१५६
प्ररथ	२८०
भद्र	१६
प्रत्यंग	३२
शिखर	१
कुल	४८५

तीर्थंकर नेमिनाथ

नेमिनाथ जिन वल्लभ प्रासाद

नेमेन्द्रेश्वर प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि का २२ भाग करें। उसमें

कोण	२ भाग
कोणी	१ भाग
प्रतिकर्ण	२ भाग
उपरथ	२ भाग
नन्दी	१ भाग
भद्रार्ध	२ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	२ क्रम चढ़ाएं (केसरी एवं सर्वतोभद्र)
प्रतिकर्ण के ऊपर	१ क्रम (केसरी) एवं एक तिलक चढ़ाएं
उपरथ के ऊपर	१ क्रम (केसरी) एवं एक तिलक चढ़ाएं
कोणी के ऊपर	१ श्रृंग एवं एक तिलक चढ़ाएं
नंदियों के ऊपर	१ श्रृंग एवं एक तिलक चढ़ाएं
भद्र के ऊपर	४ उरूश्रृंग चढ़ाएं
प्रत्यंग	१६ चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	५६	प्ररथ	८
कोणी	८	उपरथ	८
प्ररथ	४०	कर्ण नन्दि	८
कोणी	८	प्ररथ नन्दि	८
उपरथ	४०	भद्र नन्दी	८
नन्दी	८		
भद्र	१६		
प्रत्यंग	१६		
शिखर	१		
कुल	१९३	कुल	४०
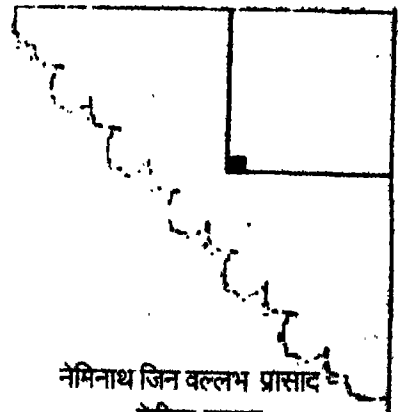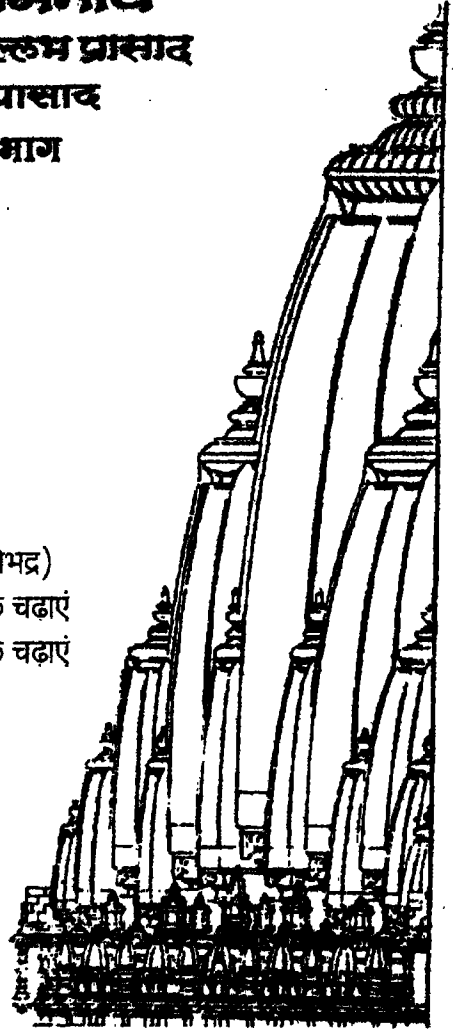
नेमिनाथ जिन वल्लभ प्रासाद
नेमीन्द्र प्रासाद

यति भूषण प्रासाद

इसका निर्माण नेमिनाथ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ एवं उपरथ के ऊपर तिलक के स्थान पर एक एक श्रृंग चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	५६	कर्ण नन्दी	८
कोणी	८	प्ररथ नन्दी	८
प्ररथ	४८	भद्र नन्दी	८
कोणी	८		
उपरथ	४८		
नन्दी	८		
भद्र	१६		
प्रत्यंग	१६		
शिखर	१		
कुल	२०९	कुल	२४

सुपुष्प प्रासाद

इसका निर्माण यतिभूषणप्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ एवं उपरथ के ऊपर श्रृंग के स्थान पर एक एक केसरी क्रम चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		**तिलक संख्या**	
कोण	५६	कर्ण नन्दी	८
कोणी	८	प्ररथ नन्दी	८
प्ररथ	८०	भद्र नन्दी	८
कोणी	८		
उपरथ	८०		
नन्दी	८		
भद्र	१६		
प्रत्यंग	१६		
शिखर	१		
कुल	२७३	कुल	२४ तिलक

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

पार्श्व वल्लभ प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २६ भाग करें। उसमें

कोण	४ भाग
कोणी	१ भाग
प्रतिरथ	३ भाग
नन्दी	१ भाग
भद्रार्ध	४ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	१ क्रम (केसरी) तथा एक श्रीवत्स शृंग चढाएं
प्रस्थ के ऊपर	१ क्रम (केसरी) तथा एक श्रीवत्स शृंग चढ़ाएं
कोणी के ऊपर	१ शृंग चढ़ाएं
नन्दी के ऊपर	१ शृंग चढ़ाएं
भद्र के ऊपर	४ उरूशृंग चढ़ाएं
प्रत्यंग	८ चढावें।

शृंग संख्या

कोण	२४
प्ररथ	४८
भद्र	१६
कोणी	८
नन्दी	८
प्रत्यंग	८
शिखर	१
कुल	११३
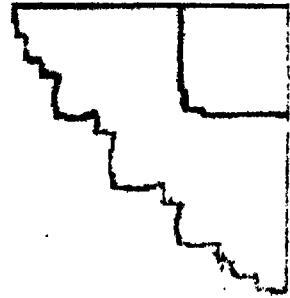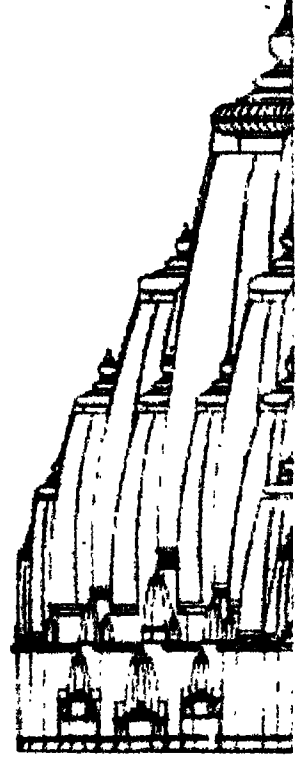
पार्श्व वल्लभ प्रासाद

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

पद्मावती प्रासाद

इसका निर्माण पार्श्व वल्लभ प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें कोण के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	२४	कोण	४
प्ररथ	४८		
भद्र	१६		
कोणी	८		
नन्दी	८		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	११३	कुल	४

रूप वल्लभ प्रासाद

इसका निर्माणपद्मावती प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें प्ररथ के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	२४	कोण	४
प्ररथ	४८	प्ररथ	८
भद्र	१६		
कोणी	८		
नन्दी	८		
प्रत्यंग	८		
शिखर	१		
कुल	११३	कुल	१२

तीर्थंकर वर्धमान महावीर

वीर जिन वल्लभ प्रासाद
वीर विक्रम प्रासाद
महीधर प्रासाद

तल का विभाग

प्रासाद की वर्गाकार भूमि के २४ भाग करें। उनमें

कोण	३ भाग
प्रतिकर्ण	३ भाग
कोणी	१ भाग
नन्दी	१ भाग
भद्रार्ध	४ भाग रखें।

शिखर की सज्जा

कोण के ऊपर	२ क्रम (केसरी व सर्वतोभद्र) तथा एक श्रीवत्स श्रृंग चढ़ाएं ;
प्ररथ के ऊपर	२ क्रम (केसरी व सर्वतोभद्र) तथा एक श्रीवत्स श्रृंग चढ़ाएं ;
भद्र के ऊपर	४ उरूश्रृंग चढ़ाएं ;
कोणी के ऊपर	१ श्रीवत्स श्रृंग चढ़ाएं ;
नन्दी के ऊपर	१ श्रीवत्स श्रृंग चढ़ाएं ;
प्रत्यंग	८ चढ़ाएं ;

श्रृंग संख्या

कोण	६०
प्ररथ	१२०
प्रत्यंग	८
भद्र	१६
कोणी	८
नन्दी	८
शिखर	१
कुल	२२१
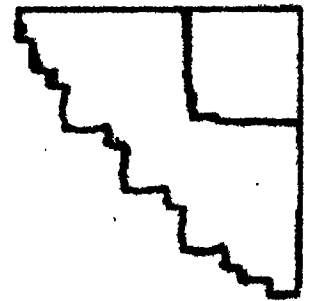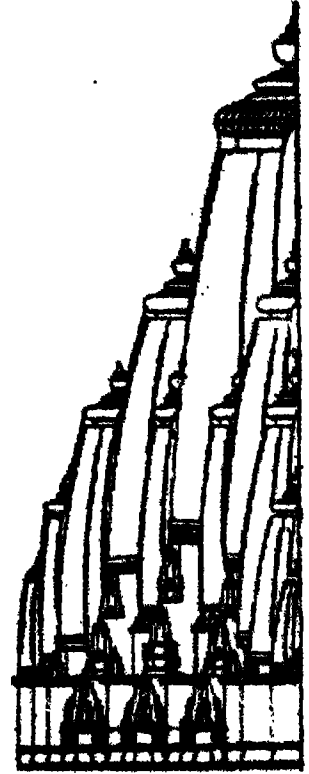
वीर जिन वल्लभ प्रासाद
वीर विक्रम प्रासाद- महीधर प्रासाद

अष्टापद प्रासाद

इसका निर्माण वीर विक्रम प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें कोण के ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	६०	कोण	४
प्ररथ	१२०		
प्रत्यंग	८		
भद्र	१६		
कोणी	८		
नन्दी	८		
शिखर	१		
कुल	२२१	कुल	४

तुष्टि पुष्टि प्रासाद

इसका निर्माण अष्टापद प्रासाद के पूर्वोक्त मान से करें तथा उसमें भद्र के ऊपर ४ के स्थान पर ५ उरुश्रृंग चढ़ायें।

श्रृंग संख्या		तिलक संख्या	
कोण	६०	कोण	४
प्ररथ	१२०		
प्रत्यंग	८		
भद्र	२०		
कोणी	८		
नन्दी	८		
शिखर	१		
कुल	२२५	कुल	४

तीर्थंकर प्रभु के जिनालय उपरोक्त मान से ही बनाना श्रेयस्कर है। दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में मंदिर एवं शिखर का प्रमाण एक सा रखें। केवल प्रतिमा के स्वरुप में अंतर रखें। जिनालय निर्माण का पुण्य अर्जन करने वाले श्रावक परमपूज्य आचार्य परमेष्ठी के निर्देशन एवं आशीर्वाद पूर्वक ही जिनालय का निर्माण करें।

उपसंहार

देवशिल्प रचना आपके लिए प्रस्तुत है। इसमें मन्दिर विषय पर यथा संभव अधिकाधिक व्यवहारिक जानकारी देने का लघु प्रयास किया गया है। यद्यपि यह विद्या प्राचीन काल से ही विद्यमान है फिर भी समय परिवर्तन के साथ ही कुछ नए निर्माण तथा नई शैलियां विकसित हुई हैं। यथा शक्ति यह प्रयास किया गया है कि सभी प्रकार के धार्मिक निर्माणों को इस ग्रन्थ की परिधि में लाया जा सके। सुधी पाठक ही बतायेंगे कि यह उपक्रम अपने उद्देश्य में कितना सफल होता है।

ग्रन्थ समापन के निमित्त मैं इतना निवेदन अवश्य करना चाहता हूँ कि समाज के प्रतिष्ठाचार्य विद्वान गण, श्रेष्ठी वर्ग तथा तीर्थ क्षेत्र एवं समाज के सक्रिय कार्यकर्ता इस बात को स्मरण रखें कि मन्दिर त्रिलोकपति तीर्थंकर प्रभु का आलय है। यह नव देवताओं में से एक है। मन्दिर पृथक रूप से भी देवता होने के कारण पूज्य है। मन्दिर में स्थापित प्रतिमा का दर्शन मात्र भी कर्म क्षय का हेतु है तथा सम्यग्दर्शन प्राप्ति का कारण भूत है। ऐसी स्थिति में भगवान की प्रतिमा को अपनी मर्जी से इधर-उधर करना, अविनय पूर्वक कहीं भी स्थापित करना तथा वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों के विपरीत मन्दिर एवं परिसर की अन्य रचनाओं का निर्माण करना अत्यंत हानिकारक है। ऐसा करने से न केवल तीर्थक्षेत्र एवं मन्दिर का दिव्य प्रभाव कम होता है बल्कि उपासक, समाज एवं मन्दिर की व्यवस्था करने वाले प्रबन्धक गण भी विपरीत रूप से प्रभावित होते हैं।

दानदाता की मर्जी से अथवा यशोलिप्सा में रत व्यक्तियों के प्रभाव में आकर मन्दिर की तोड़फोड़ करना तथा शास्त्रोक्त रीति से विपरीत कार्य करना भयावह परिणाम उत्पन्न कर सकता है। अतएव विवेक पूर्वक, समझकर ही परम पूज्य गुरुजन आचार्य परमेष्ठी के आशीर्वाद पूर्वक मार्गदर्शन लेकर ही मन्दिर निर्माण आदि का उद्यम करना चाहिये।

प्रतिमाओं की स्थापना भी विवेक पूर्वक करना चाहिये। मूलनायक प्रतिमा किस तीर्थंकर की बनायें, इसका निर्णय ज्योतिष प्रकरण के अनुसार अवश्य करें। मन्दिर की प्रतिष्ठा भी पूर्ण विधि विधान से ही करना चाहिये। शार्टकट के चक्कर में पड़कर विधि विधान में कसर न करें। वास्तु

शांति विधान आदि सभी यथोचित समय पर करना चाहिये।

मन्दिर के शिखर की विभिन्न जातियों के उपयुक्त भेद का ही शिखर बनाना चाहिये। शिखर पर ध्वजा अवश्य आरोहित करें।

मन्दिर निर्माण से न केवल मन्दिर निर्माणकर्ता बल्कि उपासक, समाज, साधु राष्ट्र सभी लाभान्वित होते हैं। अतः मन्दिर निर्माण के साथ ही उसकी व्यवस्था एवं शुचिता बनाये रखना परम आवश्यक है। मन्दिर निर्माण करने से तथा उसमें प्रतिमा स्थापन करने से जितना पुण्य अर्जित होता है उससे कई गुना अधिक जीर्ण मन्दिर के पुनर्निर्माण से प्राप्त होता है अतएव मन्दिरों का जीर्णोद्धार अवश्य ही करायें।

जिनेन्द्र प्रभु के केवल ज्ञान से निःसृत जिनवाणी के अथाह महासागर की एक बिन्दु मात्र ही वर्तमान उपलब्ध साहित्य का मूल है। मुझ सरीखे अल्प बुद्धि ने इस महासागर में उतरने का दुस्साहस किया है। मैंने अपनी तरफ से यथाशक्ति विषय समझाने का प्रयास किया है फिर भी भूलें रह जाना स्वाभाविक है। विद्वान पाठक गण मेरी भूलों को ध्यान न देकर उसमें जिनागम सम्मत संशोधन कर लेवेंगे, यह विश्वास है।

"वर्द्धतां जिन शासनम्"

सिद्ध क्षेत्र मैनागिरि १९/०७/२०००

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि मुनि

शब्द संकेत

अण्डक-	लघु शिखर की एक डिजाइन, श्रृंग, शिखर, आमलसार, कलश का पेटा, ईंडा
अंघ्रि-	चरण, चौथा भाग
अंश-	विभाग, खंड
अंतर पत्र-	दो प्रक्षिप्त गोटों के मध्य का एक अंतरित गोटा, केवाल और कलश इन दोनों थरों के मध्य का अन्तर
अंतराल-	गर्भगृह और मंडप के मध्य का भाग
अग्र मण्डप-	प्रवेश मंडप, मुख मंडप
अग्रेत्तन-	ऊपर का भाग
अनन्त-	व्यासार्ध के ७/९ भाग की ऊंचाई वाला गुम्बज
अनुग-	कोने के समीप का दूसरा कोना, पढरा
अतिभंग-	जिसमें अत्यधिक वक्रता हो
अंधकारिका-	परिक्रमा, प्रदक्षिणा, अंधारिका
अधिष्ठान-	मन्दिर की गोटेदार चौकी, वेदिबन्ध
अनर्पित हारं-	विमान की मुख्य भित्ति से पृथक स्थित एक हार
अभय मुद्रा-	संरक्षण की सूचक एक हस्त मुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की खुली हथेली दर्शक की ओर होती है।
अश्व थर-	अश्वों की पंक्ति
अष्टापद-	आठ पीठिकाओं से निर्मित एक विशेष पर्वत की अनुकृति (ऋषभनाथ की निर्वाण स्थली), चारों दिशा में आठ आठ सीढ़ी वाला पर्वत
अर्धचन्द्र-	प्रासाद की देहली के आगे की अर्धगोल आकृति, शंखावटी
अलिन्द-	बरामदा, दालान
अवलम्ब-	ओलम्भा, रस्सी से बंधा हुआ लोहे का छोटा सा लट्टू, जिसको शिल्पी निर्माण कार्य करते समय अपने पास रखता है
अव्यक्त-	अप्रकाशित, अंधकारमय, अघटित, शिव लिंग
अश्वत्थ-	ब्रह्मपीपला, पीपल
अष्टास्रक-	आठ कोना वाला स्तम्भ
अस्र-	कोना, हद
अर्धमण्डप-	एक खांचे वाला स्तंभ आधारित मण्डप जो प्रायः प्रवेशद्वार से संयुक्त होता है।
अंचिता-	गर्भगृह के आगे १/५ भाग के मान की कोली
अंतराल मंडप-	कपिली, कोली मंडप

आगार-	देवालय, घर, स्थान
आमलसार-	शिखर के स्कंध के ऊपर कुम्हार के चाक जैसा गोल कलश
आमलसारिका-	आमलसार के ऊपर की चन्द्रिका के ऊपर की गोलाकृति
आयतन-	देवालय
आरात्रिक-	आरती
आलय-	वास स्थान, घर, देवालय
आसन पट्ट-	बैठने का आसन, तकिया, कक्षासन या चैत्य गवाक्ष (छज्जेदार) का एक समतल गोटा
आयाग पट्ट-	जैन मूर्तियों और प्रतीकों से अंकित शिला पट
आय-	संज्ञा विशेष जिससे गृहादिक का शुभाशुभ देखा जाता है
इन्द्रकील-	स्तंभिका जो ध्वजादण्ड को मजबूत रखने के लिए साथ रखा जाता है
इष्टिका-	ईंट, इष्टका
उदय-	ऊंचाई
उच्छ्राय-	ऊंचाई
उत्क्षिप्त-	गुम्बज का ऊंचा उठा हुआ चन्दोवा, छत
उत्तरंग-	द्वार शाखा के ऊपर का मथाला
उत्तानपट्ट-	बड़ा पाट
उत्सेध-	ऊंचाई
उद्‌गम-	चैत्य तोरणों की त्रिकोणिका जो सामान्यतः देव कोष्ठों पर शिखर की भांति प्रस्तुत की जाती है
उदुम्बर-	द्वार शाखा का निचला भाग, देहरी, देहली
उद्‌गम-	प्रासाद की दीवार का आठवां थर, जो सीढ़ी के आकार वाला है
उद्‌भिन्न-	चार प्रकार की आकृति वाली छत, छत का एक भेद
उप पीठ-	दक्षिण भारतीय अधिष्ठान के नीचे का उप अधिष्ठान
उपान-	दक्षिण भारतीय अधिष्ठान का सबसे नीचे का भाग या पाया (जो उत्तर भारतीय खुर से मिलता जुलता है)
उरुश्रृंग-	उरूमंजरी, उरःश्रृंग, मध्यवर्ती प्रक्षेत्र से संयुक्त कंगूरा, शिखर के भद्र के ऊपर चढ़ाये हुए श्रृंग, छातिया श्रृंग
ऊर्ध्वाचा-	खड़ी मूर्ति
कपोत-	कार्निश की तरह का नीचे की ओर झुका हुआ गोटा, जो सामान्यतः चौकी (अधिष्ठान) के ऊपर होता है।
कणक-	कणी, जाड्यकुम्भ और कणी ये दो थर वाली प्रासाद की पीठ
कणाली-	कणी नाम का थर
कपिली-	कवली, कोली; शुक नास के दोनों तरफ शिखराकृति मंडप, अंतराल मंडप

कपोताली - केवाल थर, कपोतिका
करोटक- गुम्बज
कर्ण- कोना, पट्टी, सिंह कर्ण, कोना प्रक्षेप, कोण प्रस्तर
कर्णक- कणी, जो थरों के ऊपर नीचे पट्टी रखी जाती है
कर्ण कूट- कर्ण या कोने के ऊपर निर्मित लघु मंदिर या कंगूरा
कर्ण गूढ़- छिपा हुआ कोना, बन्द कोना
कर्ण श्रृंग- कर्ण या कोने पर निर्मित कंगूरा
कर्णिका- थरों के ऊपर नीचे की पट्टी, छोटा कोना, कोण और प्ररथ के बीच में कोणी का फालना, असिधार की तरह का गोटा, पतला पट्टी जैसा गोटा
कर्ण दर्दरिका- गुम्बज की ऊंचाई में निचला थर
कर्ण सिंह - प्रासाद के कोने पर रखा सिंह
कर्णाली- कणी, जाड्यकुम्भ के ऊपर का थर
कर्म / क्रम- श्रृंगों का समूह
कलश- पुष्प कोश के आकार का गोटा जिसका आकार घट के समान होता है। दक्षिण भारतीय शैली में स्तंभ शीर्ष का सबसे नीचे का भाग
कलशाण्डक- कलश का पेट
कला- रेखा विशेष
कलास्र- सोलह कोने
कामदपीठ- गज आदि रुप थरों से रहित पीठ
कीर्ति वक्त्र- ग्रास मुख
कीर्ति स्तंभ- विजय स्तंभ, तोरण वाले स्तंभ
कीर्ति मुख- सिंह के शीर्ष की बनावट वाली प्रतीकात्मक डिजाइन
कायोत्सर्ग- खड्गासन, तीर्थंकर मूर्तियों को खड़ा हुआ रखें ऐसा आसन, खड़ा हुआ रहना ऐसा आसन
कीलक- कील, खूंटा
कुंचिता- प्रासाद के ३/१० भाग के मान की कोली
कुम्भ- मन्डोवर का दूसरा थर, कलश, अधिष्ठान का खुर के ऊपर का एक गोटा, दक्षिण भारतीय स्तंभ शीर्ष का एक ऊपरी भाग
कुंभिका- स्तंभ की अलंकृत चौकी, स्तंभ के नीचे की कुंभी
कूटच्छाय- छज्जा
कूर्म- स्वर्ण या रजत का कछुआ जो नींव में रखा जाता है
कूर्मशिला- कछुए के चिन्हवाली धरणी शिला
केसरीन- पांच श्रृंग वाला प्रासाद

कोटर- पोलापन, पोला भाग

कोल- गुम्बज की ऊंचाई में गज तालू थर के ऊपर का थर

क्षण- खण्ड, विभाग

क्षिप्त- लटकती हुई छत्त

क्षेत्र- प्रासाद तल

क्षोभ- कोनी

कनीयस्- लघु, छोटा

क्षेत्रपाल- अमुक मर्यादित भूमि का देव

कुडू(तमिल)- चैत्य गवाक्ष

कट्टू (तमिल)- स्तंभ के ऊपर के तथा नीचे के दो चतुष्कोण भागों के बीच का अष्टकोण भाग

खण्ड- विभाग, मंजिल

खर शिला- जगती के दासा के ऊपर तथा भिट्ट के नीचे बनी हुई प्रासाद को धारण करने वाली शिला

खात- भवन की नींव

खुर- प्रासाद की दीवार का प्रथम खर, अधिष्ठान का सबसे नीचे का गोटा, खुरक, खुरा

खत्तक- अत्यंत अलंकृत प्रक्षिप्त आला, गवाक्ष सदृश

गगारक देहरी के आगे अर्धचन्द्राकृति के दोनों ओर फूलपत्ती आकृति

गजतालू- छत का एक अवयव जो मंजूषाकार सुई के अगले भाग के समान होता है, गुम्बज की ऊंचाई में रुपकण्ठ के ऊपर का थर

गजथर- गजों की पंक्ति

गजपृष्ठाकृति- अर्धवृत्ताकार, गजपृष्ठ के आकार का मन्दिर

गजधर- देवालय एवं भवन निर्माता शिल्पी

गंडान्त- तिथि नक्षत्रादि की संधि का समय

गर्भकोष्ठ गर्भगृह का भीतरी भाग

गर्भगृह- मन्दिर का मूल भाग, गर्भ, गर्भालय, गेह

गव्हर- गुफा (गुफा ?)

गुण- रस्सी, डोरी

गूढ़ मण्डप- गूढ़, दीवार वाला मंडप

गृह- मकान, घर, भवन, आलय

गेह- गर्भगृह

गोपुर- किला के द्वार के ऊपर का गृह, मुख्यद्वार, प्रवेश द्वार के ऊपर निर्मित, प्रासाद के अग्र भाग में किले का सुन्दर दरवाजा

ग्रास पट्टी- कीर्ति मुखों की पंक्ति, ग्रास के मुख वाला दासा
ग्रन्थि- गांठ
ग्रास- जलचर प्राणी विशेष
ग्रीवा- शिखर का स्कंध और आमलसार के बीच का भाग, मुख्य निर्मिति के शिखर के नीचे का भाग
ग्रीवा पीठ- कलश के नीचे का गला
गूमट- घण्टा, मन्दिर के ऊपर की छत
घट- कलश, आमलसार
घण्टा- कलश, आमलसार, गूमट
घण्टिका- छोटी आमलसारिका, संवरणा के कलश
घट पल्लव- पल्लवांकित घट की डिजाइन
चतुर्मुख- चौमुख, सर्वतोभद्र, मंदिरों या मंदिर (अथवा उसकी अनुकृति) का ऐसा प्रकार जो चारों दिशाओं में खुला होता है।
चतुःशाल- घर के चारों तरफ का ओसरा (दालान)
चतुर्विंशति पट- ऐसा पट्ट, जिसमें चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां हों
चतुस्की- खांचा, चौकी, चार स्तंभों के मध्य का स्थान, चत्वर
चतुरस्र- वर्गाकार, सम चौरस, चतुष्किका
चण्ड- शिव का गण, जिसका स्थान शिवलिंग की जलधारी के नीचे रखा जाता है। जिससे स्नात्रजल उसके मुख से जाकर पीछे गिरता है। इससे जल उल्लंघन का दोष नहीं रहता है।
चन्द्रशाला- खुली छत
चन्द्रावलोकन- खुला भाग, जालीदार गोख (चन्द्र की किरण पड़े इस प्रकार खुला)
चन्द्रिका- आमलसार के नीचे औंधे कमल की आकृति वाला भाग
चन्द्र शिला- सबसे नीचे का अर्धचन्द्राकर सोपान
चापाकार- धनुष के आकार का मंडल
चार- जिसमें पाव पाव सोलह बार बढ़ाया जाता है, संख्या
चूर्ण- चूना
चैत्य- देव प्रतिमा
चैत्य गवाक्ष- वक्र कार्निस (कपोत) से आरम्भ होने वाला एक ऐसा प्रक्षिप्त भाग जो तोरण के नीचे खुला होता है, चैत्य वातायन, कुडू
चैत्यालय- मन्दिर, देवालय
छन्दस्- तल विभाग
छाद्य- छदितट प्रक्षेप, छज्जा

जगती-	ऐसा पीठ जो सामान्यतः गोटेदार होता है, पीठिका, प्रासाद की मर्यादित भूमि, प्रासाद का ओटला
जंघा-	प्रासाद की दीवार का सातवां थर, मन्दिर का वह मध्यवर्ती भाग जो अधिष्ठान से ऊपर तथा शिखर से नीचे होता है,
जाड्यकुम्भ-	पीठ के नीचे का बाहर निकलता गलताकार थर, द्रष्टव्य पीठ (चैकी) का सबसे नीचे का गोटा,
जालक-	जाल, जालीदार खिड़की, जाली जो सामान्यतः गवाक्ष या शिखर में होती है, तराशी हुई बारी।
जीर्ण-	पुराना
तल्प-	शय्या, आसन
तवंग-	प्रासाद के थर आदि में छोटे आकार के तोरण वाले स्तंभयुक्त रुप
तल-	मन्दिर, विमान या गोपुर का एक खंड, नीचे का भाग, दक्षिण भारतीय मंदिर एक, दो या तीन तल हो सकते हैं
तरंग-	एक लहरदार डिजाइन जो पश्चिम के एक गोटे से मिलती जुलती है
तरंग पोतिका-	तोड़ा युक्त शीर्ष जिसका गोटा घुमावदार होता है
ताडि-	दक्षिण भारतीय स्तम्भ का एक गद्दीनुमा भाग
ताल	बारह अंगुली का मान
तिलक-	एक प्रकार की कंगूरों की डिजाइन
तोरण-	अनेक प्रकारों एवं डिजाइनों का अलंकृत द्वार, दोनों स्तंभों के बीच में वलयाकार आकृति, मेहराब, कमान
त्रिक-	चौकी मंडप
त्रिक मंडप-	तीन चतुष्कियों का खांचों सहित मंडप
त्रिकूट-	तीन विमान जो एक ही अधिष्ठान पर निर्मित हो या एक ही मंडप से संयुक्त हो
त्रिशाख-	द्वार ते तीन अलंकृत पक्खों सहित चौखट
त्रिवलि	पेट के ऊपर पड़ती तीन सलवटें
त्र्यंश-	तीसरा भाग, तृतीयांश
दण्ड-	ध्वजा लटकाने का दण्ड (लकड़ी)
दण्ड छाद्य	छत का सीधा किनारा, (छदितट प्रक्षेप)
दल-	फालना
दारु-	लकड़ी, कारीगर
दारुण-	भयंकर
दिक्-	दिशा, दिश
दिक्पाल-	दिशा के अधिपति देव

दिक्साधन- दिशा का ज्ञान करने की क्रिया
दिग्मूढ़- प्रासाद, गृह का टेढ़ापन
दीर्घ- लम्बाई
देवकुलिका- लघु मंदिर, भ्रमती के सम्मुख स्थित सह मन्दिर,
देवायतन- देवों की पंचायत
दैर्घ्य- लम्बाई
दोला- झूला, हिण्डोला
द्राविड़- अधिक श्रृंगों वाले प्रासाद की दीवार, जंघा
द्वारपाल- चौकीदार, दरवाजे का रक्षक
धनद- कुबेर, उत्तर दिशा के अधिपति देव
धरणी गर्भगृह के मध्य नींव में स्थापित नवमी शिला
ध्वज- पताका, झंडा, ध्वजा
ध्वजादंड- ध्वजा लटकाने का दण्ड
ध्वजाधार- ध्वजा रखने का कलावा
ध्वांक्ष- काक, कौआ
नन्दिनी- पंच शाखा वाला द्वार
नन्दी- कोणी, भद्र के पास की छोटी कोनी
नर थर- पुरुष की आकृति वाली पट्टी, मानवाकृतियों की पंक्ति
नर्तकी- नाच करती हुई पुतली
नष्ट छंद- जिसकी तल विभक्ति बराबर न हो
नवरंग- वह महामंडप जिसमें चार मध्यवर्ती तथा बारह परिधीय स्तंभों की ऐसी संयोजना होती है कि उससे नौ खांचे बन जाते हैं.
नाग- हाथी
नाभि- मध्य भाग
नागरी- बिना रुपक की सादी जंघा
नाभि भेद- गर्भ भेद
नाभिच्छद- दो जाति की मिश्र आकृति वाली छत, एक प्रकार की अलंकृत छत, जिस पर मंजूषाकार सूच्यग्रों की डिजाइन होती है
नाल- पानी निकलने का परनाला, नाली
नाल मंडप- आवृत्त सोपानयुक्त प्रवेश द्वार, वलाणक
नासक- कोना
नासिका- दक्षिण भारतीय विमान का वह खुला भाग जो प्रक्षिप्त और तोरण युक्त होता है। अल्प नासिका या क्षुद्र नासिका छोटी होती है तथा महानासिका उससे बड़ी होती है।

निरंधार- प्रकाश सहित, व्यक्त, प्रदक्षिणा पथ से रहित मंदिर, प्रासाद
निषीधिका- जैन महापुरुष का स्मारक स्तंभ या शिला, निषद्या, समाधि अथवा मोक्षगमन का स्थल
निर्गम- बाहर निकलता हुआ भाग
निशाकर- आमलसार का देव, चन्द्रमा
निःस्वन- शब्द
नृत्यमंडप- रंग मंडप, परिस्तम्भीय सभा मंडप
प्लव पानी का बहाव
पट्ट- पाषाण का पाट, अलंकरण से रहित या सहित पट्टी
पट्टभूमिका- ऊपर की मुख्य खुली छत
पट्टिका- दालान, बरामदा
पताका- ध्वजा
पंचदेव ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, ईश्वर तथा सदाशिव इन पांच देवों का समूह, उरुश्रृंग के देव
पंच मेरु- जैन परंपरा के पांच मेरुओं की अनुकृति
पंच रथ- पांच प्रक्षेपों सहित मन्दिर
पंच शाखा- द्वार की पांच अलंकृत पक्खों सहित चौखट
पंचायतन- चार लघु मंदिरों से परिवृत्त मन्दिर
पंजर- लघु अर्धवृत्ताकार मन्दिर, नीड
पद- भाग, हिस्सा
पत्र लता- पत्रांकित लताओं की पंक्ति
पत्र शाखा- प्रवेश द्वार का वह पक्खा जिस पर पत्रांकन होता है, द्वार की प्रथम शाखा
पद्म- कमलाकार गोटा या एक भाग, दक्षिण भारतीय फलक को आधार देने के लिये बनाया जाने वाला एक कमलाकार शीर्षभाग
पद्मक- समतल छत
पद्मकोश- कमल की कली जैसा आकार, शिखर का गूमटनुमा उठान
पद्मपत्र- पत्तियों के आकार वाला थर, दासा
पद्मबंध- एक अलंकृत पट्टी जो दक्षिण भारतीय स्तंभ के मध्य भाग और शीर्ष भाग में होती है।
पद्मशिला- गुम्बज के ऊपर की मध्य शिला, नीचे लटकती दिखती है, छत का अत्यलंकृत कमलाकार लोलक, पद्मा
पद्मा- पद्मशिला
पद्मिनी- नवशाखा वाला द्वार
पर्यंक- पलंग, खाट, पल्यंक

पबासन- देव के बैठने का स्थान, पीठिका
परिकर- मूर्ति के साथ की अन्य आकृतियां
पर्वन्- ध्वजादण्ड की दो चूड़ी का मध्य भाग
पाद- चरण, चौथा भाग
पार्श्व- एक तरफ, समीप
पालव- छज्जा के ऊपर छाद्य का एक थर
पाश- जाल, फंदा, शत्रु को बांधने की डोरी का गुंजला
पिण्ड- मोटाई
पिशाच- क्षेत्रगणित के आय और व्यय दोनों बराबर जानने की संज्ञा
पीठ- प्रासाद की खुरसी, आसन, चौकी पाटपीठ
पुर- नगर, ग्राम
पुरुष- प्रासाद का जीव जो सुवर्ण पुरुष बनाकर आमलसार में पलंग पर रखा जाता है।
पुष्पकंठ- दासा, अंतराल
पुष्कर- जलाश्रय का मंडप, वलाणक
पुष्करिणी मकान में बना हुआ टांका
पुष्पगेह- पूजनगृह
पृथु- विस्तार, चौड़ाई
पेट- पाट आदि के नीचे का तल, पेटक
पौरुष- प्रासाद पुरुष संबंध की विधि
पौली- प्रासाद की पीठ के नीचे भिट्ट का थर
प्रणाल परनाला, पानी निकलने की नाली
प्रतिकर्ण- कोने के समीप का दूसरा कोना
प्रति भद्र- मुख भद्र के दोनों तरफ के खांचे
प्रतिरथ- कोने के समीप का चौथा कोना, भद्र और कर्ण के मध्य का प्रक्षेप
प्रतिष्ठा- देवस्थापन विधि
प्रतोली- पोल, प्रासाद आदि के आगे तोरण वाला दो स्तंभ, देवालय अथवा जलाशय के किनारे अथवा चार स्तंभ और उसके ऊपर मूर्ति और मेहराबदार बना हुआ सुन्दर स्तम्भ
प्रत्यंग- शिखर के कोने के दोनों तरफ लम्बा चतुर्थांश मान का श्रृंग
प्रदक्षिणा- परिक्रमा, फेरी
प्रवाह- पानी का बहाव, प्लव
प्रवेश- थरों के भीतर का भाग
प्रहार- श्रृंगों के नीचे का थर

प्रस्तार-	दक्षिण भारतीय विमान का विस्तार, कोणी मंडप
प्राक्-	पूर्व दिशा, प्राची
प्राकार-	मन्दिर को परिवृत्त करने वाली भित्ति
प्रासाद-	देव मन्दिर , राजमहल
प्राग्रीव-	अग्र मंडप, मुख मंडप का प्रक्षेप, गर्भगृह के आगे का मंडप
फलक-	स्तंभ का शीर्ष भाग
फालना-	प्रासाद की दीवार के खांचे
फांसना-	भवन का आड़े पीठों से बना भाग (पश्चिमी भारत में प्रचलित, उड़ीसा में पीढ़ा देउल कहते हैं)
बलाणक-	बलाण, कक्षासन वाला मंडप, गर्भगृह के आगे का मंडप, मुख मंडप, आवृत्त सोपानबद्ध प्रवेशद्वार, टंकारखाना, नगारखाना
बाण-	शिवलिंग
बीजपुर-	कलश के ऊपर का बिजौरा
बांधना-	जंघा को ऊपरी और निचले भागों में विभक्त करने वाला एक प्रक्षिप्त गोटा
भग्न-	खंडित
भद्र-	प्रासाद का मध्य भाग, गर्भगृह का मध्यवर्ती प्रक्षेप
भद्रक-	भद्र वाला स्तंभ
भद्रपीठ-	गोटेदार पादपीठ का एक दक्षिण भारतीय प्रकार
भमती-	मन्दिरों में दृष्टव्य स्तंभों के मध्य का मार्ग
भरणी-	स्तंभ शीर्ष, प्रासाद की दीवार का तथा स्तंभ के ऊपर का थर
भवन-	मन्दिर, मकान, गृह, प्रासाद
भवनाजिर-	घर का आंगन
भिट्ट-	प्रासाद की पीठ के नीचे का थर, उप अधिष्ठान
भित्ति-	दीवार
भिन्न-	सूर्य किरण से भेदित गर्भगृह, दोष विशेष, वितान की एक जाति
भूमि-	मंजिल
भ्रम-	परिक्रमा, फेरी, भ्रमणी, भ्रमन्तिका
भ्रमा-	प्रासाद के १/३ भाग के मान का कोली मंडप
मकर-	मगर के मुख वाली नाली
मकर तोरण-	प्रवेश द्वार का अलंकरण या मकर मुखों से निकलता वंदनवार
मंच-	अधिष्ठान का एक दक्षिण भारतीय प्रकार
मंची-	प्रासाद के दीवार की जंघा के नीचे का तथा केवाल के ऊपर का थर विशेष
मंचिका-	पट्टिका के समान एक ऊपर कोटा

मंजरी-	प्रासाद का शिखर अथवा श्रृंग
मठ-	ऋषि आश्रम, धर्मगुरु का स्थान
मंडन-	आभूषण
मंडप-	गर्भगृह के आगे का मंडप
मंडल-	गोल आदि आकार वाली पूजन की आकृति
मंडुकी-	ध्वजादंड के ऊपर की पाटली जिसमें ध्वजा लगाई जाती है
मंडोवर-	प्रासाद की दीवार, पीठ, वेदिबंध तथा जंघा से मिलकर बने भाग का नाम (पश्चिमी भारतीय स्थापत्य में प्रचलित)
मंदारक-	प्रासाद का उदय भाग, द्वार की अलंकृत देहली, देहली के मध्य का गोल अर्द्धचन्द्र भाग
म[illegible]	कटहरा
मत्तावलम्ब-	गवाक्ष, झरोखा, आला, ताक
मत्र-	जाप विशेष
मध्यस्था-	प्रासाद के १/४ भाग के मान का कोली मंडप का नाम
मर्कटी-	ध्वजादण्ड के ऊपर की पाटली जिस पर ध्वजा लटकाई जाती है
महामंडप-	मध्यवर्ती स्तंभ आधारित मंडप, जिसके दोनों पार्श्व अनावृत्त होते हैं (मध्यकाल मंदिरों में प्रचलित)
महानस-	रसोईघर
माड-	मंडप, मंडवा
मिश्र संघाट-	ऊंचा नीचा खांचा वाला गुम्बद का चंदोवा, छत्त
मुकुली-	आठ शाखा वाले द्वार का नाम
मुख भद्र-	प्रासाद का मध्य भाग
मुख मण्डप-	गर्भगृह के आगे का मंडप, बलाणक, सामने का या प्रवेश द्वार से संयुक्त मंडप
मुण्डलीक-	छज्जा के ऊपर का एक थर
मूढ़-	टेढ़ा, तिरछा
मूल-	नीचे का भाग
मूल कर्ण-	शिखर के नीचे का कोना
मूल रेखा-	शिखर के नीचे के दोनों कोण के बीच का नाप, कोना
मूल प्रासाद-	मूल मन्दिर
मूल नायक-	मुख्य स्थान पर स्थापित तीर्थंकर मूर्ति
मुख्य चतुष्की-	प्रवेश द्वार से संयुक्त मुख मंडप या सामने का खांचा
मान स्तम्भ-	चारों ओर से निराधार स्तंभ जिसके शीर्ष पर चार तीर्थंकर मूर्तियां होती हैं

मृषा- लम्बा अलिन्द, वरांडा
मृत- मिट्टी, मृत्तिका
मेखला- दीवार का खांचा
मेढ्र- पुरुष चिन्ह, लिंग
मेरु- प्रासाद विशेष पर्वत
यक्ष- आय से व्यय जानने की संज्ञा
यमचुल्ली- सम्मुख लम्बा गर्भगृह
यान- आसन, सवारी
रत्न शाखा- प्रवेश द्वार का हीरक अलंकरण सहित पक्खा
रथ- मन्दिर का प्रक्षेप, कोने के समीप का दूसरा कोना, फालना विशेष
रंग मंडप- स्तम्भ आधारित मंडप जो चारों ओर अनावृत्त होता है
रंग भूमि- गर्भगृह के सामने पांचवां नीचा मंडप, नृत्य मंडप
रथिका- भद्र का गवाक्ष, आला
रन्ध्र- प्रवेश द्वार
राजसेन- मण्डप की पीठ के ऊपर का थर
रीति- पीतल धातु
रुचक- समचौरस स्तंभ
रुपकण्ठ- आकृतियों से अलंकृत एक अंतरित पट्टी या पंक्ति
रुप स्तम्भ- द्वार शाखा के मध्य का स्तम्भ
रुप शाखा- प्रवेश द्वार का आकृतियों से अलंकृत पक्खा
राक्षस- आय से व्यय अधिक जानने की संज्ञा
राज सेनक- कक्षा या छज्जेदार गवाक्ष का सबसे नीचे का गोटा
रेखा- खांचा, कोना
लय- मकान, गृह
ललितासन- विश्राम का एक आसन जिसमें एक पैर मोड़कर पीठ पर रखा होता है तथा दूसरा पीठ से लटककर मनोज्ञ लगता है
लाटी- स्त्री युगल वाली प्रासाद की जंघा
वक्त्र- मुख
वज्र- हीरा
वत्स- आकाशीय कल्पित एक संज्ञा
वपुस्- शरीर
वराल- ग्रास, जलचर विशेष, मगर
वर्धमान- प्रतिकर्ण वाला स्तंभ
वाजिन्- अश्वथर

वापी-	बावड़ी
वामन-	मंडप के व्यास के आधे मान की ऊंचाई वाला गुम्बद, जगती के आगे का वलाणक मंडप
वाराह-	मंडप के व्यासार्ध के २/३ मान की ऊंचाई वाला गुम्बद
वारि-	जल
वारिमार्ग-	दीवार से बाहर निकला हुआ खांचा, बरसाती पानी के बहाव के लिए बारिक नालियां, सलिलांतर
विधु-	चन्द्रमा
विद्ध-	वेध, रुकावट
विपर्यास-	उल्टा
विलोक्य-	खुला भाग
विस्तीर्ण-	विस्तार, चौड़ाई
वृत-	गोलाई, गोलाकृति
वेदिका-	पीठ, प्रासाद आदि का आसन
वरद-	वर प्रदान करने की सूचक हस्त मुद्रा
वरंडिका-	शिखर और जंघा के मध्य बना कुछ गोटों से मिलकर बना भाग
विद्याधर	गुम्बद में नृत्य करने वाले देव रुप
वेदी	पीठ, राजसेन के ऊपर का थर
वेदिबन्ध-	अधिष्ठान, आधार, जगती
वेश्मन-	मन्दिर, घर
वैराटी-	प्रांसाद की कमलपत्र वाली दीवार
व्यक्त-	प्रकाश वाला
व्यंग-	टेढ़ा
व्यजन-	पंखा
व्यतिक्रम-	मर्यादा से अधिक
व्यास-	विस्तार, गोल का समान दो भाग करने वाली रेखा
व्योमन्-	शून्य, आकाश
वितान-	गूमट का नीचे का भाग, छत
विस्तार-	चौड़ाई
शंकु-	छाया मापक यंत्र
शंखावर्त-	प्रासाद की देहली के आगे की अर्धचन्द्र आकार वाली शंख और लताओं वाली आकृति
शदुरम्-	स्तंभ का चतुष्कोण भाग (दक्षिण भारतीय) (तमिल)

शाखा-	द्वार की चौखट का पक्खा, जो भित्ति स्तंभ के समान होता है
शस्या-	प्रासाद के २/५ मान का कोली मंडप
शाखोदर-	शाखा का पेटा भाग
शाल भंजिका-	नाच करती हुई पाषाण की पुतलियां
शाला-	प्रासाद, गभारा, छोटा कमरा, भद्र, परसाल, बरामदा, ढोल के आकार की छत सहित आयताकार मन्दिर
शिखर-	शिवलिंग के आकार वाला गुम्बद, मन्दिर का ऊपरी भाग या छत, सामान्यतः उत्तर भारतीय शिखर वक्र रेखीय होता है, दक्षिण भारतीय शिखर गुम्बदाकार या अष्टकोण या चतुष्कोण होता है.
शिर-	शिखर शिरावटी, ग्रास मुख
शिरपत्रिका-	ग्रास मुख वाली पट्टी, दासा
शिरावटी-	भरणी के ऊपर का थर, शीर्ष
शुक नास-	प्रासाद की नासिका, उत्तर भारतीय शिखर के सम्मुख भाग से संयुक्त एक बाहर निकला भाग जिसमें एक बड़े चैत्य गवाक्ष की संयोजना होती है। शुक नासा शिखर के जिस भाग पर सिंह की मूर्ति बनाई जाती है, वह स्थान
शुण्डिकाकृति-	हाथी
शुद्ध संघाट-	गुम्बद का समतल चंदोवा, छत
श्रृंग-	छोटे- छोटे शिखर के आकार वाले अंडक
श्रीवत्स-	एक ही सादा श्रृंग
षड्दारु-	दो दो स्तंभ और उसके ऊपर एक एक पाट
सभा मंडप-	रंग मण्डप
सभा मार्ग-	एक प्रकार की अलंकृत छत जिसकी रचना अनेकों मंजूषाकार सूच्यग्रों से होती है। तीन प्रकार की आकृति वाली छत
समतल वितान-	अवनतोन्नत तलवाली ऐसी छत जो साधारणः पंक्तिवद्ध सूचियों से अलंकृत होती है।
समवशरण-	तीर्थंकर प्रभु की बारह खण्डों की धर्मसभा, तीन प्राकार वाली वेदी
समचतुरस्र-	बनावट सहित वर्गाकार
सकलीकरण-	देव प्रतिष्ठा की विधि विशेष
सत्रागार-	यज्ञ शाला
सभ्रमा-	प्रासाद के १/२ मान का कोली मंडप
सर्वतोभद्र-	चतुर्मुख, एक प्रकार का चारों ओर सम्मुख मंदिर, चारों ओर मूर्तियों से संयोजित एक प्रकार की मंदिर अनुकृति
सलिलांतर-	खड़ा अंतराल, वारिमार्ग, बरसाती जल निकालने की बारीक नालियां, जहां फालनाओं के जोड़ मिलते हैं

सहस्रकूट- पिरामिड के आकार की एक मन्दिर अनुकृति जिस पर एक सूहस्त्र तीर्थंकर मूर्तियां उत्कीर्ण होती है

संवरणा- अनेक छोटे- छोटे कलशों वाला गुम्बद छत जिसके तिर्यक रेखाओं में आयोजित भागों पर घंटिकाओं के आकार के लघु शिखर होते हैं, गूमट का ऊपर का भाग

संघाट- तल विभाग

संधि- सांध, जोड़

सांधार परिक्रमा युक्त नागर जाति के प्रासाद

सारदारु- श्रेष्ठ काष्ठ

सिद्धासन ध्यान आसन में आसीन तीर्थंकर की एक मुद्रा

सिंह स्थान- शुकनास

सुरवेश्मन्- देवालय

सुषिर- पोलापन, छेद

सूत्रधार- शिल्पी, मंदिर मकान बनाने वाला कारीगर

सूत्रारम्भ- नींव खोदने के प्रारंभ में प्रथम वास्तु भूमि में कीले ठोंककर उसमें सूत बांधने का आरंभ

सृष्टि- दाहिनी ओर से गिनना

सोपान- सीढ़ी

सौध- राजमहल, हवेली

स्कन्ध- शिखर के ऊपर का भाग

स्तम्भ- थंभा, खम्भा, ध्वजादण्ड

स्तम्भवेध- ध्वजाधार, कलावा

स्थन्डिल- प्रतिष्ठा मंडप में बालुका वेदी जिसके ऊपर देव को स्नान कराया जाता है

स्थावर- प्रासाद के थर, शनिवार

स्मरकीर्ति- एक शाखा वाले द्वार

स्वयंभू- अघटित शिवलिंग

हर्म्य- मकान, मध्यवर्ती तल, दक्षिण भारतीय विमान का मध्यवर्ती भाग

हर्म्यशाल- घर के द्वार के ऊपर का बलाणक

हस्तांगुल- एक हाथ के लिए एक अंगुल, दो हाथ को लिए दो अंगुल इस प्रकार जितने हाथ उतने अंगुल

हस्तिनी- सात शाखा वाला द्वार

ह्रस्व- कम होना, न्यून, छोटा

हार- कूट, शाला और पंजर नामक लघु मन्दिरों की पंक्ति जो दक्षिण भारतीय विमान के प्रत्येक तल को अलंकृत करती है

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. तिलोय पण्णत्ति
२. भगवती आराधना
३. उमा स्वामी श्रावकाचार
४. वसुनन्दि श्रावकाचार
५. प्रतिष्ठा तिलक : आचार्य नेमीचंद
६. वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ
७. जयसेन प्रतिष्ठापाठ
८. प्रतिष्ठा सारोद्धार
९. कुन्दकुन्द श्रावकाचार
१०. महापुराण : आचार्य जिनसेन
११. पद्मपुराण : आचार्य रविषेण
१२. हरिवंश पुराण
१३. धर्म रत्नाकर : आचार्य जयसेन
१४. त्रिशष्टि शलाका पुरुष
१५. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश
१६. जैन ज्ञान कोश मराठी
१७. वत्थुसार : ठक्कर फेरु
१८. प्रासाद मंडन
१९. शिल्प रत्नाकर
२०. क्षीरार्णव
२१. दीपार्णव
२२. वास्तु रत्नाकर
२३. अपराजित पृच्छा सूत्र
२४. रुपमंडन
२५. समरांगण सूत्रधार
२६. राजवल्लभ
२७. आचार दिनकर
२८. भारतीय शिल्प संहिता
२९. प्रासाद मंजरी
३०. जैन कला एवं स्थापत्य
३१. वास्तु कला निधि
३२. विश्वकर्म प्रकाश
३३. विवेक विलास
३४. ज्ञान प्रकाश
३५. प्रासाद तिलक
३६. वास्तु राज
३७. धवला
३८. त्रिलोकसार
३९. मत्स्यपुराण
४०. नवदेवता स्तोत्र
४१. अष्ट पाहुड़
४२. सावयधम्म दोहा
४३. राजवार्तिक

श्री प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास के सहयोगी

श्री प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास के अन्तर्गत शिक्षण शिविर, शिष्यवृत्ति एवं ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य निरन्तर हो रहा है। सभी जगह शिक्षण शिविर द्वारा धर्म प्रचार एवं सुलभता से अल्प मूल्यों से ग्रन्थ उपलब्ध हो सकें इस दृष्टि से न्यास में एक संरक्षक सहयोगी योजना प्रारम्भ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत अब तक निम्न महानुभाव संरक्षक व सहयोगी बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

विशिष्ट परम संरक्षक :-

श्री नीलम कुमारजी चंपतराय जी अजमेरा उस्मानाबाद (महा.)

परम संरक्षक :-

१) श्री हीरालाल (बाबूभाई) माणिकचन्द जी गांधी, अकलूज (महा.)
२) श्री महावीर प्रसाद जी कासलीवाल, सूरत (गुजरात)
३) श्री संतोषभाई गमनलाल जैन, सोनगिर जि. धूलिया (महा.)
४) श्री मोतीलालजी गुलाबचंदजी शहा पळसदेवकर, पुणे (महा.)
५) श्री विक्रमचंद नेमीचंदसा साहूजी, औरंगाबाद (महा.)
६) श्री जगदीशसा केशरसा साहूजी, औरंगाबाद (महा.)
७) सौ. शैलाबाई धन्नालालजी दगडे, नासिक (महा.)

संरक्षक :-

१) श्री महेन्द्र कुमार जी नरेन्द्र कुमारजी सेठी डीमापुरवाले
२०४ शंकर नगर अपार्टमेन्ट, कान्तिनगर, जे.बी. नगर, अंधेरी (पूर्व) मुंबई
२) स्व. शान्ति देवी गोपीरामजी जेजानी की स्मृति में घाट रोड, नागपुर (महा.)
३) श्री दिगम्बर जैन पंचायत तिनसुकिया, (असम)
ट्रस्ट निर्मलकुमार जी हुलासचन्दजी सेठी, साइडिंग बाजार तिनसुकिया, (असम)
४) श्री रुपचन्दजी छीतरमलजी पाटनी, इचलकरंजी (महा.)
५) श्री अनिल कुमार जी जैन, मुंबई
६) श्री पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)
७) स्व. श्री मोतीलालजी केदारमलजी जेजानी की स्मृति में
८) श्री रमेश कुमार जी जेजानी, धंतोली, नागपुर (महा.)
९) श्री फूलचंद हिरासा साहूजी, औरंगाबाद (महा.)
१०) श्री घीसूलाल मदनलाल जी बाकलीवाल, दुर्ग (म.प्र.)
११) श्री रतनलालजी महेन्द्र कुमार जी काला, डोरनकल, जि. वारंगल, (आन्ध्र प्रदेश)
१२) श्री संतोष कुमार जी सीमन्धर कुमारजी पाटनी, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
१३) श्री सुनील कुमार चुन्नीलालसा साहूजी, औरंगाबाद (महा.)
१४) श्री प्रेमचंदसा दुलिचंदसा साहूजी, औरंगाबाद (महा.)
१५) श्री शांतिलाल गुलाबचंद शहा मोडासे, म्हसवड (महा.)
१६) श्री मनोज कुमार सम्पतकुमारजी जैन पाटनी
१७) श्री हुलासचन्द सुशील कुमार बाकलीवाल, हैद्राबाद (आ.प्र.)

आजीवन सहयोगी:- दिगम्बर जैन समाज तिनसुकिया, असम